लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों के पात्र - आधुनिक पात्र प्रतिमानों के सन्दर्भ में

बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय झाँसी से
पी-एच०डी० (हिन्दी) उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

वर्ष 2010

शोध निर्देशिका
डॉ० प्रेमलता मिश्र
रीडर, हिन्दी विभाग
राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बाँदा
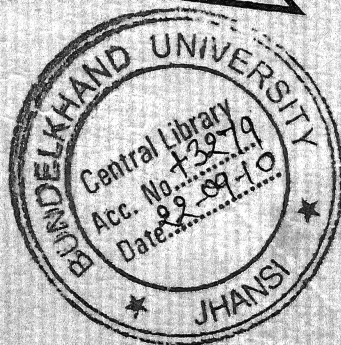
शोध छात्रा
मंजू गौतम

शोध केन्द्र

अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अतर्रा (बाँदा)

प्रमाण पत्र
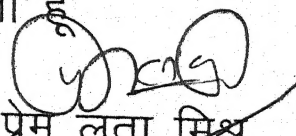
डा0 प्रेम लता मिश्र,
रीडर हिन्दी विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,
बॉदा (उ0प्र0)

मै यह प्रमाणित करती हूँ कि सुश्री मंजू गौतम ने लक्ष्मी नारायण लाल के नाटको के पात्र आधुनिक पात्र प्रतिमानो के सन्दर्भ में शोध विषय पर पी–एच0डी0 कि उपाधि के लिये मेंरे निर्देशन में शोध कार्य किया है।

शोध कार्य की अवधि में सुश्री मंजू गौतम ने दो सौ दिन से अधिक अवधि तक निरन्तर मेंरे निर्देशन का अनुपालन करती रहीं है

सुश्री मंजू गौतम का यह मौलिक शोध प्रबन्ध है और शोध प्रक्रिया की विशेषता से युक्त है

मै शोध के मूल्यांकन हेतु बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान करती हूँ

डा0प्रेम लता मिश्र
रीडर हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय
बॉदा (उ0प्र0)
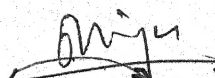
घोषणा

मैं श्रीमती मन्जू गौतम घोषणा करती हूँ कि हिन्दी विषय के अन्तर्गत बाँदा जनपद में ''लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों के पात्र-आधुनिक पात्र प्रतिमानों के सन्दर्भ में'' पी-एच0डी0 उपाधि हेतु यह शोध-प्रबन्ध मेरी स्वयं की मौलिक कृति (रचना) है। इससे पूर्व यह शोध कार्य किसी अन्य के द्वारा कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया गया है।

विश्व विद्यालय परिनियमावली के अनुसार अपने केन्द्र में दो सौ से अधिक दिवसों में उपस्थित रहकर निदेशिका महोदया के निर्देशानुसार कार्य पूर्ण किया है।

दिनांक-

(मन्जू गौतम)

एम0ए0 हिन्दी

भूमिका

'काव्येषु नाटकम् रम्यं' की उद्घोषणा करने वाले आचार्य ने नाटक में रस पेशलता,सामूहिकता एवं हृदयावर्जकता का अनुभव किया होगा । बात यह है,कि मानव की रागात्मकता अभिव्यक्ति के सशक्त एवं प्रभावपूर्ण साहित्यांगों में नाटक मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है, क्यों कि दृश्य काव्य में जो ओजस्विता, सजीवता, प्रत्यक्षनुभवता एवं मनोहारिता है,वह साहित्य के किसी भी अन्य अंग में यथेष्ट रूप से नहीं पाई जाती। यह मात्र मनोरंजन का साधन ही नहीं,अपितु तन्निविष्ट पात्रों के माध्यम से जीवन के प्राक्तन एवं अधुनातन जीवन सत्यों, गहराइयों, सुख, दुखों, विफलता, सफलताओं, कुठा एवं अन्तद्वन्दों का मनोज्ञतम रूप में व्यंजित करने का सटीक माध्यम हैं । पात्र ही कथावस्तु को विकसित करने वाले, नाटक कार के मूल चिन्तन की अभिव्यक्ति करने वाले होते हैं। घटना, परिस्थिति के साथ पात्रों का घनिष्ठ और सजीव सम्बन्ध होता है ।

भारतेन्दु हिरिश्चन्द्र , प्रसाद, लक्ष्मीनारायाण मिश्र एवं उपेन्द्र नाथ अश्क के बाद डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ऐसे नाटक कार हैं जिन्होंने रंगमंच को रंगभूमि से जोडकर देखने का नया आयाम दिया है। उन्होने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, इत्यादि विविध क्षेत्रों से कथा का ग्रहण कर उसमें आधुनिक प्रतिमानों के अनुरूप पात्रो का प्रयोग किया है । आज औद्योगिक विकास, वैज्ञानिक प्रगति एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण पात्र के प्राक्तन प्रतिमान अप्रासांगिक हो गये हैं। वे युगीन सन्दर्भो को व्यक्त करने में अक्षम सिद्ध हुये अतः डां लक्ष्मी नारायण लाल ने नवीन, पौरस्त्य पात्र प्रणाली का उपयोग कर पात्रो कों नया रूप दिया है अतः शोधकत्री ने अपने शोध प्रबन्ध का शीर्षक "डा0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों के पात्र आधुनिक पात्र प्रतिमानों के संदर्भ में" रखा है । इस शोध प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

प्रथम अध्याय पात्र प्रतिमानों की अवधारणा से सम्बन्धित है। इस परिप्रेक्ष्य में पात्र,चरित्र,व्यक्तित्व, के भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य शास्त्रों में उल्लिखित विशेष रूप से मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत की गयी धारणाओं का उल्लेख कर आधुनिक जीवन की विंसगतियों के कारण पात्रों के चारित्रिक नवीन प्रतिमानों/अवधारणाओं का उल्लेख है।

द्वितीय अध्याय में आधुनिक हिन्दी नाटकों का विकास स्वरूप दशा और दिशाओं का उल्लेख है। भारतेन्दु युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग में लिखे नाटक उनकी पात्र योजना एवं संक्षिप्त में शिल्प विधान गत वैशिष्ट्य का निरूपण किया गया है।

तृतीय अध्याय लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक एवं पात्र वर्गीकरण से सम्बन्धित है। लक्ष्मीनारायण लिखित नाटकों की सूची,उनमें प्रयुक्त पात्रों के नाम तथा उनका वर्गीकरण विषय वस्तु के क्षेत्र,आर्थिक स्थिति, मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रचलित वर्गो की दृष्टि से इन पात्रों का वर्गीकरणा एवं कथागत पात्रों की भूमिका चित्रण हुआ है ।

चतुर्थ अध्याय में डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल के प्रधान एवं गौण पुरूष पात्रों के स्वरूप उनकी आन्तरिक विशेषतायें,तथा किया प्रतिकिया वश किये गये व्यवहारों का विश्लेषण एवं उनके व्यक्तित्व का निरूपण हुआ है।

पंचम अध्याय में डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में प्रयुक्त स्त्री पात्रों से सम्बन्धित है। प्रथम एवं गौण तथा सहायिका पात्रों के बाह्य सौन्दर्य एवं आन्तरिक गुण अवगुणों की विस्तृत समीक्षा की गयी है।

षष्टम अध्याय में आलोच्य नाटककार के नाटकों में प्रयुक्त असमान्य पात्रों का अध्ययन-विश्लेषण किया गया है इस दृष्टि से इड, इगो, सुपर इगो, वर्जना,कुण्ठा या सामाजिक विषमताओं के कारण व्यक्ति की प्रतिक्रिया सामाजिक नैतिक मूल्यों के विपरीत होती है। शोध कर्त्री ने ऐसे पात्रों की कथा

वस्तु/जीवन/उनकी आकृति विशेष के कारण परिवर्तित प्रतिक्रियायें एवं व्यवहारों अन्तद्वन्दों का चित्रण किया है।

सप्तम अध्याय डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक के पात्रों का सामाजिक वर्गीयरूपगत विवेचन से सम्बन्धित है । साहित्यकार/नाट्यकार निर्मित संसार में वर्तमान जगत् के समान सामाजिक सम्बन्ध होते हैं । इस प्रकार पिता,पुत्र,भाई,पति,मित्र,मां प्रेमिका, पत्नी इत्यादि वर्गीय रूपों का यथार्थ रूप प्रस्तुत हुआ है।

अष्टम अध्याय में डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के पात्रों में व्यंजित आधुनिक मूल्य बोध का विहंगावलोकन हुआ है। साामाजिक मूल्यों में परिवार स्वरूप, काम प्रेम विवाह विवाहेतर सम्बन्धो के साथ त्याग, सेवा, उदारता, दया इत्यादि नैतिक एवं राजनीतिक,आर्थिक मूल्यों के साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मूल्यों का सोदाहरण विवेचन किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध की निर्देशिका डॉ0(श्रीमती) प्रेमलता मिश्र रीडर हिन्दी विभाग,राजकीय महिला पोष्ट ग्रेजुएट कालेज, बांदा हैं । जिन्हें साहित्य विधाओं में नाटक अत्यन्त प्रिय है। उन्होंने डा0 लाल के नाटक ही नहीं उपलब्ध कराये, अपितु अपनी सूक्ष्म विवेचन से अत्याधुनिक नाट्य दृष्टि विकसित की है। इस वैदुष्यपूर्ण दृष्टि का लाभ मुझे पात्रों के व्यक्तित्व निरूपण में सहज ही प्राप्त हुआ है। यह उन्हीं की कृपा का परिणाम है । मैं हृदय से उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं साथ ही उनके पति डॉ0 अवधेष चन्द्र मिश्र रीडर समाजशास्त्र विभाग अतर्रा पो0ग्रे0कालेज अतर्रा के सहयोग के लिये अत्यन्त आभारी हूं । यह शोध प्रबन्ध सायद अपूर्ण ही रहता यदि श्री भुवन मोहन अग्निहोत्री, प्रबन्धक, उत्तर प्रदेश गन्ना संस्थान लखनउ ने अपने अथक प्रयास से डॉ0 लक्ष्मी नारायण अधिकांश नाटकों की पूर्ण फोटो कापी कराकर मुझे उपलब्ण न कराया होता क्यों कि अनेक प्रकाशकों एवं दिल्ली यात्रा के बावजूद डा0 लाल के नाटक उपलब्ध नहीं हो रहे थे। श्री अग्निहोत्री जी मुझसे नितान्त अपरिचित हैं किन्तु निःशुल्क रूप से नाटको की फोटो कापी जिस सहजता से उपलब्ध कराई है। उन्हें

आभार किस प्रकार व्यक्त करूं यह समझ में ही नहीं आ रहा है। ऐसे उदार व्यक्ति सम्भवतः भाग्यवशात ही मिलते हैं। डॉ0 उमा प्रधान कानपुर एवं डॉ0 रामानुज त्रिपाठी रीडर हिन्दी विभाग डी0एस0एन.0 कालेज उन्नाव का मैं धन्यवाद करती हूं इनकी सहायता मुझे सुलभ रही है । मेंरे इस शोध प्रबन्ध के प्रेरणा स्रोत आदरणीय डॉ0 रामप्रकाश सिंह रीडर सैन्य – अध्ययन विभाग अतर्रा पो0ग्रेजुएट कालेज अतर्रा हैं उनके उत्साहवर्धन से ही यह कार्य पूरा हुआ है।

मैं अपनी पति– श्री संतोष कुमार त्रिपाठी, श्वसुर श्री भागवत प्रसाद त्रिपाठी, पिता श्री अवध शरण गौतम एवं माता श्रीमती कुशला देवी को श्रद्धा पूर्वक स्मरण करती हूं क्यों कि अनेक बार पारिवारिक दायित्वों को छोडकर इस कार्य को प्राथमिकता देनी पडी है । व इसे इस रूप में देखकर उन्हें प्रसन्नता ही होगी ।

अंत में मैं उन विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करती हूं जिनके ग्रन्थों से मैंने इस कार्य में सहायता ली है इस शोध प्रबन्ध के टंकण श्री कुलदीप सिंह, अतर्रा का भी मैं स्मरण करती हूं।

शोधकर्त्री

(मंजू गौतम)

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

अध्याय-१

मनुष्य की रागात्मक अनुभूतियाँ विभिन्न काव्य रूपों में मुखरित होती हैं जिनमें नाटक का अन्यतम स्थान है, इसीलिए काव्येषु नाटकं रम्यम्' कहा गया है। बात यह है कि नाटक में जो ओजस्विता, सजीवता, प्रत्यक्षानुभवता एवं मनोहारिता होती है, वह साहित्य के अन्य किसी विधा में नहीं पायी जाती है। नाटक में मनोविनोद के साथ ही जीवन के सत्यों, गहराइयों, समस्त सुख-दुःखों, सफलताओं-विफलताओं एवं अर्न्तद्वन्द्वों का मनोहारी चित्रण प्राप्त होते हैं। वास्तव में नाटक में जीवन की अवस्थाओं का ही अनुकरण होता है, 'अवस्थानुकृति नाट्य रूपं दृश्तयोच्यते[1] तथा कृतानुकरणं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तिनम्[2] कहा जात है। प्रश्न है अनुकरण किसका होगा? भावानुकीर्तन किसका होगा? किसकी अवस्था की अनुकृति होगी? उत्तर है पात्र या चरित्र। लोक में जिसका आचरण सर्वश्रेष्ठ, विख्यात, प्रभावी हो चुका है, उसकी अवस्था उसका भावानुकीर्तन कोई न कोई अभिनेता करेगा। डॉ० सूरज कान्त शर्मा ने लिखा है कि 'कहने की आवश्यकता नहीं कि रंगमंच पर प्रवेश करने की अवधि से लेकर रंगमंच से प्रस्थान करने की अवधि तक अभिनेता नाटकीय पात्र का प्रारूप मात्र होता है। अतः अभिनेता और नाटककार-दोनों के लिए नाटकीय पात्र तथा उसके चरित्र की विविध विशेषताएँ महत्त्व रखती हैं।[3]

व्यावहारिक जगत् में मनुष्य जिस प्रकार अपने राग द्वेषों युक्त होकर जीवन यापन करता है, उसी प्रकार साहित्यकार के रचना संसार में पात्र तदवत् व्यवहार करते दिखाई देते हैं। कथा प्रधान कृतियों में पात्र ही कथा को विकसित कर अपना स्वरूप व्यक्त करते हैं। साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर ऐसे पात्रों, चरित्रों

---

१. दशरूपक

२. नाट्य शास्त्र १/१०७

३. हिन्दी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण

की रचना करता है जो युग का प्रतिनिधित्व करते होते हैं। नाटकों में कथा के बाद पात्रों का प्रमुख स्थान होता है। हिन्दी नाटकों का विकास बहुआयामीय रूप में हुआ है जिसका प्रभाव नाटककारों की पात्र-योजना पर भी पड़ा है। प्रारम्भिक युगीन नाटकों में नायक, प्रतिनायक, नायिका, प्रतिनायिका, विदूषक इत्यादि कोटि के पात्र प्रयुक्त हैं तो परवर्ती युगीन नाटकों में आधुनिक मनोविज्ञान में उल्लिखित कुण्ठित, दमित पात्रों का भी स्थान दिया गया है। पात्रों के इस विकास स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ पात्र शब्द की व्युत्पत्ति उसके समानार्थी शब्दों का अर्थ प्राक्तन एवं अधुनातन भारतीय कथा पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा पात्रावध ारणा का स्वरूप समझ लिया जाये।

क. पात्र व्युत्पत्ति एवं अर्थ :-

पात्र शब्द प धातु में ष्ट्रन् प्रत्यय लगने से बनता है जिसका पुंलिंग रूप में अर्थ होगा- सर्वथा उपयुक्त या योग्य व्यक्ति। नपुंसक लिंग में इसका अर्थ होता है- वह वर्तन आधान भाजन जिसमें पानी रखा जाये या उससे पिया जाये। इसी प्रकार विशेषण रूप में पात्र उसे कहा गया है जो किसी कार्य या पद के लिए उपयुक्त होने के कारण चुना या नियुक्त किया जा सकता हो। डॉ० राम शंकर त्रिपाठी ने पात्र स्वरूप की व्याख्या करते हुए लिखा है कि यहां हमारे लिए अभीष्ट पात्र से तात्पर्य है काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, आदि में वे व्यक्ति जो तन्नविष्ट कथावस्तु की घटनाओं के घटक होते हैं और जिनके क्रिया कलाप या चरित्र से कथावस्तु की सृष्टि या परिपाक होते हैं।[1]

ख. पात्र एवं चरित्र :-

यद्यपि पात्र एवं चरित्र में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है तथापि चरित्र में पात्रगत वैशिष्ट्य के साथ ही नैतिक आचरण भी अर्न्तनिहित है। But character

---

1. साहित्य में पात्र प्रतिमान पृ० ३

means also personality specially that part or aspect of personality moral character.[1] पात्र एवं चरित्र का अन्तर स्पष्ट करते हुए डॉ0 राम शंकर त्रिपाठी ने लिखा है कि पात्र एक ओर व्यक्ति रूप में आलम्बन विभाव है और दूसरी ओर अन्तरतया उस आलम्बन विभाव के समस्त चारित्रिक गुण-अवगुणों का भी समुच्चय। नपुंसक लिंग में पात्र का जो तात्पर्य होता है वह आधान है जिसमें कुछ रखा जा सके तो लक्षणा से यह बात साहित्य के अन्तर्गत आये हुए पात्रों पर भी पूरी तरह लागू होती है पात्र भी तो साहित्यकार के नानाभावों को स्वयं में अवधानित करता है पुनः व्यक्ति रूप पात्र के सारे गुण-अवगुण प्रकृति स्वभाव व्यवहार, आचरण उसमें (पात्र में अन्तरभूत होते हैं अतः उसका पात्र होना भाजन होना उपयुक्त ही है। किन्तु पात्र शब्द योग्य और अधिकरी अर्थ का द्योतन करने के बावजूद चरित्र शब्द की अन्तरीण सूक्ष्मतर अर्थ विच्छिति का समाहार करने में समर्थ नहीं है।[2]

ग. चरित्र-व्युत्पत्ति अर्थ :-

चरित्रं क्लीं0 (चर इत्रः स्वभावः।[3] चारित्र्य पु0 (चरित्र+ष्यञ्) चरित्र आचरण[4], चारित्रमं क्लीं0 स्वार्थ अण्[5] चरितं क्लीं0 (चर भावे क्तः) चरित्रम्, चर+कर्मणि क्तः, कृतम, आचरितमं[6] इत्यादि प्रत्ययों से उक्त शब्द सिद्ध किया गया है। लोक व्यवहार अें चरित्र के दो रूप मान्य हैं सत एवं असत् समाज की मान्यताओं के अनुरूप नीति सम्मत् आचरण सच्चरित्र तथा इसके विपरीत असत् चरित्र कहा जाता है। एस0एच0बूचर ने लिखा है - Character in its widest sence as including all that reveals mans personal and inners self his intelecual powers no less than the will and the emotion[7] चरित्र अंग्रेजी शब्द कैरेक्टर का पर्याय है यह ग्रीक भाषा के

१. ए स्टडी आफ सोफोक्लीन ड्रामा- जी०एम० किर्कवुड - पृ० ६६
२. पात्रावतरण की अवधारणा - पृ० ५
३. शब्द कल्पद्रुम भाग-२ पृ० ४३६
४. मानक हिन्दी कोश, भाग-२ पृ० २३३
५. शब्द कल्पद्रुम भाग-२ पृ० ४४४
६. शब्द कल्पद्रुम भाग-२ पृ० ४३५
७. एरिस्टोटेलून थ्योरी ऑफ पोएट्री एण्ड फाइन आर्ट्स पृ० ३४०

एनग्रेव से निर्मित है। डॉ0 सूरजकान्त शर्मा ने लिखा है- किसी व्यक्ति अथवा पात्र का विशिष्ट चिह्न जो उसके आदर्श एवं आचरण के आधार पर उसे अन्य व्यक्तियों से पृथक कर दे परन्तु क्योंकि मनुष्य जिस वातावरण एवं समाज में जीता है उसके मूल्य सतत् परिवर्तनशील हैं। अतः चरित्र सामाजिक आदर्शों द्वारा प्रेरित व्यक्ति विशेष का व्यवहार अथवा आचरण मात्र नहीं स्वीकार किया जा सकता है।[1] तात्पर्य यह है कि प्राथमिक युग में चरित्र नैतिक गुण या विशेषताओं को प्रदर्शन माना जाता था इस दृष्टि से चरित्र एक निश्चित अर्थ देने वाला शब्द है वस्तुतः आधुनिक दृष्टि से चरित्र स्थिर अस्थिर गतिमान यथास्थितिवादी जड, उत्तम, निम्न प्रभावपूर्ण निष्प्रभ होता है उसमें अनेक रूप दिखाई देते हैं।

पाश्चात्य विचारक अरस्तू का मन्तब्य है कि चारित्र्य वह है जिसके बल पर हम अभिकर्ताओं में कुछ गुणों का अध्यारोप करते हैं।[2] या चारित्र्य उसे कहते हैं जो किसी व्यक्ति की रुचि विरुचि का प्रदर्शन करता हुआ नैतिक प्रयोजन व्यक्त करे।[3]

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे एक निश्चित निष्कर्ष निकाला जा सकता है, कि संसार भर के सभी मनुष्यों में आंगिक समानता, - हाथ, मुँह पैर समान होते हैं, किन्तु उसमें वैचारिक भिन्नता, उसका आचरण भिन्न होता है, क्योंकि बाह्य संरचना एक समान होने पर भी उसका अन्तःकरण भिन्न होता है। समान तत्वों से निर्मित होने पर भी अन्तःकरण की भिन्नता के कारण उसका चिन्तन एवं व्यवहार भिन्न होता है। अतः यह आवश्यक है कि आन्तरिक चिन्तन को समझने के लिए बहिरंतर संघटन पर विचार करना चाहिए। भारतीय इस विचार पर बहुत बल देता है। श्रीमद्भगवद्गीता में मानव शरीर के संघटक तत्वों का उल्लेख इस प्रकार है -

---

१. हिन्दी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण- पृ० ६६

२. अरस्तू का काव्य शास्त्र- अनु० डॉ० नगेन्द्र पृ० २०

३. अरस्तू का काव्य शास्त्र- अनु० डॉ० नगेन्द्र पृ० २२

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।

इन्द्रियाणि दशैकंच पंचचेन्द्रिय गोचराः।३।५

साथ ही परस्पर प्रभुत्व की भी चर्चा की गयी है -

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु पर बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः। गीता ३/४२

उक्त श्लोक कठोपनिषद् से मिलते-जुलते हैं -

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थो अर्थेभ्यश्च परं मनः।

मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः।

महतः परम व्यक्तमव्यक्तात्पुरूषः परः।

पुरुषन्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः।। कठउप 3/10-11

गीताकार ने मनुष्य शरीर का विकास अव्यक्त प्रकृति से माना है। बुद्धि मन और इन्द्रियां अव्यक्त के विकसित विकार हैं। इस प्रकार पंच महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, एवं अहंकार बुद्धि त्रिगुणमयी माया दस इन्द्रियां श्रोत, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ, गुदा, एक मन तथा पांच इन्द्रियों के विषय- स्पर्श, शब्द, रूप, रस, गंध, इच्छा, द्वेष, दुःख, स्थूल पिण्ड और घृति इस गीतोक्त क्षेत्र (शरीर) की रचना के कारक तत्व हैं

अन्तःकरण और उसकी प्रक्रिया एवं चरित्र :-

मानव शरीर में बुद्धि अहंकार और मन महत्त्वपूर्ण कहे गये हैं। सांख्य दर्शन इन्हें सम्मिलित रूप में अन्तःकरण कहता है। प्रो० हिरियन्ना लिखते हैं - Off this group the most important are manes, egoism (ahankara) and the intellect (Buddhi) which are together described as the internal organ (antah-karma)[1]

१. दि इसेन्सियल ऑफ इण्डियन फिलास्फी, पृ० ११२

यह अन्तःकरण अनुभूतिशील और प्रतिक्रियाशील दोनों ही है।[1] मनुष्य जब भी कोई अनुभव प्राप्त करता है, उसके अन्तःकरण की प्रक्रिया इस प्रकार होती है- मन ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संस्कार प्राप्त करता है और फिर इन संस्कारों के निर्णय के लिए बुद्धि के सामने उपस्थित करता है, और बुद्धि बताती है कि वह संस्कार कैसा है। इसी प्रकार मनुष्य जब कोई प्रतिक्रिया करता है उसके अन्तःकरण के व्यापार का क्रम यह होता है- पहले मन बुद्धि से विचार करता है कि यह कार्य अच्छा है या बुरा, करने योग्य है या नहीं। बुद्धि से निर्णय ले लेने के पश्चात् उस निर्णय के अनुकूल ही मन में उस काम के करने की इच्छा या वासना उत्पन्न होती है। तब मन उस काम को करने के लिए प्रवृत्त होता है और कर्मेन्द्रियों को वैसा करने की आज्ञा देता है। इस प्रकार बुद्धि के दो व्यापार रहते हैं - कार्य अकार्य का, अच्छे बुरे का निर्णय देना और उस निर्णय के आधार पर उस काम के करने की मन में वासना उत्पन्न करना। बुद्धि के इन दो व्यापारों के आधार पर उसके दो भेद कर दिये गये हैं - पहली को व्यावसायात्मिका बुद्धि[2] और दूसरी को वासनात्मक या साधारणतः बुद्धि कहा जाता है। मनुष्य की अनुभूति और प्रतिक्रिया का वास्तविक आधार यह व्यवसायात्मिका बुद्धि है। इस प्रकार प्रकृति की उपज होने के कारण अन्तःकरण के ये व्यापार होते तो हैं प्रकृति के गुणों (सत्व, रजस् और तमस्) के द्वारा पर अहंकार के कारण मोहवश जीवात्मा अपने को ही इन सब कार्मों का कर्ता समझनें लग जाता है।[3] वस्तुतः मानव शरीर में कर्ता न तो जीव होता है और न जड़ प्रकृति। कर्ता तो अहंकार (जीव का अहंभाव) है। जीव के अहंभाव के कारण ही यह अन्तःकरण, जिसे अन्तरात्मा भी कहा जाता है, प्रकृति केवल विकार मात्र न रहकर व्यक्ति विशेष का अन्तःकरण बन जाता है। प्राणों का समावेश भी इसी में किया गया है। शेष ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ मन की आज्ञा का पालन करने वाली हैं। पाँच तन्मात्राएँ

---

१. दि इसेन्सियल ऑफ इण्डियन फिलास्फी, पृ० ११२

२. गीता २/४१, ५३

३. वही ३/२७

सूक्ष्म देह के और पाँच महाभूत स्थूल देह के तत्त्व हैं।

यह अन्तःकरण विकासशील है। इसके क्रिया व्यापार विकसित होते हैं। जीवन में अन्तःकरण (अथवा अन्तरात्मा) प्राप्त अनुभवों में से सार तत्व ग्रहण कर उन्हीं के आधार पर अपने को विकसित करता रहता है। मनुष्य शरीर के नष्ट हो जाने पर जीव के साथ जाने वाले लिंग या सूक्ष्म शरीर के साथ अन्तःकरण के सार तत्व, अनुभूति-सार सुरक्षित रहते हैं और जब जीव नया जन्म ग्रहण करता है, तो अनुभूति सार के आधार पर नया अन्तःकरण बनता है, इसमें पूर्व अन्तःकरण के सार तत्व के आधार काम करते हैं। अन्तःकरण और चरित्र के सम्बन्ध में डॉ0 रणविजय रांग्रा लिखते हैं कि मनुष्य के शरीर में विद्यमान अन्तःकरण ही एक तत्व वर्ग है, जो मनुष्य की अभिन्नता में भिन्नता ला देने का कारण हैं, जो स्वयं विकासशील है और विकास की विभिन्न दिशाएँ ग्रहण कर उसे जाति में व्यक्ति बना देता है, उसे व्यक्तित्व प्रदान कर देता है। यह अन्तःकरण ही मनुष्य का मूल चरित्र है। कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रकट मानव की क्रिया प्रतिक्रिया तो इसका प्रकाशन मात्र है। उसकी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के बारे में निश्चित अनुमान लगाना असम्भव सा ही है।[1] इस विलक्षणता या चरित्र को सीमा से परे मानते हुए अमेरिकन विद्वान लागोस एग्री लिखा है - What is character? A factor whose vartues have not been discovered. that so called in wordness the seemingly unpredictable souse is mpthering more or less than character. अर्थात् भीतरी प्रकृति जो अन्तरात्मा है, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, चरित्र है।[2]

चरित्र की मनोवैज्ञानिक परिभाषाएँ :-

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है, मानव व्यवहार के विश्लेषण का विज्ञान है। यहाँ भी मनोवैज्ञानिकों ने चरित्र को परिभाषित करने का प्रयास किया है। वस्तुतः चेतना

---

१. हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण

२. प्लाट आर करेक्टर - पृ० १६६

और व्यवहार मनुष्य के मूल मे हैं। अतः मनोवैज्ञानिकों ने चरित्र की परिभाषाएँ इस प्रकार दी हैं :-

1. **ए0सी0ब्रेडले के अनुसार :-**

Tha character can not be whooly uunder stood.[1] अर्थात् चरित्र पूर्णतया अपरिभाषेय है।

2. **विलियम आर्चर**[2] ने लिखा है कि (चरित्र) प्रश्नात्मक, भावात्मक और उत्तेजात्मक आदतों का मिश्रण या समूह है। । complex of itellectual emotional and nervous habits.

३. **रोबेक के अनुसार -**

चरित्र जन्मजात मूल प्रवृत्यात्मक उत्तेजनाओं के निग्रहवाला एक सतत् जाग्रत मनोवैज्ञानिक झुकाव है, जो एक व्यवस्थापक सिद्धान्त के अनुसार चलता है।[3] An enduring psycology disposition to in habit instintive impluness in accordance with a regulative principal.

4. **मैक्सशान ने लिखा है -**

Character is the self in action, in the process of cultivation in some social medium[4] अर्थात् क्रियाशील सेल्फ वह सेल्फ है जो किसी न किसी सामाजिक परिपार्श्व में विकासोन्मुख रहता है-ही चरित्र है।

उक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करते हुए डॉ0 रणवीर रांग्रा लिखते हैं 'इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं में से कोई भी हमारी संतुष्टि नहीं कर पाती और हमें मानना पड़ता है कि बुद्धि, अहंकार और मन इन तीनों की सम्मिलित प्रक्रिया अर्थात् अन्तःकरण से ही मनुष्य का विकास होता है। अन्तःकरण का विकास ही मनुष्य का

---

१. शेक्सपीरियन ट्रेजडी'- पृ०७३
२. प्ले मेकिंग और क्राफ्टमेकिंग
३. दि साइकोलॉजी आफ करेक्टर-पृ० ५६८
४. ह्यूमन नेचर इन द मेकिंग - पृ०१५६

विकास है। विकासोन्मुख अन्तःकरण ही मूल चरित्र और किसी क्षण विशेष की उसकी विकासावस्था है मनुष्य का व्यक्तित्व। प्रकृति के विकार होने के नाते उसके गुणों को धारण करने वाले अन्तःकरण के तत्व अर्थात् बुद्धि, अहंकार और मन पूर्व कर्म के अनुसार पूर्व परम्परागत या आनुषांगिक संस्कारों के कारण अथवा शिक्षा आदि अन्य कारणों से कम या अधिक सात्विक, राजस और तामस होकर उसका विकास करते हैं, चरित्र का निर्माण करते हैं।[1]

व्यक्तित्व स्वरूप :-

वि उपसर्ग पूर्व अञ्ज धातु में क्तिन् और त्वल् प्रत्यय के से बने व्यक्तित्व शब्द का अर्थ है – व्यक्त होने की अवस्था या भाव। व्यक्तित्व के स्वरूप के सम्बन्ध में डॉ0 राम शंकर त्रिपाठी ने लिखा है कि हम सभी व्यक्ति शब्द से परिचित हैं और जिन अर्थ सन्दर्भो में हम इसका प्रयोग करते हैं उनसे कही इससे आकर्षक रूप सौन्दर्य एवं शारीरिक सौष्ठव की व्यंजना होती है, तो कहीं सभ्य तथा सुसंस्कृत व्यवहार और आचरण की। कभी इसे ज्ञान तथा विवेक की कसौटी पर कसा जाता है तो कहीं सांसारिक अनुभव और अनुकूलन शक्ति के निकष पर। कभी इससे बाह्याकृति का भाव ग्रहण किया जाता है और कभी व्यक्ति की अन्तः प्रवृत्तियों, रूचियों तथा चारित्रिक विशिष्टताओं का। व्यक्तित्व के आंकलन के लिए अतिलोक प्रिय, समाज प्रचलित, सामान्य सूत्र है। व्यक्तित्व तुम्हारा वह प्रभाव है जो अन्य व्यक्तियों पर पड़ता है।[2]

व्यक्तित्व का अंग्रेजी पर्याय पर्सनालिटी हैजो लैटिन शब्द परसोना से बना है, जिससे वेशभूषा अथवा आकृति का बोध होता है। वस्तुतः व्यक्तित्व मात्र शारीरिक लक्षणों का द्योतक नहीं वरन वह समग्र प्रभाव समाहार है। लेबनिज व्यक्तित्व को विवेक और विचार के निकष पर कसते हुए अपनी परिभाषा इस प्रकार दी है 'व्यक्तित्व प्रकृति से ही ज्ञानयुक्त तत्व को सूचित करता है। जान लॉक चातुर्य एवं

---

१. हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास- पृ० २७
२. पात्रावतरण की अवधारणा पृ० २१

विचारों के आधार पर व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हैं। जान वाटसन ने व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है- व्यक्तित्व किसी के व्यवहार का पूर्ण अनुमान है। नार्मन कामर्सन के अनुसार व्यक्तित्व व्यवहार की पद्धतियों का समाहित स्वरूप है, जिन्हें वह जन्म से वयस्क होने तक दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के पर्यावरण के फलस्वरूप प्राप्त करता है। विलियम जेम्स ने व्यक्तित्व के स्थान पर स्वत्व शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने व्यक्तित्व के स्वत्व की चारतहें मानी हैं जिनमें सर्वोपरि तथा भौतिक तत्व की होती है, जिसका सम्बन्ध शरीर, अधि ाकार कुल एवं मित्रों से होता है। दूसरी वह इतर जनों पर उसके प्रभाव को व्यंजित करती है, जिसे हम लोग उसका सामाजिक व्यक्तित्व कह सकते हैं। तीसरी यह आध यात्मिक स्वत्व हैजो उसकी विरोधी प्रवृत्तियों एवं लक्षणों में सामंजस्य स्थापित करती है। चौथी तह को जेम्स ने पूर्ण ब्रह्म वाला स्वत्व कहा है।

केम्फ ने व्यक्तित्व का आशय मनुष्य के सम्पूर्ण व्यवहार से लिया है, जिसमें व्यवस्थापना की विधियां और मानसिक प्रक्रियाओं का भी समावेश होता है। मार्टन प्रिंस के अनुसार व्यक्तित्व मनुष्य के सम्पूर्ण जैविकीय लक्षण, मूल वृत्तियों और अर्जित अभिवृत्तियों तथा आदतों की समग्र इकाई है। नार्मन एल0मन के अनुसार व्यक्तित्व को व्यक्ति की बनावट, आचरण के ढ़ंग, उसकी अभिरूचियों, अभिवृत्तियों, क्षमता योग्यता और प्रवृत्ति के अतिविशिष्ट सामंजस्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ध्यान से देंखे तो मनोवेत्ताओं ने व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए उसके किसी अथवा किन्हीं अंगो उपांगों पर विशेष बल दिया है। कोई तो जन्मजात और अर्जित प्रवृत्तियों को कोई सभी प्रवृत्तियों के समन्वय को, तो कोई वातावरण के प्रतिविशिष्ट अभियोजन करने वाले अभ्यासों के समन्वय को तो कोई समाज के विभिन्न व्यक्तियों से विलग करने वाली प्रवृत्तियों को व्यक्तित्व मानता है।[1]

व्यक्तित्व की उक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से एक बात सामने आती है कि मूलतः इसके दो पक्ष होते हैं एवं उसका बाह्य पक्ष अथवा स्थूल है अर्थात् शारीरिक

१. पात्रावतरण की अवधारणा पृ० २२ पर उधृत

सौष्ठव, असौष्ठव, सुरूपता-कुरूपता, आनवंशिकता, पोषण और सामाजिक, मान्यता पर आधृत है और दूसरा जिसका सम्बन्ध मानसिक बौद्धिक, सूक्ष्म आन्तरिक संस्कार परिवेश से है। अल्पोर्ट ने लिखा है - Personality is the dynamic organization with in the individual of those psycho-physical system that determine his unique adjustment to his environment.[1] अर्थात् व्यक्तित्व एक गतिशील संघटन है जो एक विचित्र व्यवस्थापन शक्ति रखता है, जिसके द्वारा मनुष्य की मनः शरीर व्यवस्थाओं और उसके पर्यावरण के साथ बराबर तालमेल बैठता रहता है।

व्यक्तित्व की संरचना :-

मनोविश्लेषकों के अनुसार सामान्य वयस्क व्यक्तित्व इड, इगो और सुपर इगो से मिलकर बनता है। इड जीवन और मृत्यु दोनों ही प्रवृत्तियों का प्रमुख संग्रह स्थल और अनेक मनोजैविक शक्तियों का स्रोत हैं। यह विशुद्ध रूप में आनन्द प्राप्ति और आक्रामक इच्छाओं से ही सम्बद्ध होता है। इगो से फ्रायड का तात्पर्य उस अहं चेतना से है, जो विचार, निर्णय अनुभव और संकल्प करता है। यह वह भाग है, जो मौलिकता, वास्तविकता के अत्यन्त सम्पर्क मे रहता है। अतः इगो सामाजिक और भौतिक वास्तविकता को ध्यान में रखकर ही तदनुरूप व्यक्ति के व्यवहारों का सर्वाधिक संतुष्टि की दिशा में निर्देशन करता है। इस प्रकार इगो इड की इच्छाओं तथा वास्तविकता की आवश्यकताओं में सामंजस्य स्थापित करता है। सुपर इगो व्यक्ति का समाजीकरण करने वाली प्रमुख शक्ति है। संस्कृति, नैतिकता और आदर्शो द्वारा परिवर्तित और संवर्धित वंशानुगत नैतिक प्रवृत्ति द्वारा इसका निर्माण होता है। व्यक्तित्व के इस भाग का कार्य व्यक्ति को माता-पिता, गुरू आदरणीय तथा सामाजिक समूह द्वारा व्यवस्थित नैतिकता, विशिष्ट वैयक्ति और सामान्य सामाजिक नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करना होता है। सुपर इगो आंशिक रूप में चेतन होता है और मुख्यतः अचेतन।[2]

---

१. परसनाल्टी - ए साइकोलाजिकल इण्टरप्रिटेशन - जी० डब्लू अल्पोर्ट पृ० - ४८

२. द्रष्टब्य है - पात्रावंतरण की अवधारणा - पृ० २४

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्तित्व संरचना के इन तीन तत्वों की संतुलित अन्तक्रिया पर ही मनुष्य का व्यवहार आधारित होता है। मनुष्य के चरित्र में जो कुछ अच्छाइयाँ- बुराईयाँ साधारणताएँ, असाधारण विशिष्टता, विचित्रताएँ हैं, उन सबकी व्याख्या चेतन-अचेतन, के पारस्परिक संघर्ष के रूप में की जा सकती है।

व्यक्तित्व निर्माण के तत्व :-

व्यक्तित्व निर्माण में निम्नलिखित कारक तत्व दिखाई देते हैं :-

क. शारीरिक गठन :-

भारतीय सूक्तिकार कहता है – 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्तिं' शारीरिक गठन व्यक्तित्व का प्रभावशाली तत्व है। अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ, प्रदीर्घ, प्रलम्ब, आकारिक संरचना सम्पन्न व्यक्ति प्रथम दृष्ट्या आकर्षण लगता ही है। भारतीय सामुद्रिक शास्त्र तथा पाश्चात्य अनेक विद्वान शारीरिक गठन के वर्चस् को महत्व देते हैं।

२. नाडी तंत्र :-

हमारे ज्ञान, क्रिया तथा संवेगों में शरीर के जो भाग कार्य करते हैं उन्हें नाड़ी तंत्र कहा जाता है। यह एक जाल सदृश है जो हमारे शरीर में फैला हुआ है। इन्हें तीन भागों – त्वक् नाड़ी मण्डल (पेरीफेरल नर्वस सिस्टम) केन्द्रीय नाडी मण्डल (सेण्ट्रल नर्वस सिस्टम) एवं स्वतंत्र नाडी मण्डल (आटो नामस नर्वस सिस्टम) में शरीर विज्ञानी विभक्त करते हैं। भारतीय योग शास्त्र में भी नाड़ी चक्रों, द्वारों, कोशों की विस्तृत चर्चा मिलती है।

सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव :-

व्यक्तित्व निर्माण में इस तत्व का बड़ा महत्व पूर्ण योगदान माना जाता है। व्यक्ति के चतुर्दिक व्याप्त पर्यावरण, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है। यह यावज्जीवन रहता है।

आनुवंशिकता :-

माता-पिता तथा नाना-नानी या रक्त सम्बन्धियों के गुण, लक्षण, स्वभाव,

इत्यादि का व्यक्ति पर प्रभाव प्रत्यक्ष था परोक्ष रूप में पड़ता है।

चारित्रिक या मानसिक दृढ़ता :-

व्यक्तित्व के नियामक तत्वों में चारित्रिक या मानसिक दृढ़ता का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य बौद्धिक क्षमता युक्त प्राणी है। वह बुद्धि बल से अनौचित्य-औचित्य का निर्णय करता है। उसके लिए किन आचरण पद्धतियों का उपयोग है, किनका परित्याग उसे करना है इसका चयन कर वह अपने व्यक्तित्व को निखार सकता है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि व्यक्त्वि व्यक्ति के अन्तर्गत उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संघटन है, जो उसके पर्यावरण के प्रति होने वाले विशिष्ट अभियोजन को स्थिर अथवा निश्चित करते हैं। Personality is a dynamic organization with in the individual of those psychological system that determine the unique adjustment to his environment.[1] व्यक्तित्व एवं चरित्र में अन्तर निरूपित करते हुए डॉ0 रामशंकर त्रिपाठी ने लिखा है कि वस्तुतः व्यक्तित्व एवं चरित्र में वही सम्बन्ध है जो सम्पूर्ण अवयवी शरीर और उसके अवयव भूत अन्य किसी अंग में होता है। व्यक्तित्वशब्द व्यापक है, जिसमें किसी व्यक्ति के न केवल आचरण के सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आदि पक्षों का अन्तर्भाव रहता है, प्रत्युत् उसमें उसकी शारीरिक संरचना, वंशानुक्रमिकता, पारिवारिक विशेषताएँ आदि भी समाहित रहती हैं किन्तु चरित्र केवल उनका एक अंश है जिसे सामान्यतः उसका एक पक्ष माना जाता है।[2]

पात्रों का वर्गीकरण :-

साहित्यकार नवनवोन्मेष शालिनी, प्रतिभा, दूरगामी कल्पना वाला तो होता ही है, साथ उसमें सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति भी अन्तर्निहित होती है। इसी शक्ति के कारण वह समाज के विविध क्षेत्रों का तत्सम्बन्धित पात्रों/व्यक्तियों का सूक्ष्म अवलोकन कर अपने साहित्य में उन्हें ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है कि पाठक उससे

---

१. परसनाल्टी- अल्पार्ट - पृ० ४८

२. पात्रावतरण की अवधारणा - पृ० ३४

अपना नैकट्य अनुभव करने लगता है, अथवा उसे प्रतीत है कि अमुक पात्र उसके आस-पास, या परिवेश का ही है। जीवन-जगत् की तरह साहित्य गत पात्र भी अनेक, रूप, नाम, आकृति गुण वाले होते हैं। अतः आचार्यो ने इनके वर्गीकरण का प्रयास किया है। यहाँ कुछ आधारों पर पात्रों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतीय दृष्टि

क. कथावस्तु के आधार पर :-

कहना नहीं होगा कि कथावस्तु का असाधारण महत्व होता है क्योंकि रसाभिव्यंजन और चरित्र चित्रण का मूल कारक या माध्यम कथानक ही होता है। कथावस्तु के आधार पर पात्रों के दो भेद किये जा सकते हैं - 1. प्रधान पात्र 2. गौण पात्र। आचार्य धनंजय लिखता है कि फल का स्वामित्व अधिकार कहलाता है उस अधिकारी की फल पर्यन्त चलने वाली कथा को अधिकारिक कथावस्तु कहते हैं।[1] यह अधिकारी ही प्रधान पात्र होता है। जिन पात्रों से कथावस्तु मुख्य रूप से सम्बद्ध नहीं होती, जिनका उपयोग या समावेश साधन के रूप में होता है, वे गौण पात्र कहे जाते हैं।

प्रधान पात्रों को नायक, नायिका, प्रतिनायक, प्रतिनायिका, अनुनायक, उपनायक अथवा सहनायक, सहनायिका इत्यादि छह भागों में विभक्त किया गया है। इनका सामान्य विवरण इनके गुणावगुणों का वर्णन संक्षिप्त रूप में किया जा रहा है ताकि आधुनिक युगीन पात्रों के विकास की पृष्ठभूमि तथा पात्र प्रकार का स्वरूप स्पष्ट हो सके।

नायक :-

विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में वीर पूजा के भाव मिलते हैं, आगे चलकर वे नायक बने जिसके मूल नी धातु में ण्वुल् प्रत्यय जोड़ने से बना हैजिसका धात्वर्थ आगे ले जाजा होता है। प्राच्य साहित्य एवं सिद्धान्तकारों ने नायक के अनेक गुणों

---

१. दशरूपक १/१२

का उल्लेख किया है। आचार्य विश्वनाथ ने संक्षेप में नायक के गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि नायक त्याग भावनापूर्ण, महान् कार्यो का कर्त्ता, त्यागी, कुलीन रूप यौवन सम्पन्न दक्ष, वाक् वैदग्ध, दक्षशील, सद्वृत्ति वाला होता है।

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूप यौवनोत्साही।

दक्षोऽनुरक्त लोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता।। सा0द0 3/4

नायक के अलंकारों में शोभा, विलास, माधुर्य, तेज, स्थैर्य, गाम्भीर्य, लालित्य, औदार्ध, इत्यादि का उल्लेख मिलता है।[1] नायकों के भेद के मूल में शील को आध ार गुणमान कर धीरोदात्त, धीरोदध्त, धीर ललित तथा धीर प्रशान्त इत्यादि भेद स्वीकार किये गये हैं।

पात्ररूप (२) मनोवैज्ञानिक आधार :-

१. व्यक्ति वर्ग :-

प्रारम्भ से ही चरित्र-चित्रण के मूल में शरीर संघटन को विशेष महत्व देते रहे हैं। शारीरिक लक्षणों के आधार पर व्यक्तिगत गुणावगुणों की कल्पना कर वर्गीकृत करना अत्यन्त प्रचलित पद्धति रही है। ड्राइडन ने लिखा है कि हमारे मानसों का निर्माण-सदैव हमारे शरीर की प्रकृति से होता रहता है।[2] इस प्रकार शारीरिक गठन एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित बाल्मीकि रामायण, महाभारत इत्यादि ग्रंथों में मिलता है। पाश्चात्य साहित्य में प्लेटों ने बाह्याकार के आधार पर मनुष्यों को तीन वर्गो में विभक्त किया है –

1. बुद्धि जीवी, 2. महत्वाकांक्षी एवं यशोऽभिलाषी 3. शारीरिक आवश्यकताओं से अनुशासित एवं उत्प्रेरित।[3]

हिप्पोक्रेटीज ने वैश्विक चार तत्व (हवा, पृथ्वी, अग्नि, जल) की प्रधानता मनुष्य में स्वीकार की है। इस प्रकार वह मनुष्य को आशावादी, चुस्त एवं सक्रिय,

---

१. नाट्य शास्त्र २२/३३-३४ एवं दशरूपक २/१०

२. साइकोलॉजी - नारमन पृ० २०६ पर उधृत

३. पात्रावतरण की अवधारणा पृ० १७८ पर उधृत

क्रोधी अथवा दृढ़ एवं सद्यः उत्तेजनशील, श्लेष्मिक अथवा सुस्त एवं मंदबुद्धि एवं विष अथवा खिन्न तथा निराशावादी इत्यादि चार श्रेणियों में विभक्त करता है। मनोवैज्ञानिक शब्दावली में इन्हें प्रफुल्ल (इलेटेड) विषण्ण अथवा उदास (डिप्रेस्ड) क्रोध ी एवं चिड़चिड़ा (इर्रीटेबल) तथा अस्थिर एवं चंचल कहा जा सकता है।[1] शारीरिक रचना की दृष्टि से मूर्धा प्रधान (दि सेरीब्रल) 1. श्वसन प्रधान (दि रेस्पिरेटिव) 3. पुष्टकाय, बलवान (दि मस्कुलर), 4. पाचन क्रिया क्षय (दि डायजेस्टिव) रूपों में विभक्त किया गया है, जिनका संशोधन क्रैश्मर ने तर्कशील, भोजन प्रधान, पुष्टकाय, बलवान तथा धावक रूप में किया। यह विभाजन अधिक तार्किक, नहीं था, अतः क्रैशमर ने पुनः मनुष्यों के चार भागों में विभक्त किया- कृशकाय अथवा अल्प विकसित (एस्थेनिक टाइप), पुष्टकाय, व्यायामशील, योद्धा अथवा पहलवान (एथेलेटिक टाइप) पीन काय (पिनकानिक टाइप) एवं विषमानुपातिक, विचित्र, असमान्य शरीरावयव वाले (डिस्प्लाटिक)[2] इस विभाजन को दो रूपों में देखा जा सकता है, साइक्लॉयड स्वभाव वाले तथा शिजॉयड स्वभाव वाले। साइक्लॉयड स्वभाववालों के सम्बन्ध में क्रेशमर लिखता है - Cycloid men have hearts. The word hearat or better perhaps good native brings are nearest to an expressiont of that which is common to that which is common to the mejority of these native. Through their relations habituaals tempramental foundations, the soft, warm, kind hearted philanthropie temperament - is naturally capable of being moved to jay or sorrow.[3] तात्पर्य यह है कि साइक्लायड स्वभाव वाले व्यक्ति मुखर, सामाजिक सम्बन्ध ों, में विश्वास करने वाले, सहृदय तथा समस्याओं के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोंण वाले होते हैं। इसी प्रकार शिजॉयड स्वभाव वाले व्यक्ति एस्थेनिक तथा आंशिक रूप से ऐथलेटिक प्रकार के व्यक्ति लज्जाशील, एकाकी और संवेदनशील होते हैं। ये

---

१. पात्रावतरण की अवधारणा पृ० १७८

२. फिजिक एण्ड करेक्टर - पृ० २०-३७

३. वही पृ० १३२-३३

सामाजिक सम्पर्क से दूर हटकर अपना अधिकांश समय दिवास्वप्न की अवस्था में व्यतीत करते हैं। ये लोग सवेगात्मक दृष्टि से दमित होते हैं तथा समस्याओं के प्रति इनका दृष्टिकोण सैद्धान्तिक और आदर्शवादी होता है।[1]

शारीरिक संरचना और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में गवेषणा करने वालों में शेल्डन का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। उन्होंने शारीरिक और मानसिक लक्षणों के मूल्यांकन के लिए मात्रात्मक मापन से काम लिया है। इस प्रकाण एण्डोमाफी (अन्तःरचना) मेसामार्फी (मध्य रचना) एवं एक्टोमार्फी (बर्हिरचना) दृष्टि से व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार उन्होंने व्यक्ति के स्वभाव में तीन तत्त्वों की प्रधानता पाई है। विसेरोटोनिया, सोमाटोटोनिया, सेरीब्रोटोनिया।[2]

(ब) व्यक्ति वर्ग- मनः संघटनात्मक रूप :-

गीता में कहा गया है कि मन ही मनुष्य के बंधन मोक्ष का कारण है। अतः मन अन्तःकरण जानने के लिए मनुष्य ने बहुत प्रयास किया है। जेम्स ने कोमल स्वभाव वाले(टेंडर माइंडेड) एवं कड़े स्वभाव वाले (टफ माण्डेड)। कोमल स्वभाव वाले मुख्यतः अमूर्त और काल्पनिक, आदर्शवादी, धार्मिक, तथा कड़े स्वभाव वाले वस्तुवादी, संशयवादी होते हैं।[3] युंग ने मनोवृत्तियों के आधार पर अन्तर्मुखी एवं बर्हिमुखी व्यक्तित्व की चर्चा की है। जो प्रमुख रूप से स्वसम्बद्ध समस्याओं पर विचार करता, उसकी सामाजिक रुझान अपेक्षाकृत कम होती है। वह स्वभावतः संकोची और विचारशील होता है।[4] बहिर्मुखी व्यक्तित्व के लिए वस्तुगत बातों का अधिक महत्व होता है। इन दो वर्गों के भी उपवर्ग बनाये गये हैं – भाव प्रधान एवं विचार प्रधान। वस्तुतः उपर्युक्त प्रकार सिद्धान्तों के अनुरूप व्यक्ति को भली भाँति कुछ ही सीमा में समझा जा सकता है।

---

१. पात्रावतरण की अवधारणा- डॉ० रामशंकर त्रिपाठी पृ० १८२
२. कॉन्स्टीट्यूशनल फैक्टर इन परमनाल्टी पृ० ५४३ उधृत-पात्रावतरण की अवधारणा-पृ० १८५
३. असामान्य मनोविज्ञान न- डॉ० रामकुमार राय पृ० १११
४. पात्रावतरण की धारणा- पृ० १६०

स. व्यक्तित्व के लक्षण :-

तत्व विश्लेषण कर कैटेल ने व्यक्तित्व के लक्षणों की एक सूची बनायी है। सांख्यिकीय विधि द्वारा 171 लक्षणों को 12 भागों तथा तीन उपभागों में विभाजित किया है। डॉ0 सरयू प्रसाद चौबे ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है।

(1) विश्वासमयता - अविश्वास मयता

(2) बुद्धि-मानसिक दोष

(3) संवेगात्मक प्रौढ़ता- संवेगात्मक अप्रौढ़ता

(4) प्रबलता- नमनीयता,

(5) प्रसन्न चित्तता-उदासीनता

(6) भावुकता-दृढ़ता

(7) सभ्यता-असभ्यता

(8) प्रौढ़ता-अप्रौढ़ता,

(9) प्रशस्तता-बाधकता

(10) ऊर्जस्विता-स्नायुदौर्बल्य,

(11) भग्नाशा सहिष्णुता-अति भावुकता,

(12) सदबुद्धि-असदबुद्धि।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान ने व्यक्ति आन्तरिक चिन्तन एवं बाह्य क्रिया-कलापों में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित कर व्यक्तित्व के मूल्यांकन करने में महत्वपूर्ण योगदान किया है, किन्तु मानव-स्वभाव को बुद्ध निश्चित गुण-अवगुणों में आबद्ध करना कठिन अवश्य है।

पात्रावतरण के सिद्धान्त :-

पात्रावतरण का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए हर्बर्ट ओहारा ने लिखा - Characterization is the bringing out of personality by means of setting, physical action, personal appearence, description motivation or by other means.[1]

---

१. दि इन्ट्रोडक्शन टु दि थियेटर - पात्रावतरण की अवधारणा - पृ० २०१

तात्पर्य यह है कि शारीरिक चेष्टाओ, बाह्याकृति वर्णन, कार्य, प्रेरणा, अथवा अन्य किसी विधि से व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण ही पात्रावतरण है। पश्चिमी विद्वान एम0एल0 राबिन्सन का मंतब्य है कि पात्रों को पर्याप्त मूर्तिमत्ता और स्वाभाविकता के साथ इस प्रकार चित्रित करना कि वे पाठ्कों के लिए छाया नाम न रहकर पुस्तक के समतल पन्नों से उभर आये और कम से कम उस समय के लिए तो व्यक्तित्व के मूल तत्वों से सम्पन्न हो जाएँ – The characterization means briefly the setting of people in the story with a sufficient degree of visibility and plausibility so that they may for the readers emerge from the flat page as more than shadowy names and possess for the time at least the rudiments of personality.[1] पात्रावतरण के सम्बन्ध मे डॉ0 रणवीर रांग्रा का मत है कि रचनाकार को अपने पात्र के अन्तःकरण के सम्पूर्ण रुझान उसके आस-पास की परिस्थिति, उसके मन पर होने वाली प्रतिक्रिया उस प्रतिक्रिया की उसके अंतःकरण पर संस्कार डालने की शाक्याशक्यता और विभिन्न प्रसंगों में उसके अन्तःकरण में उत्पन विचारों और प्रकट होने वाले विचारों के कम या अधिक सात्विक रजस और तामस होने का पूरा-पूरा चित्रण करना होगा।[2] पात्रों का चरित्र चित्रण नाट्कों में प्रमुख तत्व रूप में स्वीकृत है। नाट्कादि की पूर्ण सफलता पात्रों की सजीवता तथा उनकी वास्तविकता पर निर्भर करती है।[3]

पात्रावतरण के सिद्धान्त

(क) भारतीय सिद्धान्त :-

यदि भारतीय आचार्यो ने नाट्कों में रस को प्रमुखता दी तो पाश्चात्य समालोचकों ने कथावस्तु को किन्तु पात्रों कें चरित्र चित्रण की प्रधान ता को सभी

१. राइटिंग फार यंग पीपुल - पृ० ११
२. हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास - पृ० २६
३. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन पृ० ३६ एवं हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि का विकास - डॉ० शान्ति मलिक के मत द्रष्टब्य हैं।

ने स्वीकार किया है। भारतीय नाट्य शास्त्रियों ने नायक की प्रधानता मानकर उसके रूप, गुण, शीलादि की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है। नाटक में प्रयुक्त सभी पात्रों की भाषा, आकृति, प्रकृति, वेश-भूषा का निर्धारण सूक्ष्म ढ़ंग से किया गया है। भारतीय मतानुसार पात्रावतरण की पहली अपेक्षा पात्रों की आकृति के अंकन की होती है, तत्पश्चात् उनका परम्परानुमोदित चारित्रिक गुणों का उल्लेख होता है। इसी प्रकार प्रनायक, नायिका, प्रतिनायिका, के रूप-सौन्दर्य गुणादि का अंकन नाटककार रूढ़ियों के अनुरूप करता है। पात्रों के नामकरण में विषयवस्तु तथा अंगी रस का ध्यान रखा जाता है। कथोपकथन के पूर्व संबोधन के प्रयोग से उसकी गरिमा का पता चलता है। उदाहरण स्वरूप -आर्य, तात, पूज्यपाद, स्वामी, भर्तृदारक, आर्या, देवी, भगवती, इत्यादि संबोधन सामाजिक प्रतिष्ठा, के बोधक हैं। इसी प्रकार पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा स्वरूप की विस्तृत रूढ़ियाँ या परम्पराएँ नाट्य शास्त्रों में मिलती हैं उत्तम शिष्ट, विद्वान, पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं। तो अन्य जन प्राकृत भाषा का। नाट्य शास्त्र (भरत) के 17/31-43 में विस्तृत सूची एतद्विषयक नियमों की प्राप्ति होती है।

नायक, प्रतिनायक, नायिका तथा अन्य पात्रों के कायिक, वाचिक, मानसिक व्यापार को वृत्ति कहा गया है। इनकी संख्या चार - भारती, सात्वती, कौशिकी एवं आरभटी कही गयी है। इनके अंगो-उपांगो का विस्तृत विवेचन एतद्विषयक ग्रंथों में हुआ है। इन नियमों के कारण भारतीय नाटक के पात्र इतने आबद्ध हो गये कि उनका वास्तविक व्यक्तित्व ही तिरोहित होने लगा। लक्षणानुधावन के कारण नाटकों के पात्र निर्जीव से दिखायी देने लगे।

(ख) पात्रावतरण के पश्चात्य सिद्धान्त :-

अरस्तू ने चरित्र-चित्रण के लिए छह सिद्धान्तों अथवा पात्रस्थ गुणों की चर्चा की है।[1] भद्रता, औचित्य, जीवानुकूलता, एकरुपता, संभाव्यता, एवं श्रेष्ठ चित्रकारों का

---

१. अरस्तू का काव्य शास्त्र अनु० डॉ० नगेन्द्र पृ० ४०

आदर्श। तात्पर्य यह है कि पात्र का चरित्र भद्र होगा तो दर्शकों के मन में उसके प्रति दया या करूणा का भाव शीघ्र उत्पन्न होगा। इसी प्रकार पात्रों की व्यक्तिगत या वर्गगत विशेषताएँ नहीं विस्मृत की जानी चाहिए। जीवानुकूलता के तात्पर्य की व्याख्या करते हुए हरमन हुड ने लिखा है – In a well made play characters are expected to behave like human beings.[1] एकरूपता से अरस्तू का तात्पर्य यह है कि वे न तो चारित्रिक विचित्रता का तिरस्कार करते हैं और न परिवर्तन की संभावना का निषेध न वे केवल इस बात पर बल देते हैं कि चरित्र-चित्रण में कवि की दृष्टि सुस्थिर एवं निर्भ्रान्त होनी चाहिए और उसकी उसकी अंकन विधि विवेक संमत होनी चाहिए।[2] इसी प्रकार त्रासदी के पात्रों का चरित्र चित्रांकन करते समय साहित्यकार के लिए आवश्यक है कि वह यथार्थ और आदर्श का समन्वय करे। जिस प्रकार चित्रकार मूल का स्पष्ट प्रत्यंकन करने के साथ-साथ ऐसी प्रतिकृति प्रस्तुत करता है जो जीवन के अनुरूप होने के साथ ही उससे अधिक सुन्दर होती है।[3] एलवुड ने लेखक द्वारा प्रभावपूर्ण पात्रों की सृष्टि के लिए निम्नलिखित आधार प्रस्तुत किये हैं।

(1) चरित्र जीवन्त बनाकर,

(2) पात्र को समाधान के लिए ज्वलन्त समस्या देकर,

(3) पात्र को तार्किक स्थिति में रखकर

(4) पात्रों में प्रभावित करने वाले तार्किक एवं विश्वसनीय गुणों से युक्त कर।[4]

(३) होरेस का औचित्य सिद्धान्त :-

चरित्र-चित्रण हेतु अरस्तू ने औचित्य निर्वाह की चर्चा की है। प्रख्यात रोमन काव्य-चिन्तक होरेस ने इसी सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या अपने सिद्धान्त की है,

---

१. आर्ट ऑफ प्ले - पृ० ७५

२. अरस्तू का काव्य शास्त्र - डॉ० नगेन्द्र पृ० १११

३. वही पृ० ४१

४. करेक्टर मेक योर स्टोरी - पृ० ११५

जिसमें परम्परा पालन[1] एवं जीवानुकूलता[2] सिद्धान्त उपवृंहित रूप में दिखायी देता है।

(४) आयाम-त्रय सिद्धान्त :-

लाजस एग्री[3] इस सिद्धान्त के प्रणेता हैं। डॉ0 सूरजकान्त शर्मा के विचारों को यहाँ संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) **शारीरिक आयाम :-**

(क) योनि

(ख) अवस्था

(ग) ऊँचाई एवं भार

(घ) बाल, आंखों एवं त्वचा का रंग

(ङ) हाव-भाव

(च) बाह्याकृति

(छ) दोष, चिह्न रोग-असियमितता, कुरूपता,

(ज) वंश परम्परा प्राप्त गुण-अवगुण।

(2) **सामाजिक आयाम :-**

(क) वर्ग, श्रमिक, शासक, मध्यम

(ख) आजीविका - कार्य के प्रकार, अवधि, शक्ति आदि

(ग) शिक्षा - कहाँ तक, विद्यालय प्रकार, विषय, योग्यता

(घ) ग्राहस्थ्य जीवन - अभिभावक, जीवित अथवा मृत आय का स्रोत, अभिभावक विभक्त तो नहीं।

(ङ) धर्म

---

१. पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा, होरेस-अनु० संपादक - डॉ० सावित्री

२. चरित्र चित्रण - देवेन्द्र इस्सर - आलोचना वर्ष ६ अंक १ पृ० ७६

३. दि आर्ट ऑफ ड्रेमेट्रिक राइटिंग - पृ० ३३-३७

(च) जाति, राष्ट्रीयता

(छ) जाति, विरादरी, लोक समुदाय में स्थान, मित्रों, क्लबों

(ज) राजनीतिक पहुंच या योग्यता

(झ) मनोविनोद, रुचि, पठित पुस्तकें, समाचार पत्र आदि।

(३) मनोवैज्ञानिक आयाम :-

(क) यौन जीवन, नैतिक स्तर,

(ख) वैयक्तिक महत्वाकांक्षा

(ग) नैराश्य, मुख, निराशाएँ,

(घ) स्वभाव,

(ङ) जीवन के प्रति दृष्टिकोंण

(च) जटिलताएँ, प्रेम बाधा, अंध विश्वास,

(छ) बाह्योन्नमुखता-अन्तर, उन्मुखता, उभयोन्मुखता,

(ज) योग्यताएँ- भाषाएँ, ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल,

(झ) गुण- कल्पना, निर्णय, रुचि[1]

इस सिद्धान्त की समीक्षा करते हुए डॉ0 रामशंकर त्रिपाठी लिखते हैं 'उपर्युक्त आयाम-त्रय का उल्लेख एग्री ने लेखकों के लिए स्वस्थ चरित्रों की सृष्टि अपेक्षाकृत आसान कर दी है। उपर्युक्त सूची के अनुसार पात्रों के शारीरिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययनोपरान्त उनका चरित्र अधिक सम्पन्नता से चित्रित किया जा सकता है।[2]

(५) सम्बद्ध अथवा निःसंग सिद्धान्त :-

सिद्धान्ततः रचनाकार पात्र का मानस पिता होता है, अतः कुछ साहित्यकार अपने पात्रों से सम्बद्ध होकर उनका चरित्र-चित्रण करते हैं, तो कुछ पात्रों का सृजन

---

१. हिन्दी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण पृ० ६०-६१

२. पात्रावतरण की अवधारणा पृ० २५०

कर उनसे निःसंग हो जाते हैं, वे चाहे जैसा व्यक्तित्व ग्रहण करें। सम्बद्ध सिद्धान्त की अपेक्षा यह धारणा अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है, कि निःसंगता जितनी अधिक होगी, कलाकार उतना ही श्रेष्ठ होगा।

(६) अभिज्ञान सिद्धान्त :-

साहित्यकार अपने पात्रों को जीवन्त बनाने के लिए सजग दृष्टि रखता है। अपने चतुर्दिक परिवेश को खुली आँखों से देखता है। प्रत्येक परिस्थिति में अपने को डालकर उस अनुभव को पात्र द्वारा व्यक्त करता है।[1] जीवन्त चरित्र-चित्रण के लिए फील्डिंग बने साहित्यकार में चार गुणों की आवश्यकता का उल्लेख किया है।

(1) अपने चारों ओर की घटनाओं और व्यक्तियों को देखने, परखने और समझने की प्रतिभा अर्थात निरीक्षण शक्ति,

(2) साहित्य इतिहास का ज्ञान,

(3) संवाद कला में निपुणता और उसके माध्यम से व्यक्तियों को पहचानने की शक्ति अर्थात स्वभाव पारखी होना

(4) सहृदयता और संवेदन शीलता, होरेस के अनुसार दूसरों को रूलाने की शक्ति रखने से पूर्व स्वयं रोना सीखना चाहिए। हाँ लिखते समय उसे अपना भावावेश अलग रखना होगा।[2]

पात्रावतरण के इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त डॉ0 रामशंकर त्रिपाठी अन्य सिद्धान्तों की भी चर्चा की है जिनमें व्यक्ति बनाम टाइप सिद्धान्त, मनोविज्ञानपरक व्यक्तित्व सिद्धान्त – उत्तेजना प्रतिक्रिया सिद्धान्त, शीलगुण सिद्धान्त, क्षेत्र सिद्धान्त, फ्रायड सिद्धान्त है।[3]

---

१. त्रिवेणी - आ० रामचन्द्र शुक्ल एवं साहित्यालोचन - डॉ० श्याम सुन्दर दास
२. पश्चिमी आलोचना शास्त्र - डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - पृ० ३८३
३. पात्रावतरण की अवधारणा- पृ० २६९-७०

पात्र के चरित्र चित्रण की प्रणालियाँ :-

जिस प्रकार इस दृष्टयमान जगत में समान अंग होने पर भी मनुष्य-मनुष्य में असमानता होती है, यह असमानता रूप-रंग, क्रिया-व्यवहार आचरण, चिन्तन में होती है, उसी प्रकार साहित्यकार की रचनाओं मे पात्र गत वैभिन्नय होता है। साहित्यकार अपनी रचनाओं में पात्रों के चरित्र, क्रिया व्यवहार का चित्रांकन करता है। इसी प्रणाली का यहाँ कुछ संक्षिप्त रूप में वर्णन किया जा रहा है ताकि अग्रिम अध्यायों में डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में अवतरित पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए प्रयुक्त प्रणालियों का अध्ययन विश्लेषण किया जा सके। यहाँ सैद्धान्तिक रूप में ही कुछ प्रणालियों का उल्लेख मात्र किया जा रहा है।

मुख्य रूप से पात्र चरित्र-चित्रण की दो प्रणालियाँ देखने में आती हैं।

(1) प्रकाश प्रणाली,

(2) विकास प्रणाली।

(१) प्रकाश प्रणाली :-

इस प्रणाली का प्रयोग विश्रुत या प्रख्यात पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए होता है। रचनाकार पात्रावतरण के पूर्व ही पात्रों के गुणावगुणों का मानक निर्धारित कर तदनुरुप घट्नाओं से उसकी पुष्टि करता है। प्राक्तन आचार्यो ने नायक-नायिकाओं के भेद निरूपण के समय उनकी चारित्रिक विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत किया है। साहित्यकार तदनुरूप नायक-नायिका के गुणों का चित्रण करता चलता है। राम, रावण, कृष्ण, दुर्योधन, पाण्डव इत्यादि इस पद्धति के उदाहरण हैं।

(२) विकास प्रणाली :-

इस प्रणाली के अन्तर्गत पहले से पात्र को गुणावगुणों का निर्धारण साहित्यकार नहीं करता है। ज्यों-ज्यों हम उसके साथ अधिक देर तक रहते हैं, हमें उसके आभ्यातंर चरित्र का गहराई से पता चलता है। डॉ0 रामशंकर त्रिपाठी दोनों प्रकार की प्रणालियों में अन्तर करते हुए लिखते हैं कि प्रकाश प्रकाश पात्रों की परिस्थितियाँ, उनका परिपार्श्व तो बदलता रहता है, किन्तु वे स्वयं नहीं बदलते, जबकि विकास प्रणाली,

के अन्तर्गत पात्रों की परिस्थितियाँ चाहे ने बदलें, एक दूसरे की क्रिया प्रतिक्रिया से ही उनका विकास होता रहता है।[1] प्रकाश एवं विकास प्रणालियों में से प्रत्येक के दो पुनः भेद हो सकते हैं – 1. साक्षात्, 2. परोक्ष। इनका विश्लेषणात्मक तथा नाटकीय प्रणाली नामकरण किया जाता है। नाटकीय प्रणाली को अभिनयात्मक प्राणाली कहा जाता है।[2] प्रथम प्रणाली के अन्तर्गत साहित्यकार स्वयं पात्रों के विषय, भाव, विचार, संवेदनाओं, आदि का विवरण देता चलता है। द्वितीय प्रणाली में वह अन्य पात्रों के माध्यम से सम्बन्धित पात्र का चरित्र-व्यवहार, गुणावगुणों को व्यक्त करता है। विश्लेषणात्मक प्रणाली के अन्तर्गत पात्रों का नाम, उसका प्रथम साक्षात्कार (पाठकों से) आकृति, वेशभूषा, क्रिया एवं प्रतिक्रिया, स्थितियाँ, मुद्राएँ, तथा उसके अनुभवों का उल्लेख या चित्रण करता है। इसे बहिरंग चित्रण कह सकते हैं। अंतरंग चित्रण में पात्रों का चिन्तन, आन्तरिक द्वन्द्व, आवेग जन्य आचरण एवं उसके कारक तत्वों का निदर्शन करता है। इस हेतु साहित्यकार अन्तर्विवाद (इण्टीरियर मोनोलाग) मनोविश्लेषणात्मक, युक्त, आसंग, बाधकता, विश्लेषण, स्वप्न विश्लेषण, स्वप्न संघनन (ड्रीम मैकनिज्म) निराधार प्रत्यक्षीकरण इत्यादि मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का सहारा लेकर पात्रों के हृदय भावनाओं का विश्लेषण करता है। नाटकीय प्रणाली के अन्तर्गत साहित्यकार घटनाओं, प्रतिपक्षी के विचार या अन्य पात्रों के संवादों का आश्रय लेता है। अन्य प्रणालियों के अर्न्तगत वर्णनात्मक, आत्म कथात्मक, उद्धरण, डायरी, पत्रात्मक शैलियाँ आती है, जिनका उपयोग साहित्यकार करता है।

---

१. पात्रावतरण की अवधारणा – पृ० २७४

२. एन इण्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इंगलिस लिट् – हडसन – पृ० १४६ एवं साहित्यालोचन – डॉ० श्याम सुन्दर दास – पृ० १५२

द्वितीय अध्याय

अध्याय-२

आधुनिक हिन्दी नाटकों का विकास

(क) नाटक- स्वरूप एवं विकास

महर्षि पाणिनि ने नट् धातु से नाट्क और नाट्य शब्दों की व्युत्पत्ति प्रस्तुत की हैं ।

नाटकम्= नट्+ण्वुल, नाट्य=नट+ष्यल।[1]

इन दोनों शब्दो के सम्बध में वामन शिवराम आप्टे ने लिखा है नाट्कम्ः, स्वांग, रूपक, रूपक के दस भेदों से पहला। नाट्यम - नाचना, आभिनय करना, नृत्य करना अभिनय कला।[2] इसी संदर्भ में नृ धातु से बने नृत्य का अर्थ है लय और स्वर के साथ शरीर के विभिन्न अंगो का मुद्रा परक संचालन। इस प्रकार नृत्य भावाक्षित है और नाट्य रसाश्रित है। नृत्य नेत्र का विषय है जब कि नाट्य नेत्र एवं श्रवण दोनों का विषय होता है। अभिनय कला की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में दो प्रकार की नाट्य विधाएँ मिलती है। रूपक एवं उपरूपक। रूपकों की संख्या दस कही गई हैं। जिसमें नाट्क प्रधान रूप है। रूपक रहस्य में डॉ0 श्याम सुन्दरदास नें लिखा है, कि काव्य के सर्वगुण सम्पन्न खेल को दृश्य काव्य या नाटक कहतें है।[3] डॉ0 गुलाब राय ने कहा है कि नाटक में जीवन की अनुकृति को शब्द गत संकेतों मे से कुचित करके उसकों सजीव पात्रों द्वारा एक चलतें -फिरतें सप्राण रूप में अंकित किया जाता है। नाटक जीवन की सांकेतिक अनुकृति नहीं हैं वरन् सजीव प्रतिलिपि है। नाटक में फैले हुए जीवन व्यापार को ऐसी व्यवस्था केसाथ रखते हैं कि अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके।[4] डॉ0 दशरथ ओझा का मन्तव्य है कि नाटक वह दृश्य काव्य है जो प्रत्यक्ष कल्पना एवं अध्यवसाय का विषम बन सत्य

---

१. अष्टाध्यायी - ४/३/१२३

२. सृंस्कृत हिन्दी शब्दकोश

३. रूपक रहस्य - पृ० १६८

४. काव्य के रूप - पृ० २१३

एवं असत्य से सम्बन्धित विलक्षण रूप धारण करके सर्व साधारण को आनन्दो-पलब्धि कराता है।[1] यद्यपि नाट्कों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों की मान्यतायें भिन्न-भिन्न है, यथापि वैदिक परम्परा के प्रमाण अधिक पुष्ट है। देवो की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाट्य सामग्री सामवेद से गीत, यथर्ववेद से अभिनय तथा अर्थववेद से रस को ग्रहणकर पंचम वेद के रूप मे नाट्य वेद की रचना की। डॉ0 रिजवे ने इसकी उत्पत्ति वीर पूजा से, जर्मन विद्वान डॉ0 पिशेल ने पुत्तलिका नृत्य से डॉ0 लूडर्स एवम् डा0 कोनो ने छाया नाट्कों से नाट्य उत्पत्ति के सिद्धान्तों का प्राणयन किया है। पाणिनी के सूत्रों पतंजलि द्वारा उल्लिखित नाट्कों की नागपुर की पहाडियों में प्राप्त नाट्यशाला इत्यादि प्रमाणों के आधार पर भारतीय मत अधिक प्रौढ़ माना जाता है। इस प्रकार वैदिक् काल से आरम्भ होकर उत्तरोत्तर विकसित होती हुई यह नाट्य कला रचना एवं एतद्विषयक सिद्धांतों के प्रणयन से अविच्छिन्न रूप मे भास कालिदास तक दिखाई देती है।[2]

संस्कृत साहित्य का इतिहास डॉ0 कपिल देव द्विवेदी डॉ0 बलदेव उपाध्याय एवं डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी के ग्रंथ द्रष्टव्य हैं। भास कालिदास, भवभूति इत्यादि नाट्ककारों ने नाट्य कला को चरम सीमा प्रदान की। विदेशियों के आक्रमण एवं शासन नीति के कारण रंगमंच को बहुत क्षति हुई जिसके कारण लोक नाट्य-कला का विकास हुआ। डॉ0 दशरथ ओझा[3] इसी परम्परा को ध्यान में रखकर 'राय सुकुमार रास तथा अन्य रासकों को हिन्दी नाटक का पूर्व रूप कहा है। मैथिली नाट्य परम्परा का सूत्रपात शंकरदेव द्वारा माना जाता है। कालिय दमन, राम विजय, केलि गोपाल, विद्यापति रचित रुक्मिणी हरण और परिजात हरण इसी परम्परा को समृद्ध करने वाले नाट्क है।[4] खड़ी बोली के नाट्कों के पूर्व हिन्दी में ब्रज भाषा नाटक परम्परा भी

---

१. नाट्य समीक्षा - पृ० १

२. विशेष अध्ययन के लिए - संस्कृत साहित्य का इतिहास -डॉ० कपिल देव द्विवेदी, डॉ० बल्देव उपाध्याय एवं डॉ० बाबूराम त्रिपाठी के ग्रंथ दृष्टव्य हैं।

३. हिन्दी नाटक-उद्‌भव विकास -पृ० ८३

४. वही पृ० १५६

मिलती है। प्राण चन्द चौहान कृत रामायण महानाटक केशवदास कृत विज्ञान गीता, हदय रामकृत हनुमन्नाटक, नेवाज कवि कृत शकुन्तला सोलहवी शताब्दी के नाटक है। अठारहवीं शताब्दी में सुरति मिश्र कृत प्रबोध चन्द्रोदय देव कृत देवमाया प्रपंच, धौकल मिश्र कृत शकुन्तला महाराजा विश्वनाथ सिंह आनन्द रघुनन्दन मंजु कवि कृत हनुमन्नाटक गिरधरदास कृत नहुष एवं राजा लक्ष्मण सिंह कृत शकुन्तला इत्यादि 19वीं शताब्दी के प्रमुख नाटक हैं। इनकी नाट्य कला पर प्रकाश डालतें हुए डॉ0 दशरथ ओझा ने लिखा है कि इनमें किसी प्रकार के शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं हुआ है। आरम्भ में परिवर्तन नान्दी पाठ का विधान नहीं है। दृश्य परिवार और पात्रों के प्रवेश निष्क्रमण की कोई व्यवस्था नहीं है। रूप विधान की यह स्वच्छन्दता जन नाट्य शैली के सदृश ही हैं।

भारतेन्दु पूर्व रचित नाटक धार्मिक एवं पौराणिक है। ये नाटक पाद्यबद्ध हैं अतः इनमें काव्यात्मकता अधिक मिलती हैं। इस कारण प्रायः नाट्य समीक्षक इन्हें प्रबन्ध काव्य की कोटि में समेटते हैं अथवा इन्हें ड्रामेट्रिक पोयट्री की संज्ञा देते है।[1] इन नाटकों का महत्त्व निरूपित करते हुए डॉ0 शान्ति मलिक ने लिखा है कि अंततः कहा जा सकता है कि ये कृतियाँ हिन्दी की प्रारम्भिक साहित्यिक रचनाएँ होने के कारण अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। इन्हें आधुनिक नाटकीय विधान के आध ार पर रख कर नाटकत्व से हीन कहना जहाँ असंगत है वहाँ इन्हे सम्पूर्ण नाट्य तत्वों से युक्त बतलाना भी निश्चयात्मक रूप से अनुचित है। इनमें इस युग के अनुरूप नाट्य तत्त्व पर्याप्त मात्रा में है। इन्हें नाटक की कोटि में परिगणित करना होगा प्रबन्धकाव्य की श्रेणी में नहीं।[2]

---

१. (क) हिन्दी साहित्य का इति० - आ० रामचन्द्र पृ० ४५३
   (ख) रूपक रहस्य -डॉ० श्याम सुन्दर दास प्र०३८
   (ग) हिन्दी नाट्य साहित्य का इति० - डॉ० सोमनाथ गुप्त पृ० ७
   (घ) हिन्दी नाट्य सहित्य का आलो० अध्ययन डॉ० वेदपाल खन्ना पृ० २३
२. हिन्दी नाट्को की शिल्प विधि का विकास पृ० १४

आधुनिक हिन्दी नाटको के विकास क्रम को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

भारतेन्दु युग :-

जिस समय भारतेन्दु ने नाट्य लेखन प्रारम्भ किया उस समय रामलीला, रासलीला, स्वांग, यात्रा तथा साहित्यिक नाटक इत्यादि पाँच नाट्य-धाराएँ प्रचलित थीं। इनमें से रामलीला, रासलीला, स्वांग, यात्रा, नौटंकी आदि लोक नाट्य परम्परा से विकसित है जिनका कुछ प्रभाव हिन्दी के आरम्भिक नाटकों में दिखाई देता है। साहित्यिक नाटकों की परम्परा में अंग्रेजों द्वारा स्थापित बडे-बडे नगरों में रंगमंच तथा उनमें प्रदर्शित होने वालें नाटकों का आकर्षण भारतेन्दु के मन में रहा है किन्तु वे भारतीय नाट्य परम्परा तथा उनके शिल्प को त्यागने के पक्ष नही थे। अतएव इस साहित्य महारथी ने इन सबसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए किसी एक पद्वति का अंध ाानुकरण न कर, इनमें रूच्यनुकूल एवं परिस्थिति अनुकूल उपयोगी तत्वों को ग्रहण कर नवीनता और प्राचीनता की सन्निहिति द्वारा हिन्दी में नये ढंग के नाटक लिखने का उपक्रम कर हिन्दी नाट्य साहित्य के विषय वस्तु और रूप विन्यास में सकता है कि भारतेन्दु के दोनो पक्षों आन्तरिक एवं बाहय पर संक्रमण कालीन परिवर्तन शीलता की गहरी छाप है।[1]

भारतेन्दु के नाटकों मे विद्या सुन्दर पाखण्ड बिडम्वन, धनंजय विजय, कर्पूर-मंजरी, भारत जननी, मुद्राराक्षस, दुर्लभबन्धु आदि अनूदित अथवा रूपान्तरित नाटक हैं। उनकी मौलिक नाटक वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति, सत्य हरिश्चन्द, श्री चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम, भारत दुर्दशा, नीलदेवी अंधेर नगरी प्रेम जोगिनी तथा सती प्रताप है। भारतेन्दु हिन्दी नाटक के आविर्भाव काल में ही ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक विषयों पर नाट्य रचना करके उसके भावी विकास का मार्ग प्रशस्त किया।[2]

---

१. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - डॉ० शान्ति मलिक पृ० २२
२. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास -डॉ० प्रताप नारायण टण्डन -भागर पृ० ५४५

भारतेन्दु के मौलिक नाटको में अनेक रूपता, विविधता दिखाई देती है। इनमें राष्ट्रीय और समाज संस्कार प्रेम के विविध रूप राज भक्ति, राष्ट्र भक्ति, समाज सुध ार, मातृ भाषा सेवा इत्यादि भाव विन्यस्त हैं। भारतेन्दु के नाटकों की कथावस्तु का विश्लेषण करते हुए डॉ0 शान्ति मलिक ने लिखा है कि भारतेन्दु ने संस्कृत के नाटककारों की अधिकांशतः प्रख्यात कथावस्तु अपनाने की परम्परा का उल्लंघन कर अपने नाटको की सामग्री का संकलन इतिहास पुराण सामयिक प्रसंगो एवं जीवन के अन्य विविध क्षेत्रो से किया और उन्हें अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा तथा उर्वर कल्पना द्वारा आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक रूप भी दिया। वस्तुतः आधुनिक युग में पहली बार इस युग पुरूष की कृतियॉं में जीवन की विकासोन्मुख नई प्रवृत्तियों को बडी सजगता से चित्रित हुआ है। इन्होंने तत्कालीन जीवन के सभी पक्षों पर दृष्टपात ही नहीं किया प्रत्युत् भविष्य निर्माण की योजना आशा की किरण के रूप में अत्यन्त सशक्त ढंग से दी। कोण देने वाले तथा अपने कथानंकों में पहली बार यर्थाय और आदर्श प्राचीन और अर्वाचीन का स्वस्थ एवं सुन्दर सामंजस्य करने वाले यही युग पुरूष थे।[1] इस प्रकार इनके कथानक सरल स्वाभविक ढंग से बढ़ते हुए चरम सीमा को प्राप्त होते हैं।

भारतेन्दु युगीन नाटक विभिन्न शखाओं प्रशखाओ में विकसित हुए है :-

(१) पौराणिक नाटक :-

प्राचीन नायको वीर पुरूषों के प्रति श्रद्धा का भाव जन समान्य मे होता है। साहित्यकार इन्हीं को नाट्य वस्तु बनाता है। रामकृष्ण ऐसे ही महापुरूष है। शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत जानकी मंगल़, अन्ना जी इनामदार कृत सीता हरण, देवकी नन्दन कृत सीता हरण रामलीला, बालकृष्ण भट्ट कृत सीता वनवास, भवदेव उपाध्याय कृत सुलोचनासती, दामोदर शास्त्री कृत रामलीला नाटक, काशीनाथ कृत लव जी का स्वप्न, बलदेव जी कृत रामलीला, विजय शिव शंकर लाल कृत रामयशदर्पण नाटक, जयगोविन्द मालवीय कृत रामचरित नाटक, ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत सीता बनवास

१. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का इतिहास - पृ० २८

एवं रामलीला रामायण, बंदीदीन दीक्षित कृत सीता हरण नाटक एवं सीता स्वयंवर नाटक, कैलाश नाथ वाजपेयी कृत विश्वामित्र नाटक, प्रेमघन कृत प्रयाग रामगमन नाटक, वामाचार्य गिरि कृत वारिध वघ व्यायोग, रामनारायण कृत जनकवाडा, व्रजचन्द्र बल्लभ कृत रामलीला नाटक, गिरि घरलाल कृत रामवनयात्रा नाटक इत्यादि राम कथा प्रधान नाटक हैं जिसमें घटनाओं का बाहुल्य है। कृष्ण से सम्बन्धित नाटक काफी संख्या मे हैं जिनमें शिवनन्दन सहाय (कृष्ण सुदामा), देवकीनन्द त्रिपाठी (रूक्मिणी हरण), अंबिकादन व्यास (ललिता नाटिका), चन्द्र शर्मा (उषा हरण), कार्तिक प्रसाद खत्री (उषा हरण), प्रद्युम्न विजय व्यायोग (रूक्मिणी परिणय), कृष्णदत्त मिश्र (युगल विहार), बाल कृष्ण भट्टर (शिशुपाल वध), राधाचरण गोस्वामी (श्री दामा), शिवनन्दन सहाय (सुदामा), रामनारायण मिश्र (कंस वध) प्रमुख नाटक्कार हैं। इसी प्रकार महाभारत से कथा नाटक लेकर अनेक नाटकों की रचना इस युग में हुई है। इनमें प्रहलाद कृत दौपदी, उर्वशी, अभिमन्यु, सावित्री इत्यादि से1 सम्बन्धित घटनाएँ नाटको में उपनिबद्ध है।

2. इस युग में कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे गये हैं। जिनमें से राधाकृष्ण दास का महारानी पद्मावती, श्रीनिवास दास का संयोगिता, गोपाल राम गहमरी का यौवन योगिनी, राधा चरण गोस्वामी का सुमेर सिंह राठौर, राधाकृष्ण दास का प्रताप सिंह, प्रताप नारायण मिश्र का हठी हमीर प्रमुख हैं।3 इस युग के नाटकों की सबसे बडी देन सामाजिक नाटक हैं। जिनके माध्यम से नाटक कारों ने हिन्दू समाज मे व्याप्त रूढ़ियों अंधविश्वास छुआछूत, बाल-विवाह, धर्म की आड लेकर पनपने वाले पाखण्डों का जमकर विरोध किया गया है। वैदिकी हिंसा (हरिश्चन्द्र), बाल-विवाह (देवकी नन्दन त्रिपाठी), बाल-विवाह दूषण (देवदत्त), दुःखिनी बाला रूपक (राधा कृष्ण दास), बाल विधवा संताप नाटक (काशीनाथ खत्री), विद्या विनोद (गोपाल राम गहमरी), शिक्षादान (बालकृष्ण भट्ट), बूढे मुँह मुँहासे (राधा चरण गोस्वमी), कलि कौतुक रूपक (प्रताप नारायण मिश्र), सती चरित्र नाटक (हनुमंतसिंह), चौपट चपेट (किशोरी लाल गोस्वामी),

अबला विलाप (रूद्रदत्त शर्मा) इत्यादि प्रमुख नाटक हैं। राजनीतिक नाटकों में भारत दुर्दशा, भारत जननी (हरिश्चन्द्र), भारतोद्धार (शरत्कुमारमुखर्जी), भारत भाग्य (अंबिकादत्त व्यास), भारत सौभाग्य (ब्रदी नारायण चौधरी प्रेमधन), भारत दुर्दिन (जगत नारायण), भारत दुर्दशा (प्रताप नारायण मिश्र), उल्लेखनीय नाटक हैं। इन नाटकों में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से नाटककारों ने अपनी याथार्थवादिता दिखाई है। इन समाजिक एवं राजनीति नाटकों से स्पष्ट है कि वे अपने समय की समस्याओं के प्रति कितने जागरूक थे। हिन्दी जगत् को उनकी यह नवीन देन थी।[1] इस युग में अनेक प्रहसन भी रचित है। एक एक के तीन, कलियुगी जनेऊ, कलियुगी विवाह, वेश्या विलास (देवकी नन्दन त्रिपाठी), नई रोशनी का विष, पतित पंचम, शिक्षादान या जैसा काम वैसा परिणाम, आचार विडम्बन (बाल कृष्ण भट्ट), ठगी की चपेट (हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ), भंग तरंग (राधाचरण गोस्वामी), दादा और मैं (गोपालराम गहमरी) आदि प्रसिद्ध प्रहसन है। - हिन्दी साहित्य भाग-3, पृ0 362। इस युग मे कुछ ऐसी भी नाटक लिखे गये हैं जिनमें प्रेम की प्रधानता है। भारतेन्दु कृत विद्या, सुन्दर श्री निवास दास कृत रणधीर प्रेम मोहिनी, मोतीलाल जौहरी कृत मनमोहिनी नानक चंद कृत चन्द्रकला, रवंग बहादुर मल्ल कृत रतिकुसुमायुध, विन्ध्येश्वरी प्रसाद त्रिपाठी कृत मिथिलेश कुमारी, शाल ग्राम वैश्य कृत माधवानल, कामकन्दला एवं लांवण्यवती, किशोरी लाल गोस्वामी कृत प्रणयिनी परिणाम एवं मयंक मंजरी देवी प्रसाद राय कृत चन्द्रकला, भानुकुमार एवं लक्ष्मी प्रसाद कृत उर्वशी प्रमुख नाटक हैं।

अनूदित नाटक :-

इस काल में निम्नलिखित नाटक प्रमुख है जिनके अनुवाद एक या अनेक साहित्यकारो द्वारा हुए है रत्नावली (हरिश्चन्द्र, देवदत्त तिवारी, बाल मुकुन्द गुप्त), अभिज्ञान शाकुन्तलम् (राजालक्ष्मण सिंह, नन्दलाल, विश्वनाथ, ज्वाला प्रसाद), विक्रमोर्वशी (गदाघर मालवीय), मालविकाग्निमित्र (सीताराम), मृच्छ कटिक (बालकृष्ण भट्ट,

---

१. हिन्दी साहित्य भाग ३ पृ० ३६२

दमोदर शास्त्री गदाधर भट्ट, लाला सीताराम), उत्तर रामचरित (दिवदत्त तिवारी, लाला सीताराम, बलदेव प्रसाद मिश्र), बेणी संहार (अंविकादत्त व्यास, ज्वाला प्रसाद मिश्र), कुछ बंगला भाषा से भी नाटक अनूदित हुए हैं। इनमें से माइकेल मधुसुदनदत्त बिहारी लाल चट्टोपाध्याय के नाटक अनूदित हुए है। अंग्रेजी भाषा के नाटकों में सेक्सपियर के अनूदित नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं।[1]

भारतेन्दु के पश्चात इस युग के नाटक कारों में प्रताप नारायण मिश्र राधा कृष्णदास बाल कृपण भट्ट, राधा चरण गोस्वामी, देवकी नन्दन त्रिपाठी, बदरी नारायण चौधरी, प्रेमधन, अम्विकादत्त व्यास महत्वपूर्ण स्थान रखतें है। प्रताप नारायण मिश्र ने सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि विषयों पर उत्कृष्ट नाटक लिखे है जिनसे अभितेयक तत्वों का विकास हुआ है। राधाकृष्ण दास भारतेन्दु के फुफेरे भाई थें। इनके माहाराणा प्रताप नाटक ने बडी ख्याती पाई है। इसे आधुनिक शैली में लिखा गया हिन्दी का प्रथम नाटक भी माना जाता है।[2] बाल कृष्ण भट्ट ने पौराणिक ऐतिहासिक एवं सामाजिक प्रहस्न एवं नाटक लिखें है। इनके नाटक शास्त्रीय एवं समाजिक प्रहसन एवं नाटक लिखें है। इस युग के नाटक के महत्व को निरूपित करते हुए डॉ0 प्रताप नारायण टण्डन ने लिखा है कि इस प्रकार से हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक युग में नाट्य रचना की दृष्टि से भारतेन्दु काल को ही प्रथम विकास युग कहा जा सकता है। इस युग में पौराणिक, ऐतिहासिक सामाजिक आदि प्रवृत्तियों से सम्बन्धित नाटकों की रचना की गयी । पौराणिक नाटकों के क्षेत्र में राम और कृष्ण की लोक प्रचलित लीलाओं को आधार बनाया गया है। ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र मे भारतीय परम्परागत आदर्शो का गुणगान प्रस्तुत हुआ है। सामाजिक नाटकों में सुधारवादी दृष्टि की ही प्रधानता रही। हास्य रस के क्षेत्र मे भी अनेक नाटक कार क्रिया शील हुए। इन्होने विविध सामाजिक समस्याओं

---

१. विस्तृत सूची के लिए दृष्टब्य है - हिन्दी साहित्य - सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा भाग ३

२. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास- डॉ० प्रताप नारायण टण्डनन भाग -२ पृ० ५४६

पर व्यंग्यात्मक दृष्टि कोण से विचार किया। मौलिक नाट्य रचना के साथ-साथ इस युग में अनेंक नाटक अनूदित भी किये गये।[1]

इस युग के अन्तर्विरोधों की चर्चा करते हुए डॉ0 प्रेमलाल मिश्र ने लिखा है कि सम्पूर्ण भारत राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक हलचलों के कारण आन्दोलित था कुछ लोग भारतीय आदर्शो को धक्का मारकर अंग्रेजी हुकूमत की। चाटुकरिता में पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति का अंधानुकरण कर रहे थे। कुछ लोग पाश्चात्य प्रभाव के विरोधी थें। प्राचीन नवीन के संघर्ष में सांस्कृति पुनर्जागरण धार्मिक अंधविश्वास कुरीति छुआछूत के प्रति विरोधी मुद्रा दिखाई पडती है। अंग्रेजी शासन की बढ़ती शोषण नीति अमानवियता को हिन्दी नाटक के द्वारा ही करारा जवाब दिया जा सकता था इसे अच्छी तरह सबसे पहले भारतेन्दु ने समझा देश और साहित्य संक्रमण कालीन स्थिति में उन्होंने नाटकों के माध्यम से नयी मान्यतायें नया आदर्श स्थापित किया। जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक समस्याओं को नाटक के माध्यम से ही उजागर किया जा सकता था। इसलिए इस समय नाटक और रंगमंच की दूरी समाप्त नही गई थी परतन्त्र भारत में पनपते अन्तर्विरोध ने भारतेन्दु युगीन नाटकों को एक नयी दिशा दी।[2]

पहले लिखा जा चुका है कि जयशंकर प्रसाद के पूर्व भारतेन्दु युग मे हिन्दी नाटक के क्षेत्र में ऐतिहासिक धार्मिक, पौराणिक तथा सामाजिक नाटकों की प्रवृत्तियों का आविर्भाव हो चुका था। प्रसाद के नाटकों की परिस्थितियों का आकलन करते हुए डॉ0 प्रेमलता ने लिखा है कि इस समय सांस्कृतिक चेतना की लहर दूर-दूर तक जन जीवन में व्याप्त हो रही थी। पाश्चात्य संस्कृति और साहित्य का दिनोदिन प्रभाव भारतीय जनता पर छाता जा रहा था। भारतीय संस्कृति की इस उपेक्षित और दयनीय दशा ने प्रसाद के हृदय को आन्दोलित कर दिया। सांस्कृतिक जागरण के लिए नाटक

---

१. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास- डॉ० प्रताप नारायण टण्डनन भाग -२ पृ० ५५०
२. ध्रुवस्वामिनी की व्यापक पृष्ठभूमि -पृ० २० (अन्विति प्रकाशन, बाँदा)

को उन्होंने एक नई दिशा की ओर मोडा। भारतीय आदर्शों के पुनरूत्थान के लिए भारतीय गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए उनकी दृष्टि इतिहास पर केन्द्रित हुई। इतिहास और कल्पना के सुन्दर मिश्रण में नाटक को एक नया और पूर्ण आकार मिला।[1]

प्रसाद की महत्ता एक संतुलित एवं समन्वित पद्धति के निर्माण में नहीं प्रत्युत उसे व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप प्रदान करने में भी है। इनकी प्रथम नाटक रचना सज्जन है तो ध्रुव स्वामिनी अन्तिम। कामना शुद्ध रूपक है तो एक घूँट वर्तमान की झाँकी है। शेष उनके सभी नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक हैं। करूणालय में वैदिक काल का, सज्जन मे महाभारत काल का, जन्मेजय का नागयज्ञ में उत्तर महाभारत काल का, अजात शत्रु मे बौद्ध काल के आरम्भ का, चन्द्रगुप्त मे मौर्य काल के अरम्भ का, विशाख में बौद्धों के पतन काल का, ध्रुव स्वामिनी मे गुप्त काल का, स्कन्दगुप्त मे गुप्त काल के अंतिम समय का, राज्य श्री में हर्ष काल का तथा प्रायश्चित में जयचन्द काल का कथानक लिया गया है। प्रसाद से पूर्व लिखे गये ऐतिहासिक नाटक में शोधपरक घटनाओ का अभाव-सा है। प्रसाद जी ने अपने अनुसंधान से अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का जीर्णोद्धार किया है। इस सन्दर्भ में डॉ0 शान्ति मलिक ने लिखा है कि प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों की सामग्री पाने के लिए सभी उपलब्ध ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा शिला लेखों से प्राप्त होने वाली सामग्री और साक्ष्यों का समुचित उपयोग किया है। जहाँ कही उन्हें ऐतिहासिक सामग्री का अभाव मिला वहाँ उन्होंने पुराणों एवं ब्राह्मण ग्रंथों की सहायता ली है परन्तु जहाँ तक हो सका है इतिहास की मूल प्रकृति का ही अनुसरण करने का प्रयत्न किया गया है। नाटककार ने ऐतिहासिक घटनाओं की बुद्धिगम्य कार्य-कारण-योजना प्रस्तुत करने तथा नाटकीय पूर्णता लाने हेतु कल्पना का समुचित उपयोग भी किया है। किन्तु वहाँ ऐतिहासिक सत्य और संभाव्यता की रक्षा प्रायः सर्वत्र की गई है।[2]

---

१. ध्रुवस्वामिनी की व्यापक पृष्ठभूमि -पृ० २१ (अन्विति प्रकाशन, बाँदा)
२. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास -पृ० १०५

नाटक कला की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है। प्रयोग काल के नाटकों में सज्जन, कल्याणी परिणय, करूणालय, प्रायश्चित तथा राज्य श्री रचनाएँ आती हैं। परिपक्वाकाल में विशाख, अजात शत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ तथा कामना परिगणत होते हैं। प्रौढ़तम काल की रचनाओं में स्कन्द गुप्त, चन्द्रगुप्त, एक घूँट और ध्रुवस्वामिनी है। रंगमंच की दृष्टि से ध्रुवस्वामिनी प्रभावपूर्ण रचना मानी जाती हैं।

राज्य श्री का कथानक हर्ष युगीन इतिहास से सम्बन्धित है। इसके केन्द्र में हर्ष की बहन राज्य श्री है। हर्ष ग्रह वर्मा एवं देवगुप्ता के चतुर्दिक घटनॉए छिप्रगति से घटित होती है। विशाख का कथानक सीधा सादा एवं सीमित है। विशाख एवं चन्द्रलोखा का आकर्षण तथा विवाह नागजाति का अक्रोश षडयंत्रों का विन्यास नाटककाने कुशलता से किया है। अजातशत्रु पूवर्णया ऐतिहासिक नाटक है। इसका कथानक मगध कौशल और कौशाम्बी स्थलों से सम्बन्धित है। सम्राट विम्टसार भगवान बुद्ध प्रसेनजित राजा उदयन रानी पदयावती की घटनाओं को लेकर इस नाटक का ताना बाना बुना गया है। अनेक घटनाएँ बोझिल, जटिल एवं इसमें आर्थ और नागजति के संघर्ष कों चित्रित किया गया है। माणवक त्रिनिक्रम दायिनी उत्तंक से संबंधित कार्य व्यापार में शिथिलता की गई है। कामना नाटक का आधार मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक है अमूर्त एवं सूक्ष्म भावों को मानवीय रूप दिया गया है स्कन्दगुप्त प्रसाद जी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें स्कन्दगुप्त उनके पारिवारिक जनों के साथ गृह कलह षडयंत्र के साथ प्रेम सम्बधी काल्पनिक घटनाएँ आधिकारिक कथा के साथ समानान्तर रूप में चलती है। कथावस्तु मे गतिशीलता हेतु अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि प्रसाद जी की निजी विशेषता है। चन्द्रगुप्त प्रसाद जी की प्रौढ़तम रचना है। इसका कथानक चन्द्रगुप्त और चाणक्य से सम्बन्धित है। सिकन्दर का भारत पर आक्रमण नंदवंश नाश तथा सिल्यूकस की पराजय प्रमुख घटनाएँ है। चन्द्रगुप्त, कल्याणी, कार्नेलिया चाणक्य, सिंहरण, अलका राक्षस, शकटार इस नाटक के प्रमुख

पात्र है। कथावस्तु जटिल विश्रंखल, गतिहीन प्रतीत होती है। आकस्मिकता का प्रधान्य इसमें है। कथावस्तु का वैशिष्ट्य घटनाओं में होकर पात्रों के चरित्र चित्रण में है। एक घूँट लघुतम नाटक है, जिसमें पात्र एकत्रित होकर प्रेम, आनन्द, स्त्री-पुरुष की प्रकृति इत्यादि विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान करतें हैं। ध्रुवस्वामिनी वस्तु संगठन की दृष्टि से सफल नाटक है। सम्पूर्ण घटनाएँ क्रिया-व्यापारों एवं नाटकीय स्थितियों का चित्रांकन सफलता पूर्वक हुआ है। प्रारम्भिक काल के नाटको को छेडकर शेष नाटकों के पात्र विकसित रूप मे चित्रित हैं। ऐतिहासिक पात्र राजकुल या उच्चकुल से सम्बन्धित हैं। नायक या प्रमुख पात्रों के उत्कर्ष हेतु प्रतिनायक या विरोधी पात्र की अवतारणा प्रसाद जी ने किया है। ये प्रति नायक धीरोद्वत कोटि के है प्रसाद के नाटको में आन्तरिक एवं बाहय संघर्ष पात्रों के स्वरूप को विकसित करता है। यह संघर्ष कहीं राज्याधिकर से, कहीं संस्कृति जाति धर्म इत्यादी रूपों मे चित्रित है। गृहकलह भी एक ऐसा ही रूप है जिससे संघर्ष आकर्षक बन पडा है। अन्तर्द्वन्द्व मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में चित्रित हुआ है। प्रायः प्रसाद के नाटकों के पात्र आदर्श पुरूष है, फिर भी यथार्थवादी चरित्रों का अभाव नही है। पुरूष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्र अधिक भव्य एवं आकर्षक हैं। इन पात्रों में माधुर्य, स्निग्धता, कोमलता मिलती है। नारी चरित्र के दो रूप प्रसाद के नाटकों में मिलते हैं। प्रथम कोटि में आदर्श आर्य ललनाएँ आती हैं, जिनमें सौन्दर्य, औदार्य, आत्मसमर्पण, गम्भीरता इत्यादि सद्वृत्तियों की प्रधानता है। प्रधानों पर दृष्टि नही रख पाती। स्वार्थपरता, कामुकता, अनौदार्य प्रतिहिंसा की साकार मूर्ति सी लगती है। राज्यश्री, चन्द्रलेखा, अलका, कार्नेलिया, सुवासिनी, कल्याणी, देवकी, देवसेना, कमला, मालविका प्रथम वर्ग की तो छलना, मागन्धी, शक्तिमती, विजया, अनन्त देवी, सुरमा, तरला द्वितीय वर्ग की नारियाँ हैं। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कथनों के अतिरिक्त स्वगत कथन कार्य व्यापारों द्वारा पात्रों के चरित्र-चित्रण की शैली अपनाई गई है। प्रसाद के नाटकों के संवाद सुबोध, व्यावहारिक, मार्मिक, संवेगात्मक एवं भावात्मक हैं। आवेशपूर्ण, मधु

ुमय, गंभीर, व्यावहारिक संवाद प्रसाद जी की एतद् विषयक विशिष्टता है। प्रसाद जी का शब्द भण्डार अत्यन्त गहन विस्त्रत और गम्भीर है। ऐतिहासिकता एवं वातावरण संसिद्धि हेतु बहुला-भाषा का प्रयोग उन्होंने किया है उनकी शैली प्रसंग एवं रस के अनुकूल कभी ओजस्वी और स्फूर्तिवान, कभी सरस और मधुर, कभी सरल और करूणा प्लावित, कभी गूढ़ और गम्भीर तथा स्पष्ट और व्यावहारिक बनती चलती है। इनके गीत भावात्मक प्रतिभा एवं श्रेष्ठ काव्य कला के निदर्शन है, के माधुर्य एवं चाक्षुष बिम्ब प्रधान है। तात्पर्य यह है कि प्रसाद के नाटक वर्ण्य विषय के अनुरूप देश काल परिस्थिति के निदर्शन ही नही करतें अपितु सभी रसों की पूर्ण व्यंजना भी इनमें मिलती है। जयशंकर प्रसाद ने प्राचीन एवं नवीन नाट्य पद्धति का मिश्रण कर नवीन नाट्य शैली का निर्माण किया है। प्रसाद जी की नाट्य कला की समीक्षा करते हुए डॉ0 प्रताप नारायण टण्डन ने लिखा है कि नाटय साहित्य के क्षेत्र में जय शंकर प्रसाद का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घट्ना है। उन्होंने भारतेन्दु युग में प्रचलित नाटय प्रवृत्तियों को विकसित किया। ऐतिहासिक नाटकों में उन्होंने राष्ट्रीयता तथा सांस्कृतिकता का जो समन्वय प्रस्तुत किया वह उनके दृष्टिकोण की मौलिकता का सूचक है। वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियों के क्षेत्र में उन्होंने जिन कथानकों की सृष्टि की वे उनकी प्रखर कल्पना और मौलिक दृष्टिकोण के सूचक हैं। उनके नाटकों में कलात्मक तत्वों का निर्वाह भी प्रौढ़ता के स्तर की ओर उन्मुख है। पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियों के क्षेत्र में उन्होंने जिन कथानकों की सृष्टि की वे उनकी प्रस्श्र कल्पना और मौलिक दृष्टिकोण के सूचक हैं। उनके नाटकों में कलात्मक तत्वों का निर्वाह भी प्रौढता के स्तर की ओर उन्मुख है। उन्होने जो पौराणिक नाटक लिखें उनमें मानवियता का आरोपण किया, ऐतिहासिक नाटकों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश किया तथा सामाजिक नाटकों में आदर्शवादी दृष्टि समाविष्ट की। साहित्यिक तथा अभिनयात्मक दृष्टियों से उनके नाटक सफल कहे जा सकते हैं। न्यूनाधिक परिवर्तन के पश्चात उनके अधिकांश नाटकों का

सफलता पूर्वक अभिनय सम्भव है। उनके नाटकों की कथावस्तु के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण विशेषता प्रौढ़ चरित्र चित्रण हैं। उन्होंने अपने नाटकों में जिन पात्रों की सृष्टि की है वे चाहे पौराणिक हो चाहे ऐतिहासिक और चाहे काल्पनिक उनमें मानवोचित गुण दोषो की निहित है। मनुष्य के संस्कार परिस्थियाँ तथा प्रवंचनाएँ उसे वशीभूत कर लेते हैं, उसकी निहित प्रसाद के नाटकों में मिलती है। कथोपकथन, भाषा शैली गीति योजना, रस-सृष्टि आदि की दृष्टि से भी उनके नाटक परिपक्वता से युक्त हैं। प्रसाद ने हिन्दी नाटक का जो दिशा निर्देश किया, उससे उसकी भावी सम्भावनाओं में वृद्धि हुई। प्रसाद के समकालिक नाटककारों में बद्रीनाथ भट्ट (कुरूवनदहन, चन्द्रगुप्त चुंगी की उम्मीदवारी वेनचरित, तुलसीदास, दुर्गावती, लबड धोधों, विवाह-विज्ञापन और मिस अमेरिकन) जी0 पी0 श्रीवास्तव (गडबड झाला, दुमदार आदमी, उलट फेर, अच्छा, मर्दानी औरत, कुर्सीमैन, पत्र-पत्रिका सम्मेलन, न घर का घाट का बंटाढ़ार, भूलचूक, लक्कड बग्घा, साहित्य का सपूत, भक्तिन, घर का मैनेजर और मिरचा नन्द) सुदर्शन (दयानंद, अंजना, आनरेरी मजिस्ट्रेट सिकन्दर तथा धूपछाँह) माखनलाल चतुर्वेदी (कृष्णार्जुन युद्ध) मैथिली शरण गुप्त (चन्द्रहास तिलोत्तमा, अनघ) मिश्र बन्धु (नेत्रोन्मीलन पूर्व भारत और उत्तर भारत) प्रेम चंद्र (संग्राम, कर्बला, प्रेम की बेदी) राम नरेश त्रिपाठी (जयन्त, प्रेम लोक बफाती चाचा, अजनबी पैसा परमेश्वर तथा कन्या का तपोवन ससुराल) वियोगी हरि (छद्म योगिनी, प्रबुद्ध यामुन) माधव शुक्ल, विश्वम्भरनाथ कौशिक द्वारका प्रसाद गुप्त, चन्द्रराज भण्डारी, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी लक्ष्मण सिंह, बल्देव प्रसाद मिश्र उल्लेख्य हैं। भट्ट जी एवं जी0 पी0 श्रीवास्तव के प्रहसन काफी लोकप्रिय हुए हैं। मारवनलाल चतुर्वेदी का नाटक अभिनेयता एवं रसात्मकता की दृष्टि से गौरव पूर्ण सुन्दर रचना है। कथावस्तु सुगठित तथा पात्रों का चरित्र उनके व्यक्तित्व के अनुरुप है। नाट्य कला की दृष्टि से यह परिष्कृत रचना मानी जाती है।

प्रसाद युगीन नाट्य कला का विश्लेषण करते हुए लिखा जा चुका है, कि

उनके नाटकों में ऐतिहासिकता और प्रेम का ऐसा संयोग मिलता है कि वे युग प्रवर्तक नाटककार ही नहीं सिद्ध हुए अपितु नाट्य साहित्य में उनकी तुलना मिलनी कठिन हो गई। कथावस्तु एवं परिस्थितियों की सुन्दर योजना, उपयुक्त दृश्य विधान आदर्श एवं यथार्थ पात्र काव्यात्मक संवाद अभिनव नाट्य शैली की दृष्टि से वे श्रेष्ठ नाटककार सिद्ध हुए हैं। प्रसादोत्तर काल का नाट्य साहित्य अत्यन्त समृद्ध एवं विशाल है। इस युग के नाटककारों ने भारतेन्दु प्रवर्तित एवं प्रसाद द्वारा पुष्ट प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए डॉ0 शान्ति मलिक ने लिखा है कि इस काल में अनेकानेक प्रवृत्तियों यथा- मानवतावादी, आदर्शवादी, सुधारवादी, समाजवादी साम्यवादी, यथार्थवादी, बुद्धिवादी व्यक्तिवादी (व्यक्ति सापेक्ष्य भावना) प्रतीकवादी तथा अनेकवाद जैसे मनोविश्लेषणवाद यौनवाद, आत्माभिव्यंजनवाद, रूपविधानवाद, प्रकृतिवाद एवं प्रभाववाद आदि प्रस्फुटित हुए।[1] इस युग में प्राप्त नाटककारों को रचनाएँ विभिन्न प्रमुख वर्गो व धाराओं में विभक्त की जा सकती है।

1. ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक
2. ऐतिहासिक-राष्ट्रीय नाटक
3. जीवनी परक ऐतिहासिक नाटक
4. पौराणिक नाटक
5. समस्या नाटक
6. गीति नाटक तथा
7. अन्यापदेशिक नाटक।

(१) ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक :-

ऐसे नाटकों की कथावस्तु ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है तथा उनमें भारतीय सभ्यता के सार्वभौमिक, एवं सार्वजनीय मूल्यों का चित्रण किसी न किसी रूप में हुआ है।

---

१. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - पृ० २०२

लक्ष्मीनारायण मिश्र (अशोक गरूडध्वज, वत्सराज, दशाश्वमेघ, वितस्ता की लहरें) वृन्दावन लाल वर्मा (हंस मयूर, पूर्व की ओर ललित विक्रम) से0 गोविन्ददास (हर्ष, शशिगुप्त) उदय शंकर भट्ट (विक्रमादित्य, मुक्ति पथ, शक विजय) चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (अशोक, रेवा) हरि कृष्ण प्रेमी (शपथ, सीमा संरक्षण) तथा वंचन शर्मा उग्र (महात्मा ईसा) सियाराम शरण गुप्त (पुण्य पर्व) गोविन्द बल्लभ पंत (अंतःपुर का छिद्र) सुदर्शन (सिकन्दर) रामवृक्ष बेनीपुरी (अंबपाली) बैकुंठनाथ दुग्गल (समुद्र गुप्त) जगन्नाथ मिलिन्द (गौतम नन्द) चतुर सेन शास्त्री (धर्मराज) मोहन राकेश (आषाढ़ का एक दिन, लहरों का राजहंस) इत्यादि नाटककार इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

(1) लक्ष्मीनारायण मिश्र :-

मिश्र जी समस्या प्रधान नाटककार हैं। इन्होंने अशोक (1926) गरूडध्वज (1945) वत्सराज (1950) दशाश्वमेघ (1950) तथा वितस्ता की लहरें (1953) संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक हैं। अशोक इनकी प्रथम रचना है, जिसमें अशोक के प्रारम्भिक जीवन की मार्मिक घटनाओं को सँजोया गया है। गरूडध्वज में पुष्यमित्र शुंग के वंशज अग्निमित्र की कथा है। दशाश्वमेघ का मूल आधार ईसा की तीसरी चौथी शती में भारशिव नागों का इतिहास है। विदेशी कुषाणों से देश को स्वतंत्र कराने वाले वीरसेन का पराक्रम का जीवन चित्रण है। वत्सराज में प्रसिद्ध राजा उदयन की कथा है। इस प्रकार नाटककार ने मौर्य गुप्त, शुंग वंश के इतिहास को अपनी मौलिक सूझ-बूझ एवं कल्पना से नया आयाम दिया है। अशोक को छोड़कर सभी नाटक तीन अंको के हैं। अशोक में अनेक अस्वाभाविक घटनाएँ मिलती हैं। इनके नाटकों में ऐतिहासिक एवं कुछ काल्पनिक पात्र मिलते हैं। पात्रों की बहुलता होने पर भी उनके चारित्रिक विकास, विश्लेषण में नाटककार को अपूर्व सफलता मिली हैं। नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सटीक उपयोग शासन-प्रबन्ध, युद्ध-विधान, धार्मिक विश्वास, उत्सव, वस्त्र आभूषणों इत्यादि के सूक्ष्म चित्रण किया है। डॉ0 शान्ति

मलिक ने लिखा है कि अंततः हम कह सकते हैं कि लक्ष्मीनारायण मिश्र ऐतिहासिक, सांस्कृतिक नाटको के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनमें अधिकांश शिल्पगत तत्वों की प्रतिष्ठा परम सफलता से हुई है। अंको एवं दृश्यों का संतुलित विभाजन रचना विधान की सादगी एवं यथार्थता घटनाओं का बौद्धिक मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक रूप, पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण संवादों की उपयुक्तता, प्रभावोत्पादकता एवं कलात्मकता और बुद्धितत्त्व का समावेश आदि इनकी विशेषताएँ हैं। वास्तव में ऐतिहासिक नाटकों की शैली का सच्चे अर्थो में यथार्थ प्रवर्तन इन्हीं के हाथों हुआ। कई घटनाओं के सृजन एवं कई पात्रों के चरित्रांकन में नाटककार की मौलिकता की छाप स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है। इनकी सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि ये रचनाएँ भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक पक्ष के मूलभूत तत्त्वों को बडी ही सरलता एवं सजीवता से प्रस्तुत करती हैं, जिसमें नाटककार की सांस्कृतिक जिज्ञासा तथा निष्ठा के दर्शन भली प्रकार होने के साथ-साथ भारतीयता का स्वरूप भी प्राप्त हो जाता है।[1]

वृन्दावन लाल वर्मा के हंस मयूर (1948) पूर्व की ओर (1950) और ललित विक्रम सांस्कृतिक नाटक कहे जाते हैं। ललित विक्रम का कथानक उत्तर वैदिक काल से सम्बद्ध है जिसमें स्वार्थी उपाध्याय मेघ द्वारा अयोध्या के राजा को सत्ताच्युत करने के षडयंत्र का वर्णन है। हंस मयूर में शकों का उज्जयिनी पर आक्रमण, नायक इन्द्रसेन के द्वारा उनकी पराजय का जीवन चित्रण है। वृन्दावन लाल वर्मा ने अपने नाटकों की भूमिकाओं में कथानक की ऐतिहासिकता एवं कल्पना के प्रयोग पर विस्तृत प्रकाश डाला है।[2] इन नाटकों में पात्रों की संख्या अधिक है। इस कारण चरित्र वैभिन्न्य नहीं मिलता है। अधिकांश परम्परित रूप में चित्रित है। हंस मयूर का इन्द्रसेन, और तत्वी, पूर्व की ओर के पात्र अश्वतुंग एवं धारा तथा ललित विक्रम के

---

१. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - पृ० २२५-२६

२. साहित्य सन्देश वर्ष १९५१-५२ - डॉ० सत्येन्द्र का लेख पृ० ४१

रोमक, ललित ऋषि धौम्य नई चमक अवश्य लिए है किन्तु परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से उत्पन्न जो मानसिक संघर्ष जन्य चरित्र है, उसका इनमें अभाव है। ऐतिहासिक पात्रों में निडरता, वीरता, सदृश्यता, त्याग और बलिदान के गुण मिलते हैं। इतिहास की रक्षा, नवीनतम ऐतिहासिक अनुसंधानों के उपयोग तथा प्राचीन सांस्कृतिक तथ्यों का वास्तविक चित्रण इन नाटकों में हुआ था।

सेठ गोविन्द दास ने हर्ष और शशि गुप्त इतिहास मूलक संस्कृति प्रधान नाटक लिखे हैं प्रथम रचना इतिहास प्रसिद्ध श्री हर्ष से सम्बन्धित है, तो दूसरा नाटक चन्द्रगुप्त नन्द वंश सिकन्दर और पोरस से सम्बन्धित है। इन दोनों रचनाओं में इतिहास के साथ कल्पना का मणि कांचन सहयोग नाटककार ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में अभूत पूर्व सफलता प्राप्त की है। इन दोनों नाटकों में तद्युगीन रीति रिवाजों शासन प्रणालियों, नवीन संगठनों राज दरबारों की शासन व्यवस्थाओं तथा धार्मिक विश्वास, एवं उत्सवों का ज्ञान भली प्रकार से हो जाता है। नाटको के संवाद सश्वत सजीव और गतिशील बन पडे हैं। भाषा में क्लिष्टता एवं दार्शनिकता न होकर सरलता यथार्थता एवं स्पष्ट वादिता मिलती है। इन नाटको से सांस्कृतिक दृष्टिकोण का जीवन्त चित्रण मिलता है।

उदय शंकर भट्ट के विक्रमादित्य मुक्तिपथ तथा शक विजय संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक है इसमें विक्रमादित्य चालुक्य वंशीय सोमेश्वर और विक्रमादित्य की कथा है। इनमें ऐतिहासिक घटनाओं को अधिक महत्व दिया गया है। इनके अधि ाकांश पात्र ऐतिहासिक है तथा चरित्र चित्रण की दृष्टि से प्राक्तन धीरोदात्त इत्यादि भेदों के अनुरूप चित्रित हुए हैं।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के अशोक और रेवा इसी कोटि के नाटक हैं जिसमें अशोक का कथानक मौर्यकाल तथा रेवा का कथानक चोल राज से सम्बन्धित है। दोनों नाटकों में चरित्रों की बहुलता है। पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों का व्यक्तित्व श्रेष्ठ बन पड़ा है। दोनों नाटकों में पाँच अंक है जिनमें कथानक बिखरा सा प्रतीत

होता है। नाटको की भाषा सरल अवश्य है, किन्तु बीच-बीच में उर्दू शब्दों की अधिक प्रधानता है।

हरिकृष्ण प्रेमी के शपथ एवं सीमा संरक्षण ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटक हैं शपथ में भारत पर हूणों के आक्रमण एवं विष्णु वर्धन द्वारा उनका समूलोच्छेद मुख्य घटनाये है सीमा संरक्षण में चाणक्य, चन्द्रगुप्त तथा सिकन्दर के आक्रमण की कथा है दोनों नाटकों में तीन-तीन अंक है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से हरिकृष्ण प्रेमी को विशेष सफलता मिली है साथ ही तद्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, वातावरण के चित्रण में प्रेमी जी को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

इस श्रेणी के अन्य नाटककारों ने पाण्डेय वेचन शर्मा उग्र (महात्मा ईसा) सियाराम शरण गुप्त (पुण्य पर्व) गोविन्द बल्लभ पन्त (अन्तःपुर का छिद्र) जगन्नाथ मिलीन्द (गौतम नन्द) मोहन राकेश (आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस) इत्यादि नाटककार हैं।

निष्कर्ष यह है कि इस युग में उच्चकोटि के संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटको की सृजन की परम्परा अपने विकसित रूप में मिलती है। इस धारा के सम्बन्ध में डा0 शान्ति मलिक का मन्तव्य है कि इन नाटको के कथानक जटिल अवश्य है। वाहय द्वन्द्व के साथ अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण स्वाभाविक रूप में मिलता है संवादो में दार्शनिकता अनावश्यक गंभीरता तथा बोझिलता प्रायः नहीं आने पाई। अधिकांश नाटककार वातावरण प्रस्तुत करने एवं वस्तु गर्भित सत्य और सांस्कृतिक सन्देश अभिव्यंजित करने में पटु हैं। निःसन्देह नाट्यकला के आधुनिक शिल्प संविधान में इनकी देन महान है।

(२) जीवनी परक ऐतिहासिक नाटक :-

इस श्रेणी के नाटको में लक्ष्मी नारायण मिश्र कृत कवि भारतेन्दु और मृत्युन्जय सेठ, गोविन्ददास कृत भारतेन्दु, बल्लभाचार्य, रहीम, और महात्मा गाँधी तथा वृदावनलाल वर्मा कृत वीरबल तथा झाँसी की रानी उल्लेखनीय है। जीवनी परक

ऐतिहासिक रचनाओं का निर्माण उत्कृष्ट साहित्यकारों नेताओं एवं महात्माओं के जीवन वृत्त का चित्रण किया जाता है। नाटककारों का लक्ष्य यह रहता है कि सम्बद्ध पात्र के जीवन की प्रमुख घटनायें उसके द्वारा प्रतिपादित विशिष्ट सिद्धान्त आदर्श व्यथित हो जाये जिससे उनके चरित्र की स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष झलक पाठ्को को मिल सके। इन सभी जीवनी परक ऐतिहासिक नाट्को के संवाद सरल स्वाभाविक मर्म स्पर्शी गतिशील एवं प्रभावपूर्ण बन पड़े हैं। संवादों के बीच-बीच दोहे पद्यो एवं गीतों का प्रयोग हुआ है। ये सभी नाटक रंगमंच के अनुकूल है। कुछ में चित्रपट की कला का समिश्रण हुआ है।

(३) पौराणिक नाटक :-

शोधकर्ता ने प्रसादोत्तर नाट्कों की अनेक धाराओं का उल्लेख किया है। जिससे पौराणिक नाटक सभी महत्वपूर्ण वर्ग हैं। इस प्रकार के नाट्कों में कथावस्तु के ग्रहण में यथेष्ट परिवर्तन किये गये है मुख्य रूप से इनके उद्देश्य नैतिक, शिक्षात्मक, राष्ट्रीय एवं पौराणिक कथाओं और चरित्रों को मनोवैज्ञानिक एवं तर्क संगत रूप देना है। कुछ प्रमुख पौराणिक नाट्ककारों के नाट्को का परिचय दिया जा रहा है।

उदय शंकर भट्ट इस परम्परा के सफल नाट्ककार हैं। विद्रोहणी, अम्बा, और सागर विजय उनके नाटक हैं। प्रथम नाट्क की कथा का मूल महाभारत है जिसमें भीष्म पितामह द्वारा अपहत तीन कन्याओं में से दो का विवाह राजकुमारों से कर दिया जाता है किन्तु अम्बा शाल्व से प्रेम करती थी अतः उसे वापस भेज दिया जाता है यही अम्बा भीष्म के साथ संघर्ष करती है। सगर विजय में राजा सगर की उत्पत्ति और चक्रवर्ती बनने की घट्नाएँ प्रयुक्त हैं। अभिनेता की दृष्टि से दोनों रचनायें सफल नहीं हैं किन्तु इनमें क्रान्तिकारी विचार नारी अपमान के विरूद्ध अनेक प्रसंग नवीन युग की चेतना के संवाहक सिद्ध हुए हैं।

सेठ गोविन्ददास के कर्त्तव्य और कर्ण इसी श्रेणी के नाटक हैं। कर्तव्य के पूर्वार्द्ध में राम एवं उत्तरार्द्ध में कृष्ण के जीवन की घट्नायें उपनिबद्ध हैं। इन दोनो रचनाओं

में नाटककार ने घटनाओं एवं व्यापारों कों प्रायः सुश्रंखलित रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया है। इन दोनों नाटकों की कथावस्तु की यह विशेषता है कि इनमें राम और कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित कई विवादग्रस्त घटनाओं की समसमइक विवेकपूर्ण व्याख्या किये एवं तर्कसंगत स्पष्टीकरण स्वाभाविक रूप में कियें गये है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से नाटककार को बहुत सफलता मिली है। भारतीय नाटकों के अनुरूप धीरोदात्त और धीर ललित रूप में राम-कृष्ण को प्रस्तुत कर यथा सम्भव आदर्श मानव के रूप में इनका चित्रण हुआ है। चरित्र में मानवीय उल्लास, चिन्ताएँ, दुविधाएँ और आशंकाओं का कुशलता से प्रदर्शन हुआ है। इसी प्रकार कर्ण नाटक में कर्ण की निर्भयता, साहसिकता, मित्र वत्सलता उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा एवं अद्वितीय दान का चित्रण उदात्त रूप में हुआ है। मनोविज्ञान एवं आत्म-विश्लेषण से युक्त कर्ण का चरित्र अत्यन्त शसक्त बन पड़ा है। उक्त रचनाएँ अभिनेता की दृष्टि से सफल नहीं कही जा सकती हैं।

लक्ष्मी नारायण मिश्र के नारद की वीणा और चक्रव्यूह श्रेष्ठ नाटक है। नारद की वीणा में आर्य आर्यएतर संस्कृतियों के प्रागैतिहासिक संघर्ष और समन्वर पर आध ाारित है। तथा चक्रव्यूह की कथा महाभारत से ली गयी है। पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि से दोनों रचनाएँ उच्च कोटि की हैं। अधिकांश पात्रों के चरित्र में मौलिकता और प्रतिभा की छाप स्पष्ट है। इस युग के अन्य नाटककारों में सुदर्शन कृत 'अन्जना, गोविन्द वल्लभ पंत वरमाल और ययाति', हरिकृष्ण प्रेमीकृत 'पाताल विजय, चतुर्सेन शास्त्रीकृत 'मेघनाद, गंधारी', कैलाश नाथ भटनागर कृत 'भीष्म पितामह', किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'सुदामा', वेचनशर्मा उग्र कृत 'गंगा का बेटा' तारा मिश्र कृत 'देवयानी', शरण कृत 'मझली रानी', सीताराम चतुर्वेदी कृत 'शबरी' इत्यादि प्रमुख रचनाएँ हैं। इनकी नाट्य कला के सन्दर्भ में डॉ0 शान्ति मलिक ने लिखा है कि 'इन नाटककारों में नवीन दृष्टिकोणों में से गहराई में बैठकर, नवीन प्रसंगों की अवतारणा द्वारा इन पौराणिक कथाओं को मनोवैज्ञानिक बुद्धिग्राहि,

तर्कसंगत एवं सामाजिक रूप देकर प्रस्तुत करने का यथासम्भव प्रयत्न किया है। इनमें अधिकारिक कथाओं को विशेष महत्व प्रदान किया गया है।"

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इन रचनाओं की विशेषता यह है कि इनमें पौराणिक चरित्रों के देवत्व और राक्षसत्व को नहीं प्रत्युत मानवता को प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ये चरित्र स्वर्ग के देवता न होकर हमारें व्यक्तित्व के दर्पण हैं।[1]

(४) समस्या नाटक :-

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुई औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप यूरोपीय समाज में जो परिवर्तन हुऐ उसके कारण भौतिकता का अधिकार और बौद्धिक क्रान्ति प्रमुख समस्याएँ थी। जनता की प्राचीन रोमांटिक नाटक असामायिक लगने लगे। इप्शन और शॉ ने तर्क वितर्क से युक्त बुद्धि प्रधान समस्या नाटकों का प्रचलन किया परिणाम स्वरूप हिन्दी का नाटक साहित्य भी इससे अछूता नही रहा ।इस प्रकार के नाटक समस्या नाटक कहलाये। हिन्दी में लक्ष्मी नारायण मिश्र समस्या नाटक के प्रवर्तक माने जाते है। इन्होंने यथार्थवादी प्रवत्ति, कलावाद, सौन्दर्यवाद, बौद्धिक चेतना सम्पन्न प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में अनेक लेख और नाटकों की भूमिकाओं में इनका विशेष चित्रण हुआ है। मिश्र के नाटकों के प्रमुख समस्या सेक्स है। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपनी कृतियों मे इन्हीं प्रेम और यौन जन्य कुण्ठाओं, दमित भावनाओं कों सुलझाने का प्रयास मनोविश्लेषणात्मक पद्वति पर किया है। नारी और पुरूष के आकर्षण को स्वाभाविक बतलाते हुए इन्होंने मानवीय दुर्बलताओं का यथार्थ परक चित्रण किया है। इस सम्बन्ध में डॉ0 गिरीश रस्तोगी ने लिखा है कि उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इत्सन और साह ने नाटक के क्षेत्र में इतना युगान्तर स्थापित कर दिया था कि नाटक के आदर्शो कला के स्वरूप तथा

---

१. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - पृ० ३२५

नैतिकता के नये अर्थ सामने आये। उन्होंने जिस रहस्यवादी प्रवृत्ति को जन्मदिया उसके अर्न्तराष्ट्रीय प्रभाव के कारण हिन्दी नाटककार भी आकर्षित हुऐ परिणाम स्वरूप हिन्दी नाट्य साहित्य में समस्या नाटकों का सूत्रपात हुआ।[1] डॉ0 शस्त मलिक ने समस्या नाटकों को दो भागों में बाटा है वयक्तितक समस्या प्रधान नाटक और राजनैतिक समस्या प्रधान नाटक[2] ऐसा ही डॉ0 नन्ददुलारे वाजपेयी का मन्तव्य है।

(५) वयक्तिक समस्या मूलक नाटक :-

इस दृष्टि से लक्ष्मी नारायण मिश्र अग्रगण्य नाटककार है। इन्होंने जीवन को स्तम्भित, संकीर्ण, जडीभूत और कुण्ठित करने वाले परम्परागत सामाजिक बंधनों एवं तथाकथित पाश्चात्य सभ्यता की प्रगति के प्रति विद्रोह किया है। सन्यासी राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य राजयोग, सिन्दूर की होली तथा आधी रात इनके प्रमुख समस्या प्रधान नाटक हैं। इन नाटकों में नारी समस्या एवं सेक्स (यौन) समस्या को प्रमुखता मिली है। विष्णुकान्त मालती प्रो. दीनदयाल और किरण मयी की वैवाहिक विषमता का चित्रण मनुष्य के भीतर विवेक और द्वन्द्व के माध्यम से किया है। साथ ही आस्तिकता, नास्तिकता चुनाव गाँधीवाद विवाह के कर्म-काण्ड वैश्याओं की स्थिति तथा इनके सुधार के प्रयत्नों से सम्बन्धित घटनाएँ इन उपन्यासों में चित्रित है।

राजयोग की प्रधान समस्या वैवाहिक विषमता है। 'सिन्दूर की होली' मिश्र जी का उत्कृष्ट समस्या मूलक नाटक है। 'सन्यासी' और 'राक्षस का मन्दिर' लिखते समय जो प्रयोग प्रारम्भ हुए थे उनकी पूर्णता यहाँ आकर पूर्ण होती है। साथ ही नारी की आन्तरिक संघर्षो, प्रेम, विधवा-विवाह, आधुनिक शिक्षा तथा कला पर भी विचार व्यक्त किये गये हैं। इनमें समस्याओं के अनुरूप उच्च मध्यवर्गीय समाज से धनी तथा शिक्षित वर्ग के पात्र कम संख्या में चयनित किये गये हैं। अधिकांश पात्र सिद्धान्तो की रक्तहीन, अस्थिहीन, निर्जीव अथवा निस्प्राण प्रतिमायें न होकर अपना

---

१. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन पृ० ६०

२. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - पृ० ३३०

निजी व्यक्तित्व रखते हैं और स्वतन्त्रता पूर्वक अपने वातावरण में चरित्र का विकास करते हैं। इन नाटकों के स्त्री और पुरूष चरित्र किसी न किसी अज्ञात, आवेग, अन्तर्द्वन्द्व, घात-प्रतिघात, तिलमिलाहट, मर्म भेदी वेदना से अनुप्राणित अथवा विलोडित रहते हैं। अन्तर्द्वन्द्व, घुटन एवं मनोवेदना से अभिभूत पात्र उलझनों के कारण कुछ कठिन अवश्य प्रतीत होते हैं। इन नाटको में मानसिक विश्लेषण की प्रवृत्ति मुख्य होने के कारण बौद्धिकता की प्रधानता है। चरित्र-चित्रण में पर्याप्त सजीवता है। रंगमंचीय विधान अपने पूर्णरूप में दिखाई देता है। उपेन्द्र नाथ अश्क का 'भवर' व्यक्ति मुखी होने के कारण तथा सेठ गोविन्दास के पतित, सुमन, संतोष कहा , प्रेम या पाप महत्त्व किसे अमीरी या गरीबी तथा सुख किसमें वैयक्तिक समस्या मूलक श्रेणी में आते हैं। 'भवर' में युवती की अस्वस्थ और उलझन भरी मानसिक कुंठाओं को सामाजिक क्रियाओं के माध्यम से सुलझाया गया है। पतित सुमन मे वैवाहिक सम्बन्ध सन्तोष कहाँ में एक असन्तोषी और महत्वाकांक्षी व्यक्ति को सच्चा सन्तोष या सुख किसमें प्राप्त हो सकता है, इससे सम्बन्धित घटनायें विन्यस्त हे। पात्रों की संख्या सीमित है। संवाद सरल, स्वाभाविक, रोचक, मार्मिक एवं गतिशील हैं। रंगमचीय संकेत बिस्तृत रूप से दिये गये हैं।

पृथ्वीनाथ शर्मा के दुविधा, अपराधी तथा साध इसी कोटि के नाटक हैं। जिनमें स्फूर्त नाट्कीयता स्वाभाविक प्रवाह पूर्ण नाटकोचित संवाद है। स्वगत कथन द्वारा चरित्र का उद्घाटन हुआ है।

(६) सामाजिक राजनीतिक समस्या मूलक नाटक :-

इस क्षेत्र मे सेठ गोविन्द दास का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। संकीर्ण रूढियों अन्धविश्वासों के प्रति विद्रोह सात्विक जीवन मूलतः गांधीवाद से प्रेरित है। प्रकाश सिन्द्धान्त, स्वतंत्र, सेवापथ, विकास, दलित कुसुम, त्याग य ग्रहण; पाकिस्तान, दुख क्यों पडा, पापी कौन, हिसा य अहिंसा, भूदान यज्ञ, विश्वप्रेम इनकी सामाजिक राजनैतिक कृतियाँ हैं। इनमें वैचारिकता अधिक है। वर्तमान शिष्ट समाज के उच्च एवं

मध्यम वर्ग की विविध समस्याओं को निरूपित किया गया है। इन नाटकों के नायक उच्च आदर्श को अपनाकर कर्तव्य पथ पर आरूढ रहते हैं इस सम्बन्ध में डॉ0 शान्ति मलिक का कहना है, कि सामाजिक समस्या प्रधान कृतियों के रचयिताओं में गोविन्द दास का स्थान सर्वोपरि है। इनकी सफलता और उत्तमता इसमे है कि इनके कथानक गाठे हुए एवं भाव रोचक है। भावों का धरातल ऊँचा कथोपकथन स्वाभाविक तथा चरित्र चित्रण विषद है। विश्लेषण की सुबोधता, स्पष्टता एवं अत्यधिक स्वाभाविकता इन नाटकों का प्राकृतिक गुण हैं। नाट्य विधान की सफाई एवं सन्तुलन में हिन्दी नाट्य साहित्य में एक परिमार्जन की भावना उत्पन्न की है इन कृतियों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनके किसी भी क्षेत्र में कथानक चरित्र चित्रण विचार सारणी व कथोपकथन आदि में पुनरावृत्ति न होकर पर्याप्त वैविध्य है।

वर्तमान अभिजात्य एवं मध्यवर्गीय शिक्षित समाज की वैविध्यपूर्ण समस्याओं की कलात्मक पूर्ण नाट्क लिखने वालों में उपेन्द्रनाथ अश्क का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वर्ग की झलक, छठा बेटा, कैद, उडान, अंजो दीदी, पैतरे, अलग-अलग रास्ते, इनके इस कोटि के प्रमुख नाटक हैं। स्वर्ग की झलक में आधुनिक शिक्षा और विवाह, छठा बेटा में पिता पुत्र के कटु सम्बन्ध।

कैद और उडान में आधुनिक नारी जीवन में विवाह की समस्या, पुरूष उत्श्रंखल, वासना, अंजो दीदी में नियमों का कठोरता से पालन करने, अलग-अलग रास्तें में विवाह और प्रेम की समस्या को लिया गया है। अश्क के नाटकों का कथानाक काकी चुस्त संतुलित सुगठित एवं स्वाभाविक बन पडा है। उसमें विश्रखंलता शैथिल्य तथा असंगत विस्तार का सर्वथा अभाव है। घटनाओं में अविच्छिन्न एकसूत्रता और केन्द्रीय भावना अत्यन्त अक्षुण्ण बना रहता है। कार्य व्यापार में कौतूहलता और आकस्मिकता इन नाटकों में अनिवार्य रूप से मिलती है इनका प्रारम्भ एवं अंत नाटकीय एवं प्रभावशाली बन पडा है। हास्य व्यंग के छीटे सर्वत्र दिखाई देते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से पात्रों की संख्या सीमित है। उनकी

विशिष्टता अपना अलग स्थान रखती है। अश्क ने विशिष्ट चरित्र, साधारण चरित्र और प्रतीक चरित्र तीन प्रकार के पात्रों कों अवतरित किया है। मध्यवर्गीय नारी और पुरूष के चरित्र चित्रण में अच्छे रंग भरे है। ये नाटक सोद्देश्य हैं शिल्प सम्बन्धी परिपक्वता का समन्वय अनूठे ढ़ंग से हुआ है। वृंदावनलाल वर्मा का धीरे-धीरे, राखी की लाज, बॉस की फॉस, मंगल सूत्र, खिलौने की खोज, नीलकण्ठ और केक्ट इसी परिधि के अन्तर्गत आने वाले नाटक है। हरिकृष्ण प्रेमी के छाया और वन्धन इसी श्रेणी में आते है। कथानक के साथ चित्रित घटना विन्यास के माध्यम से यात्री का चरित्र चित्रित किया गया है इनके संवाद स्वाभाविक, सजीव, प्रवाहमय और नाटकीय बन पडे हैं तीव्रता और तीखापन इनके संवादों का वैशिष्ट्य है इन नाटकों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति की झलक सटीक बन पडी है।

उदय शंकर भट्ट कृत अंतहीन, हंत क्रान्तिकारी, नया समाज, पार्वती इसी परिधि में आती है जिसमें घटनाओं का आरोह एवं पात्रों के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व का विशेष उपयोग हुआ है। पात्रों के संवादों में वाक्वैदग्ध व्यंग्य उत्तर प्रतिउत्तर भट्ट जी की निजी विशेषतायें हैं। अन्य नाटकारों मे गोविन्द बल्लभ पंत के अंगूर की बेटी, सुहाग-बिन्दी, चन्द्रशेखर पाण्डेय का जीत की हार, वीरेन्द्र वीर का भूख, जगन्नाथ प्रसाद भिलिन्द का समर्पण, चतुरसेन शास्त्री का पग-ध्वनि, विष्णु प्रभाकर का चन्द्रहार, शंभुनाथ सिंह का धरती और अकाश, जयनाथ नलिन का अवसान, डॉ0 लाल के अन्धा कुआ, दर्पण, मादा कैक्टस, विनोद रस्तोगी के नये हाथ इत्यादि उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इस प्रकार प्रसादोत्तर कालिक नाट्य रचनाओं के विकास को दृष्टिगत रखते हुए यह लिखा जा सकता है कि इस युग की रचनाएँ युगीन चेतनाओं नवीन प्रवृत्तियों, विचार धाराओं, मनोभावों एवं जीवन सिद्धान्तो का सफल प्रतिनिधित्व करती हैं। नाटककारों ने प्राचीन रूढ़िगत, रूचि-प्रतिशय, भावुकता, कल्पना शीलता और आदर्शवादिताओं को छोडकर यथार्थ की भूमि पर पदार्पण किया है। इस सन्दर्भ में डॉ0 शान्ति मलिक ने लिखा है कि इस युग के नाटककारों की यथार्थवादी

वर्तमानोंन्मुखता का सफल परिणाम सामाजिक नाटक है। यद्यपि इस काल में सभी धाराओं के नाटक काफी संख्या में प्रणीत हुए हैं तथा समस्या नाटक सबसे सजग रूप रहा हैं नाटककारों ने समयानुकूलता के अनुसार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों वैयक्तिक सामाजिक एवं राजनीतिक में पडी ग्रंथियों असंगतियों और जटिलताओं का प्रकाशन करना ही समीचीन समझा। उनकी सम–सामयिक समस्याओं को अपनाने की सजकता का अभास तों इस बात से भी स्पष्टतः हो जाता है कि उन्होंने ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं में भी सदृश परिस्थितियाँ खोजकर अपने युग की विभिन्न समस्यओं और विचारधाराओं को सुगुंफित करने का सफल प्रयास किया है। वैयक्तिक समस्या मूलक तथा समाजिक राजनीति कृतियों में अधिकांशतः मध्यवर्गीय लोगों की वैयक्तिक सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक एवं सुधारवादी प्रवृत्तियों एवं सस्याओं की ही अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कई समस्या नाटक रचयिताओं का उल्लेखनीय जीवन का यथार्थ चित्र उपस्थित करना उसके तीव्र संघर्ष और अप्रहित गति का प्रभावोंत्पादक ढंग से अंकित करना रहा है तो अधिकांश नाटककारों का उद्देश्य जीवन का नाटकीय चित्रण अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण करना मात्र न होकर जीवन की उन समस्याओं, जटिलताओं एवं उलझनों में गहरे पैठकर मूल करणों की खोज करना एवं समाधान जुटा देना भी रहा।[1]

स्वतंत्रता के पश्चात समाजिक एवं राजनैतिक नेता देश की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के साथ देश के विकास हेतु गाँधीवादी विचारधारा एवं समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार किया वर्गहीन समाज के निर्माण की परिकल्पना की गई जो सबको उन्नति के लिए समान अवसर प्रदान करे। रियासतों का विलीनीकरण जमीदारी उन्मूलन, पंचवर्षीय योजनाएँ, अस्पृश्यता निवारण, दहेज विरोधी बिल के द्वारा यह अवसर सबको मिल सकेगें कि वे अपने साथ सम्पूर्ण राष्ट्र की आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक समरसता का विकास कर सकेंगें किन्तु बढती जनसंख्या,

---

१. हिन्दी नाटकों शिल्प विधि का विकास – पृ० ५०६

भ्रष्टाचार, कूटनीति साम्प्रदायिक दंगे, बाढ़, सूखा, प्रतिवेशी देशो के आक्रमण के कारण देश का विकास अवरूद्ध ही नही हुआ अपितु सर्वत्र हताशा, निराशा, मोहभंग, कुंठा, चरित्रिक पतन, योगवादी प्रवृत्ति के कारण समाज मे विषमाताएँ, भयावह रूप में दिखाई देने लगी इन परिस्थितियों का आँकलन करते हुए डॉ0 प्रेमलता ने लिखा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नए राष्ट्र का स्वप्न विखर गया। दिनोदिन विस्तार पाने वाली अनास्था कुंठा, संशय, घुटन, उच्श्रंखलता, झूठा दंभ प्रदर्शन स्वार्थपरता, व्यक्तिवादिता, अनैतिकता ने एक नई पीड़ा को जन्म दिया चारों तरफ एक अंधी दौड़ प्रतिस्पर्द्धा अकेलापन उदासी से पराजित मन वैषम्य संत्रास कुंठा अस्तित्व संकट तीखा अहसास शस्त्र युद्ध और अर्थ युद्ध से उठते नये सवाल दोहरे चरित्र को ढोता, व्यक्ति दिशाहीन हो गया।[1] यह सही है कि नाटककार विषय चरित्र भाषिक प्रतिमान जीवन जगत से ग्रहण करता है। फिर भी उसकी रचनाओं में स्वत्व अस्तित्व की पहचान की अभिव्यक्ति ललक सदैव दिखाई देती है।

---

१. ध्रुवस्वामिनी की व्यापक पृष्ठभूमि - पृ० ३२

तृतीय अध्याय

अध्याय ३
लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक एवं पात्र वर्गीकरण

लक्ष्मी नारायण लाल का नाटय् साहित्य :-

यह सर्व विदित सत्य है कि काव्य की अन्य विधाओं से नाटक श्रेष्ठ, रमणीय और प्रभविष्णु होता है। साथ अन्य विधाओं की अपेक्षा इसका सृजन कठिन कार्य है। डॉ0 महेश्वर दयाल का कथन है कि इसमे जिस प्रकार की रचनात्मक क्षमता बौद्धिक अनुशासन भाषा की सूक्ष्मता और अनिवार्य संवेदनात्मक गहराई और तीव्रता नाटकीय क्षणों की गहरी तथा तत्कालिक पहचान और रंगमंच के तमाम अवयवों की जितनी व्यापक और उसके प्रति आस्था, सतकर्ता अपेक्षित है वह किसी अन्य विध ा में नहीं है। अन्य विधाओं की अपनी सीमाएँ हैं अपने अनुशासन है किन्तु नाटक का अनुशासन नाटक की सीमा इन सब में लेखन से कही अधिक निमर्मता और अनुशासन की मांग करते है। वेहद गिनीचुनी प्रतिमाएँ ही अन्य विधाओं के साथ-साथ नाटक के क्षेत्र मे कार्य करने का साहस करती है।[1] कहना नहीं होगा कि लक्ष्मी नारायण लाल ऐसे ही नाटककार है। प्रतिभा सम्पन्न नाटककार कल्पना पूर्ण निर्देशक, कुशल अभिनेता, गम्भीर नाटय् समीक्षक और हिन्दी रंगमंच को पूर्णतः डॉ0 लाल के बहु आयामीय व्यक्तित्व ने अत्यन्त सीमित समय में एक बहुत लंबी रंग यात्रा तय की है और इनके वैविध्य पूर्ण नाटकों के विवेचन-विश्लेषण से निः सदेह आधुनिक हिन्दी नाटक का इतिहास लिखा जा सकता है। यहॉ डॉ0 लाल के नाटको की सूची प्रस्तुत की जा रही है।

संख्या	नाम	प्रकाशनवर्ष
(1)	अंधाकुँआ	1955
(2)	सुन्दर रस	1959

---

१. कृतिकारं लक्ष्मीनारायण लाल - संपा० डॉ० रघुवंश पृ०५८

(3)	मादाकैक्टस	1959
(4)	तीन ऑंखों वाली मछली	1960
(5)	सूखा सरोवर	1960
(6)	रातरानी	1962
(7)	रक्तकमल	1962
(8)	दर्पन	1964
(9)	सूर्यमुख	1968
(10)	कलंकी	1969
(11)	करफ्यू	1971
(12)	मिस्टर अभिमन्यु	1971
(13)	अब्दुल्ला दीवाना	1973
(14)	गुरू	1975
(15)	नरसिंहकथा	1975
(16)	व्यक्तिगत	1975
(17)	एक सत्यहरिश्चन्द्र	1976
(18)	उत्तरयुद्ध	1976
(19)	संस्कार ध्वज	1976
(20)	चतुर्भुज राक्षस	1976
(21)	सब रंग मोहभंग	1977
(22)	गंगा माटी	1977
(23)	सगुनपंछी	1977
(24)	हॅसने वाली लडकियॉ	1988
(25)	चन्द्रमा	1989

अपने प्रत्येक नए नाटक में लाल ने एक नवीन नाट्य् बिंब तलाशा है। और उसके ईर्द गिर्द बुनी गई कथा और उसे करने कहने वाले चरित्रों को एक नए विल्कुल अभूतपूर्व शिल्प में बाधने का साहसिक प्रयास किया है। पुराण काल के आदिम प्रवृत्तियों वाले मिथकीय पात्रों तथा देश कालातीत शाश्वत प्रतीक पात्रों से लेकर आज के अत्याधुनिक जटिल व्यक्गित चरित्रों तथा इनके नाटकों में चरित्रों का बहुरंगी बहुस्तरीय विस्तार है।[1] यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि डॉ0 लाल का जीवन ग्रामीण परिवेश में विकसित हुआ है। अतः उनके व्यक्तित्व चिन्तन एवं कृतित्व में गॉव की मिट्टी उसकी छुअन महक सर्वत्र व्याप्त है। इसका प्रभाव उनके कथागत पात्रों में दिखाई देता है।

डॉ0 लाल के इन नाटकें के सम्बन्ध में डॉ0 रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है कि इन नाटकों में डॉ0 लाल न वस्तु और शिल्प दोनों स्तरो पर अनेक प्रयोग किये हैं। ग्राम्य जीवन में बढ्तें हुए आर्थिक दवाव से उत्पन्न परिवारिक द्वन्द का चित्रण किया है। शहरी माध्यम वर्ग के जीवन में नये पुराने मूल्यों का संघर्ष दिखाया है। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की जटिलता का विश्लेषण किया है। जीवन किसका है? इसका स्वामी कौन है? जैसे दार्शनिक प्रश्न उठाये है। मनुष्य की नियति मनुष्य के हाथ में है जैसे समाधान दिये हैं। अनेक पौराणिक संदर्भो को आधुनिक जीवन सन्दर्भों से जोड़ा है। नारी मन की जट्लिता का साक्षात्कार किया है और अन्त में आधुनिक होने बनने के प्रयत्न को छोड कर एक शवदातीत शक्ति का अनुभव किया है। शिल्प के स्तर पर लोक नाट्य् शैली आधुनिक यूरोपीय नाट्य शैली और भारतीय नाट्य शैली सभी के प्रयोग किये है। सब कुछ होने पर भी डॉ0 लाल में वह संयम और परिष्कार नही है जो मोहन राकेश में है।[1] इसी प्रकार का मंतब्य डॉ0 बच्चन सिंह ने प्रकट किया है कि डॉ0 लाल नाट्य कौशलों सें पूरी तरह परिचित है लेकिन प्रयोग के उत्साह से उनका सम्यक समायोजन न ही कर पातें। उसकी दूसरी दिक्कत है कि

---

१. कृतिकार लक्ष्मीनारायण लाल - संपा० डॉ० रघुवंश पृ०७६
२. हिन्दी का गद्य साहित्य - पृ० २७२ (वि०वि० प्रकाशन वाराणसी)

है। तथा लच्छी का श्रृंगार कर हीरा के साथ भेज देती है। भगौती के अहं को भारी चोट लगती है वह पुलिस को घूस देकर जादू टोना करा कर लच्छी को पाना चाहता है जिसमें उसे असफलता हाथ लगती है। इसी बीच बाजार में भगौती और इन्दर में झगडा हो जाता है। इन्दर भगौती को मारता है। उसका पैर टूट जाता हैं सूका भगौती की सेवा शुश्रुषा करती है। एक रात्रि इन्दर भगौती के घर घुस आता है। भगौती को मार कर सूका का उद्धार करना चाहता है किन्तु सूका दृढता से उसका प्रतिरोध करती है वह भगौती को अपना पति मानती है। भले ही वह उसे मारता पीटता हो। इस समय असहाय भगौती को उसकी आवश्यकता है। इन्दर गडाँसा लेकर भगौती पर वार करता है। तभी रक्षा हेतु सूका भगौती के ऊपर गिर कर वार झेलती है इस कारण वह गम्भीर रूप से घायल हो जाती है। इन्दर इस दृष्य को देख हतप्रभ रह जाता है। पुकार सुन कर अलगू मिनकू तेजई इत्यादि लाठी लेकर इन्दर को घेरते है। भगौती अपने को सूका का खूनी घोषित करता है। वह सूने आंगन को ताकता रहता है। नाटक के अंत मे लिखा है।

केहुना सुनी पुकार हिननी जब कुंअना गिरी,
तुहि राखों यहि बार बिरन गुसाई कुँअना।।

(२) सुन्दररसः-

यह प्रहसन है जिसे रूपक का एक भेद कहा जाता है। इसकी कथा इस प्रकार है। गुरूकुल से व्याकरण न्याय एवं आयुर्वेदाचार्य बनकर पं0 राज ने सुन्दर रस नामक एक चमत्कारिक औषधि का आविष्कार किया जिसके प्रयोग से कुरूप व्यक्ति को सुरूप बनाया जा सकता है। पं0 राज ने अपनी रूपसि पत्नी को इस औषधि ा के प्रचार एवं विज्ञापन का माध्यम बनाया। वे घोषित करते हैं कि देवी माँ विवाह के पूर्व कुरूप थी किन्तु इस रस के प्रयोग से वे सुन्दरी बन गयी । इस प्रकार सुन्दर रस की विक्री बढने लगी तथा पंडितराज का जीवन स्तर बदलने लगा । पंडित जी के दो शिष्य शक्ति देव और जय नाथ सुन्दर रस के लोभ मे उनकी अहनिशि सेवा

करतें थें विज्ञापन प्रचार से आकृष्ट होकर वकील केदार बावू इसे पाने का प्रयास करतें है। उन्हे सुन्दर रस से सौन्दर्य के मूल में सुन्दर रस को ही कारक तत्व सिद्ध करती है। उनके सौन्दर्य से अनेक अधिकारी आकृष्ट होतें है। और पति सहित अधि ाकारियों के यहॉ जाना पडता हैं । परिणाम सुन्दर रस के तो कम दवी मॉ के सौन्दर्य की प्रशंसा चारों तरफ होती है। इस विज्ञापन बाजी के कारण पंडित राज व्याकुल हो उठता है। अंत में पंडित राज ही विक्षिप्त से दिखाई देते हैं तथा बोतल वाले को सुन्दर रस से भरी बोतल बेच दी जाती है।

(३) मादा कैक्टस :-

डॉ0 लाल का यह प्रतीकात्मक नाटक है। नाटक का नायक अरविन्द चित्रकार है। नाटक के प्रारम्भ में सुधीर उद्घोषक या सूत्रधार के रूप में आकर दर्शको की जिज्ञासा बढता है। अरविन्द माली गंगाराम पर झुँझलाता है कि मादा कैक्टस के गमलें को अन्य पौधो से दूर रखा करें क्योंकि मादा कैक्टस के सम्पर्क में आने के कारण उसके पाँच नर कैक्टस के गमले सूख गये। तभी डॉ0 साहब की बेटी आनन्दा अरविन्द के पास आती है आनन्दा से विवाह कर ले। वे आनन्दा के स्वास्थ को लेकर चिन्तित भी होते हैं किन्तु आनन्दा हँसी में यह बात टाल जाती है। वह आनन्दा के चित्रों की प्रदर्शनी लगाने की बात कहता है। अरविन्द आनन्दा को प्रेरणा स्वरूप मान कर स्वच्छन्द रूप साथ-साथ रहना चाहता है। क्योंकि सुजाता के साथ वैवाहिक जीवन चार वर्ष व्यतीत कर उसने यह अनुभव किया कि बिना प्रेरणा के उसके सारे चित्र अधूरे पडे है। आनन्दा विश्वविद्यालय में लेक्चरर है। अरविन्द आर्ट कालेज का प्रिंसपल है। अतः दोनो अपने जीवन-यापन के विषय में ठीक निर्णय कर लेंगे। इसमें दद्दा तथा डॉ0 पापा को चिन्ता नही करनी चाहिए। अपनी पत्नी सुजाता से अरविन्द स्टैण्ड कूची बाहर रखने के लिए कहता है ताकि वह अपने अधूरे चित्र पूर्ण कर सके। वह अपने मृत प्राय भावों के विषय में सुजाता से स्पष्ट कहता है। अरविन्द और पिता दद्दा में भी विवाह हो जाता है। आनन्दा का भाई सुधीर मिस खान से प्रेम करता

है और विवाह भी कर लेता है। अरविन्द से मिलने के लिए एक वृद्धा आती है जिसने आनन्दा के चित्रों पर अंग्रेजी मे एक प्रशंसात्यक समीक्षा लिखी है। वह वृद्धा का रूप धारण कर अरविन्द की पूर्व पत्नी सुजाता थी, जिसके चले जाने पर अरविन्द उसे पहचान लेता है। तभी सुधीर आनन्दा के दोनों फेफडों का एक्सरे चित्र दिखाता है कि वे खराब हो गये हैं। गंगाराम नौकर सूचित करता है कि मादा कैक्टस का पौधा भी सूख गया है। अरविन्द मूर्च्छित हो जाता है और सुधीर दर्शकों से पुनः पूछता है कि उसकी मुट्ठी मे क्या है?

(४) रातरानी :-

छठे दशक के आस पास हिन्दी नाट्य लेखन पर पश्चिम की यर्थाथवादी शैली का प्रभाव पडने लगा था। डॉ0 नरनरायण ने लिखा है कि इब्सन शॉ और चेखव की परम्परा में जीवन दर्शन की जगह इतिहास का व्यात्मक यथार्थ की जगह न्याय संगत यथार्थ और कल्पना की जगह तर्क को आधार बनाकर नाटक लिखे और खेले जाने की एक लम्बी परम्परा ने हिन्दी रंगमंच के प्रकृत और सहज अभिव्यक्ति को कुंठित कर रखा था इन परिस्थितियों में यथास्थित और स्थापित नाट्य प्रदर्शन के विरोध में नये नाटक और नये रंगमंच का जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उसमें हिन्दी नाटक और रंगमंच को पुनः प्रतिष्ठित करने की दिशा में उनकी सहजता और प्रकृत परम्परा को वापस लाने में काफी मदद की यह श्रेय डॉ0 लाल को प्राप्त है।1 रातरानी इसी प्रकृत परम्परा का नाटक है। इसमें जीवन के शुभ और अशुभ पक्षों का उद्घाटन कुंतल जयदेव, सुन्दरम और निरंजन दो युग्मों से हुआ है। जयदेव और कुंतल की घटनाएँ शुभ और अशुभ का प्रतिनिधित्व करती हैं। कुंतल जैसी पढी लिखी सुन्दर, संगीत की जानकार ग्राहस्थिक कार्यो में कुशल एवं पति भक्ति में डूबी नारी कों पत्नी रूप में पाकर जयदेव प्रसन्न नहीं है। जयदेव घर के लिए पत्नी और बाहर के लिए प्रेयसी चाहता है। जयदेव के प्रेस में कर्मचारियों ने हडताल कर दी है। क्योंकि कुंतल उनकी माँगों को उचित समझती है और इस प्रकार प्रच्छन्न रूप में

कुंतल का समर्थन उन्हे प्राप्त है कुंतल हडताली कर्मचारियों के भूखें बच्चों के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है। कुंतल को बागवानी का बहुत शौक है। वह माली से अपने श्वसुर के औदार्य की चर्चा करती है। कुंतल सखी सुन्दरम उसकी उदयान योजना पर मुग्ध हैं। इसी मध्य जयदेव के मित्र घर आतें है। सुन्दरदास जयदेव के कपडे पहन कर ताश खेलने आये जोशी और प्रकाश को आत्मा की बात सुना कर भयभीत कर देती है। कुंतल सुन्दरम को विवाह के लिए प्रेरित करती है, जयदेव जुआँ में सारा धन हार जाता है वह कुंतल पर दबाव बनाता है वह नौकरी कर ले। पहले निरंजन से विवाह होने वाला था किन्तु यौतुक लोभी पिता के कारण वह सम्बन्ध टूट गया था। कुंतल ने उस समय निरंजन को कुछ पत्र लिखे थे जिसकी जानकारी होने पर जयदेव उसे शक की दृष्टि से देखता है। सुन्दरम कुंतल को निरंजन के घर लाती है। यहीं कुंतल पूर्व पत्रों को लौटाने के लिए निरंजन से आग्रह करती है। पत्र लाकर कुंतल जयदेव को सुनाती है। प्रेम रोमांस से रहित इन पत्रों को सुनकर जयदेव अब जाता है । इसी मध्य हडतालियों का विशाल जुलूस जयदेव के घर को घेर लेता है। कुंतल हडतालियों को समझाने के लिए दौड पडती है। पथराव होते है। वह आहत हो जाती है । अंत में जयदेव कुंतल पर पूर्ण विश्वास करता है। तात्पर्य यह कि जीवन में शुभ अश्रुभ पक्षों का उदघाटन कुंतल जयदेव, सुन्दरम और निरंजन दो युग्मों से हुआ है।

(९) दर्पन :-

अपने चेहरे की पहचान के लिए एक सशक्त माध्यम की आवश्यकता होती है । दर्पण से अधिक प्रभाव शाली माध्यम अन्य कोई नही हो सकता । इसके प्रतिविम्ब में ही मानव अपनी वास्तविक पूर्ण पहचान करता है जो दर्पण में अपने को नही पहचानते वे आत्म जीवी कुंठित और कायर होते है। क्योकि वे यथार्थ के कठोर साक्षात्कार से भयभीत रहतें है। दर्पन की कथावस्तु के केन्द्र में यही सूत्र है। तीन साल की दर्पन को उसके माता पिता ने बौद्धमठ मे उसे दान कर दिया था

क्योकि उसके जन्म नक्षत्र परिवार के लिए अशुभ थें। दर्पन को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया गया। युवती होने पर वह भिक्षुणी, सेविका के रूप में दार्जिलिंग के बौद्ध मठ में रोगियों की सेवा शुश्रषा करने लगी। भिक्षुणी के रूप में साधु को कुष्ठ रोग से मुक्त किया। वहीं से दर्पन अचानक लापता हो गयी। अपने असहज जीवन को सहज बनाने के लिए उसने अपना व्यक्तित्व परिवर्तित कर लिया। उसने अपना नया नाम पूर्वी रख लिया। पूर्वी ट्रेन यात्रा के दौरान हरिपदम नाम के हैजे के रोगी की सेवा करती है। स्वस्थ होकर हरिपदम उसे बनारस अपने घर ले आता है। सारनाथ में पूर्वी को नौकरी मिल जाती है। हरिपदम को विश्वविद्यालय में प्राध्यापक की नौकरी मिल गयी। समय और परिस्थिति के साथ पूर्वी और हरिपदम के बीच पूर्वराग अंकुरित होने लगा अंततः उन्होने परस्पर दाम्पत्य सूत्र में बँधने का निश्चय किया। पूर्वी का परिवारिक परिचय अज्ञात था। अतः अज्ञात कुश्लशील लड़की से विवाह का विरोध हरिपदम के माता-पिता ने किया। हरिपदम के परिवार मे भाई सुजान, बहन ममता, नौकर मत्ती थे। सुजान भी विजातीय लडकी से विवाह करना चाहता था। किन्तु पिता के विरोध के कारण उसकी प्रेयसी मर गयी और सुजान लकवा ग्रस्त हो गया। पूर्वी ने सुजान का उपचार किया। पुत्र की प्रसन्नता के कारण हरिपदम के पिता विवाह की स्वीकृति दे देते हैं। पूर्वी के जीवन में अनिश्चितता घर कर गयी थी। कहीं उसके पूर्व जीवन की परिछाई नवागत जीवन को कलुषित न कर दे। अतः पूर्वी दर्पण देखने से कतराती रहती है। यर्थाथ का साक्षात्कार उसे सहय नही है। बारम्बार बधू वेष में श्रंगार करने के बाद वह ममता की आखों में अपने रूप की देखना चाहती है। ममता उसे दर्पण दिखाती है तो वह उसे पटक कर हथेलियों में चेहरा छिपा लेती है। इसी बीच किसी पत्रिका में उसका एक लेख सचित्र प्रकाशित होता हैं। जिसे हरिद्वाज वाला दण्डी संन्यासी पहचान कर हरिपदम के घर आ जाता है। वह पूर्वी को दर्पन सिद्ध करता हैं । तभी हरिपदम के पत्र को प्राप्त कर दार्जिलिंग मठ का पुराना आदमी बनारस आकर पूर्वी को दर्पन के रूप में पहचान लेता है। अंततः पूर्वी पुनः भिक्षुणी

रूप धारण कर हरिपदम से भिक्षा के रूप में बौद्ध मठ जाने की अनुमति माँगती है।

(६) रक्त कमल :-

रक्तकमल स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक प्रगति की कथा है। जिसमें तद्‌युगीन समाज और उसकी चेतन का चित्रण है। महावीर और कमल सगे भाई है। महावीर ने अपने उद्योग का विस्तार करने के लिए कमल को विदेश भेजकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए कहा था किन्तु स्वाभिमानी कमल को विदेश में भारतीयों के प्रति जो अपमान भरे वाक्य सुनने को मिले उससे वह बहुत कुपित था और शिक्षा पूरीकर अपने उद्योग धंधे को न देखकर गाँव के निम्न वर्ग की उन्नति का प्रयास करने लगा धोबी कधेया मुसलमान सरने और छाबिली अमृता जन जागरण का अभिमान चलाते है। अमृता अपने पिता की जमीन में दीपक जला कर यह बात सिद्ध करना चाहती है कि इस जमीन के पीछे महावीर ने उसके पिता की हत्या की थी। महावीर (गुरू) डॉ0 सभी मिलकर नये एम0एल0 का स्वागत करते हैं। इसी स्थल पर कमल अमृता कानूनी संगीत नाव नौंटकी अयोजित करते है। महावीर अपने भाई कमल को समझता है कि वह नये उधोग धन्धे लगाकर समाज निर्माण का ही काम कर रहा है। जिसका प्रतिवाद कमल करता है कि हमारा यह समाज अनेक वर्गो मं बँटा है। जहाँ दंगे हिंसा जातिवाद में बाँट इस देश को लूटाने वाले हूण, एशंक, मंगलो तुर्क पठान अरब पुरतगाल डच और अंग्रेज है जो इसे लूटकर खोल बना दिया है। इसका प्रदर्शन वे एक नाटक के द्वारा करें जिसमे कमल देवता बनता है। जिसके हाथ पैरो में जंजीर बंधी है और एक राहगीर आकर मार्ग भटक जाता है। इसके बाद ब्राम्हण क्षत्रिय, वैश्य तीनों आकर उस देवता को मुक्त करना चाहते है किन्तु ऐसा हो नही पाता। तभी पुरूष देवता को मुक्त करने के लिए एक वृद्ध पुरूष आ जाता है। मुक्त होते ही देवता भाग जाता है।

महावीर कमल पर यह आरोप लगता कि उसने मिल में काम करने वाले

मजदूरो को भारहण काया और अपने बडे भाई को आतताई कहा है। अतः वह उसके इस घर से निकलकर अन्यत्र चला जाए कमल बडे भाई महावीर को गरीबी और अमीरी का अन्तर बाट्तें हुए यह अरोप लगता है कि बडे भाई के समान देश के पार्षक तत्व इस देश की उन्नति के राह के कांटे है कनु कमल को सुंचित करता है सोनापुर गाँव में रात को डाकुओ का जबरदस्त हमला होगा। महावीर अमृता को समझाता कि उसका विवाह सात वर्ष की अवस्था में हो गया था। किन्तु जब युवती हो गई तो भाई कनु ने ससुराल भेजने से मना कर दिया। इस कारण निरास पति ने उसके पिता की हत्या कर दी। गुरू डॉ0 के साथ घायल एक व्यक्ति को लाता है और डॉ0 से आग्रह करता है कि घायल व्यक्ति के शरीर में लगी गोली को आपरेशन करके निकाल दे। डॉ0 समझ जाता है कि यह कोई डकैत है और डॉ0 पुलिस को सुचित करता है कि कमल गुरू को लंछित करता कि इस प्रकार के अनैतिक कार्य क्यों करता है। ऐसे ही क्रिया-कलापों के कारण भारत के गरीब लोग सम्पन्न नही हो पाते जातिवाद संम्प्रदाय वाद प्रतीयता तथा गुण्डागिरी तथा शक्ति प्राप्त करने की भयानक भूख के करण ही हमारा भारतीय समाज पतित्व हो गया है। कमल अगस्य कहकर पुकारता है महाबीर के मना करने के बवजूद कमल अगस्य भारतवर्ष का वास्तविक रूप गाँव ले जाकर दिखाता है। कमल कहता है कि अगस्त गुलाम भारत वर्ष के नही पैदा हुआ वह नेता भारतवर्ष है जिसमें लोहे की मांसपेसिया और फौलाद नाडी धनी है जिसके मन मे वृज जैसी शक्ति है इस भावना भरे शब्दों को सुनकर डॉ0 कहता है कि उसकी आखें खुल चुकी है। और वह अब कोई भी अनेतिक कार्य नही करेगा। इसी समय अगस्त के देहारादून जाने की बात चलने लगती है। जिसे कमल रोक देता है। वह कहता है कि हमारा देश बेहद कमजोर है। देहरादून में पढकर अगस्त इंजीनियर डॉ0 या अन्य अधिकारी बनकर शोषक और विश्रमजीवी होगा। जब की कमल उसे बुध अशोक अकबर गॉधी की पंक्ति में बैठाना चाहता है। इसी बीच इन्द्रजीत एम0 एल0 ए0 वहां आ जाता है।

तभी कमल इंग्लैण्ड, अमेरिका, रूस की देश निर्माण पदाधित्य का विश्लेषण कर भारत वर्ष को इसी प्रकार विकासित देश के रूप में देखना चाहता है। जिसमें अगस्त भी इस जागरण हेतु तैयार हो जाता है। तात्पर्य यह है कि रक्त कमल राजनिति और अर्थ क्षेत्रों की विषयों का उत्थान करने वाला नाट्क है। इसमें घटना अर्थ उद्देश्य की बाहुल्यता है। जिसके कारण इसके पात्र उतने सजीव नही बन पडे क्योंकि लम्बे-लम्बे भाषणों के साथ चरित्र को विकसित करना कठिन होता है।

(७) सूर्य मुख :-

इसकी कथा महाभारत युद्ध के पश्चात् द्वारका के विनाश की कथा से सम्बधित है। श्री कृष्ण की पत्नी वेनुरती का प्रथम साक्षात्कार सौतेले पुत्र प्रदयूम्न से होता है और दोनो प्रेम में बँध जाते हैं जो कि समाजिक मर्यादा के विरूद्ध है अतः प्रदयुम्न को नागकुण्ड की पहाड़ियों में निर्वासित जीवन व्यतीत करना पडता है। महाभारत के युद्ध से लौटे सैनिक सारी नैतिकताओं को तिलांजलि देकर योग विलास रत हो गए। कृष्ण की मृत्यु के बाद यादवी सेना तीन भागों में बँट गयी भोज यदुवंशी वभ्रु के, यादव सम्ब के और वृष्णि वंशी प्रदयुम्न के नेत्रत्व में विभक्त हो गए। चारो तरफ अकाल की विमीषिका अनुशासनहीनता लूट-खसोट का दृश्य दिखाई देता है। उधर समुद्र की उत्ताल तरंगे द्वारका को नष्ट करने पर तुली हुई हैं। इन्ही अन्तर्विरोधों सत्ता संघर्षो षडयंत्रों का पूर्वानुमान कर कृष्ण ने मृत्यु पूर्व अर्जुन से कहा था कि वे उनकी चौदह हजार रानियों, महारानियो को हस्तिनापुर ले जावें। प्रदयुम्न वेनुरती के प्रेम प्रसंग की तरह उनके पुत्र सौतेली माताओं पर आकृष्ट होने लगे तो समाजिक मर्यादा का भयावाह रूप सामने आयेगा। द्वारका की दीन-हीन त्रस्त दशा देख व्यास नागकुंड जाकर प्रदयुम्न से द्वारका के उद्धार की बात करते है। तभी बेनुरती भी वही पहुँच जाती है और वह प्रदयुम्न को रथ में बैठाकर द्वारका ले आती है। यद्यपि प्रदयुम्न को सर्वत्र तिरस्कार मिलता है। फिर भी वह अपने तेजस्वी वाणों से समुद्र की गति अवरूद्ध कर देता है। साम्व एवं बभ्रु सत्ता प्राप्त करने में

बाधक प्रदयुम्न की हत्या का षडयंत्र रचते हैं। प्रदयुम्न इस वार को असफल कर देता है। साम्व एवं वभ्रु में द्वन्द्व होने लगता है। इस से हताश प्रदयुम्न बाहर चला जाता है। अंततः सत्ता का वह अधिकारी बन जाता है। राजमहल पहुँच कर उसे ज्ञात होता है कि अर्जुन वेनुरती सहित सभी रानियों को लेकर हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान कर चुका है। प्रदयुम्न हताश हो जाता है। क्योंकि वेनुरती उसकी प्रेरणा स्रोत थी। वह रात्रि में वेंनु से मिलने के लिए प्रस्थान करता है। हस्तिनापुर के मार्ग में रात्रि विश्राम करती हुई वेनुरती भी प्रियतम की प्रतीक्षा में व्याकुल हो उठता है। प्रदयुम्न वहाँ पहुँच कर उसे हृदय से लगा लेता है। तभी बभ्रु ससैन्य प्रद्युम्न पर आक्रमण करता है। वेनुरती एवं प्रदयुम्न दोनों इस युद्ध में घायल हो जाते हैं। द्वारका के विनाश की सूचना सुनकर रूक्मिणी उसके पुनगर्ठन का संकल्प लेकर रानियो के साथ लौटती है।

(८) करफ्यू :-

यह नाटक मनुष्य के अन्दर चेतन एवं अचेतन में सुप्त कुंठाओं तथा वर्जनाओं से साक्षात्कार कराता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 लाल ने लिखा है कि हमारे सम सामायिक समाज में मनुष्य के आपसी सम्बन्ध कुछ अजीब सीमाओं के भीतर ही जन्म लेते हैं और उसी में रहकर समाप्त हो जाते है। पति-पत्नी चाहे वे प्रेम विवाह के फलस्वरूप मिले हो चाहे परम्परागत विवाह से एक दूसरे को थोडा सा जानकर उसी के भीतर बल्कि उसी थोडी सी पहचान का करफ्यू लगाकर जीवन जीने लगते हैं।[1] इसका संक्षिप्त कथानक इस प्रकार हैं गौतम सम्पन्न युवा पति औरमिल का संचालक है। जिसकी पत्नी कविता है। शहर में दंगा फसाद हो जाने के कारण संध या से प्रातःकाल कर्फ्यू लगा दिया जाता है। इस कारण मनीषा और कविता पराये पुरूष गौतम एवं संजय के आवास में शरण लेने को विवश होती है। कविता विवाहिता है जबकि मनीषा अविवाहिता है। कर्फ्यू के कारण मनीषा गौतम के समक्ष

१. कर्फ्यू निजी डायरी से पृ० ६

मादक हाव-भाव प्रदर्शित करती है। जिसके कारण गौतम के शान्त जीवन में हलचल मच जाती है। वासना अभिभूत होकर उसका पशु जाग्रत हो उठता है। मनीषा जब बाहर निकलती है तब पुलिस उसे कोठेवाली समझकर पकड ले जाती है और इन्स्पेक्टर सहित अनेक सिपाही उसे निर्वसन कर लोमहर्षक आमानुषिक अत्याचार करते हैं। दूसरी ओर उसी समय गौतम पत्नी कविता मंच अभिनेता संजय के घर शरण लेती है। संजय आगामी नाटक के रिहर्सल में व्यस्त है। तब कविता से मंचित नाटक की अभिनेत्री का अभिनय करने का आग्रह करता है। जिसे कविता स्वीकार कर लेती है। कविता अभिनय करते समय संजय के प्रति अतिशय भावुक हो उठती है। प्रारम्भ में संजय शान्त गम्भीर दिखता है। किन्तु दूसरे क्षण वह वर्जना या कर्फ्यू को हटाकर हिंसक हो उठता है। वह कविता को निर्वस्त्र करने लगता है। भयभीत कविता घर लौटने लगती है। जहाँ गौतम को वह मनीषा से आलिंगनबद्ध देखती है। इस प्रकार गौतम, संजय, कविता और मनीषा से एक प्रकार का करफ्यू हट सा जाता है गौतम और कविता पति-पत्नी के नए रूप में मिलते है। दोनो करफ्यू टूट चुके हैं। वास्तविक रूप मे लगे करफ्यू के समय घटित वास्तिविकता के विपरीत परस्पर काल्पनिक घटनाएँ सुनाते है। जिसे पति गौतम स्वीकार कर लेता है। जबकि वास्तविकता तो यह है कि करफ्यू के समय उसने मनीषा से वही व्यवहार किया है जो संजय कविता के साथ करता है। वे अपने विवाह की प्रथम वर्षगाँठ मनाते हैं। इसमे संजय और मनीषा भी सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार डॉ0 लाल ने यह दिखाया है कि करफ्यू क्या है? रायट (दंगो) क्या है? पती-पत्नी वर्जनाओं के करफ्यू कैसे लगा लेते हैं?

(९) मिस्टर अभिमन्यु :-

महाभारत के मिथकीय पात्र और घटना को लेकर आधुनिक युग की विषमताओं के चक्रव्यूह से घिरे मिस्टर अभिमन्यु की गाथा इस नाटक में विन्यस्त है। पौराणिक कथा में दुर्योधन के आग्रह पर द्रोणाचार्य चक्रव्यूह की रचना करते हैं

जिसके भेदन की कला अर्जुन पुत्र अभिमन्यु जानता है। किन्तु दुर्भाग्यवश वह उससे निकलने की कला नहीं जानता है और वहीं घिर कर मारा जाता है किन्तु मिस्टर अभिमन्यु आधुनिक बिडम्बनाओं में घिरा अवश्य है। वह निकलने की भ्रान्ति भी पाले हुए है। इसके लिए वह लडाई भी करता है। वास्तविकता यह है कि मिस्टर अभिमन्यु निकलना नहीं चाहता है। अतः वह नकली झूठी लडाई का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार मि0 अभिमन्यु आधुनिक व्यक्ति की त्रासदी और विडम्बना की तत्सन अभिव्यक्ति है। राजन ईमानदार और आदर्श कलेक्टर है और उसके पिता वकील हैं। उसके बच्चे कान्वेण्ट स्कूल में पढते हैं। उसकी पत्नी आधुनिक है। राजन की देख-रेख में आम चुनाव होते हैं। शासक दल का प्रत्याशी गयादत्त विजयी होती है। उसके विरुद्ध लेबर फ्रन्ट का प्रत्याशी आत्मन हार जाता है। गयादत्त की संस्तुति से राजन कमिश्नर बन जाता है। उसके परिवारिक जन अत्यन्त प्रसन्न हैं। किन्तु राजन त्याग-पत्र देने का विचार करता है। उसके पिता उसे समझाने पहुँचते हैं। कि तभी पिता के मित्र केजरीवाल की मिल एवं आर्म्स फैक्टरी शील बन्द हो जाती है और उसका मुकदमा राजन की कोर्ट में चलता है तथा विडम्वना यह होती है कि मुकदमे का वकील राजन के पिता होते हैं। निर्वाचित शासक दल के नेता तथा गयादत्त राजन पर यह दबाव डालते हैं कि मामले को घर मे ही सुलझा दिया जाय। दुर्भाग्यवश राजन गयादत्त के षडयंत्र के चक्रव्यूह के फँस जाता है। क्योकि आत्मन जैसे ही राजन से भेंट कर बाहर निकलता है वैसी ही उसकी हत्या हो जाती है और राजन को हत्याकाण्ड के षडयंत्र में फँसाने की योजना बनायी जाती है। इस प्रकार राजन को ब्लैकमेल करके केजरीवाल के मुकदमें को सुलझाने का परामर्श दिया जाता है। राजन की पत्नी कोमल भी अपनी सुख-सुविधा एवं बच्चों की पढाई की दुहाई देकर उसे समझौता करने को बाध्य करती है। राजन अनुभव करता है कि वह अभिमन्यु की तरह चारो ओर से घिर गया है। अन्ततः राजन उनें षडयंत्र का शिकार बनता है। क्योंकि व्यवस्था के अन्दर रहने से उसका परिवार स्वर्णिम भविष्य की ओर

अग्रसर होता रहेगा। राजन पिता एवं गयादत्त की बात मानकर नये चार्ज को सम्भाल लेता है। इस प्रकार नाटककार ने राजन को पात्र से चरित्र बनाकर ऐसा बृद्धि जीवी बताना चाहता है जो व्यवस्था का जुआ कंधे पर डाले हुए कैरियर बनाने के लिए चिन्तित पद और प्रतिष्ठा के उच्च स्वर्ण कलश पर दृष्टि निक्षेप किये हुए किन्तु ऊपर से व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है। डॉ0 लाल ने राजन के इसी मुखौटे का उदघाटन मिस्टर अभिमन्यु मे किया है ।

(१०) अब्दुल्ला दीवाना :-

पश्चिम मे विज्ञान के विकास के साथ ईश्वर के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोंण, फासिज्म एवं कम्यूनिज्म के नाम पर क्रूर अमानवीय दुष्कृत्य हुए जिसके परिणाम स्वरूप वहाँ के जीवन में निःसारता व्यापक रूप से फैली। साहित्य भी इससे प्रभावित हुआ। अग्सर्ड नाटक इन्हीं परिस्थितियों की देन है। इस प्रकार के नाटकों में जीवन से असम्बद्ध घटनाओं में एक सुविचारित श्रंखला बृद्ध कथा अनस्यूत रहती है। अब्दुल्ला दीवाना डॉ0 लाल का ऐसा ही नाटक है जिसमें आजादी के पश्चात होने वाले परिवर्तनों मूल्यो के विधटन मूल्य संक्रमण के नाम पर एक सुविधा भोगी वर्ग का उदय पुराने मूल्यो की हत्या कर नए मूल्यों की स्थापना का प्रयास है। श्री भरतगुप्त लिखते हैं कि हमारे जीवन में कही कुछ भर गया है। किसी महत् मूल्य की हत्या हो गयी है। इसी मूल्य को अब्दुल्ला कहा गया है। कौन था वह अब्दुल्ला ? वह कहाँ रहता था ? उसे किसने मार डाला ?[1] इस नाटक की कथा विश्रंखलित है। अनेक असम्बद्ध को जोडकर जो कथा सामने आती है। वह इस प्रकार है – किसी अदालत में अब्दुल्ला की हत्या के मुकदमे की सुनवाई हो रही है। जज के समक्ष सरकारी वकील मुकदमा पेश करता है जिसमे युवक-युवती को उसका हत्यारा बताया जाता है। इस बीच अन्तराल के माध्यम से अनेक घटनाएँ प्रस्तुत की जाती है। फिल्म डाइरेक्टर पुरुष स्त्री के साथ अनुचित विवाह सम्बन्ध स्त्री का अपने को पतिवृता

---

१. अब्दुल्ला दीवाना नाटक देखने के बाद पृ० १४

कहने के बावजूद फिल्म डाइरेक्टर के साथ भागना इत्यादि घटनाएँ अब्दुल्ला को पागल बना देती हैं। त्रतीय अन्तराल में आधुनिक युगीन युवा पीढी की अकर्मण्यता, दिग्भ्रान्ति और नैतिकता के साथ मूल्य हीनता का वर्णन हुआ है। नाटककार ने व्यंजित किया है कि समस्त वर्ग अपनी भूमियों से कटकर अवास्तविक मूल्यों का लवादा ओढ़े हुए जीवन-यापन करते हैं। अंत में न्यायाधीश फैसला सुनाता है। नाटककार ने बडे ही आकर्षक ढंग से यह दिखाया है कि कभी जज कभी सरकारी वकील कभी चपरासी कभी पुलिस अदालत में ऊँघते दिखाए जाते हैं। किसी को बार-बार लघुशंका होती है तो कभी अदालत में कुत्ते घुस आते हैं। इस प्रकार अदालत में एक प्रकार की पैरोड़ी दिखाई जाती है। कमिटेड जज, झूठ फरेब का पट्टा पहन कर जालसाजी का शिकार होता है। भारतीय प्रजातंत्र पर कुछ दबंगों का वर्चस्व है और ऐसे समय में एक ईमानदार एवं मानवीय संवेदना रखने वाला कैसे पागल हो जाता है। सरे-आम उसकी हत्या हो जाती है। इस नाटक के अन्दर एक नाटक होता हुआ दिखाया जाता है।

(११) एक सत्य हरिश्चन्द्र :-

डॉ० लाल का यह नाटक जनजीवन और उसके मूल्यों का एक नवीन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। एक प्राचीन कथावस्तु को प्राचीन एवं नवीन शैली में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तावना के रूप में सवर्ण एवं हरिजन नेता के मध्य बहस होती है कि धर्म और राजनीति छल द्वारा गरीब और शूद्रों का शोषण किया जाता है। ऐसे धर्म और राजनीति घृणास्पद है। पुरोहित सत्यनारायण की कथा सुनाता है और भाग्यवाद और पुर्नजन्म के आधार पर शोषितों को गुलाम बनाने का षडयंत्र रचता है। हरिजनों का नेता लोका घोषित करता है कि सवर्णो के विरोध में वह अपने यहाँ सत्यनारायण की कथा करायेगा। जमींदार नेता इसे अधर्म घोषित करता है। गपोले नारद वेष में आकर सूचित करता है कि हरिजनों का नेता लोका हरिश्चन्द्र नाटक खेलने का निर्णय करता है। देवधर जीतन को विश्वामित्र एवं स्वयं को इन्द्र

रूप में प्रस्तुत करता है। शैव्या के लिए देवधर अपनी सेक्रेटरी मिस पद्मा का नाम संकेतित करता है। इस प्रकार इसमें नाटक के अन्दर पूर्ण रूपेण अवतरित होता है। सूत्रधार रंगा दोहा एवं नौटंकी शैली में प्रयुक्त छन्दों में हरिश्चन्द्र का उपाख्यान करता है। अगला कथानक हरिश्चन्द्र विश्वामित्र शैव्या रोहित के माध्यम से विकसित होता है। रोहित देश की जाग्रत युवा पीढी का प्रतीक है जो भारी अवास्तिक आदर्शो की प्रतीक है। देवधर एवं जतिन लौका के अन्दर से उठने वाले आक्रोश का वास्तविक मर्म समझते है। काशी के वेश्या के कोठे में शैव्य बिकती है। देवधर एवं जतिन हिन्दू मुस्लिम दंगे का षडयंत्र रचते है। जिसमें अन्तिम आहुति लोका की पडनी है। शैव्या के अपमानित होने पर रोहित एक छैला से भिड जाता है। परिणाम स्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है। शैव्या उसे लेकर श्मशान घाट जाती है जहॉं हरिचन्द्र उससे कर की मॉंग करता है। शैव्या अपनी साडी का आधा भाग फाडकर उसे देती है। तभी स्वर्ग से इन्द्र आकर सत्य की परीक्षा में हरिश्चन्द्र को खरा पाकर स्वर्ग आने का आमंत्रण देता है। हरिश्चन्द्र वेषधारी लोका अपनी वास्तविक स्थिति में आकर इन्द्र को ललकारता है तथा स्वर्ग को प्रवंचता कहकर उसे ठुकरा देता है साथ ही इन्द्र से परीक्षा देने के लिए विवश करता है क्योंकि अभी तक सत्ता कि कठपुतली बने जनसामान्य अभी तक परीक्षा देता रहा है। अब सत्ताधारी को सत्यपरीक्षा देना पडेगा। मृत रोहित जीवित होकर अपने अनुभव से जीवन जीने की उद्घोषणा करता है। लोका जीवन एवं देवधर को परीक्षा देने के लिए आवाहन करता है। लोका की यही सत्य नारायण कथा है जो भारत माता की वन्दना से समाप्त होती है।

(१२) गुरू :-

प्राक्तन परम्परा में गुरू की महिमा निस्सीम थी । उस समय गुरू ऐसी विद्या का दान करता था जिसे पाकर शिष्य विमुक्त हो जाता था। वह शिष्य में स्वत्व का जागरण कर उसे अपनी पहचान कराता था। किन्तु आज की अर्थकारी शिक्षा में उसका महत्व नगण्य सा हो गया है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने गुरू नामक नाटक

मे एक ऐसा ही गुरू उसकी रहस्यमयी शिक्षा का वर्णन किया है जहाँ व्यक्ति अपने व्यक्तिगत सन्दर्भो को भूलकर ऐसी उच्चावस्था में पहुँच जाता है कि वह अपनी वैयक्तिक सीमाओं का अतिक्रमण कर समष्टि में ही समरसता का दर्शन करनने लगता है संसार में रहकर भी वह अनायास ही मुक्त हो जाता है। लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है कि चाणक्य के चरित्र से मैने उसी गुरू को पाने और दिखाने का विनम्र प्रयास किया है। यह गुरू मेरे लिए गहन व्यापक अनुभूति है । चाणक्य कर्ता है भोक्ता है दुष्टा और अंत में वह मुक्त है। वह वही हो जाता है जो उसमें अभिव्यक्त था।[1]

चाणक्य तक्षशील का आचार्य गुरू है। उसने अपने शिष्यों को बाहरी परिवेश देखने के लिए बंधुल, सिंहरण, सारंग, चन्द्रगुप्त इत्यादि को भेजता है। सब तो खाली हाथ लौटते हैं जबकि चन्द्रगुप्त चाणक्य के गुरू शीलबन्धु को पकड कर ले आता है। सभी शिष्य अपने-अपने अनुभव चाणक्य को सुनाते हैं जिसे चाणक्य उनके देखने के अनुभव को प्रतिक्रिया मात्र कहता है। चाणक्य को अपना जीवन याद आता है कि बाल्यावास्था में अष्टाध्यायी न कंठस्थ कर पाने पर पिता की छडी की मार युवावस्था में पैरो में कुश गडने की प्रतिक्रिया एवं महापदभ नन्द द्वारा अपमानित होने घटनाओं ने उसके जीवन को बदल कर रख किया है।

तभी उसके गुरू रूप में शीलबंधु मिलते हैं। जिन्होंने चाणक्य को कर्ता बनकर जीने, देखने और भोगने की वास्तविकत दृष्टि एवं समस्या का बोध कराया। चन्द्रगुप्त की वीर क्षमता को देख चाणक्य उसे मगध का राजा बनाकर महापद नंद को निर्वासित करता है। इस प्रकार चाणक्य मगध, पंचनद कौशल, मालव, लिच्छिवि, मल्ल देश को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास रत हो जाता है। वह चन्द्रगुप्त के समक्ष समस्त आर्यावर्त को एक देश के रूप की परिकल्पना प्रस्तुत कर अपने सभी शिष्यों को इस महायज्ञ हेतु तत्पर होने का आवाहन करता है। बीच-बीच में

---

१. गुरू - भूमिका - पृ० २-३

सिंधुतरी और महिल के प्रेम-प्रसंगो की चर्चा होती रहती है। सिंहरण राक्षस मंत्री को बंदी बनाकर चन्द्रगुप्त एवं सिकन्दर के द्वन्द्व युद्ध की घटना प्रस्तुत कर चाणक्य से राक्षस के विषय में पूछता है। चन्द्रगुप्त की आज्ञा के विरूद्ध चाणक्य राक्षस को मुक्त करने का आदेश करता है। चन्द्रगुप्त अलक्षेन्द्र के द्वन्द्व युद्ध का जीवन चित्रण प्रस्तुत करती है। नागरिकों के समक्ष चाणक्य राक्षस की कूटनीति एवं षडयंत्र का उद्घाटन करता है कि प्रर्वतक की सहायता से राक्षस मगध राज्य को हडपना चाहता था। सिद्धार्थक इस आरोप को मिथ्या कहता है। नागरिक सिद्धार्थक को पीटने लगते हैं। जिन्हें चाणक्य रोकता है। राक्षस चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त से अपना प्रतिशोध लेने का संकल्प करता है। चाणक्य की नीति के कारण मगध सेनापति भागुरायण के कुचक्र में फँसकर कुमार मलय केतु मगध से बाहर भागने को विवश हो जाता है। याहालि, सिंधुतरी एवं सुवासिनी बातचीत करते हैं कि चाणक्य आकर सुवासिनी से अपनी हृदयस्थ कोमल अनुभूतियों को व्यक्त करता है। सुवासिनी चाणक्य के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है। चाणक्य सुवासिनी के प्रेम को प्राप्त कर पूर्णकाम बन जाता है। चाणक्य माहालि को आदेश करता है कि वह चन्द्रगुप्त प्रिया कार्नेलिया को ब्रह्मसूत्र और बुद्ध की करूणा का वास्तविक मर्म जकार समझावे बुद्धदास को फाँसी से बचाकर राक्षस महामंत्री को जोडना चाहता है तथा स्वयं मुक्त होना चाहता है। जिसने सम्राट चन्द्रगुप्त चाणक्य की उपेक्षा करने लगता है। चाणक्य के षडयंत्र में फँस कर महाकाव्य राक्षस को निकाल देता है। चाणक्य के सामने राक्षस आकर चंदनदास की फाँसी देने के आदेश को रोकने की बात कहता है तभी चाणक्य मालव कुमार सिंहरण लिच्छिति कुमार महालि मल्ल कुमार बंधुल, इत्यादि परिचय देकर समग्र आर्यावर्त को एकता के सूत्र में पिरोकर उसकी उन्नति हेतु राक्षस के सहयोग की कामना करता है। जिसे राक्षस हृदय से स्वीकार करता है। इस प्रकार चाणक्य अपने कर्म योग को पूराकर समस्त संसार को देखने की बात कहकर अपने गुरू होने की गरिमा प्रकट करता है।

(११) उत्तर शुद्ध :-

इस लघु नाटक में दो नाटक संकलित है – उत्तर शुद्ध और यक्ष प्रश्न दोनो मिलकर एक पूर्ण नाटक है।

(क) उत्तर युद्ध :-

पाँचों पाण्डव चुपचाप बैठे हैं। विदूषक मंच पर आकर पाण्डवों की जडता स्तब्धता, नीरवता एवं संवाद हीनता के विषय में बतलाता है कि एक दुर्घटना के कारण ने सभी एवं संवाद हीनता के विषय में बतलाता है कि एक दुर्घटना के कारण वे सभी मूक हतप्रभ हो गये है। वह बताता है कि महाराज द्रुपद ने अपनी कन्या द्रौपदी को वीर्य शुल्का घोषित कर उसके स्वयंवर को आयोजित करते हैं वनवासी पाण्डव भी ब्राह्मण वेष धारण कर छद्म रूप से वहाँ पहुँचं स्वयंवर की शर्त अर्जुन ने जीती। द्रौपदी उन्हे दरिद्र ब्राम्हण समझकर उनके साथ जाने से अस्वीकार करती है। कृष्ण के समझाने पर ही वह पाण्डवों के साथ जाती है। जब सब लोग अपनी कुटी में पहुँचें तब उसके द्वार बन्द थे। अर्जुन अस्पष्ट सूचना पर कुंती ने आदेश दिया पाँचों भाई उसे बाँट ले। यही वह घटना है जिसके कारण किंकर्तव्य विभूढ़ है, क्योंकि विभक्त करना सरल कार्य नही है, इससे वस्तु पदार्थ कम होता जाएगा। युधिष्ठिर चिंतित है कि इससे पाँचों भ्राताओं में परस्पर फूट पड जाएगी तथा दुर्योधन आसानी से उन्हे पराजित कर सकेगा। पाँचों भाई द्रौपदी के सौन्दर्य पर मुग्ध है यद्यपि उन सबकी दृष्टि अलग-अलग है। विदूषक आकर परामर्श देता है कि द्रौपदी के सौन्दर्य की व्याख्या अलग-अलग करने से अच्छा है वे अलग-अलग द्रौपदी से मिल वर्तमान समस्या पर उसका मन्तव्य भी जान ले । सबसे पहले ज्येष्ठ होने के कारण युधिष्ठिर द्रौपदी के पास जाते हैं। इसी बीच स्वयम्बर की कथा विदूषक को बताकर द्रौपदी को अपनी कहता है। क्रमशः सभी भाई द्रौपदी से मिलकर आते है और उस भेंट जनित अनुभव को बाँट्ते हैं कि द्रौपदी का प्रश्न है कि दुर्योधन के पिता उसे बहू बनाने के लिए विदुर को भेजा था और यदि पाण्डवों को विधर्मी, अन्यायी दुर्योधन से संधि करनी ही है तो फिर उसे स्वयम्बर में क्यों जीत कर लाये हैं। क्योंकि शक्तिशाली

और शक्तिहीन में संधि हो सकती है? इस संधि से धर्म को अधर्म की गुलामी करनी पडेगी सच मिथ्या की चाटुकारिता करेगा। इससे प्रजा का विनाश होगा। द्रौपदी की द्रष्टि में इन प्रश्नो का एकमात्र उत्तर है युद्ध क्योंकि जीवन गति है, असन्तोष है उसके मूल में विस्तार है संघर्ष इसकी धुरी है। अपरिहार्य युद्ध के लिए यह आवश्यक है कि सभी भाई सूत्रबद्ध रहे। भीम द्रौपदी के श्रंगार के लिए गंध मादन पर्वत जाता है तभी द्रौपदी का आर्तनाद सुनायी देता है। कि दुःशासन बलात् द्रौपदी को खीचकर ले जाने का प्रयास कर रहा है। अर्जुन प्रश्न करता है। कि द्रोपदी की रक्षा किसे करनी चाहिए। विदूशक इस विवाद को शान्त कराता है कि दुर्योधन को ज्ञात है कि पाण्डव एक नही है। उनके पास शक्ति, निष्ठा, भक्ति और प्रेम शब्द मात्र के है। वे इन पर विचार कर सकते हैं। लेकिन द्रौपदी की चीख अन्त तक सुनायी देती रहती है।

(१५) गंगा माटी :-

ग्रामीण जीवन की चर्चा निच्छलता सहजता अत्मीयता और अकृत्रिमता के सन्दर्भ में की जाती है लेकिन ग्रामीण जीवन में ही कुसंस्कार पाषण्ड, आडम्बर , कृत्रिमता कूरता के शोषण के कितने आयाम घटित होते रहते है। अगर इसका लेखा-जोखा तैयार किया जाय तो एक बडी नाटकीय स्थिति का निर्माण होगा-गंगा माटी के रूप में। गंगा माटी गंगा के किनारे बसी गंगा माटी नाम की किसी ऐसी ही बस्ती के एक जाज्वल्यमान चरित्र गंगा के इर्द-गिर्द विभिन्न सन्दर्भो से बुने गये घट्नाक्रम की नाटकीय प्रस्तुति है जिसमें ग्रामीण जीवन मे गहरे पैठे अंध विश्वास धर्म भीरूता और आडम्बर पूर्ण जीवन की कृत्रितामतन का मुखौटा उतारने की कोशिश की गयी है। भारतवर्ष ग्राम बहुल देश है। यहाँ आजादी और गुलामी की स्थिति में कोई अन्तर नहीं है, जीवन कहलाने वाले विरोधों, विपर्यो, भटकावों, अतिवादो और पुराग्रहो के अनेक आयामी संगठन जीवन को विकृत करते और बनायें रखते है। इनमें से गुजरते हुए यह नाटक जीवन तत्व के बल पर संघर्ष करते हुए

अंत में जीवन का साक्षात्कार करवा देता है और इस प्रकार प्रबल नाटकीय अनुभव से मनुष्य की मनुष्योचित जिजीविषा को रेखांकित करता है। सभी वर्ण और वर्ग के लोग गंगा माटी गांव के निवासी है। शिवानन्द पूरे गांव का धर्माचार्य एवं मुखिया है। सभी ग्राम निवासी जडी भूत संस्कारों के कारण उसके वचनों को प्रमाण वाक्य मानते है। धर्म भीरू सरल हृदय ग्रामीणों को धर्म का भय दिखाकर उनके विद्रोह को दबाता रहता था। किन्तु यह विद्रोह उसके पुत्रों मे ही पनपने लगा। बडा पुत्र पिता से अधिक शक्तिशाली बनने के लिए तंत्र साधना की ओर और छोटा पुत्र जनार्जन हेतु नगरो की ओर अमुख हो गया। गंगा एक ऐसा ब्राह्मण पिता की सन्तान थी। जिसकी हत्या शिवानन्द नें इस समय करवा दी थी, जब वह भी वर्ण वर्ग के ग्रामीणो को मानवीय अधिकारो की माँग करता हुआ एक क्रान्तिकारी आन्दोलन की अगुवाई कर रहा था। अनाथ बालिका पर खुली पंचायत हुई धर्म भ्रष्ट होने का अपराध सिद्ध शिवानन्द उसका विवाह अपने पुत्र देवल से करना चाहता । गंगा का सबों से उन्मुक्त मानवीय व्यवहार उसके अभियोग को पुष्ट बनाती है। कोई उसकी बात नही सुनता और वह देवल की पत्नी बन जाती है देवल का उद्देश्य गंगा को प्राप्त कर जीवन को सुखी बनाना नही था। वह तो गंगा को पराजित एवं प्रताडित करने का षडयन्त्र मात्र था। देवल तांत्रिक साधनों से लिप्त हो जाता है। साधना की सफलता हेतु वह गंगा की बहन कुसुम की बलि देने को उधृत हो जाता है किन्तु दुर्भाग्य विफल मनोरथ वाला होता है। अर्द्धविक्षिप्त देवल सन्यासी बन पलायन करता है। और कुछमाह बाद एक सिद्ध का पाखण्ड बनाकर प्रत्यावर्तित होता है। धर्मभीरू ग्रामीण की श्रद्धा भक्ति के नाम पर शिवानन्द और देवल भाई कमाई करने लगते हैं। गंगा छद्मवेश धारी देवल को पहचान लेती है और षडयंत्र के रहस्योदघाटन करने की धमकी देती है। तभी शिवानन्द गंगा कुसुम और उनके समर्थक प्रसादी को येन केन प्रकारेण गाँव से बाहर भेज देता है। तीनो प्राणी अन्यत्र जाकर जीवन यापन करते है। प्रसादी कुसुम से प्रेम करने लगता है। तो गंगा दोनो को प्रणय बँधन में सूत्रबद्ध कर देती

है। खेतीबारी तीनों के जीवन पथ पर अग्रसर होते है। शिक्षा प्राप्त कर कमल जब गाँव वापस आता है तो भाभी को अनुपस्थित पाकर उसकी खोज करता है। जब उसे सारी बातें ज्ञात होती है तो वह किसी छोटी जाति के अपने मित्र मनोहर को साथ लेकर गंगा को गाँव वापस लाने के लिए चल देता है। गंगा प्रसादी कुसुम मनोहर कमल के साथ गांव लौट्ती है और सब मिलकर एक बार पुनः गाँव वालों को जीवन का सही अर्थ समझाने की कोशिश करते है। गंगा के पिता ने इसी हेतु अपना प्राणोत्सर्ग किया था। पिता के अधूरे काम को पूर्ण करने का संकल्प लेकर गंगा गाँव वालों को जीवन की सहजता से परिचय कराती है किन्तु धर्म प्रवण ग्रामीण जनता उसकी समानता पूर्ण मानवीय भावना को अपने में संकोच करते है। गाँव के प्रमुख सम्पन्न कृषक मालिक सिंह गंगा और कमल के जीवन दर्शन की बारीकियों को समझता है और उसे हर प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन देता है। सभी लोग मिलकर प्राचीन उत्सव "जिया हो" मनाने का संकल्प करते हैं क्योकि इसी उत्सव पर गंगा के पिता की हत्या हुई थी तब से यह उत्सव बंद था और इस उत्सव का विरोध शिवानन्द भी करता था। किन्तु इस बार शिवानन्द का विरोध पुत्र कमल कर रहा था तथा उसे देवल की अप्रयत्न सहमति प्राप्त थी क्योकि अब देवल गंगा की दया और कृपा पर पूर्ण रूपेण आश्रित था। गांववालों को कमल और मनोहर से जब पता चला कि मंदिर का वह सिद्ध साधु कोई और नही कपट वेशधारी देवल है और पिता पुत्र मिलकर गाँव वालो को ठगते रहे है। इसकी प्रतिक्रिया अत्यन्त भयानक हुई । गाँव वालों ने देवल को वहिष्कृत कर दिया। निराश्रित देवल पश्चाताप के आंसू बहाता रहता क्योंकि सारे गाँव में उससे सहानुभूति रखने वाला अब कोई नही था। एक अछूत चमारिन सीता उसे येन-केन-प्रकारेण कुछ खिला-पिलाकर जीवित रखती है। गाँव के वृक्ष के नीचे निराश्रित देवल पडा रहता है। उत्सव के विरोध मे कुपित शिवानन्द तलवार लेकर गंगा, कमल, मनोहर और प्रसादी सबको मारने के लिए उद्यत हो जाता है। "जिया हो" उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है। जाति-पाँति-ऊँच-नीच

वर्ग वर्ण सबकी दीवारें ध्वस्त हो जाती हैं और एक मानव दूसरे मनुष्य को पहचान लेता है। व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊंचा उठकर मानवीय धरातल पर यह सत्य अजागार होता है। कि संसार के केन्द्र मे मनुष्य है।

सार यह है कि डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने ग्रामीण कुसंस्करो से जडीभूत परम्परा को सत्य और सुन्दर के रूप मे परिणत करने का सफल प्रयास किया है। इस आधिकारिक कथा के साथ नाटकार ने चंदरा सीता प्रसादी कुसुम की घटनाएँ प्रासंगिक रूप में उपन्यस्त की है नाटक का सूत्रधार या पुरुष से धार्मिक समस्या के रूप में हुआ है जिसकी चरम सीमा द्वितीय अंक क द्वितीय द्रश्य मे है जहॉ धर्म के वीभत्स्य रूप का परिचय कुसुम के बलि के रूप मे होता है। अवधूत साधू के आगमन से नाटकीय व्यापार रहस्यमय और कौतूहल पूर्ण हो गया है।

(१६) संस्कार ध्वज :-

डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने कहा है कि अज्ञान के कारण समाज का विकास अवरुद्ध हो जाता है। अंधविश्वास के कारण उत्पन्न जडता निष्क्रियता हमारे जीवन को भीतर और बाहर से विषाक्त कर अंधकार में भटकने के लिए छोड देती है। संस्कार ध्वज ज्ञान का प्रतीक है ज्ञान के सहारे ही भारत की तस्वीर बदली जा सकती और अज्ञान के विषाक्त अंधरे से मुक्ति पायी जा सकती है।[1] अवधपुर गॉव की स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की घटनाओ का नाटक में समावेश यहॉं भारतीय जीवन को ऐतिहासिक काल क्रम के सन्दर्भ मे प्रस्तुत करता है वहीं गॉंधी जी के सत्याग्रह, देश प्रेम राष्ट्रीय एकता साम्प्रदयिक सद्भावना तथा मानवता के प्रति निष्ठा जैसे अधारभूत मानवीय मूल्यों से पाठकों का परिचय कराता है।1 इस नाटक की कथावस्तु संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है- सिंधु ठाकुर एक दुर्दान्त दस्त था । एक दिन वह अवधपुर गॉव के मंदिर मे ठहरा। सारा गॉंव उस समय अकाल ग्रस्त था। सारे ग्रामीण मौन हाथ पर हाथ धरे बैठे थे । मंदिर की काली माई

---

१. संस्कार ध्वज - भूमिका पृ० २

को देख कर उसका विचार बदल गया। वह गाँव-गाँव डाका डालकर घरो को लूटने का धंधा छोडकर एक एक स्थान का राजा बनकर उसकी उन्नति कर उसे ही अपने शोषण का केन्द्र बनाने का निर्णय ले लिया। वह सिंधु ठाकुर से राजा ठाकुर बन गया। उसका सहायक वीर सिंह ने गाँव वालो को एकत्रित कर उनके श्रम से एक ठाकुर द्वारा बनवाना प्रारम्भ कर दिया। राजा ठाकुर ने गाँव वालो को धन देकर कृषि कार्य हेतु प्रेरित किया और सौभाग्यवशात खेतो से अन्न पर्याप्त मात्रा मे उपजा। गाँव वालो को रोजी मिल गयी। अच्छी फसल होना राजा का ही प्रताप माना गया। अब धीरे-धीरे गाँव पर राजा ठाकुर ने अपना शिकंजा कसना प्रारम्भ किया। उसने मंदिर में मूर्ति की प्रतिपग, रामलीला का मंच, नृत्य संगीत का कार्यक्रम विशाल स्तर पर किया। गाँववालो को कपडे मिष्ठान उपहार मे मिले। जमींदार राजा ठाकुर की दोस्ती अंग्रेजों से हुई । उसे लगान वसूल करने का ठेका अंग्रेजो से मिल गया। अपने शोषण तंत्र से वह गाँव को लूटने लगा। गाँव के लोग कराहने लगे। इसी समय महात्मा गाँधी के आन्दोलन की लहर हवा अवधपुर मे आयी और स्वराज्य की ललक के करण गाँव के लोग ठाकुर का विरोध करने लगे, जिसमें गजोधर उसका पुत्र उत्तमा माटी, रामबोला, गंगाजली प्रमुख है। भाग्यवाद पर अडिग विश्वास रखने वाले भारतीय ग्रामीण ईश्वर की इच्छा के विपरीत ठाकुर पर अविश्वास कर उसका विरोध करने लगे एवं गाँधीवादी विचारधारा पर आस्था के कारण जाति पाँत वर्ग भेद को अस्वीकार करने के लिए कुछ कुछ मानसिक रूप से तैयार होने लगे किन्तु पेट की भूख और पीठ पर ठाकुर के कोडे खाकर उनकी आवाज भाग्यवाद के कारण दबने लगी। वे ठाकुर के दास बन गये तभी गजोधर, रामबोला और उत्तमा ने उनको झकझोर स्वतंत्रता की चेतना जगायी स्वराज्य के कारण अवधपुर में भी स्वतंत्रता चेतना का प्रसार होने लगा। ठाकुर ने षडयंत्र कर उत्तमा को कत्ल के मुखरित होने लगा। ठाकुर ने षडयंत्र कर उत्तमा को कत्ल के अपराध मे फँसाकर जेल भिजवा दिया। ठाकुरानी ने इस अलख को आगे बढाया और देश के आजादी के साथ अवध

ापुर भी स्वतंत्र हो गया। जमींदारी समाप्त हो गयी। उत्तमा जब जेल से बाहर आया तो उसने गाँववालो को उसी हत चेतना मोहग्रस्त रूप मे पाया। धीरे धीरे नेतृत्व मे गाँव पुनः जागरित हुआ। उसने लोगो के अंधविश्वास को उखाड फेका और उसके स्थान पर नये संस्कार डाले गाँव वालो ने स्वधर्म को पहचान नये मूल्यों को स्वीकार कर संस्कार ध्वज के रूप में उस वर्ग वर्ण रहित चेतना को प्रतीक रूप में स्थापित किया।

(१७) नरसिंह कथा-

पुराण भारतीय साहित्यिक के मूल कथा स्रोत नरसिंह कथा ऐसी ही एक कथा है । जिसमें हिरण्य कश्यपु को यह वर प्राप्त था कि वह न दिन न रात न घर न बाहर न मनुष्य न पशु न अस्त्र न शस्त्र से मारा जा सकता है तथा वह निरंकुश शासक हो जाता है। जिसका विरूद्ध उसका पुत्र प्रहलाद करता है। परिणाम स्वरूप वह पिता द्वारा प्रताड़ित होता है। तब नरसिंह रूप में अवतरित होकर ईश्वर ने उसका बध किया था। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने उपर्युक्त कथा को आधार बनाकर प्रस्तुत नाट्क लिखा है जिसमें जय विजय बैद्य और ज्योतिषी बनकर बंध्य हेतु की सहायता से हिरणकश्यपु के राज्य दरबार में आश्रय पाते हैं। हुताशन प्रहलाद हिरणकसिपु की अधिनायकवादी प्रजा मे अपना ऐसा आतंक फैला रखा था कि प्रजा उसी को सव्य मानती थी जो राजा कहता था जय विजय हिरणकसिपु की मर्सो गाथा का ऐसा अति रेजतिय रूप में वरण करते हैं कि राजा उन्हे मुँह मांगा ईनाम देता है महा सुन्दरी एवम् डूडा हिरणकसिपु के घट विवाह के माँगलिक गीत गाती है और कयाधूय राजा का इस बात के लिए रोकती है कि राजा ने भले ही घड़े से विवाह किया है अतः यह घड़ा उसकी रानी के समान है जिसको हरण कर हत्या करना राजा को शोभा नहीं देता तभी भगवती कुम्हारिन बताती है कि इस घडे के अन्दर बिल्ली के दो बच्चे रह रहे हैं। जब यह घडा पक रहा था और राम की कृपा से वे सब कुशल बच गये थे। हिरणकसिपु इसे झूठ कहता है। तभी राज्य ज्योतिषी ब्रजदंन्त जय और विजय

का वास्तविक रहस्य जान लेता है। प्रहलाद के समक्ष महासुन्दरी भगवती और कुछ पुरूष इस शासन का विरूद्ध करते हैं। तभी शुक्राचार्य प्रहलाद से पिता पुत्र मे सन्धि ा की चर्चा करता है। प्रहलाद गणतंत्र व्यवस्था की शर्त रख देता है। ब्रजदंन्त और महासुन्दरी आपस में प्रेम की बात करते है तभी प्रहलाद जीवन के सहस्य धर्म की शिक्षा देता है। व्रजदंन्त महा सुन्दरी को राजकुमारी डुडा की सेवा में भेजता है। हिरणकसिपु प्रहलाद को बुलाकर उस पर राज्यद्रोह का अपराध सिद्ध करता है। जबकि प्रहलाद का मत है कि राजा ने प्रजा को बंदीगृह में डाल रखा है हिंसा और दमन से राज्य भक्ति नही आती है। तब हिरणकशिपु डूडा को यह आदेश करता है कि वह प्रहलाद को अपनी गोद में बिठाकर जलती आग से उसे जला डाले किन्तु परिणाम बिपरीत सिद्ध हुआ डुंडा महारक्षा से प्रेम करती थी अतः वह स्वयं आग में जलकर मर गयी प्रहलाद महासुन्दरी और हुतासन से बातचीत करता हुआ यह सिद्ध करता कि महा सुन्दरी विश्वकन्या नही है। हिरणकसिपु हुतासन से द्वन्द्व युद्ध करता। जिसमें ब्रजदंन्त मारा जाता है। अन्त में हिरणकसिपु प्रहालद के बढ़ते प्रभाव से भयभीत होकर स्वयं उसकी हत्या करने को तैयार हो जाता है। प्रहालद निरक्षेप भाव से राजा के समक्ष प्रस्तुत होता है। महासुन्दरी उसे सस्नेह विदा करती है और प्रहालद पिता के समक्ष उपस्थित हो जाता है। शुक्राचार्य उसे साम, दाम, दण्ड, भेद, सभी नीतियों से उसे समझाते है किन्तु प्रहलाद मृत्यु से भयभीत नहीं होता है। प्रहलाद पिता को समझाता है कि न्यायप्रिय प्रजातंत्र निष्ठावान राजा ही सर्वप्रिय होता है। निरंकुश, अधि ायानक अनियंत्रित शासक व्यर्थ होते हैं और पिता से प्राणदण्ड की आज्ञा सुनकर प्रहलाद उन्हे इस अपराध के लिए मुक्त करता कि खंबे के पीछे से नर पशु रूप में उत्पन्न हिरणकशिपु की हत्या कर देता है। इस प्रकार डॉ0 लक्ष्मी नरायाण लाल ने इस कथा को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया। चिर काल से सत्ता और जनता के बीच संघर्ष होता आया है सुविधा भोगी मनुष्य सुविधाओं के छिन जाने के भय से शक्ति संचयकर दूसरे का शोषण और दमन करता है और फिर जनता के मध्य से

ही विनाश के बीज अंकुरित होते है। जिससे अधिनायक वादी प्रवत्ति का विनाश होता है।

(१८) सबरंग मोहभंग :-

यह दो भागों मे विभाजित नाटक है। प्रथम अंक मे पाँच दृश्य है। द्वितीय अंक में स्थूल दृश्य विभाजन नही है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल की मान्यता है कि अंग्रेज की दासता के कारण हमारा पश्चिम के प्रति एक प्रकार सा मोह हो गया है। इस मोह को भंग करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रेष्ठ लोक जीवन से जुडे जडो वाले वैशिष्ट्य को उजागर किया जाय। वे कहते हैं कि भारत में नाटय यथार्थ नही था, लीला रहा है। लाल ने इस नाटक से आपनी अस्मिता और लुप्त पहचान को पुनः पाने का प्रयास किया है।

प्रथम अंक में पुरूष और युवती प्राचीन शैली की नट नटी की भूमिका का निर्वहन करते है वे नाटक को सामूहिक आस्वाद की वस्तु बताकर दर्शकों के अनुरूप कोई चीज प्रस्तुत करना चाहते है। दर्शक रोमेण्टिक कैमेडी की मांग करते है। पुरूष सडक के रोमांस से अपने को प्रस्तुत करता है। एक युवती अपना बैग खोल कर होठे पर लिपिस्टिक लगाती है। चार युवक उसका पीछा करते हैं। पुरूष चौराहे का ट्रैफिक पुलिस बनकर सीटी बजाकर सब को रोक देता है। पुलिस वाले ने अपने पाकेट से शीशा निकाल कर युवती के सामने करता है युवती उससे अपना मेकअप ठीक करती है चारो युवक बात चीत से युवती पर छीटाकसी करते है। ट्रैफिक रोकने के कारण पूछने पर पुलिस वाला बताता है कि किसी महाशय जी को इधर से निकलना है। चारो युवक, युवती को घेरकर अत्तेजित होकर उससे बात करते है कि वे युवती के लिए कुछ भी कर सकते है। तभी युवती बताती है कि वह महाशय जी की की प्राइवेट सेक्रेट्री है। वह अपना कार्ड निकाल कर दिखाती है। तभी उसे सूँघ ा कर ट्रैफिक पुलिस वाला गश खाकर गिर पडता है। यह सडक छाप रोमांस का दृश्य था। तीसरा दृश्य चूल्हे चौके के रोमांश से सम्बधित है। पुरुष बताता है कि उसकी

धर्मपत्नी गुलाबो है। उसके चार बच्चे हैं भूखे बच्चे रोटी की मांग करते है। पुरूष अपनी पत्नी से रोटी बनाने की बात करता है। तभी पत्नी बाल्टी भर पानी लाकर कुछ पुरूष पर तथा कुछ चूल्हे में डालती है पत्नी बताती है कि पुरूष के हाथ में प्रेम की रेखा ही नही है । यदि वह उससे प्रेम करता हो तो कुएँ में कूद जाए। पुरूष उससे धक्का देकर गिराने की बात कहती है जो कि पतिव्रता पत्नी नही कर सकती। पुरूष कुएँ मे कूद जाता है और बचाओं-बचाओं की पुकार लगाता हैं। तभी पत्नी अपनी भाग्य रेखा देखती है कि उसमें वैधव्य की रेखा है या नही दर्शक अब ट्रेजडी या सीरियस घटना की माँग करते है। अगला दृश्य एक राजा से सम्बधित है। जो मसालेदार अच्छा से अच्छा खाना खाते खाते ऊब गया है। वह अब नए स्वाद युक्त खाने की मांग करता है। मंत्री श्मशान घाट से जले मुर्दे का मांस लाकर राजा को खिलाता है। राजा को यह भोजन सुखद लगता है और वह नर मांस का शैकीन हो गया। फलतः प्रजा के एक आदमी के मृत्यु प्रतिदिन होने लगी। अतः प्रजा शहर छोडकर भागने लगी। तब राजा के परिवार वालों का क्रम आया। मंत्री राजा को जातक कथा सुनाता है कि एक बडी मछली छोटी-छोटी मछलियों को खाती रही और इतनी मोटी हो गयी कि चलने फिरने में असमर्थ हो गयी। शिकार की तलाश में उसने एक छोटे से पहाड को कुंडली मार कर लपेट लिया, परिणाम स्वरूप उसकी पूँछ उसके आ गयी। जिसे वह अपना शिकार समझ खाने लगी और इस खाने का क्रम आगे ही बढता रहा। अगले दृश्य में सबरंग के अन्तर्गत आधुनिक रंग दिखाये गये है।

महाभारत युद्ध के पूर्व पाण्डव बनवास भोग राज्य माँगते है किन्तु दुर्योधन उन्हें राज्य देने से इंकार कर देता है कि उन्हें राज्य करने का कोई अनुभव नही है। कृष्ण के समझाने पर भी वह इसी तर्क पर दृढ रहता है युद्ध प्रारम्भ होने पर भीम को मोह होता है कि युद्ध जीतने पर उसे क्या मिलेगा?
कृष्ण उसे मगध राज्य का महाराज्य पाल बनाने का अश्वासन देते है। दूसरा अंक

सबरंग से सम्बधित एब्सर्ड घटनाओं से है। जिसमें कुछ युवक आकर बताते है कि वे कुछ बनना चाहते थें बन कुछ गये। पिता ने कहा पुलिस में नौकरी कर लो वह नौकर हो गया। दूसरा युवक बताता है कि पिता ने कहा बिजनेसमैन बन जाओ। वह विजनेसमैन बन गया बाद में उन्होने ने पुत्र को निकाल दिया। पुत्र निकल गया। सब लोग मिलकर समुद्र मंथन का खेल खेलते हैं। एक युवक ने बताया कि क्लास में पाँच मिनट देर हो जाने के कारण कक्षाध्यापक ने कक्षा में बैठने नही दिया जब कि वह अध्यापक स्वयं 20 मिनट लेट आता है। महीनों क्लास नहीं लेता है इस प्रकार एब्सर्ड घटनाओं के द्वारा नाटककार यह बताना चाहता है कि आज युवा पीढी अर्थहीन जीवन सन्दर्भ से मुक्ति चाहती है। परिवर्तन की ललक उसमें है लेकिन सही दिशा उन्हे ज्ञात नही है।

(१९) सगुन पंछी :-

किसी भी देश की लोक कथाएँ उस देश की संस्कृत और संस्कार की उपज होती हैं। ऐसी लोक कथाओं को साहित्यकार अनेक आयामो से व्यापक कर सकता है। क्योंकि यह खुद अपनी भूमि की उपज होती है। नर नारी के बीच विश्वास अविश्वास को लेकर तोता-मैना के माध्यम से व्यक्त होती नही है। डॉ0 लक्ष्मी नरायन लाल ने पहले इसी नाम से नाटक लिखा था बाद में इसे काट छाँट सँवारकर सगुन पंछी के रूप में लिखा है लोक गाथा में ऐसी घटना होती हैं कि जंगल में वर्षा की रात मैना आराम से घोसला में बैठी है भींगता हुआ तोता शरण मागता है मैनना को पुरूष जाति पर जरा भी विश्वास नही था और इस प्रकार वह ऐसी कहनियाँ सुनाती है। जिसमें पुरूष द्वारा स्त्रियों के प्रति विश्वास घात वर्णन करती है। तोता इसका प्रतिवाद कर नारियों की हरजाईपन की कथाएँ कहता है। सगुन पंक्षी के यही कथा केन्द्र में है। जिसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है - उपर्युक्त कथा से नाटक का प्रारम्भ होता है। जिसमें राजा अंगध्वज रानी को मनाता है कि वह अपनी हजारा मोती की जिद छोड दे रानी के कॉन का हजारा मोती खो गया जिसे राज्य

कर्मचारियों ने सर्वत्र खोजा किन्तु वह नही मिला और रानी प्राण देने को तत्पर है। तब राजा वेश बदलकर मोती ढूँढ निकालता है और रात में उसे बूढ़ा मिलता है जो उसे बताता है कि राजा को आज की रात प्रेत आकर मार डालेगा भय व्याप्त राजा अपने महल मे छिप जाता है तभी प्रेत आकर उसे रत्नज्योत कथा सुनता है रानी राजा से इस भय की जानकारी चाहती है। तभी मंत्री वासना से अविभूत होकर रानी से प्रेम की याचना करता है। और इस प्रकार राजा प्रेत के रहस्य को गंगा के किनारे बताने के लिए तैयार हो जाता है क्योंकि यह रहस्य बताने पर वह पत्थर का हो आएगा रानी इस शर्त पर भी वह रहस्य जानना चाहती है। यह बात जब पंचम और गंगा गाँव के किसान है उन्हें मालूम होती है। तो वह रानी पर अपेसी हो जाती है। भला ऐसा क्या रहस्य है जिसे पाकर पत्तिक ही नही रहे मंत्री गंगा के पास आकर राजा के पास नौकरी के लिए पंचम को भेजने के लिए कहता है कि गंगा रुखी सुखी रोटी खाकर फिर रानी पर अपने प्रेम का जाल फैलाता है। सगर्ध में इसी मुरक्षीत हो जाति है। नीलकंठ के कहने पर राजा जल पात्र से थोडा पानी लेकर रानी पर छिडक देते है और उसे अपनी जीवन को आधा भाग्य रानी को दे देता है रानी फिर से जीवित हो उठ्ती है और राजा इस रहस्य को भी रानी से नही बता मंत्री इस रहस्य को रानी बता देता है। राजा के पास नौकरी करता पंचम के पास गंगा के अनेक पत्र आते हैं जिन्हे राजा फाड देता है पचम गंगा की याद में दुखी होता है। अन्त मे पंचम नौकरी छोडकर गंगा के पास जाने के लिए तैयार होते हैं कि राजा उसे बंधी बना लेता है। मंत्री गंगा के पास कर जा कर पैसे का लोभ दिखाकर राजा के पास ले आता है। रानी पंचम को कैद से छोड़ती है। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक में स्त्री पुरुत्री पुरुष के बीच विश्वास अविश्वास उपेक्षा की कथाएँ घट्ती रहती है। अन्त मे गंगा पंचम राजा और रानी मिल जाते है और मसखरा भरा वाक्य जैसी बात कहता है। यह इसकी संक्षिप्त कथा है।

(२०) हँसने वाली लडकियाँ -

यह प्रहसन प्रधान छोटा सा नाटक है जिसमें उच्च वर्ग चेतना से कुंठित व्यक्ति

अपने परिवेश से किस प्रकार कट जाता है यही नाटक का मूलः कथ्य है। स्त्री-पुरुष के गीत से नाटक का प्रारम्भ होता है। इस शोर को सुनकर श्रीमती सुधा सिन्हा यह कहती है कि इस स्थान में कोई प्राइवेसी नही है। पेंड मे चिडियाँ चांव-चांव करती है और उनके घर के सामने पून, शोभा, बहुत शोर शराब करती रहती है। जिसके कारण उनका लड़का अरविन्द पढ़ नही पाता। अन्दर से सुधा अरविंद पर क्रोध करती है और कुपित अरविंद कॉपी किताब के साथ चाकू बाहर फेकता है श्री खडे कहता कि चाकू की फोटो लेकर इसे पुलिस को दे देना चाहिए तभी सुधा उन्हे डाँटती है कि मे मुहाल्ले वाले क्या तमाशा लगा रखा है । इनके कोई कामधाम नही है इस शोर के कारण आई0ए0एस0 की परीक्षा की तैयारी नही कर पाता वह बहुत अच्छा कवि और होनहार लडका है। मुहल्ला के कारण उन्हें बहुत डीतरपरवेक्स महसूस होता है। उनकी प्राईवेसी खत्म हो जाती है। अरविन्द इन्हीं पीपल के पेड के नीचे बैठकर पढ़ना चाहता है। जिसे खीचकर माँ अन्दर ले जाती है। क्योंकि ये लोग मिडिल क्लाश से सम्बंध नही है। सुधा पीपल के पेड को कटवा डालना चाहती है। किन्तु नीलमा पूनम, शोभा ऐसा नही होने देती है।

डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों के पात्र :-

(1) अंधा कुँआ -

मिनकू ,राजी, भगौती, सूका, अलगू हीरा, नन्दो, इन्दर, लक्ष्छी, हरखू, तेजई, मूरत पाण्डे हीरा, रामदीन, जोश्वन, अधारे परभू अधारे

(2) सुन्दर रस -

कविराज, देवि माँ , शक्तिदेव, जैनाथ, भट्टाचार्य,केदार, बीना, सुमिरन , अध यापक

(3) रातरानी -

जयदेव, सुन्दरम, योगी, निरंजन, प्रकाश माली, कुन्तल

(4) करफ्यू -

मनीषा, गौतम, संजय,कविता,

(5) मिस्टर अभिमन्यु -

राजन , विमल, आत्मन, गयादत्त , पिताजी, श्री मती राठैर,

(6) मादा कैक्टस -

अरविन्द, आनन्द, सुजाता, सुधीर, दद्दाजी , डाक्टर पापा, गंगाराय

(7) रक्त कमल -

कमल, महावीर दास, डॉ0 देसाई मॉ, अगस्त्य ,अमृता, गुरूराम, कनू सांरग बिल्लू सिंह

(8) दर्पन -

पूर्वी हरिपदम् , सुजान पिताजी ,ममता मत्ती, दंडी

(9) सूर्य मुख -

प्रदुम्न, वभ्रु, साम्ब, अर्जुन जरा, दुर्गपाल , व्यासपुत्र वेनुरती , रुक्मिनी , यादवी , यादव गण, सैनिक

(10) गुरू-

चाणक्य, शीलबन्धु, चन्द्रगुप्त, राक्षस, सिंहरण, माहालि बंधुत्व, मलय केतु, प्रियंवदक, सारंग, भागुरायण, सिंधुतरी, कार्नेलिया, सुवासिनी

(11) नरसिंह कथा -

हिरण्य कशिपु, जय, विजय, वज्रदत्त, प्रहलाद, हुताशन, शकुनि, शम्बर, शुक्राचार्य, विदूषक गुप्तचर, महादण्डाधिकारी, महानिरीक्षक, कयाधू, डूंडा, महासुन्दरी, भगवती

(12) कलंकी -

हेरूप तीन कृषक, तारा दो स्त्रियॉं, अवधूत, वृद्ध, तांत्रिक

(13) एक सत्य हरिश्चन्द्र -

देवधर, लौका, पुरोहित, गपोले नारद, हरिश्चन्द्र विश्वामित्र, इन्द्र शैव्या, मिस पद्मा, रोहित रंगा, चरवाहा, जीतन वेश्या

(14) यक्ष प्रश्न एवं उत्तर युद्ध -

युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, यक्ष, विदूषक

यक्ष प्रश्न- इसकी मूल कथा महाभारत से ली गयी है। यह बहुत संक्षिप्त कथा है। वनवास के समय पाण्डव प्यासे जल की तलाश में हैं। सहदेव सबसे पहले एक तालाब के पास पहुँचता है। उसे अथाह जल दिखाई पड़ता है। जैसे ही झुककर पानी पीने को वह उद्यत होता है कि एक यक्ष की ध्वनि उसे जल पीने से रोकती है। वह सहदेव से पहले अपने प्रश्न का उत्तर चाहता है बिना उत्तर दिये जो जल पीयेगा वह जीवित नहीं रहेगा। यह की उत्तर पाने की प्यास पानी प्यास से अधिक तीव्र है। भाद्री पुत्र सहदेव यक्ष की व्यर्थ वकवास पर ध्यान न देकर जल पीता है और तत्काल अचेत होकर गिर पड़ता है। उसके बाद नकुल सहदेव को पुकारता हुआ वहाँ आ जाता है यक्ष उसे मृत घोषित करता नकुल को सावधान करता है कि उसके प्रश्नों का उत्तर दिये बिना जो जल पान करेगा, वह मर जाएगा। नकुल यक्ष पर कुपित होकर आरोप लगाता है कि अपने निर्दोष सहदेव को मारा है अतः वह अपनी प्यास बुझा कर यक्ष को देखेगा। यक्ष के सावधान करने पर भी नकुल पानी पीता है और वहीं गिर पड़ता है। तभी भीम दोनों भाइयों को खोजता हुआ आता है और मरे भाइयों को देख यह पर कुपित होता है भीम को अपनी शक्ति पर घमंड है अतः यक्ष के रोकने पर ीी पानी पीता है। उसकी वहीं दशा होती है। तब अर्जुन और अंत में युधिष्ठिर वहाँ जा पहुँचते हैं। यक्ष से भाइयों की दशा का कारण जानकर युधिष्ठिर स्वमति से यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देता है और अपनी प्यास बुझाता है। प्रसन्न होकर यक्ष युधिष्ठिर से किसी एक भाई को जीवित करने को आश्वासन देता है। युधिष्ठिर सहदेव के जीवन की मॉग और उसका प्रबल कारण प्रस्तुत करता है। यक्ष सबको अंगुलि से जल पिलाकर जीवित करता है।

(15) संस्कार ध्वज -

उत्तमा, रामबोला, ठाकुर, गजाधर, बाकुल, वीरसिंह, वीपत, पंचम, कन्हाई,

शेख मौजा, पुजारी, वृद्ध, तीन युवक, ठकुरानी, गंगाजली, गोपी, माटी, मैना, सिपाही

(16) सब रंग मोह भंग :-

पुरूष युवती पाँच युवक, दर्शक

(17) गंगामाटी-

शिवानन्द देवल, कमल, गंगा, कुसुम, प्रसादी, मनोहर, मालिक सिंह, सीता, पुरूष

(18) सगुन पंछी-

राजा, रानी, गंगा, मैना, पंचम, तोता, मंत्री मसखरा, पंछी, मुसाफिर, प्रेत, नीलकंठ, वृद्ध

(19) हँसने वाली लड़कियाँ -

श्रीमती सुधा सिन्हा, एस0 पी0 सिन्हा, अरविन्द, बीजी, पूनम, शोभा, मिसनीलिमा, देशपाण्डे, श्रीखंडे, रोशनी, स्त्री-पुरूष

20. अब्दुल्ला दीवाना :-

पुलिस, पुरूष, डाइरेक्टर, युवक, सरकारी वकील, जज, स्त्री, युवती चपरासी।

डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल लाल के नाटकों के पात्रों का वर्गीकरण :-

चरित्र चित्रण का सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए कहा जा चुका है कि पात्र के चरित्र विकास में एक ओर आंशिक, सौन्दर्य, सौष्ठव, दूसरी ओर उसका सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश एवं तीसरी ओर उसकी मनःस्थिति, उसके कारक तत्व आते हैं। यहाँ कुछ आधारों पर उसके पात्रों का वर्गीकरण करेंगे। यहाँ पर ध्यातव्य हैं। प्राक्तन भारतीय एवं पाश्चात्य नायकों की अवधारणाओं का विकास बड़ी तेजी से हुआ है। अतः आधुनिक नाटककारों में तदनुरूप वर्गीकरण, पात्र-प्रकार उनके गुणा वगुण नादृश रूप मे नहीं मिलेगें। उनके रूप बदल गये है। कहीं कथा, कहीं सामाजिक, आर्थिक परिवेश कहीं विषय वस्तु के क्षेत्र को आधार बना यह वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) कथा के आधार पर प्रधान या मुख्य तथा गौण पात्र :- कथा की काल की सीमा में प्रमुख या मुख्य/प्रधान पात्र देर तक रहते हैं। उनकी भूमिका लम्बी होती है। वे प्रत्यक्ष-अपरोक्ष रूप से अपनी उपस्थिति और अस्तित्व का ज्ञान कराते रहते हैं। इसके विपरीत गौण-पात्र का आगमन कथा में अल्पकाल के लिए होता है। कभी-कभी तो उनकी झलक मात्र दिखाई देती है। कथा के विकास में प्रमुंख पात्रों का योगदान महत्वपूर्ण होता है। अधिकांश घटनाएँ इन पात्रों से सीधा सम्बन्ध रखने वाली होती है। गौण पात्रों की भूमिका अल्पकालिक होती है। प्रसंग विशेष को व्यक्त करने के लिए गौण पात्रों का उपयोग होता है। गौण पात्रों की सहायता से प्रमुख पात्रों की भूमिका अधिक स्पष्ट होती है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में भगौली सूका कविराज देवी माँ, जयदेव, कुंतल, गौतम कविता, राजन अरविन्द, आनन्दा ,कमल, पूर्वी हरिपदम प्रदुम्न बेनुरती, जज, युवती चाणक्य, हिरण्य कशिपु, प्रहलाद, देवधरा हृदय लौका, युधिष्ठिर, द्रौपदी, वीर सिंह, उत्तमा, युवक कमल, गंगा, राजा रानी, श्रीमती सुधा सिन्हा, अरविन्द इत्यादि प्रमुख पुरूष एवं स्त्री पात्र हैं। गौण पात्रों में इन्दर, राजी, लच्छवी, जैनाथ-शक्तिदेव, सुन्दरम्, निरंजन मनीषा गौतम, गयादत्त, सुजाता, दद्दा जी, महावीर दास, अमृता,पिताजी,रुक्मिनी, साम्ब, डाइरेक्टर,पुलिस,चन्द्र गुप्त,सुवासिनी,डूँडा,हुतासन,अवधूत,हरिश्चन्द्र, अर्जुन ,गजाध ार,ठकुरानी,शिवानन्द, पंचम, गंगा, शोभा, पूनम, आते हैं।

आर्थिक दृष्टिकोण से सम्पन्न राजा पूँजीपति, जमीदार वर्ग में हरिण्यकशिपु, अंगध्वज, वीर सिंह, हरिश्चन्द्र, देवधर, कार्नेलिया, मलयकेतु, अर्जुन , डाक्टर पापा, महाबीर आतें हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उच्च महत्त्वकांक्षा वालों में कविराज, देवी माँ,जयदेव मनीष, गयादत्त,महावीरदास,प्रदुम्न,डाइरेक्टर,चन्द्र गुप्त, हिरण्य कशिुप,अवध ूत देवधर,शिवाननद,रानीश्रीमती सुधा सिन्हा आते हैं। विकृत मानसिकता के वर्ग,भगौती देवी माँ,बेनुरती,डूँडा,तात्रिंक इत्यादि पात्र आते हैं।

चतुर्थ अध्याय

अध्याय-४

डॉ० लाल के नाटकों के पुरुष पात्र

(क) मुख्य पात्र

हिन्दी नाटकों के उद्भव विकास के परिप्रेक्ष्य में यत्र-तत्र नायकों के स्वरूप की भी चर्चा की गई है, जिसका सारांश यह है कि संस्कृत नाटकों के नायक प्रायः रूढ़ नाट्य-शास्त्रियों द्वारा निरूपित वर्ग गुण के अनुरूप चित्रित हुए हैं। इनका यत्किंचित परिवर्तित रूप अपभ्रंश के लोक-भाषा के नाटक -सट्टक, रास आदि में मिलता है। मुगल शासन से आतंकित जनता अपने प्राक्तन आदर्श नायकों-राम-कृष्ण या ऐतिहासिक नायकों की ओर उन्मुख रही। भारतेन्दु एवं द्विवेदी या प्रसाद पूर्व नायक इन्हीं प्रवृत्तियों से परिचालित रहे हैं। नायकों द्वारा समाज सुधार, अविजित शक्ति पौरुष से चरित्रों का निर्माण किया जाता रहा। डॉ0 सत्येन्द्र तनेजा ने लिखा है कि भारतेन्दु के मन में कभी कोई पूर्वग्रह नहीं रहा कि उनके पात्र धीरोदात्त हों, इसके विपरीत समस्या के अनुरूप उनका सृजन किया गया है।[1] डॉ0 लक्ष्मी सागर ने वार्ष्णेय इस युग के नायकों के स्वरूप के सम्बन्ध में लिखा है कि वास्तव में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पात्रों का निर्माण बहुत कुछ भारतीय परम्परा के अनुसार किया है। वह अपने पात्रों द्वारा जीवन का उज्ज्वल पक्ष पाठकों के समक्ष रखते हैं।[2] डॉ0 श्याम शर्मा ने इस युग के नाटक के नायकों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि भारतेन्दु युगीन नायक आदर्श विचारधारा, वैचारिक क्रान्तिकारी नई चेतना के प्रतीक और सुधार और देश प्रेम की व्यापक उदात्त भावनाओं से प्रेरित जन जीवन के प्रेरणा स्तम्भ कहे जा सकते हैं। वे स्वातंर्यं पूर्व की पृष्ठ भूमि से परिचित एवं प्रेरित होकर अपनी भूमिका द्वारा समाज के लिए एक आदर्श नायक सामाजिक एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण के सन्दर्भ में जन जीवन को नया आलोक देने में सक्षम सिद्ध हुए है।[3]

---

१. हिन्दी नाटक पुर्नमूल्यांकन पृ० ८७

२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ० १३२

३. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक, पृ० ५१

भारतेन्दु के पात्र संदेश वाहक हैं। पात्रों या नायकों की सृष्टि उन्हें नई ऊँचाई देने का कार्य जयशंकर प्रसाद ने किया है। स्कन्दगुप्त के महान व्यक्तित्व में अनासक्ति भय प्रत्यक्ष कर्मवाद की मंजुल झाँकी है। अजातशत्रु दुर्बल व्यक्तित्व सम्पन्न पात्र हैं। चन्द्रगुप्त के चरित्र में आत्म सम्मान की भावना, आत्मविश्वास, न्यायप्रियता, साहसिकता, धैर्यशीलता और कर्तव्यनिष्ठता तथा देश भक्ति और स्वच्छन्द प्रेम भावना आदि सभी गुणों का समावेश है। राज्य श्री और ध्रुवस्वामिनी नारी प्रधान नाटक हैं, जिसमें शोषण के विरुद्ध नारी अस्मिता का शंख फूँका गया है।

१. पंडित राज-

यह सुन्दर रस का प्रधान पात्र है। मूलरूप से यह प्रहसन है अतः नाटककार ने ऐसी परिस्थितियाँ का समावेश किया है, जिसके कारण साधारण सी बातचीत या सामान्य क्रिया-कलाप हास्य उत्पन्न करने में पूर्ण सक्षम हैं। नाटककार ने आधुनिक उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य किस सीमा तक भ्रष्ट-चिन्तन वाला हो सकता है, यह इसमें व्यंग्य रूप में चित्रित है। पंडित राज ने सुन्दर रस की खोज की और उसके प्रचार का माध्यम अपनी पत्नी को बनाया। इस रस के सेवन मनुष्य सुन्दर बन जाता है, ऐसा उनका दावा था उद्घोष था। वे सबसे कहतें हैं कि उनकी पत्नी कुरूप थीं। दवा के सेवन से वे अब सुन्दरी बन गई हैं। विज्ञापन की वास्तविकता से जब उनका सामना होता है तब से हतप्रभ से रह जाते हैं। उनके व्यक्तित्व के कुछ पक्षों का उद्घाटन यहाँ किया जा रहा है-

(१) व्याकरण विद-

गुरुकुल में व्याकरण एवं आयुर्वेद का अध्ययन कर पंडित जो दो शिष्यों को विद्यादान करते है। वे शिष्यों को व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों से सावधान रहने का पाठ प्रायः पढ़ाते रहते हैं।

पंडित राज-

जैनाथ तुम्हारी वाणी अच्छी है, संगति है, पर उसमें विवेक की कमी है। शक्तिदेव, तुम्हारा व्याकरण अच्छा है, भाषा में प्रवाह है- पर उसमें संगति नहीं है।

संगति से मेरा तात्पर्य बोलने और लिखने की शैली। जिस भाँति विनय विद्या का भूषण है, उसी भाँति विवेक एवं बुद्धि मानव व्यक्तित्व के लिए अमूल्य है।[1]

(२) सुन्दर रस का आविष्कर्त्ता-

पंडित राज ने सुदीर्घ तपस्या ज्ञानार्जन एवं साधना से ऐसे रस का निर्माण किया है उससे कोई भी असुन्दर सुन्दर हो सकता है।[2]

पंडित राज– इस असुन्दर संसार को हमें सुन्दर बनाना है इसे वास्तविक सुख एवं आनन्द देना है।

इसीलिए समस्त शास्त्रों में मैंने आयुर्वेद को बहुत ऊँचा पाया। आयुर्वेदाचार्य होने के उपरान्त हिमालय में रहकर रासायनिक औषधियों पर मैंने खोज कार्य किया, फिर बड़ी साधना, तपस्या एवं ईश्वर–कृपा के फलस्वरूप मैं इस अदभुत रस को जान सका। मैं इस रस को निःशुल्क बाँट देता, परन्तु जीवन का प्रत्यक्षवाद मुझे विवश किये हुए है।[3]

(३) सौन्दर्य द्रष्टा-

पंडित राज सौन्दर्य प्रेमी हैं। असुन्दर वस्तु उन्हें अच्छी नहीं लगती। घर बाहर, व्यक्ति परिवेश सभी कुछ सुन्दर रूप में देखना चाहते हैं। वे कहते हैं "मेरा यह घर बिलकुल सड़क पर है। इधर सड़क अर्थात् राजमार्ग और इधर गली, न सड़क में सुन्दरता है, न गली में। इसीलिए मैंजे यहाँ सुन्दर रस का निर्माण किया है। मेरी कामना है, कि समस्त संसार, मानव प्रणी सुन्दर हो जाये। मैं कहीं कुछ भी असुन्दर नहीं देखना चाहता।[4]

(४) विनम्रता-

पंडित राज अत्यन्त विनम्र हैं। मित्र भट्टाचार्य के आने पर वे जिस विनम्रता का परिचय देते है, वह द्रष्टव्य है

---

१. सुन्दर रस, पृ० ६–१०
२. वही, पृ० १०
३. सुन्दर रस, पृ० १४
४. वही० पृ० १८

पंडितराज-

ओ हो हो, के0सी0 भट्टाचार्य! स्वागत! स्वागत मेरे अहोभाग्य! अहोभाग्य! यह मेरे गुरू भाई है, जिन्हें गुरूकुल में हम लोग खोखा पंडित कहा करते थे। कहो प्रियवर! तुमने आज सच बड़ी कृपा की। मेरा जीवन तो बिलकुल बदल गया। कहाँ वह आनन्दमय जीवन कहाँ यह।[1]

(५) गुरूभक्ति -

पंडितराज ने आश्रम में रह कर विद्या प्राप्त की है। गुरू सानिध्य के कारण उसके हृदय में गुरू के प्रति असीम श्रद्धा-भक्ति है। भट्टाचार्य से जान कर कि गुरू जी मथुरा में पधारे है, वे तुरन्त उनके दर्शन के लिए व्यग्र हो जाते हैं।

पंडितराज- गुरू जी के दर्शन किये हैं? सच भट्टाचार्य? (चित्र के सामने श्रद्धामय) मेर परम आचार्य गुरू जी से मेरा दर्शन कराओ भट्टाचार्य? अभी चलो तुम! हम लोग यहीं से सीधे मथुरा चले? उनकी ओषधि क्या उनके दर्शन मात्र से देवि पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगी।[2]

विज्ञापन यथार्थ से भयभीत -

पहले लिखा जा चुका है, कि पंडित राज ने सुन्दर रस की खोज की और उसका सर्व प्रथम प्रयोग अपनी कुरूपा पत्नी कपर किया, जो सुन्दरी बन गयी। सुन्दरी तो वे पूर्व से ही थी किन्तु विज्ञापन को वास्तविक सिद्ध करने के लिए पंडित उसे कुरूपा कहते थे। जिसका रंग सांवला, मुंह पर चेचक के दाग थे, बडा-सा मुख, उसमें छोटी-सी नासिका और छोटी-छोटी सी आँखे मोटे होठ, बडे-बडे दाँत, सदा मुँह खुला हुआ।[3] जब पति ही अपनी पत्नी को कुरूप कहेगा और दवा के सेवन से वे अप्रतिम सुन्दरी बन गयी, तो लोगों को विश्वास ही होगा। पत्नी देवी मां भी इस रस के विज्ञापन के माध्यम से अपनी सुन्दरता का विज्ञापन करने लगी, तब पंडितराज को विज्ञापन बाजी के दुःष्परिणाम ज्ञात होने लगे। सुन्दर रस की कुछ बिक्री बढ़ी,

---

१.सुन्दर रस, पृ० २२

२. वही० पृ० ३१-३२

३. वही पृ० २८

शेष चतुरा देवी माँ ने अपनी सुन्दरता के विज्ञापन से अधिकारियों में अपनी पैठ बना ली। धनागम होने लगा। देवी माँ अत्यन्त व्यस्त रहने लगी। उनके जीवन का स्तर उच्च हो गया और वे अपेक्षा करने लगी कि पंडितराज भी कोट-पैण्ट टाई लगाकर सर्वत्र उनके साथ चले। वे सगर्व कह सकें कि इतनी सुन्दरी पत्नी के वे पति हैं। इस परिस्थिति को देख पंडितराज घबड़ा गया। ऐसे जीवन की वह कल्पना ही नहीं करते थे। वे तो पत्नी को मात्र माध्यम बनाकर सुन्दर रस की बिक्री बढ़ाना चाहते थे, किन्तु यहाँ कुछ उलटा ही हो गया। उनका महत्व खत्म-सा होने लगा और देवी माँ (पत्नी) का सौन्दर्य विज्ञापन आगे हो गया अतः हताश, निराश या अर्द्ध बिक्षिप्त से होने लगे।

देवी माँ -

इन्हे समझाइए दादा कैसे इन्होंने मुँह से निकाल दिया कि यह सुन्दर रस का व्यापार नहीं करेंगे। मैं इसका निर्माता नहीं हूँ। कोई सुन लेता तो क्या होता ?[1]

अंत में पडितराज विज्ञापन के माध्यम से कमाई गई धनराशि को व्यर्थ समझ उसका तिरस्कार करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं, कि इस दवा के सेवन से मस्तिष्क में ऐसा विकार आ जात है, कि मनुष्य अपने को सुन्दर समझने लगता है। इस प्रकार पंडितराज इस रस को व्यर्थ समझ बोतल खरीदने वाले को समस्त बोतले बेंच कर मुक्त हो जाते हैं।

जयदेव -

यह रातरानी का नायक है। इस नाटक में डॉ0 लाल ने जीवन के यथार्थ जटिल प्रश्नों को प्रतीकात्मक रूप देकर दाम्पत्य जीवन और विवाह-व्यवस्था के प्रश्नों को वगै-वैषम्य और इसके सन्दर्भ से जोड़कर मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त किया है। एक ओर वह भावुक पति है जो अपनी पत्नी को हृदय से प्रेम भी करता है और उसे सुखी देखना चाहता है और दूसरी ओर अर्थ का दास भी है, जिसके अन्दर मानवीय संवेदन सुप्त-सी हो गयी है। वह अपनी समृद्धि हेतु किसी भी प्रकार के

---

१. सुन्दर रस, पृ० ७१

में नायक के शब्द उसकी आन्तरिक कमजोरी एवं मानवीय झुकाव की ओर संकेत करते हैं 'मनुष्य की पीड़ा अजीब होती है। वह अपने दुःख दर्द को छिपाने के लिए ऊपर से कमट करता है। झूठ छिपाने के लिए कभी क्रोध का जामा पहनता है और कभी सिद्धान्त का। और फिर जिसने कभी दुःख नहीं झेला है, वह कभी भी दूसरों के दुःख तथा जीवन संघर्षो के कपटों को अनुभव नहीं करता। ठोकर खाने पर ही उसकी आँखे खुलती हैं और वह अपनी वस्तुस्थिति को समझ पाता है।[1] वह स्वीकार करता है 'मैं इतने सुखों में पला' दुःख संघर्ष जाना नहीं। यह क्या कोई कम दुर्भाग्य की बात है।[2] डॉ0 श्याम शर्मा का मन्तव्य है कि जो नायक अपनी आन्तरिक कमजोरी को, कभी अधिकार, कभी शक्ति, कभी रूप और कभी अर्थ का मुखौटा लगाकर आधुनिकता का ढोंग करके भरता रहा, परिस्थितियों के बदलाव के साथ-साथ उसका मुखौटा विखरने लगा, आन्तरिक एवं बाह्य जो उसका सही रूप था सामने आने लगा। नायक को अपनी वास्तविक स्थितियों की समझ आ जाने पर लगाये गये मुखौटों की निरर्थकता का अहसास होता है।[3] वह कुन्तल के समक्ष स्वीकार करता है 'कुन्तल मैंने तुमसे कहा था न' मेरे पास दो व्यक्तित्व हैं पर आज तुमसे कहता हूँ कि ये दोनों झूठे हैं" तुम नहीं जानती कि मैं अकेले कितना निर्बल हूँ।[4]

जयदेव जब अपने को नितान्त अकेले, असहाय उपेक्षित समझने लगता है तब वह उसे मानवीय मूल्यों का महत्ता पता लगती है। इन मूल्यों से वह जुडना भी चाहता है 'दुःख, संघर्ष, कष्ट वह आगे है जहाँ मनुष्य को ताल ठोंककर जलना पड़े, ताकि उसमें से प्रकाश फैले।[5] इस प्रकार नायक के भीतर व्याप्त अज्ञानान्धकार और अमानवीयता का घटाटोय कुन्तल के मानवीय प्रकाश से दूर हुआ। डॉ0 श्याम शर्मा ने जयदेव अपनी अधिकार एवं अहं जिप्सा से पराजित होकर, झूठे अर्थ को जो शक्ति

---

१. रातरानी, पृ० ४३
२. वही, पृ० ६८
३. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक, पृ० १०३
४. रातरानी, पृ० १२८
५. वही, पृ० ६६

समझे बैठा था, जो शोषण को अपना अधिकार समझे बैठा था, जो अपनी पत्नी को अर्थ एवं दहेज की ही वस्तु समझे बैठा था, बैंक बैलेन्स के 75 हजार रूपयों के खर्च होने पर जीवन के वास्तविक संघर्ष, सत्य एवं सुख से साक्षात्कार कर पाता है। नाटककार ने नायक की भूमिका को चरित्र का बाना पहनाकर उसे व्यक्तिवादी स्तर से उठाकर उसकी भूमिका को मानवतावादी बना दिया। उसके इस धरातल पर आने में कोई गहरा अन्तर्द्वन्द्व एवं संघर्ष उभरकर नहीं आ पाया। प्रेम एवं अधिकार के द्वन्द्व में भटककर नायक अपने अहं को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं कर पाया अपितु वह अपनी पत्नी के सामने दुर्बल और पराजित सा अनुभव करता है। वह अपनी पत्नी को 'रातरानी' शब्द से संबोधन कर उसके प्रकाश में अपने स्वरूप को देख पाता है। और उसी के सामने अपने को असहाया एवं दुर्बल स्वीकार करता है किन्तु नाटक के अन्त में मानवीय संवेदना से भरानायक अपनी भूमिका द्वारा अपने और अन्य लोगों कके दुःख दर्द को अनुभव कर उसके सहयोग के लिए तत्पर रहता है। इस दृष्टि से नायक मानवता वादी भूमिका का निर्वाह करता हुआ सामाजिक जीवन को एक नई दिशा देता है।[1]

जयदेव

१. वेशभूषा-

नाटककार डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल ने जयदेव पात्र को केन्द्र में रखकर अर्थ और काम की समस्या को चित्रित किया है उसके केन्द्रीय स्वरूप को व्यक्त कर अब उसके वाहय व्यक्तित्व का चित्रांकन किया जा रहा है। डॉ0 लाल ने उसकी वेशभूषा का चित्रण इस प्रकार किया है– भूरे रंग का सूट पहने हुए। आकर्षक पुरूष। अवस्था पैंतीस वर्ष से अधिक नहीं।[1]

२. धन का आकांक्षी-

जयदेव पूंजीपति का पुत्र है अतः उसकी दृष्टि में धन की महत्ता सर्वोपरि है।

---

१. आधुनिक हिन्दी नाटकों मे नायक, पृ० १०४

२. रातरानी, पृ० १८

वह समझता है कि धन से हर वस्तु खरीदी जा सकती है। भावनाओं का उसके समझ कोई महत्व नहीं। कुन्तल कहती है कि जय तो प्रेस में बैठता ही नहीं। हरदम घूम फिर, होटल रेस्तरां, काफी हाऊस पिक्चर। यहाँ घर पर ताश-रमी फ्लश। अपने पिता के इकलौते लड़के। पिता जी इनके पचहत्तर हजार रूपये बैंक में छोड़कर गये। सदा से आजाद तबियत खुले हाथ।[1] पिता द्वारा छोड़े गये रूपये को वह जुवे में हार जाता है। जयदेव कहता है फिर सोचिये रूपये का महत्व क्या है रूपये के कारण इस तरह शादियां टूट सकती हैं। रूप चरित्र, विद्या, और कला साहित्य इन सबसे बड़ा रूपया है, रूपया।[2]

३. लापरवाह-

जयदेव फ्रायड की दृष्टि में वहिर्रमुखी व्यक्तित्व सम्पन्न पात्र है। वह मस्त फक्कड़ और किसी सीमा तक लापरवाह भी है। प्रेस कर्मचारियों की हडताल इसी लापरवाही का परिणाम है। वह प्रेस में ताला डालकर खुद होटल हवेली में रंगरेलिया करता है और कर्मचारियों से पूँछता भी नहीं कि उनकी क्या समस्याएं हैं।[3]

जयदेव - तुम नहीं जानती प्रेस की इन बदमाशों को।

कुन्तल - कैसी बोली है तुम्हारी प्रेस के लोगों से बात क्यों नहीं करते ? तुम खुद प्रेस क्यो नहीं जाते।

जयेदव - तुम चाहती क्या हो[3]

जयदेव की दृष्टि में भौतिकतावाद आज के जीवन का दर्शन है, धन ही सुख का मापदण्ड है। वह कुन्तल से कहता है-

जयदेव - अरे आधुनिक बनो आधुनिक वरना यह माया ममता हमें आगे नहीं बढ़ने देगी।

कुन्तल - तो स्वार्थी होना ही आधुनिकता है क्या ?

---

१. रातरानी, पृ० ३२

२. वही पृ० ३५

३. वही पृ० ५३

जयदेव – हाँ एक आवश्यक अंग जरूर है कुन्तल यह भारत वर्ष आत्मा के स्तर पर बहुत जीकर देख चुका है– अब इसे कुछ दिन शरीर के स्तर पर भी जीने दो बाबा।[1]

४. पत्नी से प्रेम-

कुन्तल अद्वितीय सुन्दरी नारी थी, उसके रूप पाश में आबद्ध जयदेव उससे बहुत गहरे सीमा तक प्रेम करता है। उसे जब ज्ञात होता है कि उसकी पत्नी ने विवाह के पूर्व किसी को प्रेम पत्र लिखे थे तो वह ईर्ष्या या शंका भी नहीं करता। यह एक अपने आप में विचित्र उदाहरण है।

जयेदव– बस–बस–बाबा–बस बडी कृपा की तुमने मुझ पर ऐसे पत्र तुमने मुझे नहीं लिखे। हद हो गई एक जवान खूबसूरत लड़की किसी खूबसूरत लड़के को पत्र लिखे। साहित्य, कला, धर्म, दर्शन इन सबसे वायु का रोग हो जाता है। संसार और मन का मेल कभी होता ही नहीं।[2]

५. निष्ठुरता-

धन मदान्धता को जन्म देता है। जयदेव के प्रेस के कर्मचारी छँटनी के विरोध मे हड़तालरत है। वे बोनस एवं अन्य लाभ की माँग करते हैं जो जयदेव की दृष्टि में अनुचित ही नहीं जबरदस्ती है। वह निष्ठुर होकर येन–केन–प्रकारेण यह हडताल तोड़ना चाहता है चाहे इसके लिए उसे किसी भी सीमा तक न जाना पड़े जब वह सुनता है कि हड़तालियों के प्रति उसकी पत्नी कुन्तल की सहानुभूति है तो वह कुपित हो उठता है। जयदेव– बकवास है। आज पाँच दिनों से प्रेस में फिर स्ट्राइक चल रही है। तुम प्रेस वर्कर्स मुझसे छिपकर सहायता करती हो। मुझे आज पता चला है, तुमने उस किशोरी जो इसबार की स्ट्राइक का लीडर बना बैठा है।– जो प्रेस के सामने तम्बू लगाकर प्रेस के वर्करों में मेरे खिलाफ भाषण देता है एशे किशोरी की पत्नी की सहायता करने वाला मेरा शत्रु नहीं तो क्या, तभी तो वह स्ट्राइक आज पाँच दिनों से चल भी रही है। अब तक अगर वह स्त्री मर गयी होती तब मैं देखता किशोरी

---

१. रातरानी, पृ० ४५

की लीडरी।[1] कुन्तल के समझाने पर भी वह अपने अहंमन्यता के कारण अपनी जिद नहीं छोड़ता क्योंकि यह पूँजी का सिद्धान्त है कि एक बार मनुष्य जब धन संग्रह करना शुरू कर देता है तब वह अपने संग्रह के उद्देश्य को भूल जाता है। और तब वह उस धन के नशे में यह भी भूल जाता है कि इस धन का कमाने वाला कौन है। जयदेव सोचता है–

जयदेव– तुम्हारा मतलब है मैं प्रेस वर्कर्स की डिमांड्स मानलूँ इनका पिछले वर्ष का बोनस दूँ महँगाई को उसकी तनख्वाह में जोड़ दूँ। किशोरी लाल तथा अन्य सभी हटाये हुए वर्कर्स को इनकी नौकरी दूँ। फर्ज करो कि मैं प्रेस वर्कर्स की ये सारी डिमांड्स पूरी करता हूँ। अगले साल उनकी दूसरी–तीसरी माँग होगी फिर क्या होगा। अन्त में हड़तालियों द्वारा घेरा बन्दी पुलिस द्वारा चार्ज कुन्तल की घायल अवस्था से जयदेव का मन रूपान्तरित हो उठता है। वह कहता है कुन्तल मैंने तुमसे कहा था न मेरे पास दो व्यक्तित्व है पर आज मैं तुमसे कहता हूँ कि ये दोनों झूठे हैं।[2]

(३) अरविन्द-

'मादा कैक्टस' का यह प्रमुख पात्र है। यह नाटक प्रयोगात्मक एवं प्रतीकात्मक नाटक है। नाटक में अस्तित्व–अनस्तित्व के प्रश्न को मनोवैज्ञानिक स्तर पर समझने–समझाने का प्रयत्न किया गया है। इस अस्तित्व–अनस्तित्व की कसौटी काम माना जाता है। इसलिए नाटककार ने एक साथ अनेक प्रतीकों का प्रयोग कर नर–नारी के वैवाहिक और स्वच्छन्द यौन जीवन की समस्याओं को मनोविश्लेषणात्मक आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। व्यक्ति के जीवन में उसकी सबसे बडी समस्या अपने व्यक्तित्व के संगठन की है। वह हर परिस्थिति में अपने व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिए अपने चारों ओर झूठे वायवी तत्वों का सहारा लेता है। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है 'कलाकार का वायवी प्रेम सामान्य स्नेह–सम्बन्धों से अलग है क्योंकि उसका प्रधान दायित्व अपने व्यक्तित्व तथा अपनी कला के प्रति हो

---

१. रातरानी, पृ० ८६
२. वही, पृ० ८७

जाता है। एक ओर प्रणय और दूसरी ओर अपने व्यक्तित्व तथा अपनी कला के बीच चित्रकार अरविन्द किस प्रकार से अपनी पत्नी सुजाता और मित्र तथा शिष्य मीनाक्षी के जीवन को निस्सार तथा निरर्थक बना देता है। इसका मार्मिक अंकन मादा कैक्टस में हुआ है।[1] नाटक का नायक अरविन्द एक चित्रकार है, जिसके वाह्य स्वरूप का अंकन करते हुए नाटककार ने लिखा है कि अरविन्द चित्रकार है। अवस्था प्रायः पैंतीस-चालीस की है। प्रभावशाली मुख मण्डल और उस पर मानों गम्भीरता का कवच पहने हैं। बेहद सुरूचि पूर्ण रंग-ढंग, व्यवहार में अजब मोहक शालीनता।[2] इसी मोहक एवं आकर्षक शालीनता ने सुजाता और मीनाक्षी को उसकी ओर आकर्षित किया है।

नायक अरविन्द व्यक्तिवादी विचारों के कारण अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए अपनी प्रेयसी एवं पत्नी के जीवन को नीरस और निस्सार बना देता है लेकिन अपने विचार हाव भाव से दोषी करार देना चाहता है, मादा को। अरविन्द कहता है- मादा कैक्टस के सम्पर्क में आने से नर कैक्टस सूख जाता है, रस-विहीन हो जाता है, उसी तरह से किसी स्त्री के निकट सम्पर्क में कलाकार की कला निष्प्राण हो जाती है।[3] इस प्रकार मादा कैक्टस आधुनिक प्रतीक है लेकिन इस धारणा के विपरीत नायक का आचरण उसके जीवन को बडा जटिल और पेचीदा बना देता है। वह न नारी के साथ रहकर जी पाता है, और न उसके बिना प्रेम के। उसके भीतर कलाकार में से एक के चयन का संघर्ष चलता रहता है। अरविन्द नारी के सम्पर्क को मूल पत्नी और प्रेमिका व्यक्तित्व पर आरोपित मानता है। उसका विश्वास है कि उसकी कला नारी संसर्ग से सूख जाती, कुंठित हो जाती है। वह कहता है कि इस मादा कैक्टस को सब फूलों से दूर रखा करो। इस मादा कैक्टस ने मेरे पाँच उम्दा कैक्टस को सुखा डाला है।[4] वह पत्नी सुजाता की उपेक्षा करता हुआ कहता है, "डोण्ट

---

१. हिन्दी नव लेखन, डॉ० राम स्वरूप चतुर्वेदी, पृ० १४३
२. मादा कैक्टस , निर्देश पृ० १४
३. मादा कैक्टस, पृ० २१
४. वही, पृ० ३२

टच मी। योर फिंगर्स दे मेक मी फील बीकर। दे ड्रेन द स्टैंथ आउट ऑव माई बॉडी।[1] पत्नी कलाकार की कला का ह्रास कर देती है, यह सोंचकर सुजाता अपने पति के मार्ग से हट जाती है और नायक अरविन्द मीनाक्षी के रूप गुण, कला पर रीझ जाता है, लेकिन उसे पत्नी रूप में ग्रहण करने का प्रस्ताव वह अस्वीकार करता है क्योंकि वह विवाह-व्यवस्था को मिथ्याडम्बर मानता है। वह कहता है 'विवाह एक पुरानी प्रथा थी, ढ़कोसला। हम और आनन्दा इससे ऊपर उठकर रहेंगे सदा एक संग।[2]

सुजाता के छोड़ने पर और मीनाक्षी के संग रहने पर वह भीतर ही भीतर अपराध बोध की भावना के कारण तथा कलाकार का विशेषाधिकार के धीरे-धीरे अवमूल्यन होने पर नायक की स्थिति दयनीय होती है और वह भीतर-भीतर ही कुंठित होकर विखर जाता है, लेकिन मीनाक्षी के प्रति नायक का लगाव किसी भी कीमत पर उसका साहचर्य पाने के लिए प्रेरित करता है। वह कहता है ''मैं तुमसे ब्याह करने को तैयार हूँ''[3] मीनाक्षी उसके खोखले जीवन की वास्तविकता, उसके सत्य को पहचान कर उसे उद्घाटित करते हुए कहती है ''तुम आर्ट का बहाना लेकर अपने को छिपाये बैठे हो, तुमने झूठ का सहारा लेकर सत्यता को छिपाया है। जब सीधे साफ कहने की हमें हिम्मत नहीं होती कि हमें तुमसे फायदा होगा और आराम और नाम मिलेगा-उस स्वार्थ को छिपाने के लिए हम झूठी भाषा बोलते हैं। मुझे तुमसे प्यार है, इश्क है आई लव यू।''[4]

नायक नैसर्गिक एवं उन्मुक्त प्रेम का अभिलाषी होने के कारण अपनी कला में सहयोगी को ही अपनी चिरसंगिनी बनाना चाहता है। वह वैवाहिक जीवन को बंधन समझकर उन्मुक्त प्रेम में विचरण कर ऊपर उड़ना चाहता है। अतः लगता है, नायक परम्परागत रूप से किसी भी स्त्री के साथ गठबंधन करने को तैयार नहीं है। वह अनुभव करता है कि उपयोगिता के साथ विचरण करने वाला चिरकाल तक

---

१. मादा कैक्टस, पृ० ६५
२. वही
३. मादा कैक्टस, पृ० ५२
४. वही, पृ० ५३

सशक्त कला का निर्माण नहीं कर सकता। डॉ0 गोपाल का मन्तव्य है कि अपने प्रभा मण्डल से वंचित, सम्बन्धों से कटा, मीनाक्षी की आसन्न मृत्यु की जिम्मेदारी को अस्वीकार करता नायक अरविन्द सारी विफलताओं और विसंगतियों के लिए सामाजिक व्यवस्था को दोषी ठहराना चाहता है, जिसके कारण वह चमगादड़ बनकर रह गया, हंस नहीं बन पाया।[1] नायक अपने को जस्टीफाई करता हुआ कहता है कि यह कैक्टस हमारे झूठे नकली मरे हुए समाज का झूठा प्रतीक झूठ को झूठ से हम छिपाना चाहते हैं चारों ओर वही चमगादड उड रहे हैं।[2] इस नायक के सम्बन्ध में डॉ0 श्याम शर्मा का कथन है कि नायक अपनी व्यक्तिवादी भूमिका द्वारा अपंने यथार्थ को स्वीकार करते हुए भी अपने आप को नहीं बदल पाता। अपनी सारी विफलताओं एवं विसंगतियों के लिए मात्र समाज और उसकी व्यवस्था को उत्तरदायी ठहराता है। उसकी भूमिका में कलाकार प्रेमी और पत्नी का त्रिकोणात्मक संघर्ष चलता है। इस स्थिति में नायक आधुनिक व्यक्ति की मनः स्थितियों के निकट दिखाई देता है। भौतिकतावादी उपयोग की संस्कृति पर विश्वास करने वाला नायक सौन्दर्यन्वेषण में भटकता रहता है और कलाकार की मुखौटा लगाकर कृत्रिम प्रेम का दर्शन करता हुआ अपनी कुंठाओं को पूर्ण करते हुए अपने व्यक्तित्व के निर्माण के लिए कोई न कोई सहारा ढूंढ़ने को तत्पर रहता है। इस प्रकार नायक अपनी भूमिका द्वारा आज के व्यक्ति की त्रासदी और अर्थहीन सम्बन्धों के दिखाने को चित्रित करता है।[3] यहाँ अरविन्द के बाह्य व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला जा रहा है।

1. लेखक ने अरविन्द का परिचय इस प्रकार दिया है। अवस्था प्रायः पैंतीस चालीस की है। प्रभावशाली मुख मंडल और उस पर मानव गम्भीरताः का कवच पहने है।

---

१. समीक्षा – मई १९७३, पृ० २१

२. मादा कैक्टस, पृ० ६१

३. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक की भूमिका – पृ० ९७

बेहद सुरुचि पूर्ण रंग ढंग व्यवहार में अजब मोहक शालीनता।[1] कीमती गाउन पहने हुए गौरवपूर्ण, क्लीन शेब्ड, बडा ही प्रभावशाली व्यक्तित्व और जैसे सब पर मोहक गम्भीरता का कवच डाले हुए।[2]

१. सौन्दर्य पारखी-

अरविन्द आभिजात्य वर्ग का नायक है। वह चित्रकार है। अतः सौन्दर्य के प्रति उसकी अपनी अलग दृष्टि है। वह कहता है- तुम क्या समझो। इससे प्रेरणा लेकर मैंने तो अमूल्य चित्र बनाये हैं। दुनियाँ का कोई फूल पौधा इसका मुकाबला नहीं कर सकता। वंडरफुल[3] जो चित्रकार कैक्टस जैसे फूलों पर मोहित हो, उसकी सुगंधि और सुन्दरता पर अनेक चित्र बना सकता हो उसकी सौन्दर्य परक द्रष्टि निश्चित ही दूसरे से भिन्न होगी।

२. विवाह प्रथा विरोधी-

अरविन्द का विवाह सुजाता से हुआ है किन्तु मूलरुप से वह इस भारतीय संस्था के विरुद्ध है। वह अपने पिता से कहता है। "आप से मैंने कई बार कहा है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में ब्याह से भी बड़ी कोई चीज होती है। उसके सामने ब्याह तो महज एक बच्चों का घरौंदा और घरौंदा भी ऐसा जो बहुत पुराना हो चला। मैं तो उसे बिल्कुल ही मिटाना चाहता हूँ। मैं उस रास्ते पर चलकर देख आ हूँ, उसमें गति नहीं है। प्रेरणा नहीं हैं सबसे बडी चीज है। आपस की अन्डर स्टेण्डिंग, सिम्पेथी।[4] अरविन्द परस्पर सम्मान विचारों तथा प्रेरणा देने वाली स्त्री को ही अपनी पत्नी बना चाहता है। इसी के चलते उसने विवाहित पत्नी सुजाता को चार वर्ष बाद मजबूर होकर छोड़ा था।

(३) प्रेमी-

अरविन्द आनन्दा से प्रेम करता है। क्योंकि वह उसके चित्र बनाने में प्रेरणा

---

१. मादा कैक्टस, पृ० १४
२. वही पृ० २२
३. वही पृ० ३६
४. मादा कैक्टस, पृ० ३६

का काम करती है। दोनों के माता-पिता चाहते भी हैं कि अरविन्द और आनन्दा विवाह कर लें। किन्तु अरविन्द को प्रेरणा दायक प्रेयसी की आवश्यकता है न कि हल्दी, प्याज मासले की बदबू से युक्त, घर गृहस्थी के कामों में मगन हो मशीन रूपी स्त्री चाहिये। वह तो प्रेम कर ही अपनी प्रेमिका का साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करना चाहता है। अरविन्द- हम और आन्नदा एक दूसरे को बड़े भाग्य से मिले हैं। हम जीवन पर्यन्त इसी भाँती आनन्द और प्रेरणा से एक दूसरे के संग रहेगें। इसमें आप चिचिन्त क्यों हैं हम दोनों कोई बच्चे नहीं हैं। जो आप लोग हमें शिक्षा दे या रास्ता दिखाये। अपना भला बुरा हमें मालूम है।[1]

४. पत्नी की उपेक्षा -

सुजाता उसकी विवाहिता पत्नी है किन्तु अरविन्द उसे बराबर अपमानित करता है। सुजाता से वह कहता है कि मुझे पूंछती हो और क्या ला दूँ। तुम्हें खुद मालूम होना चाहिए कि मुझे क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिए, तुम्हें मेरे पूरे मन को जानना चाहिए। मुझे पता है तुम मन ही मन कुढ़ती हो, तभी मेरे मुँह पर नहीं बोलती। घर गृहस्थी में इसका एक भयानक परिणाम होता है और उसका शिकार मैं हो रहा हूँ।[2] अरविन्द को अपनी पत्नी सुजाता बिल्कुल पसन्द नहीं है। क्योंकि जब से सुजाता उसके जीवन में आयी है तब से उसके चित्र अधूरे रहने लगे हैं।

अरविन्द- पर अब मैं कोई चित्र पूरा क्यों नहीं कर पाता। यह मैं अपने पिछ्ले एक वर्ष से पा रहा हूँ। जिस चित्र को मैं सोंचता था उसका सम्पूर्ण सृजन कुछ ही घण्टों में हो जाता था प्रेरणा उत्साह के मारे मैं जैसे लुढ्कता रहता था।[3]

५. निराशा -

अरविन्द अपने पिता दद्दा से कहता है कि सुजाता के आने से वह बहुत हताश है परेशान है क्योंकि सुजाता उसके लिए प्रेरणादायक नहीं है अतः वह जितने भी चित्र

---

१. मादा कैक्टस, पृ० ४७-४८
२. वही पृ० ५१
३. वही पृ० ५३

बनाता है वह आधे अधूरे रह जाते हैं। वह सुजाता से कहता है।

अरविन्द– डोण्ट टच मी। योर फिंगर्स, दे मेक मी फील बीकर। दे ड्रेन दस्ट्रेंग्थ आउअ ऑफ माई बॉडी।[1] तत्पर्य यह कि अरविन्द आभिजात्य वर्ग का ऐसा चित्रकार है जिसके जीवन में विवाह का कोई स्थान नहीं वह तो समान विचारधाराका समर्थक है प्रतीक रूप में नाटककार ने यह कहा कि जैसे नर कैक्टस के समीप्य के कारण मादा कैक्टस सूख जाती है ऐसी ही अरविन्द के लिए वैवाहिक सम्बन्ध है।

४. कमल-

यह रक्त कमल का नायक है। नाटककार ने इस नाटक में देश की यथार्थ स्थिति का चित्रण करते हुए उसकी आन्तरिक स्थितियों का वर्णन किया है। आजादी बाद देश–विकास हेतु बनी योजनाएं पूर्ण नहीं हो पाई। परिणाम स्वरूप आर्थिक वैषम्य, मूल्यों एवं संस्कृति का विघटन, भाषा–विवाद साम्प्रदायिक दंगें एवं सामान्य जनजीवन में तीव असन्तोष सुलगने लगा। डॉ0 लाल ने कमल के माध्यम से सामाजिक चेतना के सरोकारों को उठाने का प्रयत्न किया है और नैतिक मूल्यों के ह्रास के परिवर्तन को रेखांकित किया है।

नाटक का नायक कमल आदर्श पात्र है। डॉ0 लाल लिखते हैं "रक्त कमल का नायक कमल है– बिल्कुल मिथ जैसा चरित्र। सर्वथा आदर्श, जिसकी अवतारणा मैंने जानबूझ कर इस नाटक में की है।"[2]

नायक की यथार्थवादी दृष्टि-

नायक का विचार है कि देश में फैली नेता शाही, और शोषण की प्रवृत्ति तथा माध्यवादी नीति देश के प्रति बाधक है। अतः वह यथार्थवादी आन्दोलन द्वारा उसे दूर करना चाहता है। वह कहता है " मैं ऐसे देश का नागरिक हूँ, जहां पूरी जनसंख्या के पच्चीस प्रतिशत मानव वर्ग के प्रति आदमी की कमाई दस रूपया मासिक से भी कम है। चवालीस प्रशित वे हैं जिनकी कमाई दस और सोलह के बीच है। सौ रूपया

---

१. मादा कैक्टस, पृ० ५४

२. रक्त कमल- भूमिका, पृ०

प्रति मास कमाने वालों की संख्या सिर्फ एक प्रतिशत है।[1]

नायक को किसी भी राजनीतिक विचार धाराओं धार्मिक संस्थाओं पर विश्वास नहीं है। वह मानवीय भावों से प्रेरित होकर वर्ग वैषम्य, अराजकतावादी नीति, वर्ग संघर्ष स्वार्थ भावना से परिपूर्ण नीतियों एवं लोगों का विरोध करता है। देश की समस्या से पलायन करना उसे कायरता लगती है। वह उन समस्याओं को सुलझाकर देश के नव निर्माण में अपना योगदान करना चाहता है। उसे एक नई दिशा देना चाहता है। नायक उद्घोषणा करता है ''यह हमारे रक्त में है कि हम यथार्थ से अपना मुँह फेर कर खड़े होते हैं उससे दूर भागते हैं, ताकि यथार्थ से हमारा सामना ही न हो, जिससे कि हम बड़ी मौज से ऊँची-ऊँची बातें कर सकें अपने कल्याण की नहीं, विश्व कल्याण की, अपने देश की सीमा की नहीं क्यूबा, कटांगा, लाओस और जर्मनी की सीमा की, अपने समाज की अपावन गरीबी, निर्लज्ज गन्दगी और जड अंधकार की नहीं।''[2] अतः वह मानता है कि आदमी अपने घोर सत्य का मुकाबला नहीं कर पाता वह अपने से भाग कर किसी असत्य की शरण लेता है, लीडर देश की जानता को मूर्ख बना कर हमारा नेता बनता है।[3].

कमल देश की वास्तविक समस्याओं से पूर्णतः परिचित है। उसे गरीबों के प्रति सहानुभूति है। उसका विचार है कि इस देश की मांग रोटी है। वह इस देश के प्रत्येक नागरिक को सहानुभूति उसके भीतर अपार है। देश का अपमान सुनकर उसे दुःख होता है। वह माँ से कहता है ''मैं देश में गरीबी, पिछ्डे देश हिन्दुस्तान का महज एक काला आदमी था। जगह-जगह मेरा अपमान। मेरे देश का अपमान। कोई कहता था कि हिन्दुस्तान जादू, मंत्र, ज्योतिष और सांपों का देश है, कोई कहता हिंन्दुस्तान तारा का पत्ता है जिसे एक ओर रूस फेंकता है और दूसरी ओर से अमेरिका।[4]

---

१. रक्त कमल - भूमिका, पृ० ६६
२. वही पृ० ८३
३. वही पृ० ३८
४. वही पृ० ४१

देश की वर्तमान चतुर्दिक दुरवस्था को देख उसका दिल कराह उठता है। वह सोंचता है 'ईश्वर ने हम सबको केवल मनुष्य बनाया है किन्तु मनुष्य ने यहाँ अपने आपको कहीं दुःखीराम, कहीं सुखीराम कर लिया है। अनेक जाति अनेक धर्म, इस तरह अपने आपसे ही दूर हो गया है। आपसे ही दूर हो गया है- अपने आप में ही बाँट गया, जिसका दाँव लगा वह सदा के लिए अमीर, जो दाँव हार गया वह सदा के लिए गरीब।[1]

नायक गरीबी के साथ ही साथ देश के विभिन्न क्षेत्रों की असफलता पर भी दुःखी होता है। उसका दुःख अत्यन्त व्यापक है। वह कहता है "मेरा दुःख इस देश के समूचे जीवन को लेकर है। इसके खंडित, अस्त-व्यस्त शरीर से लेकर इसके विखरे मन, अस्वस्थ प्राण और इसकी सोई हुई आत्मा तक मेरा दुःख फैला है।[2] सर्वेभवन्तु सुखिनः का प्रचारक- रक्त कमल का नायक अपने कार्यों द्वारा सम्पूर्ण समाज को सुखी देखना एवं बनाना चाहता है। वह प्रगतिशील भूमिका द्वारा नई क्रान्ति लाने के लिए कोशिश करता है। उसका विश्वास है कि समाज में परिवर्तन जनक्रान्ति से ही सम्भव है। डॉ0 श्याम शर्मा ने लिखा है "नायक (कमल) जनक्रान्ति का पक्षध ार है एवं उसका यथार्थ स्थिति में सम्पृवत व्यवहारवादी है। नायक अपनी आदर्श प्रगतिशील भूमिका द्वारा देश में बढ़ रही विषमता, गरीबी एवं भेदभाव को दूर कर मानवता का संदेश देता हुआ जीवन में नई चेतना, नई लहर, नई उमंग द्वारा देश की व्यवस्था को सुधारना चाहता है। वह नहीं चाहता कि देश का अपमान अन्य देश के नागरिक करें और न ही हमारा देश किसी और देश के हाथों खेलने वाला खिलौना बने। वह चाहता है कि भारतीय जन जीवन में सौहार्द, सहानुभूति तथा प्रेम का वातावरण पैदा हो, यहाँ लोग आत्मनिर्भर होकर अपना और देश का विकास करें। इस प्रकार नायक अपनी भूमिका द्वारा आदर्श मानवतावादी विचारधारा का परिचय देता है।[3] उसकी चरित्र सम्बन्धित कुछ विशेषताएं का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया

---

१. रक्त कमल, पृ० ४३ २. वही, पृ० ६६

३. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक - पृ० ६६

है।

(१) बाह्य वेशभूषा -

पहले कहा जा चुका है कि चरित्र का बाहरी पक्ष प्रभावित करने वाला माना गया है। नाटककार ने कमल को भव्य आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है "गौर वर्ण अवस्था पैंतीस वर्ष से अधिक नही। खाकी पैंट पर सिर्फ जवाहर बंडी पहने हुए। पैरों में चप्पल। अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व।[1]

(२) भारतीय-

कमल को अपने देश पर गर्व है यहाँ की संस्कृति विरासत सभ्यता एवं सामाजिक समरसता के व्यवहारिक रूप पर मुग्ध है। आर्थिक दृष्टि से जनता विपन्न है। अज्ञान के कारण विदेशियों ने यहाँ के धन को लूटा है तथा यहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हो गये हैं वे कहता है।

कमल- आप, मैं और ये सब अलग-अलग नहीं, एक ही समाज हैं। हमी देश हैं, राष्ट्र हैं और यह सच है कि हम सब गरीब हैं, मूल्यहीन है, अपाहिज है। पर हममें प्राण है। हमारे भीतर कहीं वह अदृश्य स्थान जरूर है जो हमसे रह-रहकर प्रश्न करता है। और हम अपने आपसे ही अपमानित होकर रह जाते हैं क्योंकि हम शुभ और सुन्दर को उत्तर नहीं देते हैं क्योंकि उसमें फिलहाल कोई लाभ नहीं दिखता, इसलिए हम उत्तर देते हैं सिर्फ अशुभ को.........असुन्दर को।[2]

(३) देश प्रेम -

अपने देश की संस्कृति पर गर्व करने का अर्थ है देश-प्रेम। कमल के मन में देश प्रेम की भावना मात्र शब्द जाल पर आधारित नहीं है। जब वह विदेश में था तब विदेशियों की भारतीयों के प्रति हेय दृष्टि से उसका मन आहत हो जाता था। जब वह विदेश से लौटा और कलकत्ते के हवाई अड्डे पर वहाँ के प्रायः सभी उद्योग पतियों के घर लोग कमल के स्वागत में खड़े थे तब कमल ने कहा था कि विदेश

---

१. रक्त कमल, पृ० २६

२. रक्त कमल, पृ० ३०

में पाँच वर्षों तक अपने प्रति अपने देश के प्रति केवल अपमान भोग कर लौटा हूँ।[1]

४. संवेदनशील -

कमल भावुक संवेदनशील है। उसकी आँखों में जो तेज भरा है वह दूसरे को प्रभावित करता है।

डॉक्टर- जी हाँ, कमल बेहद, सेंसिटिव है। और यह भी बात है महावीर बाबू, कमल की आँखों में बेहद प्रकाश है। बड़े भाग्य से ऐसा पुरुष किसी खानदान और समाज में पैदा होता है।[2]

(५) विचारक -

कमल उच्च शिक्षा प्राप्तकर आर्थिक दृष्टि से देश की सम्पन्न बनाने के लिए विचार करता है कि इस गरीबी के पीछे आर्थिक विपन्नता है।

कमल- आप, मैं और ये सब अलग-अलग नहीं, एक ही समाज है। हमी देश है। राष्ट्र हैं और यह सच है कि हम सब गरीब हैं। मूल्यहीन हैं, अपाहिज हैं। पर हममें प्राण हैं। हमारे भीतर कहीं वह अदृश्य स्थान जरूर है जो हमसे रह-रहकर प्रश्न करता है और हम अपने आपसे ही अपमानित होकर रह जाते हैं क्योंकि हम शुभ और सुन्दर को उत्तर नहीं देते क्योंकि उसमें फिलहाल कोई लाभ नहीं दिखता इसलिए हम उत्तर देते हैं। सिर्फ अशुभ को असुन्दर को....... कमल, चुप रहो। जानते हो तुम ये बातें किससे कह रहे हो। अपने आपसे अपने आपको कह रहा हूँ। (रुककर) जिस देश के सिर्फ प्वाइन्ट फोर प्रतिशत आदमी धनी हों, शेष सब गरीब हों, जिस समाज के दो प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहने वाले हों, शेष नंगें और भूखे हों, जहाँ सिर्फ ग्यारह प्रतिशत आदमी पढ़ें-लिखे हों शेष गँवार अंध-विश्वासी और अचेतन हो- यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक नहीं है तो क्या है?[3]

---

१. रक्त कमल, पृ० २६
२. वही पृ० २६
३. रक्त कमल पृ० ३०

(६) अभिनेता -

कमल जनता को जागरित करने हेतु एक नाटक का आयोजन करता है। जिसमें वह देवता बनता है। नाटककार ने इस देवता को भारतवर्ष के रूप में चित्रित किया है।

देवता– हाँ, मैं वही देवता हूँ। इस लबादे के नीचे मेरे शरीर के वे सारे घाव ढ़ँके हुए हैं, रास्ता ढूँढ रहा हूँ। रास्ते में जैसे सबके सब रास्ते खो गये। एक ने कहा– हमारे बीच इतनी लम्बी गुलामी ने ऐसी हालत पैदा कर दी कि यहाँ कभी कोई क्रान्ति न हो। लोग मेरे ही भीतर आपस में ही लड़ते रहे, ताकि मैं अपने– आपस एक होकर न कभी अपने आपको सोच ही सकूँ, न देख ही सकूँ। उसने कहा कि दस वर्षों के लिए मुल्क में डिक्टेटर नियुक्त किया जाए, जो पहले मेरा उपचार करे। देखो न मुल्क में एक घाव नहीं, एक बीमारी नहीं जिसका आजानी से इलाज किया जाए– मुल्क में तो असंख्य घाव, बेशुमार बीमारियाँ हैं।[1]

(७) निर्भीक-

कमल में सत्य बोलने की प्रवृत्ति है। यह निर्भीक होने से ही आती है। क्योंकि सत्य यथार्थ होता है। उसे बोलने के लिए व्यक्ति के मन दृढ़ संकल्प होना चाहिए। वह अपने पिता समान बड़े भाई से स्पष्ट रूप से कहता है।

कमल– झूठ है। तुम कभी नहीं चाहते कि इस देश की गरीबी दूर हो क्योंकि तुम लोग लखपति से करोड़पति और करोड़पति से अरबपति बनना चाहते हो। तुम लोग देश की एकता नहीं चाहते, क्योंकि तुम लोग समझते हो कि देश की एकता का मतलब है इस देश के सारे गरीब एक हो जायेंगें और तुम लोग जो इतने विशाल देश में प्वाइन्ट हाफ परसेन्ट से भी कम हो उस एक भारत के सामने कहीं के न रह जाओगे।[2]

यह निर्भीकता उस समय चरम सीमा में दिखाई पड़ती है जब वह यह सुनता

---

१. रक्त कमल, पृ० ६०

२. वही पृ० ५७

है कि डकैत बिल्लू सिंह के लोग रात्रि में पुनः गाँव में डकैती डालने आएंगें। यह सुनकर कमल तुरन्त गाँव की ओर चल देता है।

(८) हृदय परिवर्तन पर विश्वास -

कमल कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित है। जिसकी मूल अवधारणा यह कि मनुष्य मूलतः बुरा नहीं होता परिस्थितियाँ उसे वैसा बना देता है। अतः बुरे लोग के प्रति सहृदयता से काम लेना चाहिए। इससे उनका हृदय परिवर्तित हो जाएगा डकैत बिल्लू सिंह के सन्दर्भ में वह डाक्टर से कहता है।

कमल– हाँ विश्वास है मुझे। पर यह हृदय परिवर्तन अपने आपसे हो जाएगा। इसमें मेरा विश्वास नहीं। इस हृदय परिवर्तन के लिए पहले समाज के ढाँचे में परिवर्तन होना चाहिए जो मनुष्य को उसकी मनुष्यता से गिराकर उसे चोर डाकू और अपराधी होने के लिए विवश करता है। इस दूषित, भ्रष्ट हृदय की जिम्मेदारी हमारे आज के समाज पर है जो हमें उदार नहीं होने देता, जो हमारे भीतर प्रकाश नहीं आने देता।[1] इस प्रकार गाँधीवाद पर पूर्ण अवस्था व्यक्त करता हुआ वह वर्तमान के यथार्थ को इस प्रकार रेखांकित करता है।

कमल– गाँधी जी के रास्ते की मंजिल इस देश की आजादी थी। वह अपने इस महान् धर्म में पूर्ण हुए। किन्तु जब वह अपनी इस मंजिल को पारकर फिर देश को परिवर्तित करने चले, तो इसी कुरूप समाज ने उन्हें गोली मार दी क्योंकि आजादी के बाद वह केवल मसीहा थे, राजतंत्र नहीं। राजतंत्र तो उस समाज के हाथ में चला गया था जिसमें गुलामी के वे सारे नासूर अभी जिन्दा थे। –जातिवाद, सम्प्रदायवाद, प्रांतीयता, गुंडागिरी, अमीरी और गरीबी। और इस सबके बीच शक्ति प्राप्त करने की भयानक भूख।[1]

(९) आशावादी -

कमल की दृष्टि समकालिक यथार्थ अधिक रही है जिसके कारण सत्य बात

---

१. रक्त कमल, पृ० ७५

कहने पीछे उसके मन कटुता और निराशा अधिक थी किन्तु इस मरूस्थल में अगस्त्य के रूप में नखलिस्तान दिखाई देता है। कमल उसे नव मानवता का प्रतीक मानता है वह सचमुच पौराणिक अगस्त्य के रूप में उदित होगा। जो स्वार्थ, विषमता और विघटन के समुद्र को सोख लेगा।

कमल– तुम्हारा काम ?..................नहीं मालूम..................सुनो ....मानवता का प्रकाश, उसकी समानता, एकता और मनुष्य का गौरव इतिहास के इस भयानक समुद्र ने अपने भीतर घूँट लिया है। इसके बाहर केवल स्वार्थ, द्रोह, विश्वासघात, विघटन और मूल्यहीनता का क्षुब्ध हा हा कार सुनाई दे रहा है। मेरे नये अगस्य! तुम्हें इस विषाक्त समुद्र को सोखना है। ताकि हमें मनुष्य का वह विलुप्त प्रकाश, उसकी समानता, एकता और उसका गौरव वापस मिला सकें।[1] तात्पर्य यह कि कमल देश की आर्थिक एवं राजनीति परिस्थितियों का चिन्तक है। वह पूँजीपति वर्ग से अवश्य है किन्तु देश की विषमता को देखकर उसका हृदय द्रवित हो उठता है और वह ऐसे युवक का प्रतीक है जो अपने व्यक्तिगत सुख साधनों की तिलांजलि देकर देश को एक न्याय मार्ग में ले जाने के लिए कटिबद्ध है। कमल वर्तमान निराशा से उत्पन्न आशा का ऐसा तेज पुंज है जिससे भारत की प्रगति का नया मार्ग खोजा जा सकता है। रक्त कमल की मूल चेतना का वह बाहक है। वह पूर्णतः यूटोपियन पात्र प्रतीत होता है। स्वयं लाल का यह कथन है कि वह "मिथ" जैसा चरित्र है। सार्थक लगता है। कमल इस समाज की रचना तो हो ही नहीं सकता क्योंकि आज की सामाजिक परिस्थितियाँ ही इतनी मुखर नहीं है कि उनमें कमल जैसा पूर्ण चरित्र जन्म ले। वह तो महामानव है जो समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्र में मनुष्य का वह प्रकाश, उसकी समानता, एकता और गौरव को पुनः लौटकर लाना चाहता है। कमल शोषक और शोषित के संघर्ष को समाप्त कर देना चाहता है। इस संघर्ष के मध्य वह विदेश प्रवास से गुजरा है और अपने हिस्से में उसने अपमान और शोषण पाया

---

१. रक्त कमल, पृ० १११

है। इससे उसमें चेतना की नयी लहर डाली है। जिसे वह अपनी समसामायिक और आने वाली दोनों पीढ़ियों में भर देना चाहता है। इसी चेतना के बल पर वह समानता और स्वतन्त्रता का नारा बुलन्द करता है– जिसे देश के सिर्फ प्वाइन्ट फोर प्रतिशत आदमी धनी हो, शेष सब गरीब हों, जिसे समाज के दो प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहने वाले हों, शेष नंगे और भूखे हों, जहाँ सिर्फ ग्यारह प्रतिशत आदमी पढे लिखें हो शेष गंवार, अंधविश्वासी, अचेतन हों– यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक नहीं तो क्या है। कमल की आवाज में किसी सामयिक, राजनीतिक चेतना का वह स्वर ही नहीं है जो उसे किसी तात्कालिक सत्ता यह व्यक्ति के परिवर्तन मात्र की प्रेरणा देता है प्रत्युत फिर वह इतिहास दृष्टि है उसके अन्दर से उदबुद्ध हुई है इसलिए उसके सामाजिक परिवर्तन की दिशाओं का इतिहास की सीमाओं से प्रेरणा मिलती है–" इतिहास हमें सिर्फ दस वर्ष का समय दे रहा है इस अवधि में यदि हमने इस जनशक्ति को नहीं जगाया और उसे एकता में बाँधकर देश के निर्माण में वहीं लगाया तो हम कहीं के रह जायेंगे।[1]

सम्पूर्ण दृष्टि से देखा जाये तो कमल एक व्यक्ति नहीं, संस्था है जो ममता कनु सारंग जैसे अनेक दलितों को लेकर, उन्हें प्रेरणा देकर चलता है। गुरू राम जैसी पशु शक्तियों के हृदय परिवर्तन का कारण बनता और अगस्त्य के आदर्श वाली नई पीढी के लिए मार्गदर्शक भी बनता।

नायक का विचार है कि देश में फैली तानाशाही और शोषण की प्रवृत्ति तथा मध्यमार्गी नीति देश के विकास मार्ग में बाधक है। उसे किसी भी राजनीतिक विचारध ााराओं, धार्मिक संस्थाओं पर विश्वास नहीं होता वह मानवीय भावों से प्रेरित होकर वर्ग वैषम्य, अराजकतावादी नीति, वर्ग संघर्ष स्वार्थ भावना से परिप्लावित नीतियों एवं लोगों का विरोध करता है।

संजय -

संजय "करफ्यू" का दूसरा महत्वपूर्ण पात्र है। वह एक मँजा हुआ अभिनेता,

---

१. रक्त कमल पृ० १११

सशक्त कलाकार है। कला उसके जीवन में त्याग, सौन्दर्य की अपेक्षा अहंकार उत्पन्न करती है जिसके कारण वह अपनी पत्नी को छोड़ देता है। कविता से भेंट के समय उसका यह अहंकार विभाजित हो जाता है और उसे पता लगता है कि वह उसका व्यक्तित्व किस सीमा तक पलायनवादी बन गया है। घर में आयी हुई स्त्री के प्रति वह आशंकित है। वह कहता है- जितनी देर आप चाहे रुकें। हाँ एक बात बता दूँ, मैं यहाँ अकेला हूँ यानि कोई स्त्री नहीं है घर में।[1] वर्तमान जीवन में व्याप्त निःसारता, अतिनाट्कीयता ने उसे एकान्त प्रिय बना दिया है। संजय को इन सब बातों से घृणा है। वह कहता है- एक अजीब जमघट होता है। इन पार्टियों में। लेखक, निर्देशक, अभिनेता, आलोचक सभी होते। बहाना नाटक व रंगमंच की समस्याओं पर विचारों का आदान प्रदान। मकसद शराब पीना, रिकगनीशन पाने की होड में दूसरों की उखाड़ पछाड़ करना और अपना एक विशेष स्थान बना लेने की कोशिश करना। पहले जाया करता था मैं भी, लेकिन अब दहशत सी होने लगी है यह सब देखकर। ठीक काम करने की बजाय अपनी तूती बजाना ही कुछ लोगों का ध्येय बन चुका है। छोटे-छोटे क्लिक, म्युचुअल एप्रिसियेशन, क्लब्स बनाकर चलते हैं। संजय कविता के साथ नाटक करते हुए स्वयं को जानने का प्रयास करता है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने अपनी डायरी के नोट्स में लिखा है। संजय ने अपनी पत्नी को छोड़ दिया है और अपनी कला के अभिमान में एक अहंकारी जीवन जी रहा है। लेकिन जब वह कविता के सम्पर्क से यह महसूस करता है कि उसका अहंकार कितना छोटा है और उसका व्यक्तित्व कितना भागने वाला है, तब वह पहली बार स्वयं पर सोंचने पर विवश होता है। उसके व्यक्तित्व को तब और चुनौती मिलती है, जब कविता अपने भावुक व्यक्तित्व से संजय को भी उसी पुरुष के रूप में देखने लगती है और उसे भी अपनी कायरता का (हिम्मत) शिकार बनाना चाहती है।[2]

---

१. रक्तकमल, पृ० १४६

२. करफ्यू, भूमिका - पृ० १३

(१) अभिनेता-

संयज रंगमंच का मँजा हुआ अभिनेता है। उसके अभिनय को देखकर कविता उस पर श्रद्धा करती है। करफ्यू के समय कविता उसके घर में शरण लेने पहुँचती है।

कविता- आप मुझसे परिचित नहीं है लेकिन मैं आपको जानती हूँ। आपको कई बार मंच पर देखा है अलग-अलग रूपों में असली रूप में पहली बार देख पा रही हूँ। आपकी नेमप्लेट देखकर निःसंकोच चली आई।

संजय- जितनी देर आप चाहे रूकें। हाँ, एक बात बता दूँ मैं यहाँ अकेला हूँ।

कविता- कैसी बात करते हैं, आप पर अविश्वास तो मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकती, अपने पर शायद उतना न हो आप पर है। आपके नाटक देख-देखकर एक आदर भाव पैदा हो गया है मन में। आप सा कलाकार अभिनेता मैंने किसी को नहीं पाया।[1] ....लगता है आप हरदम अभिनय करते हैं। ....आपके बोलने चालने में एक-एक मतलब........................एक कला होती है।[2]

संजय को पार्टियों में सम्मिलित होना बेमानी लगता है क्योंकि नाटक के बहाने छोटे-छोटे स्वार्थो की पूर्ति ही यहाँ होती है। वह खाली समय में रिहर्सल करता रहता है। कविता पूँछती है।

कविता- जिस समय मैं आई, उस समय आप

संजय- अकेला रिहर्सल कर रहा था क्योंकि और लोग नहीं आ सके। समय इतना कम रह गया है और आज रिहर्सल हो नहीं पाई।

कविता- आप हमेशा अभिनेता की तरह ही बोलते हैं।[3]

संजय कहता है कि नाटक के पात्र के व्यक्तित्व को कुछ दिन ही सही महसूस किया, पूरी तरह जिया भोगा, एक तेज शिद्दत के साथ उसे.....हम अभिनेता हैं।[4]

---

१. करफ्यू, पृ० ४६
२. वही, पृ० ४६-५०
३. वही पृ० ५२
४. वही पृ० ७३

(२) वासनाभिभूत-

संजय रंगमंज का मँजा हुआ कलाकार है। कला के अभिमान के कारण ही वह अपनी पत्नी को छोड़ बैठा। उसके जीवन में अनेक युवतियाँ आती हैं किन्तु दंभ के कारण वह उन्हें विशेष महत्व नहीं देता। करफ्यू के कारण उसके घर में कविता शरण लेती है और रिहर्सल के मध्य भावुक क्षणों में कविता वास्तविक दृश्य पैदा करने का साहस दिखाती है तब संजय का अभिमान खंडित हो जाता है कि वही नाटक में वास्तविक अनुभव कर उसमें जान डालता है। कविता के भावपूर्ण अभिनय को वास्तविक मानकर उससे प्रणय निवेदन करने लगता है, तभी से खोल या आवरण से बाहर आता देख उसे कामी समझ कविता समर्पण हेतु प्रतिरोध करने लगती है-

संजय- क्या कर रही है? (संजय के खुले सीने में मुँह गडा देती है).. आपकी तबियत ठीक नहीं है?

कविता- थोडी रोशनी कम कर दूँ। (टेबुल लैम्प बुझा देती है)

संजय- कवित..........मैं तुम्हें।

कविता- मुझे? सच?

संजय- तुम चाहो तो...........

कविता- चाहती हूँ। (संजय धीरे-धीरे उसे अंक में भर लेता है)

कविता- (सहसा) नहीं। ....नहीं, नहीं, मैं नहीं कर सकती

संजय- चाहती नहीं?

कविता- चाहती हूँ पर ....

संजय - झूठी..............बुजदिल...............कायर..........क्यों यह सब किया।[1]

(४) यथार्थ जीवन से दूर-

पहले लिखा जा चुका है कि संजय मूलतः रंगमंच का मंजा हुआ अभिनेता है। वह अपने द्वारा अभिनीत चित्रों का संग्रह नहीं करता, नाट्य समीक्षकों द्वारा की

---

१. करफ्यू, पृ० ८०

गयी प्रशंसात्मक टिप्पणियों को अधिक महत्व नहीं देता है। कविता उससे प्रश्न करती है कि वह केवल नाटक को ही समझता है, जीवन को नहीं।[1] इसके प्रत्युत्तर में संजय स्वीकार करता है कि वह कभी जीवन से उस तौर पर जुड नहीं पाया। मैंने नाटकों के साधारण से जीवन को जाना-समझा, जीवन के माध्यम से नाटकों को नहीं।... ....नाटकों के चरित्र समझता रहा हूँ, जीवन चरित्र नहीं समझ पाता।[1] वह अपने अन्तर्द्वन्द्व को प्रगट करते हुए स्वीकार करता है। "मैं क्यों अपने इर्द-गिर्द बिखरे हुए चरित्रों को समझ नहीं पाता ?[2] क्यों मुझे उनकी छोटी से छोटी क्रिया-प्रक्रिया अजीब लगती है ? शायद इसी कारण मैं किसी से कोई सम्बन्ध निभा नहीं पाता।[3] वस्तुतः संजय नाटकों की दुनिया में रहकर स्वयं एक चरित्र बन गया है।

५. राजन-

मिस्टर अभिमन्यु संशय ग्रस्त पात्र है। नाटक में इसका नाम राजन है। वह जिले का कलेक्टर है। उसके मन में इड एवं इगो का संघर्ष चलता रहता है। कभी ऐसा लगता है कि वह सचमुच में परिवेश के विरूद्ध विद्रोह करना चाहता है कभी ऐसा लगता है कि यह विद्रोह सुनियोजित, आभिजात्य वर्ग का आड़ंबर युक्त विद्रोह हैं इस सम्बन्ध में डॉ0 श्रीकान्त वर्मा ने काफी कुछ भूमिका में लिखा है, जिसका सारांश यह है कि मिस्टर अभिमन्यु नाटक का नायक था कि प्रतिनायक मिस्टर राजन अपने होने की शर्त पूरी नहीं कर पाता, बाहर निकलना चाहता है। ढ़ाई हजार वर्ष पहले लिखे गये महाभारत का अभिमन्यु भी बाहर निकलना चाहता है- उसे प्रवेश करना सिखाया गया था, बाहर निकलना नहीं। लेकिन महाभारत के अभिमन्यु और डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल के अभिमन्यु में जिसे मि0 अभिमन्यु कह कर उन्होंने विडम्बना को उजागर किया है, एक बुनियादी फर्क है। अभिमन्यु सचमुच ही बाहर निकलना चाहता था, जिसके लिए उसने सच्ची लड़ाई लड़ी थी और वह मारा गया

---

१. करफ्यू, पृ० ६३
२. वही पृ० ६४
३. वही पृ० ६४

था, लेकिन मिस्टर अभिमन्यु बाहर नहीं निकलना चाहता–उसे केवल भ्रांति है, कि वह बाहर निकलना चाहता है। इस भ्रांति को बनाये रखने के लिए वह एक लड़ाई भी लड़ता है, जो झूठी नहीं सच्ची लड़ाई है– केवल इतना है कि वह एक अनिर्णय में पड़े व्यक्ति की लड़ाई है। उस व्यक्ति की नहीं जो निर्णय ले चुका हो। मिस्टर अभिमन्यु ही हार केवल हार है, वह आधुनिक व्यक्ति की त्रासदी और विडम्बना की तत्सम अभिव्यक्ति है, जिसकी मृत्यु महान् नहीं और जिसका जीवन पराक्रम नहीं। एक तरह से शौर्य और महानता का युग समाप्त हो चुका है, केवल निजी लड़ाइयाँ बची हैं। जिस आर्थिक सभ्यता का उदय गत पचास वर्षों में भारत वर्ष में हुआ है, उसमें पूँजीपति केजरीवाल सरमाये दारी का, राजनैतिक प्रवक्ता गयादत्त, कलेक्टर राजन के दुनिया दार पिता जी और मूल्यों की चुनौती से अनभिज्ञ उसकी पत्नी, भ्रष्ट–अफसर मंत्री और पुलिस और सबसे अधिक स्वयं राजन प्रतीक बना है। यहाँ हर व्यवस्था अंततः एक षडयंत्र में परिणत होती है। राजन की त्रासदी वहाँ से शुरू होती है, जहाँ वह यह अनुभव करता है कि वह इस षड्यंत्र में शामिल है। राजन का कैरियर उसके पिता ने चुना है। उसके कपड़े उसकी पत्नी में चुने हैं। उसका सब कुछ दूसरों ने उसके लिए चुना है। उसकी जिन्दगी में अन्य की अपेक्षा यह सवाल उभरता है कि वह क्या केवल व्यवस्था का एक अंग मात्र होकर रह जायेगा। एक दिन उसे पता चलता है कि उसकी तरक्की हो गयी है। असंस्कृत, मर्यादाहीन गयादत्त के जिससे उसे जुगुप्सा होती है, उपचुनाव में जीतने का पुरस्कार उसे दिया जा रहा है, उसे कलेक्टर से कमिश्नर बनाया गया है और उसे एक बड़ी साजिश में फँसाया जा रहा है। यद्यपि गयादत्त की जीत में उसका कुछ भी योगदान नहीं रहा। राजन के व्यक्तित्व का संकट इसी बिन्दु से शुरू होता है और उसकी लड़ाई थोड़ी दूर चल कर सहसा समाप्त हो जाती है। समग्र व्यवस्था से लड़ने का उपक्रम करता हुआ वह अचानक अपने ही भीतर के एक चौदह वर्षीय किशोर (राजन) से पूरी तरह पराजित हो जाता है। दरअसल राजन एक अभिशप्त व्यक्ति है। वह त्यागपत्र देना चाहता है

पर देता नहीं, वह केजरीवाल का गोदाम सील करता है, पर आदेश की अवहेलना नहीं कर पाता। वह व्यवस्था को नापसन्द करता है, पर उसे तोड़ नहीं पाता। वह व्यवस्था के बाहर नहीं आता। बाहर आने के अपने खतरे हैं भीतर घुटन है, मगर सुरक्षा भी। बाहर मुक्ति भी है लेकिन मृत्यु भी है। यह संदिग्ध है, कि क्या सचमुच ही राजन बाहर आना चाहता था, या कि उसका सारा विद्रोह एक अभिजात्य की सौन्दर्य विलासिता मात्र थी। उसे योगदान से नफरत क्यों होती है? क्या इसलिए कि गयादत्त शोषण और सरमायेदारी का पोषक है या इसलिए कि गयादत्त एक फूहड़ व्यक्ति है? इस संदेह का कारण है, राजनीति के प्रति राजन की वितृष्णा। अगर राजन गयादत्त की राजनीति का विरोधी होता तो वह बाहर आ भी सकता था मगर गयादत्त की राजनीति का विरोधी राजन नहीं आत्मन है। गयादत्त से और उसके माध्यम से केजरी वाल से वास्तविक लड़ाई राजन नहीं आत्मन लड़ रहा है। जिन्दगी राजन की नहीं, आत्मन की खतरे में है मारा राजन नहीं आत्मन जाता है। राजन आत्मन हो सकता था मगर वह कभी भी आत्मन न हो सका। मिस्टर अभिमन्यु के माध्यम से यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या हम भी किसी चक्रव्यूह में नहीं घिरे हुए हैं, जिससे बाहर निकलने की पर्याप्त इच्छा और संकल्प हमारे पास नहीं है। हमारी त्रासदी यह नहीं है कि हम अभिमन्यु हैं बल्कि यह है कि हम अभिमन्यु नहीं हैं। हम मिस्टर अभिमन्यु हैं।[1] मि० अभिमन्यु का केन्द्रीय पात्र राजन हैं। डॉ० लाल ने चारित्रिक स्तर पर आज के वेतन भोगी और सुविधा परस्त विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण राजन द्वारा किया है। वह अपने अन्दर तीन प्रकार के व्यक्तित्व समाहित किये है। डॉ० दयाशंकर शुक्ल ने लिखा है- ये तीनों ही पूर्ण नहीं हैं, खण्डित हैं। लेकिन तीनों मिलकर राजन का निर्माण करते हैं। ऐसा राजन जो सत् असत प्रवृत्तियों को पुज है। ये तीनों व्यक्तित्व हैं। गयादत्त और आत्मन औद दोनों के मध्य झूलता राजन।

---

१. मिस्टर अभिमन्यु- भूमिका

यह राजन अपने निर्णयों को राजन की दृष्टि से निर्धारित करता है लेकिन उनका अन्त गयादत्त द्वारा हो जाता है।[1]

राजन ''कलेक्टर'' है। उसकी पत्नी विमल है। सरकारी अधिकारियों की नियति ही उसकी नियति है। एक दिन उसे पता चलता है कि उसकी प्रोन्नति हो गयी है और इसके पीछे जो कारण है वह राजन की कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी और कदाचार रहित कर्तव्य की नहीं है अपितु असंस्कृत, मर्यादाहीन, गयादत्त को ''बाई इलैक्शन'' में जितवाने की आशंका के कारण है। वह समझता है कि उसे किसी षड्यन्त्र में फँसाया जा रहा है। वह कहता है– उसका मतलब था ''बाई एलेक्शन'' में मैंने बेईमानी की है और यह ''कमिश्नरी'' मुझे उसी के ईनाम में दी गयी है– ''दिस इज समथिंग हरिबुल''।[2]

वह अपनी कर्तव्य निष्ठा के कारण ही वेजरीबाल के फायर आर्म्स जब्त करवाये राजस्व वसूलने हेतु उसके मिल को सील करवा दिया। पिता के विरोध करने पर वह कहता है कि मैंने ''एक्शन ले लिया, यह देखिए.....................यह देखिये। मेरी जिम्मेदारी थी कि सारे टैक्स वसूल किए जाए।[3]

उसकी कर्तव्य निष्ठा के सम्बन्ध में उसके पिता कहते हैं कि तुम अपनी ईमानदारी और वेदाग हुकूमत के लिए पूरे सूबे में मशहूर हो। यह मेरे लिए फक्र की बात है।[4] राजन साधारण पदाधिकारियों में भिन्न है। अपने विरूद्ध षड्यन्त्र को समझकर वह त्याग पत्र देता है। जिसका विरोध सभी परिवार जन वाले करते हैं। पत्नी विमल के प्रेम भरे आग्रह और बच्चों के स्वर्णिम भविष्य के प्रति आशंकित होकर वह गयादत्त के षड्यन्त्र के विरूद्ध नहीं जा पाता क्योंकि उसे भय है कि आत्मन की हत्या में उसे फँसाया जा सकता है और इस प्रकार उसका मनोदन्द ऐसे चक्रव्यूह में फँस जाता है। जहाँ से अन्धी गली का रास्ता प्रारम्भ होता है। वह कहता

---

१. लक्ष्मी नारायण के नाटक और रंगमंच पृ० १०६

२. मिस्टर अभिमन्यु, पृ० ५

३. वही, पृ० ६

४. वही पृ० ६

है- सुद हारकर फिर अपने एक-एक अंग से लड़ने का नाटक आत्मन से तेरा कोई सम्बन्ध नहीं। वह तुझसे तभी छुट गया जब तू यहाँ घुसा। आत्मन्। गयादत्त, राजन, केजरीवाल सबसे अपने चारों ओर नकली लड़ाई का एक चक्रव्यूह.........मैं रात दिन लड़ता रहा।[1]

राजन के चरित्र का यह त्रिकोणात्मक संघर्ष वस्तुतः आज के मनुष्य के अन्तस का सामूहिक व्यक्तित्व प्रस्तुत करता है। उसके अन्दर गयादत्त और आत्मन जैसी दो शक्तियाँ अपने-अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है। और परिणामतः एक अपेक्षाकृत सीधे सरल मार्ग की ओर घूम जाती है।

६. हेरूप -

यह कलंकी नाटक का नायक है। हर युग के समान आधुनिक काल में भी स्थितियों तथा मूल्यों के परिवर्तन की बात कही जाती है किन्तु सत्ता के शीर्ष पुरूष ऐसा तंत्र-जाल फैलाते हैं कि जनता को यथार्थ का बोध ही न हो या किसी प्रकार का परिवर्तन हो क्योंकि वर्तमान का यथार्थ बोध भय और आतंक उत्पन्न करता है। राजनीतिज्ञ, शासन व्यवस्था से जुडे लोग सच्चाई का सामना करने से कतराते हैं। डॉ० लाल ने लिखा है कि यथार्थ की सच्चाई का सामना करने के संयोग आ भी जाते हैं, तब भी हम उससे भाग निकलते हैं और यदि वह निर्लज्ज यथार्थ मुँह फाड़कर हमारे मार्ग पर ही आ खडा हो तो हम अन्य उपायों के अभाव में अपनी आँखें ही बंद कर लेते हैं।[2] मनुष्य के जीवन में शासन-तंत्र का भय किसी न किसी रूप में बना रहता है। नाटककार की मान्यता है कि यह प्रशासन का ऐसा अस्त्र है, जो विद्या (तंत्र) के नाम पर व्यक्ति की आन्तरिक हत्या करता है और उसे अपने अनुरूप जड़ बना कर गुलामी के लिए विवश करता है। इस सबके विरूद्ध जो मात्र प्रश्न करता है, उसे यह तंत्र क्षमा नहीं करता और उसे प्राणदण्ड देता है।[3]

---

१. मिस्टर अभिमन्यु पृ० ६६
२. कलंकी, भूमिका पृ० ७
३. वही पृ० १४

कलंकी नाटक में पौराणिक पात्रों द्वारा आधुनिक युग के यथार्थ बोध की अभिव्यंजना हुई है। इसमें हिन्दू मिथक का प्रयोग आधुनिक जीवन बोध की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। कल्कि अवतार की कथा पुराणों में मिलती है। जहाँ वर्णित है, कि कलयुग में मानव इतने पतित क्रूर कर्म करने लगेगा कि जीवन में आपाधापी मच जाएगी। चारों ओर समस्याएं ही समस्याएं मुँह फैलाये रहेंगी। ध र्म स्खलित लोग पापाचार में लिप्त रहकर नैतिकताविहीन हो जाएंगे, ऐसे सभय में कल्कि अवतार होगा। कल्कि ही सारी समस्याओं का समाधान करेगा।

आधुनिक पात्रः-

हेरूष पौराणिक मिथकीय पात्र है साथ ही वर्तमान जीवन से संपृक्त आधुनिक पात्र है। वह कल्कि अवतार के भक्तों से प्रश्न करता है क्या उपासना मात्र से ही समस्याएं सुलझ जायेंगी। उसकी धारणा है, कि किसी तांत्रिक पद्धति से समस्याओं का हल नहीं किया जा सकता है। समस्याओं से जूझना पड़ता है। नायक जन सामान्य को जागरूक बनाना चाहता है। इस प्रकार अपने चिन्तन एवं व्यवहार की दृष्टि से नायक नई पीढ़ी का प्रतिनिधि, जनतंत्र का समर्थक एवं मानवीय गरिमा का रक्षक कहा जा सकता है। वह जनता को सजग, सतर्क, सचेष्टा करता है, कि वह वस्तु स्थिति से तदैव परिचित रहे क्योंकि सत्ता का रहस्य है 'मनुष्य को पहले दिशाहीन करना, वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर निर्वीय कर उन्हें शव बना देना, फिर उसकी गणना करते रहना। उनके यथार्थ से उन्हें बैलों की तरह हाँक कर अयथार्थ के जंगल में डाल देना और हर क्षण संशय को संकल्प में विद्रोह का स्वीकार में बदलते जाना।[1] इस प्रकार नायक अपने कार्यों से अपने युग के मनुष्य का यथार्थ एवं जीवन बोध से साक्षात्कार कराना चाहता है।

भयभीतः-

प्राणवेधी स्वरों को सुनकर हेरूप भयभीत होकर भागने लगता है। वह अपनी रक्षा की पुकार लगाता है। तीन कृषक उसका परिचय पाकर रक्षा का वचन देते हैं-

---

१. कलंकी, पृ० १६

हेरूप– मुझे निर्भय करो। जो मेरा पीछा कर रहा है, वह यहाँ नहीं आये। यदि वह यहाँ आ भी जाये तो तुम सब मुझे अपने अंक में छिपा लोगे। ....प्रतिज्ञा करो, किसी भी मूल्य पर तुम मुझे इस नगर से बाहर नहीं जाने दोगे।[1]

पिता से दण्डित –

हेरूप अपनी व्यथा कहता है कि उसे प्रश्न एवं दण्ड के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है–

हेरूप– प्रश्नों की इस शर शैय्या पर लहू लुहान मैं हर क्षण बैठा रहता था। पितृ अपने हाथों से मुझे दंड देते और मुझे हर तरह से डराया जाता। मेरी आँखों पर काली पट्टी बाँध दी गयी। मैं एक बंद रथ में डाल दिया गया। सहसा पितृ कास्वर मेरे कानों में टकराया 'सुनो, सुनो नगर वासियों, मैंने अपने पुत्र को विक्रम विहार में भेजा है तंत्र–विद्या का रहस्य जानने।[2]

साहसी– हेरूप अत्यन्त साहसी है। वह अवधूत को ललकारता है–

हेरूप– अवधूत यदि तुझमें साहस है, तो प्रत्यक्ष में सामने आ। ओ ढोंगी, पाखण्डी, अपनी अधूरी दुनिया से बाहर निकल क्या कहा तू बाहर नहीं निकलेगा। तो सुन पूरे नगर से चिल्ला–चिल्ला कर कहूँगा–तू कायर है, क्लीव है, झूठ है.....[3]

हेरूप स्पष्ट करता है कि असली अपराधी तो वह है, क्योंकि उसने पशुवत बाँध कर उसे अंध गह्वर में डाल दिया था। वह कहता है–

हेरूप– पुरपति होकर जिसने इस नगर को व्यर्थता, निवीर्यता के पथ पर छोड़ा, अपनी सत्ता को यहाँ स्थापित रखने के लिए जिसने अपरिवर्तनीयता के भ्रम फैलाये, उसी ने अपनी कायरता पूर्ण मृत्यु के बाद अब तुझे यहाँ भेजा।[4]

---

१. कलंकी, पृ० ६–७
२. वही, पृ० ८
३. वही पृ० १३
४. वही पृ० १४

सत्य का साक्षात्कार कर्त्ता-

हेरूप अपने प्रश्नों से सत्य का साक्षात्कार करना चाहता है। उसने अवधूत प्रचलित पंच मकार की साधना को मिथ्याडम्बर, सत्य से परे कहा है। तांत्रिक कहता है-

तांत्रिक- तंत्र विद्या की अवज्ञा की। सत्य केवल मनुष्य है, यह अधर्म प्रचार करना चाहा। अंतिम सत्य मानव विवेक है यह तूने विद्रोह फैलाना चाहा।[1]

गौतम -

यह करफ्यू का मुख्य पात्र है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। उसके सम्बन्ध में डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है, कि गौतम एक सम्पन्न युवा पति है, जो एक मिल संचालक भी है। इसका जीवन इसी के द्वारा और शायद अभिजात तत्वों, परम्पराओं द्वारा बनाये हुए किन्हीं दृश्य-अदृश्य, परोक्ष-अपरोक्ष हदों, सीमाओं, नियमों शर्तो सभ्यताओं के भीतर बन्दी होकर जिया जा रहा है। इसका यह जीवन ऊपर से ऐसे शांत तालाब की तरह है , जिसमें प्रत्यक्षतः शायद कहीं कोई भी भंवर या लहर नहीं है। इसके घर में मनीषा आती है और एक-एक पर्त को प्याज के छिलके की तरह खोलती हुई चली जाती है, और इस प्रक्रिया को जब वह गौतम के व्यक्तित्व पर लगे हुए करफ्यू को तोड़ती है, तो इसके इसकें भीतर एक ऐसा बंदी तथा ऐसा अस्वाभाविक पुरूष मिलता है, जो कोई भी स्वाभाविक काम करने के लिए तैयार नहीं है, वह एक हिंस्र पशु की तरह सामने प्रकट होता है।[2] उसके चरित्र के कुछ पक्ष इस प्रकार से व्यंजित हैं,-

१. आधुनिक आदमी :-

गौतम सम्पन्न मिल मालिक है। उसके घर अभिजात्य वर्ग की सभी सुख सुविधाएँ उपलब्ध हैं। मनीषा उसके घर आती है और मुखर होकर उसके जीवन सम्बन्धी आदतों पर प्रश्न पर प्रश्न करती है और इस प्रकार गौतम धीरे-धीरे मनीषा

---

१. कलंकी, पृ० ३०

२. करफ्यू - भूमिका, पृ० १०

से खुलने लगता है। वह कहता है, कि यहाँ उच्च स्वर से हँसना, या बातें करना ठीक नहीं है, क्योंकि ऊपर उनकी 'वो' (पत्नी) सो रही हैं।

२. उदासीन :-

उदासीनता अभिजात्य वर्ग की नई प्रवृत्ति बन गई है, क्योंकि ऐसे लोग ध ान-मद या जीवन शैली के कारण समाज के साधारण वर्ग से दूर हो जाते है। गौतम ऐसा ही पुरुष है। मनीष उससे बच्चों के सम्बन्ध में पूछती है। उसका उत्तर द्रष्टव्य है

गौतम- (गम्भीर) वही जो रोज सोचता हूँ- रोज वही काम वही फैक्टरी वही घर वही पत्नी

मनीषा- बच्चे नही है। उनके बिना सूना-सूना नहीं लगता

गौतम- सूना-सूना लगता है मन में, क्या कमी है मुझे पर जैसे कुछ है, जिसका अभाव लगता है। हर समय[1]

मनीषा के यह कहने पर क्यों इतना डरता है आदमी एक दूसरे से क्यों हर समय उसे एक खोल की जरूरत रहती है, अपने को ढाँकने के लिए जो सिर्फ दिखने में मजबूत लगता है? क्यों नहीं वो अपना इन्ही विशन्स तोड़कर बाहर आ जाता![1] कारण क्या हमारी सडी-गली सामाजिक व्यवस्था नहीं? इन प्रश्नों के उत्तर से गौतम की आन्तरिक उदासीनता प्रगट हो जाती है

गौतम- लगता है मेरी जिन्दगी में अब कुछ नहीं रहा। आप कम से कम कल्पना के सहारे तो जी लेती हैं मैं वह भी नहीं कर सकता। सोचा था कविता जैसी लड़की से शादी कर हम कुछ.....आई मीन.........यू नो...सुना था मन पसन्द शादी बहुत बड़ी चीज होती है। मगर पता नहीं क्यों शादी के बाद जैसे सब कुछ.....[2]

चिन्तक -

गौतम शहर हुऐ दंगे के सन्दर्भ में कहता है कि शहर में जो कुछ हो रहा है

---

१. करफ्यू, पृ० २६

२. वही पृ० ३१

वह क्यो? एक दबी हुई बात जो सहसा फूट पड़ी है, किसी एक बहाने से यही सब लोग कर रहे हैं, बसों को निशाना बना रहे हैं, क्रान्ति का बहाना लेकर दंगे फसाद करते हैं। शान्ति भंग करते है, नियम तोड़ते हैं, जीवन की गतिलय को..[1]

शराबी -

शराब उच्च वर्ग की जीवन शैली बन गयी है। मनीषा के साथ बात-चीत में उसका असली रूप धीरे-धीरे सामने आ रहा है। वह शराब की गिलास लेकर मनीषा के सामने पीता है

गौतम- थोड़ी और ले लूँ।

मनीषा- बस-बस क्या कर रहे हो।

गौतम- थोड़ी सी और।[2]

पश्चाताप-

मनीषा के क्रिया कलापों से उद्वेलित हो गौतम हिंसक हो उठा था, परिणाम स्वरूप मनीषा उसके घर से भाग खड़ी हुई किन्तु मनीषा के वापस आने पर वह अपने पूर्वकृत् कार्यो के प्रति खेद प्रकट करता है

गौतम- आई एम बेरी सॉरी। शराब कुछ ज्यादा हो गई थी, इसीलिए मैं अपने आपे में नहीं रहा। मुझे माफ कर दों

मनीषा- माफी? किस बात की?

गौतम - मुझे वह सब नहीं करना चाहिए था। झूठ बोला था, तुम्हारे साथ जबरदस्ती करने की ......मैं शर्मिन्दा हूँ। इसलिए नहीं कि मैंने तुम्हारे साथ सोना चाहा-लड़कियों की मुझे कभी नहीं रही। तुम्हारी उम्र की बीसियों लडकियाँ मेरे यहाॅ काम करती हैं। उनमें से कुछ तो हर समय मेरे इशारे पर तैयार रहती है- इसलिए इस तरह का व्यवहार मैंने पहले कभी नहीं किया। इसलिए कि तुम्हारे विश्वास को ठेस पहुँचाई, मैने वह सब करके।[3]

---

१. करफ्यू, पृ० ३३

२. वही, पृ० ३६

३. वही पृ०, ८३-८४

सौन्दर्य पारखीं-

सौन्दर्य के प्रति आकर्षण अत्यन्त सहज, स्वाभिवक धर्म है। आभिजात्य, वर्गीय गौतम मनीषा के उन्मुक्त आचरण से उतना प्रभावित नहीं होता, क्योंकि तब वह सौन्दर्य को बाहर से देख रहा था। आन्तरिक सौन्दर्य का परिचय मनीषा के पुनः आगमन पर होंता है। आलिंगन बद्ध मनीषा पूछती है

मनीषा - मुझे नहीं देख रहे ?

गौतम - देख रहा हूँ।

मनीषा- क्या ?

गौतम- तुम्हारें चेहरे पर सहन करने से पैदा हुई कांति।

मनीषा- सिर्फ वही ?

गौतम- नहीं, उस कान्ति के कारण दमकता हुआ तुम्हारा रूप

मनीषा- इस रूप को अपनाना नहीं चाहते ?

गौतम - नहीं, अब नहीं चाहता। केवल, आँखों की ज्योति में बसा लेना चाहता हूँ।

मनीषा- तब तो चाहते थे।

गौतम- तब यह रूप कहाँ देख पाया था ?[1]

भावुकता :-

गौतम सम्पन्न यथार्थवादी युवक है। मनीषा के प्रत्यागमन और उसके आचरण कारण वह भावुक हो उठता है

गौतम- कितनी सुन्दर हो तुम कितनी निर्मल ?

मनीषा- पहले नहीं देखा था ?

गौतम- तब आँखें बंद थी, अन्दर बाहर अँधेरा था। उसमें साफ-साफ दिखा नहीं। अब लगता है, तुम्हारे सामने मैं एक नन्हा-सा बच्चा हूँ। सचमुच नन्हा बच्चा।[2] बाद में उसकी पत्नी कविता घर लौटती है और घर की अव्यवस्था देख वह अपने पर

---

१. करफ्यू, पृ० ८७

२. वही, पृ० ८८

व्यतीत हुई घटनाओं की यहाँ पुनरुक्ति हुई होगी, यह कल्पना करती है। उसे पूरे घर का नया अर्थ मिलने लगता है, और दोनो काल्पनिक घटनाओं का वर्णन करते हैं। गौतम पहली बार नये जीवन का नया अर्थ पाता है। पहले झूठ का सहारा लेकर वह बताता है कि करफ्यू के दौरान उसके यहाँ एक दम्पती ने शरण ली थी। कविता भी संजय के साथ गुजारे क्षणों का काल्पनिक वर्णन करती है।

साहसी :-

अपनी पत्नी से करफ्यू के मध्य घटित बातों की चर्चा करते-करते उसमें नया साहस उत्पन्न होता है। वह झूठ का नकाब उतार कर कहता है-

गौतम- यह क्या बकवास कर रहा हूँ। कब तक इस झूठ के भंवर में पड़ा रहूँगा। ये झूठे शब्द कल तक मुझे घेरे रहेंगे। यह करफ्यू कब टूटेगा। हे ईश्वर इनता भी साहस नहीं कि स्वीकार कर सकूँ? क्या हो गया है हमें ? जो इतना सच है, प्रकट है, निर्भय होकर क्यों नहीं कह पाता ? हे ईश्वर मुझे बल दो। कविता.........कविता. .....सुनो........ तुमने उसे अन्दर देखा.....वह सोई पड़ी है न। जब वह यहाँ पहली बार आई मैंने उसे देखकर अनुभव किया......मैं कितना डरा हूँ फिर मेरी कायरता। छी छी छी.......। हे ईश्वर मुझे वच बोलने का साहस दो मैंने उसके साथ बलात्कार करना चाहा, क्योंकि उसके आलावा और कुछ कर ही क्या सकता था। मैं आदि से अंत तक झूठ केवल झूठ बोलता रहा। जैसे केवल वही मेरी बुनियाद थी। वही मेरे भीतर. ....वही मरे बाहर। वह फिर लौटी .....मुझे जगाया। उसने कहा, यही कमरा पूरा शहर है जो सहज है, मानवोचित है, उस पर इतनी पाबन्दी क्यों? इतना डर क्यों? जो अपने भीतर का करफ्यू नहीं तोड़ते वही बाहर करफ्यू लगाते हैं। और उसे तोड़ने के लिए अपराध करते हैं। उसे अंक में लेकर पहली बार मुझे ईश्वर की याद आई. ....तुम्हारी याद आई।'

पति के नए रूप में -

गौतम कविता का पति है। करफ्यू के समय उसके और मनीषा के जो कुछ

---

१. करफ्यू, पृ० ११३-१४

भी घटित हुआ उसे झूठ, काल्पनिक घटनाओं द्वार कविता के समक्ष प्रस्तुत करता है, किन्तु कविता के नये रूप को देख वह भी नए रूप में, प्रगट होता है गौतम कहता है 'मै तुम्हें दूँ, तुम मुझे दो, हम तुम्हें दें, तुम हमें दे। जब मैं-हम हो जाएगा, तभी टूटेगा यह करफ्यू नहीं तो बार-बार टूटकर और मजबूत होता चला जाएगा।[1] डॉ0 लाल इस परिवर्तन की ही आकांक्षा करते हैं। वे लिखते हैं 'और अंत में गौतम कविता एक दूसरे को उस नये तलाशें नव प्रकट रूप में पाते हैं, जो उनके वास्तविक दाम्पत्य जीवन की नयी बुनियाद हो सकती है। उनके व्यक्तित्वों का यह नया डाइमेंशन जो उन्होंने इस प्रक्रिया से प्राप्त किया है, यह उनके जीवन को अधिक सम्पूर्ण और वास्तव में मनुष्य की तरह जीवन को अधिक सम्पूर्ण और वास्तव में मनुष्य की तरह जीवन जीने के लिए एक नया क्षेत्र देगा, जिसका उन्हें पता अब तक नहीं था।[2]

हिरण्यकशिपु :-

यह नरसिंह कथा का मुख्य पात्र है। पौराणिक कथाओं में ऐसे कुछ रूप होते है, जो अपने आयाम विस्तार के कारण समसामयिक तो होते ही है, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक भी होते है। नरसिंह कथा का हिरण्य कशिपु ऐस ही पात्र है जो एक ओर चरित्र है, जो दूसरी ओर मूल्य भी। शक्ति संचय कर सत्ता को अधिकार में लेकर स्वयं को ही सर्वशक्तिमान घोषित कर प्रजातंत्र के मूल को नष्ट करने लगता है ऐसा प्रतीक वह बन गया है। हिरण्यकशिपु उसके पूर्व जन्म की कथा का उल्लेख भी नाटककार ने किया है, कि एक दिन ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादि ऋषि वैकुण्ठ में जा रहे थे। उन्हें साधारण बालक समझकर द्वारापालों ने भीतर जाने से रोक दिया। इस पर उन्होंने क्रोधित हो द्वारापालों को यह शाप दिश कि मूर्खो! तुम यहाँ से पापमयी असुर योनि में जाओं। इस प्रकार शापित हो जब वे वैकुण्ठ से नीचे गिरने लगे तब उन सनकादि ऋषि ने कृपा कर कहा, अच्छा तीन जन्मों में इस शाप को

---

१. करफ्यू, पृ० १२०

२. वही - भूमिका- पृ० १२

भोग कर तुम लोग फिर इसी बैकुण्ठ में आ जाना। पृथ्वी पर आकर वही दोनों दिति के पुत्र हुए।[1] छोटा भाई ही यह हिरण्य कशिपु है। उसके आन्तरिक एवं बाह्य रूप का चित्रण नाटककार ने ऐसा किया है, कि वह पौराणिक होता हुआ भी आधुनिक है।

(१) रूप सौन्दर्य :-

राजा जब सर्वतंत्र स्वतंत्र, अधिनायक वादी प्रवृत्ति का हो जाता है, तब कवि उसकी चाटुकारिता में कथनीय-अकथनीय का ध्यान नहीं रख पाता हैं। हिरण्यकशिपु के रूप-सौन्दर्य, वस्त्राभूषण का वर्णन द्रष्टव्य है-

चाल मतवाली वैसे कदम बहाली
चढ़ी भूयनु प्रभाली कौन नहि तेरो चहवैया है।
कहै रवि सोहैं मोर चन्द्रिका चमकै हार
रोम रोम नेजे से जे मन मथैया है।
भाल पै ज्यों चन्द्रमा है नयन पै सुरगंगा
सिरपेंच गरे बनमाली मीठी बैन कहवैया है।
जै महाराजाधिराज सिरताज गरीब नेवाज
शत्रु नाशक प्रजा पालक सबसो कहवैया है।[2]

इस प्रकार उसकी वीरता की प्रशंसा अतिशयोक्ति पूर्ण है-

बीर वगमेले रेले कहर कमानन के
धौंसा की धमक सुनि को न बाहलत है।
सुमन कदम्ब से फरकि फैले भुजदण्ड
अब वहिवे को वर कलम चलत है।
रवी कवी हिरण्यकशिपु बली

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ३६-४०
२. वही, पृ० ४६

बामन मरोरे जंग काजी बिछ्लत है।

फूलेले न समात नीकै लाल बरछै पै हेरि

दल को दरेरा मैं बछेरा उछ्लत है।[1]

२. मृत्युजेता :-

हिरण्यकशिपु ने तपस्या कर ऐसा वरदान प्राप्त कर लिया है कि उसकी मृत्यु असंभव-सी लगती है

प्रहलाद :- पता है ? उसकी हत्या असंभव है। वह इतना शक्तिशाली इतना आत्म सुरक्षित है, कि चाहे कोई मनुष्य हो या पशु प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दैत्य, किसी से भी उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। भीतर, बाहर दिन में रात में, अस्त्र-शस्त्र से पृथ्वी या आकाश में कहीं-भी उसकी मौत नहीं होगी।[2]

(३) ईश्वर होने का दंभ :-

मदांध सत्ताधीश स्वयं को सर्वशक्तिमान ईश्वर सदृश मानता है। प्रह्लाद से वह कहता है कि वही सत्य का साक्षी है। उसकी वाणी से असत्य बात ही नहीं निकलती है।

हिरण्यकशिपु - मैं ईश्वर हूँ।

प्रहलाद-हो सकते है। यह सारी सृष्टि ईश्वरमय है।

हिरण्यकशिपु - मैं ही संपूर्ण हूँ।

प्रहलाद - अपूर्ण हैं।

हिरण्यकशिपु - मैं सर्वशक्ति मान हूँ।

प्रहलाद - सर्वशक्तिमान केवल ईश्वर है।

हिरण्यकशिपु -और वही ईश्वर मैं हूँ।[3]

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ४८

२. वही, पृ० २८

३. वही पृ० ३७

शुक्राचार्य भी इसी सत्य की पुष्टि करते है, जो अदृश्य है, वह असत्य है। आत्मा नहीं है। हिरण्यकशिपु के अलावा और कोई ईश्वर नहीं है।[1] ईश्वर होने के दंभ की पीछे सर्वशक्तिमान कहता है। अधिनायक वादी हिरण्यकशिपु स्वयं को सर्वशक्ति कहता है और अपने चाटुकारों को आदेश करता है, कि सामान्य प्रजा में इस सत्य का प्रचार किया जाये।

हिरण्यकशिपु :– मेरे समस्त गुणों का आधार है, मुझ पर मेरा अमिट विश्वास। मुझे कोई नहीं मार सकता, न कोई मनुष्य न पशु। न कोई अस्त्र–शस्त्र। ऐसा कोई समय नहीं, जगह नहीं। मैं अवध्य हूँ–यही मेरा परम विश्वास है। यहीं से मैं होता हूँ सर्वशक्तिमान।[2] असीम जहाँ अपने को सीमित करता है, वही अहंकार है। अहमस्मि मै हूँ। मैं अपने अहंकार में ही विराट् हूँ।[3]

क्रोधी :-

अहंकार क्रोध को जन्म देता है। हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रहलाद को हर प्रकार से समझा चुका कि उसके अतिरिक्त अन्य किसी ईश्वर की सत्ता नहीं है किन्तु प्रहलाद अपने तर्कों से ईश्वर की सत्ता सिद्ध कर देता तब निरुत्तरित होकर हिरण्यकशिपु उसकी हत्या करने का निश्चय करता है। वह कहता है कि मैं करूँगा अपने हाथों प्रहलाद की हत्या। मैं अवध्य हूँ प्रहलाद अब तक अवध्य का पुत्र था। अब मैं मारूँगा। केवल मैं मार सकता हूँ प्रहलाद को।[4]

प्रचार पर विश्वास करने वाला -

जब व्यक्ति अधिनायकवादी प्रवृत्ति का हो जाता है, तब उसे अंदेशा रहता है, कि छिपे–छिपे रूप में उसके विरुद्ध वातावरण तैयार किया जाता होगा अतः अपनी स्वच्छ छवि हेतु वह विज्ञापनबाजी का सहारा लेता है। हिरण्यकशिपु अपने मंत्रियों, गुप्तचरों से कहता है। उसकी सुक्तियाँ उट्टंकित कराकर सर्वत्र स्थापित की जाएँ,

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ४४
२. वही पृ० ४३
३. वही पृ० १४०
४. वही, पृ० १४१

कवियों का उपाधियाँ देकर सम्मानित किया जाए ताकि पुरस्कार के लालच में वे अतिशयोक्ति काव्य उसकी प्रशंसा में लिखें।

हिरण्यकशिपु – तुम लोग मेरे यश, शक्ति के लिए ऐसी मनोरंजक कथाएँ क्यों नहीं गढ़कर प्रजा में फैलाते। मेरे राज कवि, कलाकार आदि कहाँ है ?

वज्रदंत– हम राज्य-पुरस्कार और उपाधियाँ घोषित कर चुके हैं महराज।

शुक्राचार्य – देश में प्रचार कार्य बड़ी तेजी से हो रहा है– जगह-जगह स्तम्भो, शिला लेखों, भित्तिचित्रों, पाठशालाओं, राजमार्गो पर हमारे धर्म का प्रचार है।[1]

नाजी-प्रचारक गोयबल्स का कथन था, कि एक झूठ को सौ बार सत्य कहो, तो जन सामान्य उसे सत्य ही मान बैठेगा। यही बात हिरण्य कशिपु के सम्बन्ध में विदूषक कहता है, कि एक झूठ के लिए असंख्य झूठ बोलने पड़ते हैं। झूठ को छिपाने के लिए नहीं। झूठ को सच साबित करने के लिए। महाराजा इतनी देर तक बोले। हम सबके कानों में मिश्री जहर घोले पर क्या बोले ?[2] यह असत्य किस प्रकार आरोपित किया जाता है कि राजा ही देश है, देश ही राजा है। जब तक राजा है, तभी तक देश है ?

प्रहलाद – महाराज! आपने ऐसा क्यों किया ?

हिरण्यकशिपु – देश सेवा, मातृभूमि की रक्षा

प्रहलाद – कैसा देश।

हिरण्यकशिपु – अपना देश

प्रहलाद – आपने अपने आपको देश पर आरोपित किया

हिरण्यकशिपु – मैंने अनुभव किया देश में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है।

प्रहलाद – आप ही देश हो गए। देश ही 'मैं' बन गया, तभी देश नही आप रह गये।[3]

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ४१, ४४

२. वही, पृ० ११०

३. वही, पृ० १११

अहंकारी -

अपनी तपस्या से हिरण्यकशिपु ने जो शक्ति अर्जित की उससे प्रतिवेशी देशों पर आक्रमण उसे अपनी अधीन किया और अब वह सर्वशक्तिमान होने का उद्घोष करने लगा। इस अहंकार के कारण हिरण्यकशिपु ही देश बन गया। उसका विरोधी देश द्रोही है। यह अहंकार की चरम सीमा है।

प्रहलाद – दैत्यराज, हिंसा दमन तुम्हारी आसक्ति है। देश नहीं केवल तुम्हीं हो अपने अहंकार में अपनी क्षतिपूर्ण और कुंठाओं में आसक्ति में अहंकार है राजन्! तुम अहंकार की सेवा कर रहे हो। आसक्ति के गुलाम।[1]

३. देश रक्षक :-

हिरण्यकशिपु ने तपस्या से अर्जित शक्ति से पड़ोसी राज्यों से अपने देश की रक्षा की। वह कहता है, कहाँ है वह नमक हराम प्रजा ? जिसे मैंने दुर्भिक्ष से बचाया, जिसे मैंने सब तरह से रक्षा सुख शान्ति दी ? हरगणराज्य में चार-चार आठ-आठ दल थे। सारे दल आपस में कुत्तों की तरह लड़ रहे थे। निरीह प्रजा पिस रही थी। एक राज्य दूसरे राज्य से युद्ध करने लगा था। हर प्रतिनिधि अपने आपको राजा महाराजा घोषित कर सारे राज्य को लूटने लगा। गणतंत्र और जनपद के विश्वासघात, लूटपाट का राज था। प्रजा भिखारी होकर दर-दर की धूल छान रही थी। पड़ोसी देश इसे हथियाने जा रहा था। मैंने महापतन से बचाया इस देश को। मैंने देश के भीतरी शत्रुओं से बाहर के आक्रमण कारियों से अपने इस देश को मुक्त किया।[2] इस अहंकार जन्य प्रवृत्ति का यह परिणाम सामने आया कि हिरण्य कशिपु आक्रान्ता हो गया। पड़ोसी राज्य में सुख-शांति स्थापति करने के लिए उसके पास एक मात्र विकल्प है, कि उसे अपने अधीन कर ले।

हिरण्यकशिपु – आ हो! यह तो घोर संकट है। विपत्ति के कोप में कूर्म देश डूबा होगा। सुनो घोषणा करता हूँ। मैं कूर्म देश की रक्षा के लिए, वहाँ की जनता की प्रसन्नता

---

१. नरसिंह कथा, पृ० १११
२. वही पृ० १०६

के लिए मानव प्रेम और सेवा के लिए पड़ोसी देश की स्वतंत्रता के लिए मैं कूर्म देश पर आक्रमण करने की योजना बनाता हूँ।[1]

तंत्र मंत्र पर विश्वास :-

हिरण्यकशिपु ने तपस्या कर अपार शक्ति अर्जित की है, फिर भी उसे किसी अदृश्य शक्ति से भय है अतः वह अपने उँगलियों में अँगूठियाँ पहने रहता है, जो मंत्र पूरित होती हैं

हिरण्यकशिपु - मेरी दसों उँगनियों मेंयह जो अँगूठी का शृंगार है, बताओं इसमें कितना सार है, कितना निस्सार है ? मेरे गले में, भुजाओं में कटि में छाती पर जो टोटके, तंत्र-मंत्र ताबीज बाँधे लटके हैं उन्हें ज्योतिष की कसौटी पर कसो।[2]

भयाक्रान्त -

राजा जब अधिनायकवादी प्रवृत्ति का हो जाता है, तब वह जन सामान्य से कट कर रह जाता है। अकेलेपन के कारण वह अपने मन के संदेहों को किसी से व्यक्त नहीं कर पाता है। इससे वह भयभीत हो जाता है। कोई उसे जहर नह दे दे। कोई सोते समय उसे मार न डालें।हिरण्यकशिपु इन्ही आशंकाओं से भयाक्रान्त रहता है

हिरण्यकशिपु - क्या सचमुच मै भयभीत हूँ। सचमुच अकेला हूँ ? तुम झूठ मत बोलना। कोई मुझसे सच नहीं बोलता।

महासुन्दरी - हाँ महाराज आप सदा भयभीत रहते हैं।

हिरण्यकशिपु - तुम्हें क्या लगता है, मैं अकेला हूँ।

महासुन्दरी - सचमुच अकेले हैं आप।[3]

विवेक शून्य -

हिरण्यकशिपु भयाक्रान्त है अतः वह विवेक शून्य हो गया है। पंडित, ज्योतिषी

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ५५-५६

२. वही पृ० ५७

३ वही पृ० ६०

उसे घट के साथ विवाह कर उसके बध की बात कहते है, और राजा वैसा ही कार्य करने को तत्पर हो जाता है

हिरण्यकशिपु – मिट्टी का घड़ा। वही होगी मेरी पत्नी। मिट्टी के घड़े से होगा मेरा विवाह। घड़ा मँगाओं जल्दी करो।[1]

निर्मम :-

अपनी अधिनायकवादी प्रवृत्ति के कारण हिरण्यकशिपु अत्यन्त निर्मम हो उठा है। वह अपने पुत्र से भयभीत है अतः अपनी रक्षा हेतु वह प्रह्लाद का वध करने को तत्पर हो जाता है। अपने विरोधी का समूलोच्छेद उसकी आकांक्षा है। वह रक्षकों से कहता है कि वज्रदल और निर्मम होने की जरूरत है। प्रशासन में और कठोरता लाओ। भय के अलावा और कोई साधन नहीं है। मैंने कुछ कठोर निर्णय लिए हैं देश की सुरक्षा और आत्म रक्षा के लिए।[2] मैं करूँगा अपने हाथों प्रहलाद की हत्या।[3] और अंत में नरसिंह द्वारा उसका वध किया जाता है। इस प्रकार हिरण्यकशिपु पशु-मूल्यों का प्रतीक रूप में भी चित्रित है। डॉ0 नरनारायण राय ने लिखा है कि हिरण्य कशिपु प्रजा की दुर्बलता आत्म केन्द्रिता, अपनी वैमनस्य और सुख वादी मनोवांछाओं से उत्पन्न होता है, जिसे हम रावण, जार, निकोलस, हिट्लर मुसोलिनी और याह्या खाँ में देखते हैं।[4]

प्रहलाद :- नरसिंह कथा का यह द्वितीय प्रधान पात्र है। पुराणों के अनुसार यह ईश्वर भक्त है। उसे अपने पिता के ईश्वरत्व पर विश्वास नहीं है। कुम्हार के जलते आँवे में से बिल्ली के बच्चों को जीवित निकलते देख इसके मन में ईश्वर की आस्था दृढ हो गयी। गुरु कुल में भी यह अपने गुरूओं से ईश्वर को सर्वोपरि मानने की बात कहता जिसे सुन कर पिता हिरण्य कशिपु उसे अनेक प्रकार के दण्ड देता है। साम, दाम दण्ड से भी वह अपने पथ पर से विचलित नहीं हुआ अतः पिता ने उसका वध

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ५६
२. वही पृ० १२२
३. वही पृ० १४१
४. नाटककार लक्ष्मी नारायण लाल का नाट्य साहित्य - पृ० ११४

ा करने का निश्चय किया। परिणाम स्वरूप नरसिंह रूप में भगवान् ने उसका वध किया। डॉ0 लाल ने उक्त पौराणिक पात्र को मिथकीय पात्र के साथ आधुनिक युगबोध के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है। छोटी-छोटी महत्वाकांक्षाएं पूर्ण होते ही एक बड़ी आकांक्षा सत्ता प्राप्ति की उत्पन्न होती है। ऐसे ही अधिनायक वादी प्रवृत्ति के कारण हिरणकशिपु का उदय होता है, जिसमें अहंकार की प्रबलता है एक ओर जितना बड़ा अहंकार हो, दूसरी ओर उसके जवाब में जितना बड़ा त्याग हो, अहिंसा हो, तभी मंगल का उदय है। जो अपनी और दूसरे की स्वतंत्रता, समानता साथ-साथ स्वीकार करता है।[1] (उदाहरण स्वरूप अंगेजों, की क्रूरता जितनी अधिक थी, तदनुपात में गाँधी जी की अहिंसा व्यापक होती थी) प्रहलाद के चरित्र का चित्रण नाटक कार ने इसी राजनैतिक पृष्ठभूमि में किया है। उसके चरित्र के कुछ पक्षों का उद्घाटन यहाँ किया जा रहा है

१. राग द्वेष से परे :-

प्रहलाद ने अपने जीवन में ऐसी अदभुत अकल्पनीय घटनाओं को देखा है जिसके कारण उसका मन विरक्त हो गया है। उसका विचार है कि वृत्तियाँ दबी रहती है। वे निमित्त का योग पाकर उत्तेजित होती हैं और बढ़ती रहती है।[1] यहाँ फ्रायड के दमन स्वरूप का व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक रूप स्पष्ट दृष्टि गोचर हो रहा है। विरक्ति के कारण प्रहलाद वर्तमान पर अधिक विश्वास करता है। उसकी उपपत्ति यह है, कि मोक्ष यहीं है, इसी वर्तमान जीवन में । जो वर्तमान में नहीं है वह ना कभी था न कभी होगा।[2] वह इस राग-द्वेष के सम्बन्ध में कहता है-

प्रहलाद - जब मन में विषमता के भाव आते है तब वह चंचल, अधीर और विक्षिप्त हो जाता है। अमुक ने मेरा सम्मान किया, अमुक ने मेरा अपमान-यह याद आते ही मन अधीर हो जाता है सारी विषमताएँ राग-द्वेष जनित है। यह मन भी राग द्वेष

---

१. नरसिंह कथा- भूमिका - पृ० १
२. वही पृ० २२

जनित है। जो समता समानता और एकता में प्रतिष्ठित हो जाता है, उसका मन आत्मा में विलीन हो जाता है।[1]

२. मुक्त आसंग :-

प्रहलाद-मित्र हुताशन कहता कि उसके पिता ने उसे इतना दण्ड दिया, कष्ट दिया, प्रताडित किया कि वह कहीं बैंठकर शान्ति से पजापाठ ईश्वर भजन भी नहीं कर सकता। उसे इस अन्याय का बदला लेना चाहिए। प्रहलाद पूछता है कि उसे किससे बदला लेना चाहिए? पिता से ? निरकंश राजा हिरण्य कशिपु से ? दूसरें को शत्रुमानने वाला, जिसको वह शत्रु मानता है, उसका अनिष्ट वह कर पाता है या नहीं किन्तु अपना अनिष्ट अवश्य कर लेता है। इस प्रकार प्रहलाद मुक्त भाव से कहता है -

प्रहलाद - जिसे अपने स्वतंत्र अस्तित्व की अनुभूति होती है वह देश, समाज, घर बाहर भीतर की समस्याओं, प्रश्नों का सामना करते हुए अपने अंतस में सबसे मुक्त रहता है। सबके बीच में रहता हुआ भी अपने आप में अकेला है। पूरी तरह व्यस्त, युद्धरत रहता हुआ भी उससे मुक्त।[2]

३. मातृभूमि भक्त -

प्रहलाद की विरक्ति या उसकी मुक्ति आसंग की भावना का यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह अपने समाज, अपनी भूमि, उसकी दुरवस्था से निरपेक्ष होकर जीवन यापन करना चाहता है। वह अपने पिता के अहंकार अपने को ईश्वर घोषित करवाकर सर्वस्व छीनने प्रजा को कष्ट देनें का पक्षधर है। वह हुताशन से अपनी भावना व्यक्त करता है।

प्रहलाद- मेरी सौगंध है तुम्हें हुताशन! मुझे छोड़कर चले जाना, पर अपनी इस मातृभूमि को नहीं छोडना। अधर्म युद्ध के खिलाफ जो धर्म युद्ध छिड़ा है, उसे देखने के लिए यहाँ रहना।[3]

---

१. नरसिंह कथा पृ० २३
२. वही, पृ० २८
३. वही पृ० २६

४. हिंसा विरोधी :-

प्रहलाद की मान्यता है कि विषमता, अकेलापन, असमानता के अंधकार में हिरण्यकशिपु यहाँ का निरंकुश राजा बना है। वह अपनी शक्ति से नहीं, हमारी कमजोरियों से बना है। आर्य-अनार्य, जाति धर्म की आपसी फूट ऊँच-नीच सवर्ण-शूद्र के भेद से आया है वह तानाशाह। उसे मारना कठिन है

प्रहलाद- हिंसा अज्ञान है। अज्ञान में ही है भय मृत्यु का। हिंसा प्रतिशोध है दूसरा शत्रु है, यहीं से प्रतिशोध का आरम्भ है। जैसे असत्य का दंभ होता है, वैसे ही प्रतिशोध की हिंसा होती है।

भगवती - पर जो सबका शत्रु है, यहाँ तक कि अपना भी उसका वध क्या है ?

प्रहलाद - उसका वध अहिंसा है, अगर वह वध बिना किसी राग द्वेष के हो।[1]

५. समानता बन्धुत्व का समर्थक :-

भगवती, महासुन्दरी उसे राज कुमार कहती है। प्रत्युत्तर में प्रहलाद कहता है, कि वह राज कुमार नहीं है। वह मानता है

प्रहलाद- मै स्वयं अपने को राज कुमार नहीं मानता। मैं कोई जाति, वर्ग नहीं मानता। मनुष्यों को अलग-अलग बाटकर नहीं देखता हूँ।[2]

६. स्वराज्य का समर्थक :-

प्रहलाद समानता का समर्थक है। अतः स्वाभाविक है, कि त्रस्त, पीडित जनता का वह केन्द्र बिन्दु बनता है। अपनी व्यथा, शासक द्वारा क्रूरता पूर्वक दमन की घटनाओं को वह सुनता है। जनता स्वराज्य के विषय में उससे पूछती है

प्रहलाद- स्वराज्य किसी के देने से नहीं मिलता। स्वराज्य दान नहीं है। यह यह आग है। यह सतत् जिम्मेदारी है। इसे लाना पड़ता है। और हर क्षण इसे जलाये रखना पड़ता है। यह आग जला डालती है। और हर क्षण इसे जलाये रखना पडता है। यह आग प्रकाश देती है। ऋक्ष गणतंत्र के हम लोगों के पास अपना स्वराज्य था पर

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ८६

२. वही पृ० ८६

स्वराज्य को हमने जिस दिन से अपना अधिकार माना, अपना भोग माना, उसी दिन से देश के पूरे वातावरण में से हिरण्यकशिपु का उदय हो गया। स्वराज्य के नशे में नैतिक-अनैतिक साधनों के बीच भेद करना जिस दिन से बंद कर दिया उसी समय से हिरण्यकशिपु का अवतरण होने लगा।[1]

इस प्रकार प्रहलाद स्वराज्य का दार्शनिक चिन्तन प्रस्तुत करता है, कि स्वराज्य अधिकार नहीं कर्तव्य है। शासन पद्धति कैसी हो, वह स्पष्ट रूप से कहता है

शुक्राचार्य –शूद्रो, अनार्यो और अधर्मियों ने इस देश के कई हिस्सों में जो भयानक उत्पात मचा रखी थी, एक जनपद दूसरे से लड़ रहा था और सारा देश पतन के रास्ते पर था उसे तुम स्वराज्य गणतंत्र कहते हो।

प्रहलाद – गणतंत्र बीमार हो गया था पर वह बीमार गणतंत्र हमारा था। बीमार का उपचार होता है। उसकी हत्या नहीं कर दी जाती मूल्य का अवमूल्यन होता है पर उसे नष्ट नहीं होने दिया जाता।[2]

७. राजनीतिक चिन्तक :-

प्रहलाद का मुख्य विरोध अपने पिता हिरण्यकशिपु से राजनीतिक था। हिरण्यकशिपु ने सत्ता को स्वकेन्द्रित कर अधिनायक वादी बन गया था। प्रहलाद की मान्यता थी कि हम गणतंत्र के समर्थक थे, किन्तु हमारी कमजोरी के कारण हिरण्यकशिपु निरकुंश हो उठा। वह प्रजा को मूर्ख समझ कर उसके हितों की रक्षा के बहाने सत्ता पर अपना अंकुश बनाये रखना चाहता था।

शुक्राचार्य – इस देश की मनीषा मूलतः एकलवादी रही है। यहाँ की प्रजा आध्यात्मिक सामाजिक और राजनीतिक इन सभी क्षेत्रों में एक सत्ता की उपासना में ही विश्वास करती है।

प्रहलाद – राजर्षि सत्ता के सिंहासन पर बैठकर इस देश की मनीषा नहीं जानी जा सकती। जिस देश में असंख्य देवी-देवताओं की उपासना होती हो, इतनी विविध

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ८७

२. वही पृ० ६०

जातियाँ और धर्म समान रूप से जीवित हो जो अनीश्वर वाद से लेकर अनेकेश्वरवाद तक आस्थाओं की खोज में भटक रहा हो, उसकी मनीषा को एकलवादी कहना सरासर झूठ है, खतरनाक है पर इस सच्चाई को मैं स्वीकार करता हूँ कि वर्तमान अधिनायक वाद के उदय कि लिए यहाँ की मनीषा के दो प्रमुख तत्व, हद दर्जे की सहनशीलता और सार्वजनिक जीवन के प्रति पलायन तक जाने वाली उपेक्षा वृत्ति मूल रूप से उत्तरदायी है।[1] वह अपने पिता हिरण्यकशिपु से कहता है, कि देश का पतन हमारी जड़ता से हुआ है। नदी की धारा रोक दो। बहता हुआ जल स्थिर हो जाये, सब सड़ने लगेगा। ऋक्ष देश के गणतंत्र में यही हुआ। शक्ति का बहाव थम गया। परिवर्तन की धारा अभय लिच्छु ने रोक दी।[2]

८. विनम्र किन्तु दृढ़ :-

प्रहलाद वैयक्तिक जीवन में पिता से उपेक्षा ही नही अपितु प्रताडित भी रहा है। ऐसी अवस्था में उसे उग्र होना चाहिए। उसका यौवराज्य पद भी छिन गया था किन्तु सब उसने धैर्य पूर्वक सहन किया। वह सबके प्रति क्षमा या करूणा का भाव रखता साथ अपने विचारो में वह दृढ़ है। शुक्राचार्य द्वारा राज कुमार कहने पर वह कहता है। आपके राजा के प्रति हमारे मन में रोष हैं। वे हमें शत्रु समझते है। हम उन्हें अपना समझते है।[3] इसी प्रकार हिरण्य कशिपु एवं प्रहलाद का संवाद उसके दृढ रूप को उजागर करता है। जिसके मन में विचारों की दृढ्ता होगी, वह अपने चिन्तन से विचलित नहीं हो सकता। उस दृढ़ता के लिए वह किसी का भी सामना करने को तैयार/तत्पर रहता है।

प्रहलाद-पिता श्री के चरणों में प्रणाम।

हिरण्यकशिपु- मैं तुझे अपना पुत्र नहीं मानता

प्रहलाद- आपके न मानने से सत्य पर कोई असर नहीं पडता है।

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ६१

२. वही पृ० ११३

३. वही पृ० ६०

हिरण्यकशिपु- मैं देश का एकाधिपति हूँ। तूने राज महल की दीवारों पर यह लिखवाया-हर राजा अपने ही झूठ के जाल में फँसता है।

प्रहलाद- हाँ, इसे मैंने खुद अपने हाथों से लिखा है।[1]

(९) संसार के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण -

मनुष्य प्रायः या तो समाज/परिवार के प्रति तीव्र आसवित रखकर उसमें लिप्त रहता है उसे बाह्य परिवेश, बाहरी जनों के प्रति उदार न होकर संकीर्णता रहती है अथवा संसार को मिथ्या मान कर उसक प्रति निषेधात्मक दृष्टि रखकर संन्यासी बन जाता है। प्रहलाद के विचार से ये दोनों अतिवादी हैं उसके उपपत्ति/धारणा यह है, कि संसार के प्रति सकारात्मक सोच रखने से व्यक्ति दुःखी नहीं होगा। वज्रदंत, महासुन्दरी को वह समझता है-

प्रहलाद- दुःखी मत हो। जो हो रहा है, पूरी तरह से उसमें डाल दो आपने आपकों। और देखो तुम क्या हो ? जब तक हम अपने आपको पाते नहीं हैं तब तक किसी वस्तु को नहीं पाते। तब तक ऐसा कोई आधार नहीं रहता है, जिसके ऊपर किसी चीज को स्थिर भाव से रख सकें। तभी तो हम कहने लगते हैं, यह संसार माया हैं। सब कुछ छाया है।[2] हिरण्य कशिपु प्रहलाद को अकेले बुलवाता है ताकि वह स्वयं उसको समझा सके। नहीं तो अन्तिम समाधान हेतु उसका वध कर सके। प्रहलाद के शुभ चिन्तक चिन्तित हो उठ्ते हैं क्योंकि हिरण्यकशिपु निष्ठुर है। प्रहलाद उन्हें समझाता है कि वह कभी भी हिरण्य कशियु नहीं बन सकता है। विरोध का अर्थ यह नहीं है कि उसी तरह हो जाना? चाहे जान चली जाए, हम आघात नहीं करेंगे और इसी तरह विजयी होगें। यह है गम्भीर विरोध स्वर। यह उपजता है अनुशासन से। इसमें चातुर्य नहीं। धर्म युद्ध बाहर से जीतने के लिए नहीं होता। हारकर भी विजय प्राप्ति के लिए होता है। पराजय के अन्दर विजय और मृत्यु में अमरत्व होता है।[3] इसी प्रकार वह संसार के प्रति अपने सकारात्मक सोच को गुरू शुक्राचार्य से भी व्यक्त

---

१. नरसिंह कथा, पृ० १०८

२. वही पृ० १०४

३. वही पृ० १५४

करता है कि धर्म गुरू को प्रत्येक प्रकार के अन्याय की निन्दा करनी चाहिए।

प्रहलाद- सुना था, धर्म और धर्म गुरूओं का कर्त्तव्य है अपने धार्मिक कार्यो द्वारा मनुष्यों के हृदयों में न्याय पूर्ण सामाजिक कार्यों के प्रति गहरी रूचि और पैदा करें। अन्याय अत्याचार के विरोध में खडे हों।......अब तक इतना मृत्यु विनाश देखकर जो इस तरह मौन रह सकता है, वह धर्म गुरू, राजगुरू कैसा होगा ? हर मनुष्य के पास स्वधर्म नामक एक सम्पदा है। उसी धर्म में उसकी मुक्ति है।[1]

हिरण्य कशियु प्रहलाद पर राज द्रोह का अभियोग लगता है कि उसने न्याय प्रिय, प्रजातंत्रनिष्ठ, महाप्रजा के लिए निरंकुश, अधिनायक, अभिमानी, अनियंत्रित जैसे अपशब्दों का प्रयोग किया है, जिसका दण्ड प्राण दण्ड है।[2] हिरण्य कशिपु के अभियोगों के उत्तर में प्रहलाद दृढ़ता से कहता है कि उसने तो प्राण दण्ड/मृत्यु की तैयारी उसी दिन से कर ली थी, जब से उसने जन्म पाया जो कुछ प्रकाशित है, वह सत्य है। तुम्हारा क्रोध सत्य है, जिससे हिंसा सत्य है, पर इसके बाद भी एक सत्य है, जिससे भयभीत होकर इतनी शक्ति और सुरक्षा एकत्र कर ली कि शेष सब असुरक्षित हो गये।[3] संसार के प्रति इसी सकारात्मकभाव के कारण पिता की मृत्यु पर प्रहलाद कहते है 'हे पिता तुम प्रणम्य हो। तुम कारण बने, जिससे कि मनुष्य उस पशु से अलग होकर फिर मनुष्य हो गया। हे हिरण्य-आसक्त, तुम्हें भी अपने अहम् से मुक्ति मिल रही है। विश्वास करो इसके अलावा और कोई उपाय नहीं था- तुम्हें तुम्हारे मैं से अलग कर उस आत्मा में मिला देना, जिसमें मिलने के लिए तुम अज्ञानवश इतने विक्षिप्त थे।[4]

इस प्रकार प्रहलाद आस्तिक, वीर, दृढ़ वीतरागी, संसार के प्रति सकारात्मक भाव रखने वाला, सृदृढ राजनीतिक चिंतक सर्वधर्म समभाव रखने वाला देश भक्त युवक है, जो किसी भी परिस्थिति का सामना कर सकने वाला अहिंसा प्रेम नायक

१. नरसिंह कथा, पृ० १५६
२. वही, पृ० १६२
३. वही पृ० १६३
४. वही पृ० १६६

है। इस पर गाँधीवादी सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

चाणक्य-

भारतीय इतिहास में चाणक्य एक जीवन्त मिथ के रूप प्रगट हुए हैं। उसके चरित्र के अनेक पक्षों का ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक इत्यादि-चित्रण अनेक काव्यों, नाटकों, उपन्यासों में हुआ है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने गुरू की भूमिका में लिखा है कि तीन चाणक्य थे। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस का चाणक्य, डी0एल0 राय के चन्द्रगुप्त का चाणक्य और जयशंकर प्रसाद का चाणक्य। मुद्राराक्षस में वह कौटिल्य है। डी0एल0 राय के हाथों वह तेजस्वी, क्रोधी ब्राह्मण है और प्रसाद की रचना में वह अति स्वाभिमानी और अति भावुक है। कहीं वह प्रति हिंसक है, कहीं असफल प्रेमी है, कहीं व्यवहार कुशल, नीति कुशल, कहीं निर्मम त्यागी, ब्राह्मण और कहीं विद्वान अध्यापक है चन्द्रगुप्त जैसे महापुरूष का। संस्कृत में चाणक्य के व्यक्तित्व के बारे में एक यह चित्र खींचा गया है जिसमें वज्र और अग्नि के तुल्य तेज है, जिसके वज्र प्रहार से श्रीयुत सुपर्वा नन्द वंश रूपी मूल सहित नष्ट हो गया, जो शक्ति में कार्तिकेय के समान है और जिसने मंत्र-शक्ति से एकाकी ही चन्द्रगुप्त को साम्राज्य प्रदान किया। वस्तुतः मंत्र शक्ति, ज्ञान शक्ति अथवा आयोजन क्षमता की दृष्टि से चाणक्य का चन्द्रगुप्त के लिए उतना ही महत्व था, जितना कि सिकन्दर के लिए अरस्तू का। निर्भीक मेधा, स्वच्छ विवेक और धैर्य आदि उसके सद्गुण थे। मनुष्य चाणक्य के बचपन में, किशोरावस्था में जो अभाव, अपमान और भावनात्मक चोटें मिली, वही उसके भावी मनुष्य और उसके चरित्र के प्रेरक तत्व हैं। वही उसके जीवन के विस्फोटक तत्व हैं जिन पर उसका भावी चरित्र निर्मित हुआ। मेरे लिये चाणक्य मूलतः एक यथार्थ पुरूष है। वह गुरू है चन्द्रगुप्त का और गौण रूप में मेरे लिए इतिहास का पुरूष है। चाणक्य पूरी निष्ठा से अपने कर्मो के भोग करता है। भोग माने देखना। ये देखना ही गुरुमंत्र है। गुरू प्रकाश है प्रज्ञा और चेतना है। पूरे नाटक में चाणक्य कर्त्ता है, भोक्ता है, दृष्टा है और अंत में वह मुक्त है। सब कुद सहज

ही चल देता है।[1]

गुरू लक्ष्मी नारायण लाल का ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें चाणक्य को गुरू की प्राक्तन महत्ता वाले रूप में प्रस्तुत किया है। चाणक्य ने अपमानित होने के कारण नन्दवंश का नाश किया। चन्द्रगुप्त को मगध साम्राज्य का सम्राट बनाया उस समय छोटे-छोटे टुकड़ो में विभक्त आर्यावर्त को एक-श्रृंखला में आबद्ध कर निस्पृहभाव से शासन सूत्र राक्षस के हाथ में सौंप कर संन्यासी बन कर निकल जाता है। उसके आन्तरिक क्रिया कलापों, चिन्तन, व्यवहार का मनोविश्लेषण परक चरित्र नाटककार ने प्रस्तुत किया है।

दृष्टिवान :-

गुरू का केन्द्रीय पात्र चाणक्य अपने शिष्यों शिक्षित कर परिवेश देखकर आने का आदेश किया। शिष्यों के अनुभव को सुनकर वह कहता है तो तुम लोग अनुभव नहीं प्रति क्रिया लेकर आये हो। प्रतिक्रिया निर्बल को होती है। सबल अनुभव करता है। पुरुष क्रिया करता है। यही दिखाने और देखने के लिए मैंने गुरूकुल से बाहर भेजा था लेकर यहाँ से जो गये, वहीं लेकर लौटे। अनुभव करना देखना है। देखना तपस्या है। बोध करना क्रिया है।[2]

बाल्यावस्था की स्मृतियाँ :-

चाणक्य का बाल्यकाल अत्यंत दुःखद रहा है। वह शीलबन्धु के समक्ष रूदन करता हुआ अपने अन्तर्मन की व्यथा व्यक्त करता है कि अष्टाध्यायी एवं ब्रह्मसूत्र को कंठस्थ करने में असफल होने पर पिता के बेंत के प्रहार आज भी दंशकारी प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार वह कहता है, कि मैं कुटिल नहीं हूँ। मैं कुरूप नहीं हूँ। मैं निर्धन गरीब अनार्य पिता का पुत्र हूँ।[3]

---

१. गुरु स्वगत- पृ० १-३
२. वही पृ० १४
३. वही पृ० १५-१६

संकल्पवान :-

चाणक्य का जीवन अपमान से भरा हुआ था। इस अपमान शृंखला ने उसे प्रतिक्रियावादी बना दिया और उसने मार्ग में आयी बाधाओं के विनाश का संकल्प किया। वह कहता है सुनो सुनो शकटार! मेरा नाम चाणक्य ही नहीं विष्णुगुप्त भी है। विष्णुगुप्त विद्वान है। मैं हूँ विष्णुगुप्त ब्रह्मचर्य, नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन में स्नातक तुम्हारी बेटी सुवासिनी से विवाह की इच्छा से नगर की ओर जा रहा था। क्या कहा ? मैं असुन्दर काला ब्राह्मणों ! सुनो इतना घोर अपमान ! देख ले नंद तेरी श्राद्ध शाला में सबके सामने अपनी यह शिखा खोल रहा हूँ। यह शिखा अब उस दिन बँधेगी, जिस दिन तेरा सर्वनाश करूँगा।[1]

प्रतिक्रियावदी :-

अपमान के दंश को सहन करना बहुत कठिन होता है। विवाह के लिए जाने वाले वर के पैर में कुश गड़ जाने का अपशकुन हो जाय, श्राद्धशाला में जातिगत अपमान हो जाए ऐसा आहत, कुंठित मन प्रतिहिंसा से युक्त प्रतिक्रियावादी हो जाता है। चाणक्य अपने गुरू शील बन्धु के समक्ष कहता है

शीलबन्धु – तुम क्रोध से जल रहे हो प्रतिक्रिया के दावानल में

चाणक्य – हाँ.....हाँ.......।

शीलबन्धु – स्वीकार करते हो ?

चाणक्य – स्वीकार करता हूँ।[2]

दार्शनिक :-

चाणक्य के कुंठित, आहत मन को शील बन्धु जैस गुरु, उपाध्याय मिल गया, जिसने चाणक्य के आहत मन में सहानुभति का मरहम लगाकर उसके मन का उदात्तीकरण किया। इस प्रकार चाणक्य कर्त्ता, द्रष्टा एवं भोक्ता बन जाता है। वह

---

१. गुरू स्वगत- पृ० १८

२. वही पृ० २१

कहता है कि जो प्रत्यक्ष है, उसके मूल में क्या है ? जो भीतर अंध गह्वर में छिपा है। वही है यथार्थ। जो सत्य है यदि वह बिलकुल असाध्य हो तो वह सत्य नहीं है। जो सबसे अधिक श्रेय है, वह सबसे अधिक सहज नहीं होता। इसीलिए तो उसकी साधना करनी होती है। प्रकट होना ही साधना का प्रारम्भ हो। जिस चीज का जिसमें अभाव होता है, वह उसी का नाम रटता है। आओ अपने द्वारा ही अपने आप को देखूँगा। मैं ही कर्त्ता। मैं ही भोक्ता।[1]

अखण्ड भारत का निर्माता :-

चाणक्य इसलिए महान् नहीं था, कि उसने अपना प्रतिशोधपूर्ण किया था, कि अपनी कूटनीति से चन्द्रगुप्त को मगध का शासक बनाया था, कि पैर गड़े कुश का समूलोच्छद किया, अपितु चाणक्य इसलिए महान है, कि उसने छोटे-2 गणराज्यों या आपसी अहंकार के कारण देश को छिन्न-भिन्न करने वाले राजाओं को एक सांस्कृतिक सूत्र में बाँधकर अखण्ड भारत और उसकी सांस्कृतिक एकता को सूत्र बद्ध किया। सम्भवतः उससे पूर्व अखण्ड भारत की परिकल्पना और बिना अस्त्र ग्रहण किये, इस प्रकार के महत् संकल्प की कल्पना ही किसी ने नहीं की होगी।

चाणक्य :- पर भारत एक पूरा देश कहाँ ? एक खण्ड है मगध ! दूसरा है पंचनद, तीसरा है कौशल चौथा खण्ड है मालव और अलग-अलग राज्य हैं लिच्छिवि, और मल्ल राज कुमारों के। भारत वर्ष को अभी एक देश एक राष्ट्र होना है। मैं बनाऊँगा इसे एक राष्ट्र। मैं इससे एक आर्यावर्त की रचना करूँगा।[2] महामात्य राक्षस के समक्ष वह कहता है, कि मैं देखने लगा-क्या है मेरा श्रेय ? क्या है मेरा प्रेय ? मेरा श्रेय है आर्यावर्त एक भारत देश। किसी राज्य का खण्ड नहीं। कोई आर्य अनार्य नहीं। कोई शूद्र-अशूद्र नहीं।[3]

---

१. गुरु स्वगत, पृ० २३ एवं २८
२. वही, पृ० ३२
३. वही, पृ० ५२

प्रेमी :-

प्रेम एक ऐसा तत्व है, जो सबके हृदय में जागरित होता है। प्रेमी का हृदय प्रकृति में एक लय देखने लगता है। हृदय एक टीस, एक वेदना, एक पुलक से आप्लावित हो उठता है। चाणक्य के जीवन में भी प्रेम की दीपावली जगी थी। वह शकटार की कन्या सुवासिनी की ओर आकृष्ट था। विवाह करने के लिए जाते समय रास्ते में अपशकुन हो गया। महापद्मनन्द से अपमानित होकर वह तक्षशिला जा पहुँचा। सुवासिनी से मिलकर उसका प्रेम पुनः जागरित हो उठा। माहालि और चाणक्य का वार्तालाप द्रष्टव्य है

माहालि – गुरूदेव ! आप तो इतने महापराक्रमी, समर्थ पुरूष हैं, कहीं प्रेम क्यों नहीं कर लेते ?

चाणक्य – देशप्रेम, मानव कल्याण व्रत क्या प्रेम नहीं है।

महालि – यह सब अपने आपको धोखा देना नहीं है ?

चाणक्य – है ! है ! है ! (रूक कर) ज्ञान आते ही यौवन चला जाता है। जब तक माला गूंथी जाती है फूल कुम्हला जाते हैं। गुरू ने कहा था–समस्त ज्ञान अहंकार है। हृदय को मरूभूमि बना देने वाली एकक्षीण कोमल अनुभूति है.........सुवासिनी, उसी के लिए पड़पता हुआ कुसुमपुर जा रहा था और रास्ते में कुश का वह गड़ना ....यह कैसा रहस्य है। इच्छा भीतर है, पर कामना बाहर है। भाव अंतस में है। पर इच्छा की वस्तु बाहर है। चाह है वर दुराव भी है। जो नहीं है, वही है, जो है वह नहीं है।[1] एकान्त स्थल में सुवासिनी को गाते देख चाणक्य कह उठता है 'केवल देख रहा था, तुम्हे जाने कब से। पुकारा इतने देर बाद। आज संगीत आँखों से पकड़ में आया। मर्म भेदी संबोधन आज सुना। कान थे पर तब सुन नहीं पा रहा था। अब सुन रहा हूँ। जगता चला जा रहा हूँ। बस देख रहा हूँ अपनी प्रिया को अंतहीन। प्राणों के तट पर खिंचा चला जा रहा हूँ। इसी में देख रहा हूँ अपना सौन्दर्य, जो

---

१. गुरु स्वगत, पृ० ६०-६१

तुम्हारा ही सर्वांग रूप है। इससे पहले मैं था। आज केवल तु हो। हम हैं प्रिया मित्र[1].
...सुवासिनी के आह्वान पर चाणक्य अधीर होकर भावुक स्वरों में कहता है 'पा गया तुम्हारी तैरती बाहुओं का तट। मानों आषाढ़ की पहली बदली बरस रही है। सब कुद एकाकार हो रहा है-जल स्थल, जल-पानी, केवल पानी। हवा में यह कैसे अज्ञात पुष्पों की विचित्र गंध महक रही है। जल फूलों की गंध, बादल पुष्पों का परिमल। अपने देह तट की जल जूही को देखो सुवासिनी........मेरी प्रियतमे ![2] प्रथम साक्षात्कार के पूर्व की अप्रियता की शिकायत सुवासिनी करती हे, जिसके प्रत्युत्तर में चाणक्य स्वयं को उत्तरदायी मानकर दार्शनिक एवं भाव विह्वल स्वरों से प्रिया को समझता है-

चाणक्य - तुम्हारी देह सदा बसंत है। यह नितनूतन पुष्पित होती चली जायेगी।

सुवासिनी -पहली भेंट में ही तुम्हारी अप्रिय हो गयी।

चाणक्य - वह मेरे भीतर का विषाद था। कारण तुम नहीं मैं ही था। मेरा मैं..... ....अपमानित छोटा मैं। ....सात मन के भीतर उसके अंतरतल में एक अज्ञात मन, अंध अवचेतन के भीतर छिपा रहता है। वहीं से वह अपना कार्य करता रहता है। हम उसके कर्त्ता नहीं होते। ....तुम्हीं हो मुझे पूर्ण काम पुरुष बनाने वाली। अब जहाँ तक तुम चाहोगी, चला जाएगा यह पुरुष। कूढ़ जाऊँगा इस अंधकार से तुम्हीं हो। पार के तट पर भी तुम्हीं हो नये सूर्योदय में।..........किस दीवार से अपना सिर टकराऊँ। वसंत गुफा से निकली हुई यह संगीत लहरी मेरे अंतस् की किस गुफा में चली गयी।..... मेरे कोमल हृदय आकाश में नक्षत्र की तरह उदित हो कहाँ छिप गयी। .... अब मेरा यह अभिज्ञान पूर्ण हो गया। मूर्च्छित सुवासिनी! तेरा हृदय तुझे जिस मार्ग पर ले गया वही सत्य है। सत्य न पवित्र होता है न अपवित्र जैसे परमात्मा के साथ एकाकर हुआ जीव पुनः द्वैत ग्रहण नहीं करता, वैसे ही एक बार प्रेम-टास में लीन हुआ हृदय द्वैत का अनुभव नहीं करता। जिस प्रेम यज्ञ में तुम्हारे

---

१. गुरु स्वगत, पृ० ७८
२. वही पृ० ७६

साथ संलग्न हूँ, वह मुझे भी जगा रहा है। मूर्च्छा से जागो प्रिये, जिस मुख को देखने और मुग्ध होने का अधिकारर तब वहाँ नहीं था, पर जिसे देखे बिना न रहा गया उसे आज देखा।[1]

कर्म का भोग या भोग का कर्म................. चाण्क्य ने अनासक्त होकर कर्म किया है। नंद वंश का नाश कर उसे क्या मिला? चन्द्र गुप्त के चन्द्रिकोत्सव को मना उसने अनादर ही प्राप्त किया। सम्पूर्ण आर्यावर्त को एकता के सूत्र में पिरो कर उसने यश भी नहीं प्राप्त किया। सुखोपभोगों से वह दूर ही रहा है सुवासिनी के साथ देखे जाने पर जनता ने उसे तिरस्कृत ही किया है। वह स्वयं कहता है - चाणक्य- सब एक है यह दृश्य मान जगत्। पर यह पहचान केवल कर्म और भोग सवे होता है। भोग से कुछ पूर्व संस्कार कट जाते हैं। किन्तु उसके अभियान से नये संस्कार भी पैदा होते है। सब कुछ भोगना है। भोग कर ही समाप्त करना है।[2]

गुरू - चाणक्य अपने कर्मो को भोग कर अनासक्त हो जाता है। उसकी हीन ग्रंथि खुल जाती है वह कुपित चन्द्रगुप्त को समझाता है कि अभिमान को चोट लगती है ना, पर चोट क्यों लगती है? कहीं कोई अभाव हैं। हीनता है, जिसका सामना नहीं करना चाहते। मैं इस अनुभव से पार हुआ। अभाव ही अहंकार है।[3] चन्द्रगुप्त राक्षस के सम्बन्ध में चाणक्य से जानकारी चाहता है। चाणक्य उत्तर देता है कि राक्षस की प्रशासनिक क्षमता अभूतपूर्व है, उसे देश के हित में उपयोग होना चाहिए। वह कहता है कि मेरे लिए सब केवल यथार्थ है। मेरे लिए न कोई शत्रु है न मित्र। मैं स्वयं अपना शत्रु है, मित्र है।[4] वह गुरू की महिमा की व्याख्या करता है 'गुरू होना देखना है, जिसमें जितनी चोट है, जितना गहन अहंकार है, उसी के लिए यह राजनीति है। वही भोग राज सिंहासन है।[5] चाणक्य पूर्ण रूपेण गुरू रूप में दिखाई देता है।

---

१. गुरु स्वगत, पृ० ८०-८१
२. वही पृ० ८३
३. वही पृ० ९०
४. वही पृ० ९२
५. वही पृ० १०४

युधिष्ठिर -

ये यक्ष प्रश्न एवं उत्तर युद्ध नाटक के पात्र हैं। ये धर्मराज सत्यवान है। द्यूत क्रीडा में अपना सर्वस्व हार गये हैं और बारह वर्ष का वनवास भोग रहे हैं। इसी समय द्रौपदी का स्वयंबर हुआ जिसमें ब्राह्मण वेष धारी अर्जुन ने लक्ष्य-भेद कर द्रौपदी को प्राप्त किया। घर आकर माँ कुंती ने कहा उस वस्तु को पाँच समान भागों में बाँट लो। यहीं से वास्तविक समस्या प्रारम्भ हुई। धर्म, समाज की दृष्टि से युधिष्ठिर द्रौपदी के ज्येष्ठ लगते हैं। वह उनकी प्रिया कैसे बन सकती है। उत्तर युद्ध नाटक की इस समस्या को विदूषक सुलझाता है कि एक-एक कर सब भाई द्रौपदी के पास जाएं और उसके उत्तर से फिर कोई न कोई निष्कर्ष निकलेगा। नाटककार ने क्रमशः प्रत्येक पात्र के केन्द्रीय गुणों की व्याख्या की है। युधिष्ठिर के चरित्रगत वैशिष्ट्य का निरुपण यहाँ किया जा रहा है।

१. नारी सम्मान कर्त्ता :-

युधिष्ठिर नारी का सम्मान करते हैं द्रौपदी के सम्बन्ध में उनके विचार हैं कि द्रौपदी सामान्य नारी नहीं है। उसका जन्म यज्ञ की ज्वाला से हुआ है। वह यक्षसेनी रूपवती है। अग्नि ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की पहचान हैं उसने जन्म पाया है उपभोग के लिए नहीं, जलने और जलाने के लिए।[1]

२. सत्यवादी :-

युधिष्ठिर ने सत्य प्राप्ति हेतु कठिन परीक्षा बाल्य काल से ही दी है। अर्जुन सहित सभी लोग उन्हें धर्मराज कहते हैं। विदूषक कहता है कि युधिष्ठिर सत्यवान हैं।[2]

३. वास्तविक पति :-

द्रौपदी को पाँच भागों में विभक्त करने की आशा अनजाने ही सही माता कुन्ती ने दी है अतः पाँचों पाण्डव द्रौपदी के पति माने गये। यही समस्य की जड़ है कि उसका वास्तविक पति कौन होगा। द्रौपदी याज्ञसेनी है, परम सुन्दरी है, अग्निगर्भा

---

१. यक्ष प्रश्न, पृ० २५
२. वही पृ०

है इन्द्राणी है अतः उसका असली पति कौन होगा ? क्या वह पाँचों भाइयों को एकता के सूत्र में बाँध कर रख सकेगी। यह बात पाँचों पाण्डवों को हतप्रभ किये हुए है।[1]

युधिष्ठिर– वास्तव में वह प्रिया है। पंडिता है। परम दर्शनीया है। पतिव्रता[2] इस कथन से विदूषक ने यह रास्ता सुझाया कि प्रत्येक पाण्डव द्रौपदी से जाकर अलग-अलग मिले। वह युधिष्ठिर के सम्बन्ध में कहता है

विदूषक – देखा न, द्रौपदी के पास जाने में युधिष्ठिर महराज को कितना संकोच था। और संकोच क्यों न हो ? बड़े भाई हैं। जेठ हैं। ऊपर से धर्मराज। कहने को तो कह दिया द्रौपदी को प्रिया, पंडिता, परम दर्शनीया पतिव्रता। इन विशेषणों से तो पता चलता है, द्रौपदी के असली पति यही हैं।[2]

४. क्षमाशील :-

युधिष्ठिर गंभीर व्यक्तित्व सम्पन्न हैं। वे समान दृष्टि रखने वाले है। क्षमा शीलता उनका प्रधान गुण है। द्रौपदी व्यंग्य करती है

युधिष्ठिर – द्रौपदी ने आरक्त मुख से कहा– दुर्योजन का कलेजा तो खैर है ही लोहे का बना और आप केवल धर्म भीरू हैं। तभी अपने उसके कटु वचन सहे। आप सहने के आदी हो गए हैं। आप धर्मराज हैं और दुर्योधन एकाधि पति। आप को क्रोध आए न आए मुझे क्रोध आता है। आप क्षमा करें उस व्यक्ति के अपराध को जिसने कभी उपकार किया हो।

युधिष्ठिर – मैंने कहा तुम कुछ भी कहो द्रौपदी क्षमा सबसे बड़ी वस्तु है। इसी की नींव पर संसार खड़ा है।[3]

मूल्य चिंतक – जब माँ कुंती की अनजाने आज्ञा हो गयी कि जंगल से जो वस्तु लाये हो, पाँचो परस्पर बाँट लो, तुम युधिष्ठिर के समक्ष गंभीर समस्या खड़ी हो गयी है, कि एक स्त्री पाँच भागों में कैसे बँटेगी। द्रौपदी सत्ता नहीं शक्ति है। उन्हें विश्वास

---

१. यक्ष प्रश्न, पृ० ३१

२. वही पृ० ३२

३. वही, पृ० ३८

है कि द्रौपदी बँट्कर भी एक रहेगी क्योंकि वह सौन्दर्य पाँच असमान को एक समान बनाने वाली सिद्ध होगी।[1]

यक्ष प्रश्न नाटक में भी युधिष्ठिर का यही रूप व्यक्त हुआ है। वनवास के समय वे ऐसे स्थान में पहुँच गय जहाँ उन्हें कहीं पानी नही दीखता था। सभी क्लान्त थे। नकुल, सहदेव, भीम अर्जुन सभी जलाशय के पास पहुँचे अवश्य किन्तु बिना प्रश्न के उत्तर दिये, पानी पीने के प्रयास में मूर्च्छित से हो गये। सबसे अंत में युधिष्ठिर वहाँ पहुँचते है। मुमूर्षु भ्राताओं को देख वे इस कारण को खोजते हैं, तभी यक्ष उनसे संवाद करता है।

द्यूत प्रेमी – युधिष्ठिर को द्यूत–क्रीडा अतिशय प्रिय थी। इसी कारण वे राज–पाट, भाई सभी को दाँव पर लगाकर हार जाते हैं। यक्ष कहता है– पर जुए का पासा तुम्हारे हाथ में था। तुम हारे, ये सब क्यों हार गये ? तुम्हारी हार उसी क्षण हो गई जब तुम शत्रु के साथ जुआरी बने। तुम्हें अपने शत्रु का पता नहीं। वे तुम्हारी ललकार से जुए के युद्ध में शामिल हुए।[2]

उत्तरदाता – युधिष्ठिर यक्ष से प्रश्न कर उसे प्रश्न पूछने का अधिकारी अपने को प्रस्तुत करता है, कि यक्ष उससे प्रश्न करता है और वे यक्ष के सभी प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

भ्रातृ-प्रेम -

यद्यपि युधिष्ठिर सभी भाइयों को समान रूप से स्नेह प्रेम करते थे। यक्ष उनके उत्तर से संतुष्ठ हो जाता है और वे युधिष्ठिर से कहते हैं कि वे किसी एक भाई को जीवित करा सकते है। युधिष्ठिर सहदेव को जीवित कराना चाहते है

यक्ष – आश्चर्य है, तुम्हारा सबसे प्रिय भीमसेन, महापराक्रमी अर्जुन इन्हें छोड़कर तुम अपने सौतेले भाई सहदेव को जिन्दा देखना चाहते हो क्यों ?

यधिष्ठिर – क्योंकि यह मेरी माता का नहीं। यह दूसरा है। दूसरा ही महत्वपूर्ण है।[3]

१. यक्ष प्रश्न, पृ० २६
२. वही पृ० ७६
३. वही पृ० ८३

अर्जुन – अर्जुन पाण्डवों में श्रेष्ठ धनुर्धर, योद्धा के रूप में प्रसिद्ध है। यक्ष प्रश्न में वह भीम के वापस न लौटने पर भाइयों की खोज में जाता है। वह यक्ष से अपने भाइयों के सम्बन्ध में प्रश्न करता है। यक्ष के यह करने पर कि तुम्हारे भाइयों ने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया इसलिए वे मृत प्राय पड़े हुए हैं ऐसा सुनकर अर्जुन यक्ष को मर्यादा में रहने की चेतावनी देता है।[1] अर्जुन द्वारा जल पीकर उत्तर देने की बात सुनकर यक्ष कहता है

यक्ष – सावधान कुंतीनंदन ! सावधान, पानी के निकट मत जाना। इस तरह जल नहीं पी सकते भारत ! यदि मेरे प्रश्न का उत्तर दे सको तभी यह जल पीना।[2]

अर्जुन निर्भीक होकर यक्ष को डॉटता है, कि निरर्थक बातों में फँसाने वाला यक्ष हत्यारा और प्रपंची है। यक्ष जब अपनी प्यास की अधिकता को बताता है, तो अर्जुन कहता है के वनवास में है। वे धर्म योद्धा है। अतः वह पानी पीने को प्राथमिकता देता है, परिणाम स्वरूप अचेत हो जाता है।

उत्तर युद्ध नाटक में अर्जुन नये अनेक रूप दृष्टिगोचर होते है। विदूषक उसे संसार का बेजोड़ धनुर्धारी कहता है। द्रुपद–आयोजित–स्वयंवर की शर्त को पूरा कर द्रौपदी का वरण कर घर लौटते। कुंती का आदेश था कि वस्तु पाँचों पाण्डव उसे बराबर बॉट कर खा लें। वस्तु का बाँटना तो सम्भव है लेकिन स्त्री का बँटवारा अत्यन्त कठिन हैं बाँटने से वस्तु छोटी हो जाती है। और इस प्रकार यह निर्णय होता है कि क्रमशः पाँचों पाण्डव द्रौपदी के पास जाकर उसका मन्तव्य समझे। अर्जुन अपनी शंका व्यक्त करते हैं।

अर्जुन – द्रौपदी सब प्रकार से मानवी है। उसका पाँच भागों मे बॉटा जाना संभव नही। यदि वह पाँच भागों में बाँटी भी गई तो भी मेरे भाई मुझसे ईर्ष्या करेंगे। वे इस सच्चाई को कभी नहीं भूलेंगे कि द्रौपदी का स्वयंवर मैंने जीता है।[3]

---

१. यक्ष प्रश्न, पृ० ७०

२. वही पृ० ७०

३. वही पृ० २६

वह अपने चिन्तन को तर्कपूर्ण और व्यावहारिक रूप में सिद्ध करने के लिए उदाहरण सटीक रूप में देता है।

अर्जुन – यह तृण लीजिए। इसे पॉच बराबर भागों में बॉटिए। इस पॉच भागों में बॉटने के लिए इस कितनी बार तोड़ना होगा। जो जितनी बार टूटेगा, उसका कोई भी भाग बराबर नहीं रहेगा। न वह कभी सम्पूर्ण रहेगा। हम सब ईर्ष्या के आग में जलेंगे।[1]

सौन्दर्य प्रिय – अर्जुन धनुर्धारी था। योद्धा के रूप में उसकी ख्याति थी साथ ही वह सौन्दर्य प्रिय नायक भी है। उसे द्रौपदी के प्रति विश्वास है।

अर्जुन – द्रौपदी की सुन्दरता की गठन ही निराली है। श्यामल रंग भी न्यारा है। वह याज्ञसेनी है। साँवले सौन्दर्य की परिसीमा वह जानती है।[2]

अर्जुन की चिन्ता यह है, कि वे पाँचों भाई रूप, गुणों में भिन्न है। इतना अवश्य है, कि वे सभी किसी अदृश्य सूत्र में बँधे हैं किन्तु द्रौपदी के आने पर परस्पर हम विघटित हो सकते हैं। द्रौपदी हमारे भय को असंख्य गुणा कर देगी। वह अपने बल और अहंकार को तौल कर कहता है, कि स्वयंवर में द्रौपदी को उसने जीता है।[3] अतः द्रौपदी पर उसका एकाधिकार होना चाहिए पर मातृ-भक्त अर्जुन कुंती के उस वाक्य पर आश्चर्य व्यक्त करता है कि माँ ने यह क्या कह दिया कि सब बाँट लो बराबर।[4] वह विदूषक से इस बात की पुष्टि कराना चाहता है, कि द्रौपदी ने अर्जुन को वरण किया था, किन्तु भाइयों में द्रौपदी को बाँटने की बात कह कर माँ ने उन्हे विभक्त सा कर दिया है। द्रौपदी से मिलने पर अर्जुन को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया कि युद्ध अनिवार्य है। युद्ध में सारे भाइयों को मिल कर एक होना होगा। एकता के लिए निष्ठा अनिवार्य है।

दुर्योधन द्वारा द्रौपदी के अपहरण तथा उसके आर्तनाद को सुनकर पाँचों पाण्डव परस्पर दूसरे को भेज कर रक्षा करने का प्रस्ताव करते रहते है, तभी अर्जुन कहता

---

१. यक्ष प्रश्न, पृ० २६
२. वही पृ० २८
३. वही पृ० ३३
४. वही पृ० ३४

है कि यह समय आपस में विवाद करने का नहीं है, कि द्रौपदी वास्तव में किसकी प्रिया है और उसकी रक्षा करने कौन जाए। वस्तुतः स्वयंवर में जीतने के बावजूद द्रौपदी अकेली मेरी नहीं, वह सबकी है। हमें एक साथ जाकर उसकी रक्षा करनी पडेगी।[1] तात्पर्य यह है कि नाटककार ने अर्जुन के पौराणिक वीरयोद्धा धनुर्धर रूप को सुरक्षित ही नहीं किया साथ उसमें आधुनिक युगीन वैयक्तिकता का भी चित्रण किया है।

देवधर :-

यह "एक सत्य हरिश्चन्द्र" का पात्र है जो गाँव का भूतपूर्व जमींदार और आज का राजनेता है। उसे अपनी शक्ति और भ्रष्ट राजनीति पर भरोसा है। वह लौका द्वारा आयोजित धर्मकथा का विरोध करता है। वह कहता है– युद्ध लौका सत्य नारयण की कथा कहेगा यह सरासर अधर्म है। हिन्दू धर्म खतरे में है। हमारे शान्त इलाके में साम्प्रदायिक आग भड़काना चाहता है।[2] उसे अपना विरोध सह्य नहीं। चुनौती मिलने पर वह कहता है कि – तू जानता नहीं मैं क्या हूँ। शायद तुझे मेरी ताकत पता नहीं है। मेरा इलाका है यह मेरी जन्म भूमि है। मुझे कभी यहां अपनी ताकत दिखाने की जरूरत नहीं पड़ी।[3] उसे भ्रष्ट राजनीति की शक्ति पूरा पता है कि वह किस प्रकार वर्ग भेद के डाल पर वह शक्ति पुष्पित फलित होती है। वह कहता है। शक्ति हमेशा ऊपर के लोगों के हाथ में रही है। नीचे का सारा रक्त गुणों से ठण्डा हो चुका है। तभी वहाँ भाग्य है और न जाने कितनी कितनी कथाएँ दबी है। उस वर्फ की धरती में।[4] देवधर साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाकर अपनी शक्ति को मजबूत करता है। लौका की चारित्रिक शक्ति को नष्ट करने का इसे एक अस्त्र मानता है। वह षडयन्त्र कर लौका के नाटक में इन्द्र की भूमिका में अवतरित होता है। किन्तु दुर्भाग्यवश लौका के आग्रह से उसका भण्डाफोड हो जाता है। तात्पर्य यह है कि देवधर इस नाटक का

---

१. यक्ष प्रश्न, पृ० ४९

२. वही पृ० २३

३. वही पृ० २०

४. वही पृ० ६२

वह पक्ष है जो राजा के अन्ध विश्वासी धर्म का और आज के सत्ताधारी सवर्ण राजनीति का प्रतीक है। जिसके आतंक व हिंसा को हर शोषित भोगता है लेकिन अन्ततः लौका की शक्ति की अनुभूति देवधर के लिए अभिशाप बन जाती है।

लौका :-

एक सत्य हरिश्चन्द्र का केन्द्रीय पात्र लौका है, जो आगे चलकर पौराणिक चरित्र हरिश्चन्द्र का अभिनय करता है। साथ ही उसके आदर्श का वहन भी करता है। वह अछूत जाति का नेता भी है। देवधर उस पर आरोप लगाता है कि जातीय संगठन कर स्वयं नेता बनना चाहता है। क्रान्तिकारी लौका भली भाँति जानता है कि धर्म और राजनीतिक छल द्वारा ही गरीबों और शूद्रों का शोषण किया जाता है। ये तत्व गाँधी के स्वप्नों को साकार करने में बाधक होते है। गपोले लौका के विषय में कहता है-

गपोले - हम लोग ऊँची जाति के अवश्य हैं किन्तु ऊँचे कर्म तो लौका के हैं।[1]

लौका गाँधी वादी विचार धारा का व्यक्ति है। राजनीति की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए वह कहता है-

लौका - यह जिसके हाथ में होती है, उसके लिए अंधेरा उजाला हों जाता है, लेकिन उससे दूर अंधकार और गहरा हो जाता है।[2]

लौका तर्कशील व्यक्ति है। गाँव में सुनाई जा रही सत्य नारायण को सुनाकर वह अपना तर्क प्रस्तुत करता है-

लौका - पंचो, लेकिन यह कोई नहीं सुनाता कि वह सत्य नारायण की कथा क्या है। जैसे अब तक हमें सिर्फ यह बताया गया कि अपनों से बड़ों का विरोध करने क्या दण्ड मिलता है, पर कभी नहीं बताया गया कि विरोध क्या है?[3]

लौका अपनी जाति विरादरी में सम्मानित व्यक्ति माना जाता है। उसकी जीवन सम्बन्ध

---

१. एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ० २१
२. वही पृ० २१
३. वही पृ० २३

ी व्याख्या कुछ अलग ढंग की है। वह तर्कशील प्राणी होने के साथ ही साथ कुशल अभिनेता भी है। पंचायत के अनुरोध करने का वह हरिश्चन्द्र नाटक का अभिनय प्रस्तुत करता है जिसमें वह स्वयं हरिश्चन्द्र के रूप में अवतरित होता है। गाँव का मुखिया, धर्म का ठेकेदार यह सोचता है, कि इस नाटक में वह विश्वामित्र या इन्द्र के रूप में अवतरित होकर हरिश्चन्द्र बने लौका से सत्य वचन का वर लेकर पुनः उसे यथार्थ भूमि पर ला खड़ा करेगा। लौका उस षड्यंत्र को अपनी दूरदर्शिता के कारण इसके रहस्य को जान लेता है-

लौका - हरिश्चन्द्र सदा अपने सत्य की परीक्षा देते रहे और तुम परीक्षा लेते रहे। मैंने इस नाटक में राजा बनकर देख लिया, जब तक तुम हो, हम केवल बनाए जा सकते हैं। अपने आप कुछ हो नहीं सकते। पर बनने और होने का मर्म हमें मिल गया है। चुप रह जाना हमारा विरोध था, पर तुम उस भाषा को नहीं समझे। सत्ता है तुम्हारे पास हम सब तुम्हारे हाथों के सिर्फ कठपुतले थे। यह सारा नाटक तुम्हारा रचा हुआ था और तुम्ही इसके सूत्रधार थे।[1]

लौका प्रत्युत्पन्न नेता है। वह अपनी बौद्धिक चतुराई और निष्ठा से इन्द्र बने देवध ार को परीक्षा देने के लिए विवश कर देता था। इस प्रकार उसके साथ सारें गाँव के लोग कह उठते हैं कि अब कोई नहीं होगा इन्द्र, कोई नहीं होगा विश्वामित्र, सब होगें हरिश्चन्द्र। निष्कर्ष यह है, कि लौका स्वातंत्र्योत्तर भारत के जन मानस की जाग्रदावस्था का प्रतीक है। उसके चरित्र में एक क्रान्तिकारी के सपने बनते है। सामाजिक असमानता हेतु उच्च वर्ग की छूट का ही परिणाम है ऐसा चिन्तन उसके कार्य एवं वचन से अभिव्यक्त होते है।

कमल :-

यह गंगा माटी का केन्द्रीय पात्र है। कमल शिवानन्द का पुत्र और देवल का छोटा भाई है। उसमें नयी रोशनी, नये विचार और रूढ़ियों को तोड़कर नया आचरण

---

१. एक सत्य हरिश्चन्द्र पृ० ७८

है। अपने इन्ही विचारों के कारण वह एक ओर अंधविश्वास के आधार पर अपना वर्चस् बनाये रखने वाले अपने पिता का विरोधी है, तो दूसरी ओर प्रताडिता किन्तु निर्दोष कन्या गंगा का पक्षधर बनता है। गंगा के विरूद्ध शिवानन्द पंचायत आहूत कर उस पर मिथ्या अभियोग लगाकर गाँव से बाहर करने का आदेश पारित कराना चाहता है, क्योंकि गंगा उसके कपट आचरण एवं अंध विश्वास भरे कार्यो को चुनौती देती है। कमल उसका पक्ष लेकर न्यायोचित बात कहता है-

कमल – जहाँ पंच नहीं, वहाँ न्याय कैसा ? जहाँ पहले से ही फैसला कर कपट जाल बुन लिया गया हो, किसी गरीब, निर्दोष, विवश को फँसा लेने के लिए।[1]

कमल गंगा के चरित्र, व्यवहार से प्रभावित है। वह कहता है गाँव की पाठ्शाला में यह पढ़ती थी, तभी मैं इसके साथ बढ़ा हूँ। मेरे प्राणों में जो आज प्रेम, आशीष है, उसका मूल यही गंगा है। यह वह संगीत है, जो न जाने किस हिमायल से गिरकर गंगा माटी गाँव में आया है।[2] कमल ज्ञानर्जन हेतु अन्य प्रदेश चला जाता है। शिवानन्द धूर्तता से गंगा का विवाह अपने बड़े पुत्र देवल के साथ सम्पन्न करा देता है। कमल शिक्षित होकर जब गाँव लौट्ता है, तो भाभी गंगा को घर में न पाकर उसकी खोज करता है। इस खोज में उसे पिता का विरोध झेलना पडता है। वह अपने मनोहर को लेकर गंगा की खोज हेतु बाहर जाता है और गंगा, प्रसादी कुसुम, मनोहर को लेकर गाँव आ जाता है।

अपने पिता के विरोध करने पर भी कमल जिया हो उत्सव गाँव वालों के धूमधाम से मनाता है। वह अपनी मिट्टी से जुड़ा पात्र है। उसके व्यक्तित्व में एक प्रकार की विवशता एवं तदजन्य झुंझलाहट भी है। उसका विद्रोह सार्थक विद्रोह नहीं हो पाता। डॉ० दयाशंकर शुक्ल ने लिखा है कि उसके अन्दर क्रिएटीविटी और प्रोटेशियन ही का बीज है। वह कमल वन है जसे रौंद कर हाथियों का झुंड (मनोबल और शक्ति का अभाव, परमुखापेक्षी आदि) चला आ रहा है। इन हाथियों से बचने

---

१. गंगा माटी, पृ० ५
२. वही पृ० ७

के लिए कमल भी पलायन का मार्ग अपनाता है।[1]

हरिपदम -

यह दर्पन नाटक का मुख्य पात्र है। युनिवर्सिटी में प्राचीन इतिहास और संस्कृति का लेक्चरर है। ट्रेन यात्रा के समय इसे कालरा हो गया और पूर्वी नामक युवती की परिचर्या से ठीक हो गया। संयोग वशात् दोनों एक ही नगर के निवासी थे। अतः परिचय प्रेम एवं आगे विवाह में परिवर्तित की होने की स्थितियाँ बनने लगती है। पिता इस विवाह का विरोध करता है, किन्तु पुत्र-सुख की बात सुनकर अपनी सहमति दे देता है। युवती पूर्वी दर्पन रूप में पहचान ली जाती है जिसके पिता ने इसे अमांगलिक दोष के कारण बौद्ध मठ में दान कर दिया था अतः विवाह सम्पन्न होने के कुछ क्षण पूर्व पूर्वी को बौद्ध भिक्षुणी बन कर मठ में जाना पडता है। इस प्रकार नाटककार हरिपदम के माध्यम से भारतीय पारिवारिकता एवं परिवेश के बदलते रूपों पर इस नाटक के माध्यम से प्रकाश ड़ाला है। हरिपदम के व्यक्तित्व एवं चरित्र को विकाश प्रणाली से विकसित किया गया है।

१. रूपरेखा -

नाटककार डॉ0 लाल ने हरिपदम की रूपरेखा का परिचय दर्शकों/पाठकों को इस प्रकार दिया है 'पैंट और बुशर्ट पहने हुए है। अवस्था तीस वर्ष से अधिक नही। आकर्षक व्यक्तित्व।[2]

२. विवाह की स्वतंत्रता का पक्षधर :-

हरपिदम आधुनिक विचारों का पक्षधर है। विवाह व्यक्ति का निजी निर्णय होता है। उसके संकट के समय पूर्वी ने बड़ी तत्परता से सेवा सुश्रूषा की है, अतः वह उसके निकट आया। परिचय प्रगाढ़ हुआ और यह प्रगाढ़ता इंगेजमण्ट तक। हरिपदम के पिता पूछते हैं तो वह कहता है

हरिपदम - इसमें बुराई क्या है पिता जी ?

---

१. डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक और रंगमंच पृ० १६४
२. दर्पन, पृ० १४

पिता जी – बुरा क्या है? (खड़े हो जाते हैं) तुम्हें इसमें बुराई ही नजर नहीं आती ? वाह !

हरिपदम – पिता जी मैंने अपने विवाह के बाबत बहुत सोच-विचार किया है और मैंने पूर्वी से अपने व्याह के लिए आज दो महीने हुए सबसे पहले आप से ही कहा था। पिता जी पूर्वी से मेरा व्याह यह गलत चीज कहाँ है?[1]

पिता जी– इसलिए मैंने तुम्हें पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है।

हरिपदम – यह मेरी जिन्दगी है। मैंने पूर्वी को चाहा और अब मैं उससे शादी करना चाहता हूँ।[2]

३. प्रेमी -

ऊपर कहा गया है, कि हरिपदम पूर्वी से प्रेम करके इस प्रेम को विवाह की परिणति तक ले जाना चाहता है। इस प्रेम की पृष्ठभूमि में आन्तरिक परिचय है। वह जाति स्थान, कुल, परम्परा को महत्व नहीं देता है .

हरिपदम – मेरे लिए सारा महत्व किसी के आन्तरिक परिचय का है। वह (आन्तरिक परिचय) व्यवसाय की भाषा में नहीं बाँधा जा सकता। वह केवल अनुभूति है। अनेक अजनबी लोगों के बीच दो अजनबी ट्रेन के एक डिब्बे में बैटे हैं। मुझ अजनबी को कालरा हो गया एक छोटे से स्टेशन पर उतार दिया गया। एक अजनबी लड़की मृत्यु के उस संघर्ष में मेरे साथ खड़ी थी वह समय उसके बाद का समय और उससे जुड़ा हुआ तब से एक-एक क्षण हम दोनों को बाँधता गया।[3] पिता के विरोध करने पर वह कहता है कि 'मै सब नाते रिश्तेदारों को आपकी ओर से जबाब दे दूँगा।[4] प्रेम में प्रेमी को प्रेमिका सर्वाधिक सुन्दरी लगती है। पूर्वी पूछती है

पूर्वी – तुम्हारी दृष्टि में मैं सबसे अच्छी हूँ?

हरिपदम – हाँ

---

१. दर्पन, पृ० १४

२. वही पृ० २१

३. वही, पृ० २५

४. वही पृ० ३७

पूर्वी – अगर मैं। अच्छी न होऊँ तो ?

हरिपदम – नहीं

पूर्वी – मुझ पर तुम्हारा इतना विश्वास

हरिपदम – हाँ[1]

इस प्रकार हरपिदम के प्रेम में दृढ़ विश्वास, अनन्यता, आत्मीयता और उदारता दिखाई देती है। हरिपदम ने बौद्ध मठ को पत्र लिखा था, जिसे लेकर एक आदमी आता है। वह पूर्वी को दर्पन के रूप में पहचान कर उसे मठ की दुर्दशा, दुरव्यवस्था को ठीक करने हेतु उससे मठ चलने का आग्रह करता है। हरिपदम मना करता है, किन्तु पूर्वी दरपन भिक्षुणी बनकर हरिपदम से पहली भिक्षा माँगती है। हरिपदम प्रतीकात्मक भाषा में कहता – अंधकार नहीं। दर्पन आज मेरे सामने पारदर्शी हो गया। इसके आरपार एक नीलाकाश मैं देख रहा हूँ जिसमें सितारों की एक नाव चल रही है। कभी वह नाव सहसा टूट जाती है, कभी फिर उसी तरह बनकर पंख फैलाने लगती है[2]

अवधूत :-

मध्यकालिक साधना में शव–साधक को अवधूत कहा गया है। अवधूत बुद्ध–ध ार्म के विकृतियों के फलस्वरूप उत्पन्न साधक होता है। सम्पूर्ण नाटक में पंचमकार की साधना में रत इसे चित्रित किया गया है।

कृषक – अवधूत महासिद्ध है। वह मानवहित कलंकी अवतार की साधना कर रहा है।[3]

१. पाखंडी -

सरल, ग्रामीण कृषक अवधूत को सिद्ध पुरुष कहते है, किन्तु हेरुप उसे पाखण्डी, अनाचार फैलाने वाला कहता है–

हेरुप – अवधूत यदि तुझमें साहस है, तो प्रत्यक्ष मेरे सामने आ। ओ ढोंगी, पाखण्डी,

---

१. दर्पन, पृ० ३६

२. वही, पृ० ६५

३. कलंकी, पृ० ६

अपनी अधूरी दुनिया से बाहर निकल क्या कहा? तू बाहर नहीं निकलेगा ? तो सुन मैं पूरे नगर से चिल्ला-चिल्ला कर कहूँगा-तू कायर है क्लीव है झूठ है[1] अवधूत मुँह छिपा कर हे रूप को बताता है "अंधकार और प्रकाश में अन्तर करने वाला तू कौन है ? तुझे जब इतना भी ज्ञान नही है कि शरीर के छह चक्र, सोलह आधार, दो लक्ष्य और पाँच आकाश क्या हैं?[2]

२. तंत्र विद्या का ज्ञाता -

अवधूत पंचमकार का साधक है। वह हेरूप को भी इसकी दीक्षा देने का प्रयास करता हे

अवधूत - सुन......ओह तुझमें अब भी वही आश्चर्य बोध है। तेरा निवास अभी मूलाध ार चक्र पर ही है। मेरे पास आ मैं दूँगा तुझे तंत्र-विद्या का रहस्य है। मैं जगाऊँगा तेरी सुषुप्त कुंडलिनी ....तू कमलों की सेज को रौंदता हुआ अनन्य सुन्दरियों का भोग करता हुआ.....[3]

३. सिद्ध -

अवधूत तंत्र-साधना कर सिद्ध साधक बन गया है। वह कहता है

अवधूत - तू नहीं जानता मेरी शक्ति! तू जो कुछ मुझसे माँग मैं इसी क्षण तुझे दे सकता है। (रुककर) चल, ध्यान कर ऐसे विशाल भवन का जिसमें छह आँगन, सोलह कमरे, नौ दरवाजे और पाँच खण्ड है, फिर भी यह केवल एक स्तम्भ पर टिका है सो गया मैं अब इसकी आत्मा को इसके पिण्ड से अलग कर इसके शव से वार्तालाप करूँगा।[4]

४. अहंकारी शासक -

वस्तुतः अवधूत छद्म वेषधारी हेरूप का पिता है। वह नगर का शासक सामन्त था। पुत्र से उसे आशंका थी कि एक दिन उसके विरुद्ध उसका पुत्र ही विद्रोह करेगा।

---

१. कलंकी, पृ० १३
२. वही, पृ० १४
३. वही पृ० १५
४. वही पृ० १७

उसने पुत्र को तंत्र-विद्या की शिक्षा के व्याज से बाहर भेज दिया। वह कहता है

अवधूत - पहचान मैं कौन हूँ। हाँ तेरा वही पिता हूँ। उस गिरि शिखर से अब यहाँ भूत बन कर आया हूँ। मुझे आशंका थी, तू कभी इस नगर में वापस आयेगा, और यहाँ मेरे विरूद्ध विद्रोह फैलायेगा। यह मेरे लिए असह्य था। मैं मरकर भी तुझे सफल नहीं होने दूँगा। मैंने चाहा था, मेरे बाद तू ही मेरा उत्तराधिकारी हो मुझमें कोई शील संकोच नहीं। विक्रम विहार में भेजने की जगह मैंने तेरी हत्या क्यों न करा डाली।[1]

महत्वाकांक्षी -

अवधूत पूर्व शासक था। अपना अस्तित्व बनाये रखने हेतु उसने गिरि शिखर पर जाकर मर जाने का ढोंग रचाया और अवधूत बनकर कलंकी अवतार लेने की पृष्ठभूमि जनता में तैयार करता है। वह अमर होने की अपनी जिजीविषा व्यक्त करता है

अवधूत - गौरव, गाथा के रूप में मेरा अमर अस्तित्व यहाँ बना रहे, मैंने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में हूणों से युद्ध किया और मरकर फिर यहाँ आ गया। मैं यही से उपजा हूँ। मैं यहीं रहूँगा, तू बाहर का है। तू यहाँ नहीं रह सकता देख मेरी असीम शक्ति।[2]

वह दिवंगत महाप्रतापी शूरवीर अकुल क्षेत्र के पुत्र हेरूप को पुरपति सामंत बनाता है तथा पुनः तांत्रिक रूप धारण कर अपने को पूर्वजन्म का बोधिसत्व घोषित करता है। वह हेरूप को तांत्रिक विधि से ग्रामीण कृषको द्वारा अभिषिक्त कराता है। हेरूप को तंत्रिक प्रक्रिया से घृणा है अतः तांत्रिका उसे शाप देता है।

सिंधु ठाकुर -

सिंधु ठाकुर एक दुर्दान्त दस्यु था। एक दिन वह अवधपुर गाँव के निकट टिका। उन दिनों गाँव अकालग्रस्त था। सारे ग्रामीण निष्क्रिय चुप, मौन हाथ पर हाथ धरे बैठे थे। सिंधु ठाकुर ने गाँव-गाँव डाका डालकर घरों को लूटने का धंधा छोड़कर एक

---

१. कलंकी, पृ० १७

२. वही पृ० १८

ही जगह, एक ही गाँव को बार-बार लूटने का निर्णय अचानक ही ले लिया। भारतीय ग्रामीणों के चरित्र से वह अच्छी तरह अवगत था। उसी क्षण उसने रूप बदला-सिंध ु ठाकुर से राज ठाकुर बन गया। यह सिंधु ठाकुर संस्कार ध्वज नाटक का मुख्यपात्र या नायक है। उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ चित्रित की गई है।

संकल्पवान - डाकू अचानक काली माँ के मन्दिर में पहुँच जाता है। उसके मन में कुछ विचार उत्पन्न होते है।

ठाकुर - माँ काली ने मुझे दुष्टि ही है। मै, इन गाँवों पर राज्य करूँगा। इन्हे अपनी प्रजा बनाकर इनका राजा ठाकुर बनूँगा। कितने बलवान है यहाँ के लोग, पर कितने सीधे सादे है, इनके भीतर तमाम ताकत सोयी हुई है। उस ताकत को जगा कर कोई काम लेने वाला चाहिए। ये प्रजा हैं। इन्हें कोई एक राजा चाहिए। ये आलसी, संतोषी, अंधविश्वासी हैं। इन्हें किसी का भय चाहिए। इनमें अनंत शक्ति सोयी पड़ी है। उसे इस्तेमाल करने वाली कोई दूसरी ताकत चाहिए। इनमें असीम धैर्य है। कोई उसे बाँध ाकर हाँकने वाला चाहिए। ये भाग्य के खूँटो में बँधे हुए पशु हैं, इन्हें एक दंड चाहिए। ज़ाति-पाति, छूत, अछूत, शूद्र-सवर्ण के तंग वाड़ों में घिरे हुए बेवकूफ लोग हैं। भाग्य, पूर्वजन्म, पाप दोष के अंधविश्वासों में फँसे है। कितना आसान है इन पर राज्य करना। और उससे ज्यादा सरल है इनसे अपना काम लेना। मैं देख रहा हूँ, मैं राजा बनूँगा, इन सोये हुए गाँवों का। इनकी मेहनत से में यहाँ अपना राजमहल खड़ा करुँगा। इनकी कमाई से अपनी हवेली भरूँगा। देव मन्दिर के सहारे अपना काम शुरु करुँगा।[1]

२. विश्वास जेता -

ठाकुर की धारणा है कि प्रजा के विश्वास करने पर राजा के पास शक्ति आती है और यह विश्वास भय से बनता है। वह गाँव वाले को समझता है कि भगवान तुमसे नाराज हैं कालकोप पड़ा है। हाथ पर हाथ धरे बैठे हो। भगवान का प्रसन्न रखना तुम्हारी जिम्मेदारी है। उसी की दया से यह अकाल खत्म होगा। उसी की कृपा

---

१. संस्कार ध्वज, पृ० १६-१७

से तुम्हारे खेतों में फिर अन्न की वर्षा होगी। माँ काली ने कहा है ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए इस गाँव की धरती पर ठाकुर जी का एक विशाल मंदिर तुम लोगों के हाथों बनेगा।[1]

सौभाग्य वश गाँव में अगली बार फसल अच्छी हुए सबों ने इसे ठाकुर का प्रसाद समझा और वे उस पर विश्वास करने लगें।

३. शोषणकर्त्ता -

राजा ठाकुर ग्रामीणों पर धीरे-धीरे अंकुश लगाने लगा। वह अब गाँव का जमींदार हो गया। गाँव वाले उसे धर्मात्मा प्रजा पालक मानते किन्तु ठाकुर धीरे-धीरे किसानों का शोषण करने लगता है। उसने अंग्रेजो से दोस्ती कर ली और गाँव मे जो भी उसके विरोध में सामने आता उसे ठाकुर नष्ट कर देता।

राम बोला कन्नाई गाँधी जी के प्रभाव के आकर आन्दोलन करता है। उस समय ठाकुर की क्रूरता सीमा को पार कर देता है।

उत्तमा – पुलिस की लाठियाँ पडीं। धर पकड मची। घर लूटे गये। गाँव के गाँव फूँक दिये गये। राजा ठाकुर के साथ अंगरेज कलक्टर और पुलिस कप्तान के दौरे होने लगे पूरे इलाके में। जो खद्दर पहने देखा जाता उसे गिरफ्तार कर लिया जाता। जो गाँध ी टोपी पहने मिलता, उसे मारकर बेहोश कर दिया जाता। सुलेमपुर के मुसलमानों को अवधपुर के हिन्दुओं के खिलाफ भड़काया गया। तालपुर से भभुआडीड के बीच कितने साम्प्रदायिक दंगे कराये गये। चुनाव के बहाने, अल्प

१. संस्कार ध्वज, पृ० १६

दशा का कारण एक वृद्ध रहस्मय ढंग से बताता है, कि यह राजा पूर्व जन्म में मणिसेन साहूकार था। उसकी केसर एक बाम्हण को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहती थी, किन्तु केसर की अस्वीकृति के कारण उसे जीवित भूमि में गढ्वा दिया था। अब वह ब्राम्हण भूत बनकर आज रात राजा से अपना बदला लेगा। भयभीत राजा अपनी रक्षा हेतु सतर्क हो जाता है। रानी राजा से डर के विषय में पूंछती है, किन्तु राजा नहीं बताता है क्योंकि उसे यह रहस्य बता देने पर पत्थर हो जाने का भय है। अंत में गंगा और पंचम के दाम्पत्य-रहस्य को जान कर राजा रानी भी अपने जीवन की समस्या को सुलझा लेते है। यहां राजा के चरित्रगत कुछ विशेषताओं का विश्लेषण किया जा रहा है।

1. विलासी :- अंगध्वज राजा की छवि प्रजा में विजासी राजा की है। छद्म वेष धारी राजा के सामने एक वृद्ध कहता है:-

1. वृद्ध- मेरे राजा का अपमान मत करो। मेरा राजा महा विलासी है। वह अपने रंग भवन में सारी रात रंग रेलिया करता है। दिर भर सोता है।[1]

2. स्मैण- रानी के कान का मोती खो गया है। गुप्त चरों तथा अनुचरों ने बहुत खोज-बीन की किन्तु मोती नहीं मिला। रानी जिद के कारण अन्न-पानी का परित्याग कर देती है। राजा उससे आग्रह करता है, कि वह दूसरा आभूषण बनवा देगा, किन्तु रानी को वही मोती चाहिए, परिणाम स्वरूप राजा वेष परिवर्तित कर मोती खोजन स्वयं निकलता है। एतद विषयक संवाद द्रश्टव्य है-

रानी- मैं तब तक अन्न पानी छुऊंगी नहीं, जब तक मेरे कान का वह हजारा मोती नहीं मिलोगा

राजा- मैं दूसरा बना दूंगा।

रानी- राजनी जिद न करो

X X X

---

१. सगुन पंछी- पृ० ३१

रानी– उस हजारा मोती बिन जिऊँगी नहीं।

राजा– पूरे राज–भर में दूंगागया। राज्य के सारे गुप्त चरों को हजारा मोती के इस तरह गायब होने के रहस्य का पता नहीं चला।

रानी– उस रहस्य का पता तुम्हें लगाना होगा।

राजा– मुझे ? राज कोज मेंक्या इसके लिए इतना समय मेरे पास है ?

रानी– तो मेरी इच्छा की काई कीमत नहीं है ?

राजा– तुम्हें अपने राजा की कोई इज्जत नहीं ?

X X X

मेरी रानी की अगर यही जिद है, तो मैं जाता हूँ।[1]

3. अशान्त : अंगध्वज राजा रानी की जिद या दुराग्रह के कारण त्रस्त है। वह वेष परिवर्तन कर प्रजा के मध्य जाता, उस समय उसे अपने दोषों का पता लगना है, जिससे उसकी अशान्ति बढ़ जाती है, क्योंकि दोषों का अस्वीकृति ही अशन्ति का मूल कारण होती है।

(क) राजाः यह दुःखी है, अशान्त है। क्या मैं भी स्वीकार कर लूं कि मैं भी दुखी और अशान्त हूं। वह भी अपनी रानी के कारण। (रूककर) अपने को स्वीकार कर लूं ? नहीं स्वीकृति में ही सारा उप्रदव है।[2]

4. राजा का प्रेमः–

राजा अपनी रानी रानी अत्यधिक प्रेम करता है। मसखरा कहता है, कंचन पुर के एक नगर में अंगध्वज राजा रहता था। राजा रानी में बड़ा प्रेम था।[3]

यह प्रेम त्याग करने में पर्यवसित होता है। नील कंठ के कहने पर राजा मूर्च्छिता रानी को अपनी आयु का आधा भाग देने को तत्पर होता है।

(क) नीलकंठ : राजा अपनी आयु का आधा हिस्सा रानी को दे दे। फिर यह जी जाएगी।

---

१. सगुन पंछी- पृ० २६, २. वही पृ० ३१ , ३. वही पृ० २६

राजा– (उत्साह से उठकर) तैयार हूं।

नील कंठ– तो लो यह जलपात्र। थोड़ा सा जल पनी अंजुरी में लो। ग ग ग कहो कि मैं अपनी आयु का, अपने मेरे जीवन को आधा भाग लेकर जी जाय। ग ग ग राजा रानी पर अंजुरी का जल छिडकता है, रानी जीवित हो उठती है।[1] और रानी के बार–बार आग्रह पर भी राजा उसके जीतिव होने का रहस्य नहीं बताता।

5. राजधर्म का ज्ञाता :

अंगध्वज व राजनीति, धर्म, प्रजा पालन का निष्ठा पूर्वक पालन करता है। छद्म वेषधारी राजा प्रजा से पूंछता है।

(क) क्या दुःख है तुम्हें? राजा से न्याय मांगने आये हो? किसनपे क्या किया, बोलोगें नहीं तो न्याय कैसे मिलेगा? XXX विश्वास करो मेरी भुजाओं में इतना बल है, कि में तुम्हारी कोई भी सहायता कर सकता हूं।[2]

6. कायरता :

अपने को साहसी कहना सरल होता है किन्तु विषम, त्रासद परिस्थिति का सामना करना कठिन होता है। राजा अंगध्वज को जब यह पता चलता है, कि आज राज प्रेत राजा को मार कर अपना बदला लेगा , तो राजा भयभीत होकर सैनिकों को अपनी रक्षा हेतु सन्नद्ध करता है। राजा (पुकारता है) द्वार पाल। नगरपाल। XXX सावधान! कोई महल के भीतर पांव नहीं रखे! XXX भीतर से चारों ओर बन्द कर लो। XXX कोई आता दिखे तो बन्दूक दाग लो। कोई कदम बढ़ाये तो तलवार से काट दो।[3]

प्रेत के पत्यक्ष होने पर राजा भयभीत होकर मूर्च्छित हो जाता है।

निराशा : अंगध्वज से रानी अपने जीवित होने के रहस्य के साथ राजा मूर्च्छित होने

---

१. सगुनु पंछी पृ० ७१

२. वही पृ० ३०-३१

३. सगुन पंछी - पृ० ३४-३५

का रहस्य जानने की जिद करती है। राजा उसे समझाता है, कि रहस्य बता देने पर वह पत्थर काहो जाएगा फिर भी रानी रहस्य जानना चाहती है। इस पर राजा को आश्चर्य ही नहीं होता, वह जीवन से निराश हो जाता है, कि इस संसार में उसका अपना कोई नहीं हैः-

राजा- तो सुनो, नहीं बताना चाहता।

रानी- तो सुनो, मैं जानकर रहूंगी, नहीं तो प्राण दे दूंगी।

राजा- अगर वह बताने लायक नहीं हो।

रानी- ऐसा कुछ नहीं हो सकता।

राजा- उसका वचन है-यदि मैं उस बात को किसी से कह दूंगा, तो उसी क्षण पत्थर हो जाऊंगा। मैने उसे वचन दिया है।

रानी- वचन मुझे भी दिया है। XXX

राजा- तो सुनो कल प्रातः काल उस शिविर के नीचे बहती हुई गंगा केतर पर हम लोग चलें। वहीं तुम्हें यह बात बता कर मैं सदा के लिए पत्थर हो जाऊंगा।[1]

अहंकारीः सत्ता का अधिकार व्यक्ति को मदाध बना देता है। अंगध्वज को यह अभिमान हो गया था, कि उसने अपना आधा जीवन रानी को दे दिया है। रानी के प्राणों पर उसी का अधिकर है। यह अहंकार दम्पत्य जीवन को विषाक्त कर देता है-

रानी- तुम्हारे दान में अहंकार है। तुम्हारे दिये ए जीवन से मैं घुट रही हूं। अपने ही जीवन से जीना है।

राजा- परिस्थिति सब कुछ नहीं बदल सकती। मैंने देखा, प्रेम, त्याग, तपस्या है। अंध ाकार है। विश्वास घात भी है। सम्बन्ध केवल बाहर से नहीं टिका है। विश्वास करो, मेरे अहंकार और भ्रम की सीमा नहीं थी। अंत में राजा दाम्पत्य जीवन के रहस्य को पंचम एवं गंगा के प्रेम से समझता है।

---

१. सगुन पंछी- पृ० ४२

२१. उत्तमा :

आचरण और आदर्श की दृष्टि से उत्तमा इस नाटक का नायक होने योग्य है। किन्तु उसका कार्य क्षेत्र सीमित मात्रा में वर्णित होने के कारण वह सहायक पात्र की श्रेणी में आता है। सिंधु ठाकुर के द्वारा उस पर कत्ल के अभियोग में आजनम सजा हुए थी। जब वह जेल से छूट कर आया तो अपने गांव की जनता को हतास और निरास पाया था। अतः उसने अपने प्रयास से गांव की जनता को दूर किया। वह ठाकुरानी से अपना परिचय देते हुए कहता है।

उत्तमा– बचपन में तीन दिन भीख मांगता था, तीन दिन पाठशाला पढ़ने जाता, कुंछ ही बड़ा हुआ तो पुरोहिती करने लगा–"बारह वष्र का मैं, मंत्र पढ़ता हुआ शादी कराता। पूजा, संस्कार, कर्मकांड कराता। एक दिन सोचने लगा–यह जो मैं करा रहा हूं, वह क्या है? जो मंत्र पढ़ रहा हूं उसका अर्थ क्या हे? जो संस्कार दे रहा हूं उसका प्रयोजन क्या है?[1] उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेशताएं नाटक में प्रकट हुई है।

1. अपनी मिट्टी से प्रेम–

उत्तमा में देश प्रेम कूट–कूट कर भरा है। उसे अपनी गांव की मिट्ट्टी अधि ाक प्यारी है कारावस काट कर जब वह लौट्ता है। सबसे पहले गांव की सीमा में प्रवेश करते ही मिट्टी की गंध से विभोर हो उठ्ता है।

उत्तमा– यही है मेरी जन्म भूमि, अवधपुर। इसकी मिट्टी माथे पर लगाकर इस भूमि को आंखों से स्पर्श करूंगा (करता है) आह! इसकी सुगंधि ही मेरा प्रान है। यह माटी मैं हूं। मेरी चेतना इसी मिट्टी का पुष्प है। इतने वर्षो बाद अपने गांव लौट रहा हूँ।[2]

2. सपूत–

उत्तमा गंजाधर शुक्ल पुत्र है। सजा कटा कर जब उसने गांव की दशा देखी

---

१. संस्कार ध्वज- पृ० १००ए   २. वही पृ० १

तो उसका मन द्रवित हो उठा और उसने देखा। पेट में भूख। पीठ पर कोड़ो के दाग। सारी देह पर चोट के निशान। पर हंस रहा है दूसरे पर। अपनी चोट को नहीं देखता। चोट करने वाले को पंहचानता नहीं चाहता। सब भाग्य का फल मान कर हंसता है। थोथी हंसी। जनम फिर मस। जीवन का कोई अर्थ नहीं ? जहां अर्थ है। वहां उद्धेग नहीं, हलचल नहीं। सब स्थिर है। स्थिर और शांत। अपना जीवन नहीं बनायेगें, दूसरे का दोष देखेगं। चारों ओर जो घट रहा है, जो लूट मची है, उसे नहीं देखेगें। बस, आह भरकर रह जायेगें कि भगवान जिसे दुख देते है। उसे अच्छी तरह देते है। दूसरे के भय से सांस लेते है। उमर ढली। बल–हिम्मत टूट गयी। बस रो–रोकर चुपचाप मर जायेगें। भाग्य और भगवान तुम्हारे नहीं है, यह उनकी कल्पना है। तुम्हारे लिए, ताकि वे तुम्हारी छाती पर बैठकर खून चूस सके।[1] वह गांव वाले को समझने का प्रयास करता है। कि अन्ध विश्वास ज्ञान का शत्रु होता है। ज्ञान के अभाव में विकास रूक जाता है। और मानशिकता में जड़ता छः जाती है।

अतः यह जरूर है कि जड़ता को दूर कर स्वस्त्रता प्राप्त की जाए। वह वीर सिंह से अपनी विद्वत्ता सिद्ध करता है।

वीर सिंह –

उत्तमा से मिलकर राजा ठाकुर बहुत प्रसन्न है। ठाकुर ने उसके साथ शास्तार्थ किया। उत्तमा को हिन्दी संस्कृत और अंगरेजी तीनों का ज्ञान है। रामायण, राम, सीता, रावण, लक्ष्मण, सबके बारे में बड़ी मर्म की बाते बताता रहा। ठाकुर ने प्रसन्न होकर खुद उसके पांव हुए और घोषणा की उत्तमा ही लीला का राम होगा।[2]

गांधी भक्त : देश में चलने वाले राजनीतिक झंझावात से उत्तमा अन्तः प्रभावित

---

१. संस्कार ध्वज - पृ० ५

२. संस्कार ध्वज- पृ० ३४

है। सम्पूर्ण देश में महात्मागांधी की अन्य गूंज सुनाई पड़ रही थी। उत्तमा ने गांधी वाद को समझा और उसे अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाई। वह ठाकुर से कहता है कि हमारे द्वारा दादों के जमाने से जो हिन्दू, मुसलमान भाई-भाई की तरह यहां रहते आये हैं, उनमें तुम्हारी ताकत जहर फैला रही है। गांव में एक परिवार की तरह सारी जातियां रहती आयी है। तुम्हारी ताकत हमें सवर्ण और शुद्रों में बांटने की कोशिश कर रही है। धर्म के नाम पर अंध-विश्वास और छुआछूत की नफरत फैला कर हमें लड़ाना चाहते हो।[1]

२२. अरविन्द :-

यह युवक 'हंसने वाली लड़कियां' नामक प्रहसन मुख्य पात्र है। मां इसे आई0ए0एस0 बनाना चाहती है अतः इस पर अनेक प्रकार के अंकुश रखती है। किन्तु अरविन्द स्वच्छन्द प्रकृति का युवक है। नाटक कार इसके माध्यम से आज के यथार्थ वादी युवक की सोंच, प्रकृति पर प्रकाश डाला है। मां के अन्दर जाने की आशा को सुन कर कहता है।

१. स्वच्छन्द युवक :-

अरविन्द- ममी आपको क्या हो गया है ? मैं कोई बच्चा नहीं। मुझे यहां खड़ा रहना अच्छा लगता है।[2]

सुधा- तुम्हें आई0ए0एस0 कम्पटीशन में बैठना है।

अरविन्द- यहीं बैठ कर पढूंगा।[3]

श्रीमती सुधा सिन्हा उसकी मां है। उनकी दृष्टि में अभी अरविन्द बिलकुल बच्चा है। सीधा-सादा अपने डैडी की तरह है।

सुधा- अरविन्द बिल्कुल बच्चा है, सीधा-सादा अपने डैडी की तरह। यू नो वह कविता लिखता। अंग्रेजी में। उसकी कविता अभी इंगलैड की मैगजीन में छपी है।[4]

---

१. संस्कार ध्वज- पृ० ७३
२. हँसने वाली लड़कियाँ - पृ० २२
३. वही पृ० २५
४. वही पृ० २५

2. भावुकः कविता लिखने के कारण अरविन्द बहुत भावुक है। उसे पेड़ों की हरियाली, चिड़ियों का चह चहाना बहुत पसन्द है। वह सोचता है, कि कोई उसे बांध कर अदश्य लोक में ले जाए, तो उसे बहुत अच्छा लगेगा।[1] वह अपनी मम्मी से कहता हैः-

अरविन्द- इक्जैक्टली ममी, देखों बाहर कितना सुहाना है। ऊपर चिड़ियों का गाना हें यहां किसी का न आना है न जाना है।

XXX ममी ममी वो देखों उस डाल पै कितनी प्यारी नन्ही चिड़िया। अहा, क्या रंग है। ओ हो गा रही है। XXX वो सुन्दर प्यारी चिड़िया दिखाई दे रही है।[2]

3. **विद्रोही युवक** - अरविन्द पूनम से प्रेम करने लगता हैं उनके प्रेम भरी बाते करते श्री खंडे देख लेता है। वह अरविन्द को समझाता है, कि वह घर पर जाकर अपनी पढ़ाई करें। उसकी मां के आगे इस बेल को ऊपर नहीं चढ़ पाना है। व्यर्थ अपना समय नष्ट कर रहा है। अरविन्द इस उपदेश पर झुंझला उठता है-

अरविन्द- हां, हां हां जो भी कहो, पर ये मेरा अपना है। ये मेरा जेनुइन है। बाकी सब नकली। आखिर में इंसान हूं यार किताब कापी कलम पेंसिल नहीं।

श्रीखंडे- हाथ मिलाओ ये बात हुई न। मगर हां ममी से छिप कर यार।

अरविन्द- छोड़ो यार उसी के खिलाफ तो मेरा विद्राह है।

श्रीखंडे- मगर यार यहां तो विद्रोह का कोई एटमास्फियर ही नहीं है।

अरविन्द-जब वह मेरे दिल और दिमाग में छा गई है तो उन सूखी-सड़ी गली किताबों में अपना सर क्यों खपाऊं।[3]

बात यह है, कि बाल मनो विसान में यह प्रतिपादति सिद्धान्त है, कि किशोर

---

१. हँसने वाली लड़कियाँ - पृ० २६

२. वही पृ० ३१

३. वही पृ० ४३

होते बालक के मन में एक प्रकार का विद्रोह कारण/अकारण पनपने लगता है और यह विद्रोह अपने माता-पिता से प्रारम्भ होता है। वस्तुतः माता पिता अपनी अपूर्ण आकांक्षाओं को अपने पुत्र से पूर्ण कराना चाहते है और इस चाहत के कारण वे पुत्र पर अनेक प्रतिबन्ध लगाना प्रारम्भ करते है। श्रीमती सुधा अरविन्द को आई0ए0 एस0 बनाना चाहती है और इस हेतु वे उसे घर में ही एक प्रकार से बन्द कर पढ़ते रहना ही देखना चाहती है। अरविन्द का विरोध इसी अतिवाद का परिणाम हैं वह माता-पिता के संवाद के मध्य अपनी बात कहता है:-

सुधा- इसके अफसर बनना है।

सिन्हा- इसे कसरत करनी चाहिए।

नीलिमा-पत्रकार बन सकता है। अंग्रेजी हिन्दी दोनों अच्छी है।

श्री खंडे- कवि बन सकता है।

शोभा- खिलाड़ी बन कर देश के लिए स्वर्ण पदक।

सुधा- सिफई आई0ए0एस0 अफसर होना है।

सिन्हा-अफसरी में कुछ नहीं।

अरविन्द- आप सब बेवकूफ, उल्लू गधे। ये मेरी जिन्दगी है अपना मालिक मैं खुद।

सुधा- तेरी से हिम्मत।

सिन्हा- क्या कहा XXX

अरविन्द- हट जाओ मेरी आंखों के सामने से। XXX कोई अफसर बनाना चाहता है, कोई खिलाड़ी, पहलवान, कवि, पत्रकार.... सुन लो सब कान खोल कर। मैं जो हूं वहीं बनूंगा।.............

सिन्हा- समझ गया नहीं। XXX मैं शारदा प्रसाद नहीं। अरविन्द हूं। XXX आप अपने आप में कुछ हैं ही नहीं-न तब न अब न ममी न डैडी। ममी प्रिंसिपल के अलावा और कुछ नहीं, डैडी अफसर के अलावा और कुछ नहीं?[1] कहना

---

१. हँसने वाली लड़कियाँ - पृ० ५४-५५

नहीं लेगा कि अरविन्द स्वतंत्र विचारों का युवक है। अतिशय दबाव के कारण वह विद्रो कर बैठता है। इस प्रकार वह आधुनिक यथार्थवादी नायम का प्रतीक है।

कहना नहीं होगा कि भारतेन्दु युग नाट्य-साहित्य में नवोत्थान युग था। इस युक के नाटककारों ने विभिन्न शौलियों में सफलता पूर्वक साहित्य-सृजन करने के साथ नाट्य क्षेत्र को उर्वर और विकसित बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। नाटकीय वस्तु गठन मं कई परिवर्तन आए और समयानुकूर निश्चित शिल्प-विधि प्राप्त हुई। प्रसाद युग की रचनाएं युगीन चेतनाओं नवीन प्रवृत्तियों, विचार धाराओं, मनोभावों एवं जीवन सिद्धान्तों का सफल प्रतिनिधित्व करती हैं। नाटककारों ने पुरानी रूढ़िगत रूचि, अतिशत भावुकता, कल्पना शीलता और आदर्श से समन्वित पात्र योजना का सफल संगठन किया है। प्रसादोत्तर नाटक कारों की यथार्थवादी वर्तमानोन्मुखता का सफल परिणाम सामाजिक नाटक हैं। यद्यपि इस काल में सभी धाराओं के नाटक काफी संख्या में प्रणीत हुए है, तथापि समस्या नाटक सबसे सजग रूप रहा। डां शान्ति मालिक के अनुसार नाटक कारों ने समयानुकूलता के अनुसार जीवन के विभिनन क्षेत्रों, वैयक्तिक, सामाजिक एवं राजनीतिक में पड़ी ग्रंथियों, असंगतियों और जटिलताओं का प्रकाशन करना ही समीचीन समझा। उनकी समसामयिक समस्याओं को अपनाने की सजगता का आभास तो इस बात से भी स्पष्टतः हो जाता है, कि उन्होंने ऐतिहासिक एवं पोराणिक कथाओं में भी सदृश परिस्थितियां खोजकर अपने युक की विभिन्न समस्याओं और विचार धाराओं को सुगुंफित करने का सफल प्रयास किया वैयक्तिक-समस्या मूलक तथा सामाजिक-राजनीतिक कृतियों में अधिकांशतः मध्य वर्गीय लोगों की वैयक्तिक समस्या मूलक सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक एवं सुधार वादी प्रवृत्तियों एवं समस्याओं की ही अभिव्यक्ति हुई। यहां यह उल्लेखनीय है, कि कई समस्या नाटक रचयिताओं का उद्देश्य जीवन का यथार्थ चित्र उपस्थित करना-उसके तीव्र संघर्ष और अप्रति हत गति को

प्रभावोत्पादक ढंग से अंकित करना रहा है, तो अधिकांश नाटक कारों का उद्देश्य जीवन का नाटकीय चित्रण अथवा मनोवैज्ञानिक करना मात्र न होकर जीवन की उन समस्याओं, जटिलताओं एवं उलझनों में कहने पैठ कर मूल कारणों की खोज करना एवं समाधान जुटा देना भी रहा। प्रसादोत्तर युग के नाटक समग्र रूप में प्रसाद युग की रचनाओं की अपेक्षा अधिक कलात्मक एवं ऊंचे धरातल पर स्थित है। इसकाल की सभी धाराओं की अधिकांश नाट्य कृतियां शिल्पविधि वा रचनातंत्र की दृष्टि से चरम उत्कर्ष की प्रतीक है। इनकी घटनाओं में यार्थर्ता, क्रम बद्धता एवं गठाव है। अधिकांश रचनाओं में वर्ण्यवस्तु की यथार्थता के साथ चरित्रों की अवतारणा भी यथार्थ भूमि पर हुई है। चरित्र-चित्रण और चरित्र विकास ही मुख्य लक्ष्य रहने के कारण इनमें पात्रों का चरित्र चित्रणस बडे विशद् पैमाने पर हुआ आधुनिक युकी समस्त प्रवृत्तियां-दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद, साम्वाद अथवा मार्क्सीय प्रवृत्ति इसी केन्द्र बिन्दु पर चरितार्थ हुई है। इन रचनाओं के ये चरित्र यथार्थ धरातल से अवतरित होने के कारण यथार्थ परिस्थितियों में रखे गये हैं और उनकी चरित्र प्रतिष्ठा मनोविज्ञान एवं आत्म विश्लेषण से पुष्ट है।

यदि भारतेन्द्र युग के नायक सामाजिक चेतना वादी थी, उसमें राष्ट्रीय सजगता थी, तो प्रसाद युगीन नायक रस वादी, आनन्द वादी, आदर्श वादी थे। परवर्ती काल में मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुरूप कुंठित, जटिल व्यक्ति के नायकों की रचना होने लगी। अब घटनाएं चाहे ऐतिहासिक, पौराणिक हो, नायक जन साधारण के प्रतीक बनने लगे। नायकों के प्राक्तन आदर्श का परित्याग कर उन्हें चरित्र नायक बना दिया गया। उसकी व्यक्तिगत समस्याओं को अधिक महत्व दिया जाने लगा। श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन अक्षेय के अनुसार 'स्वातं त्रयोत्तर' काल के नायक के लिए के बाहय परिस्थितियों से संघर्ष-मानव और नियति का संघर्ष उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा, क्योंकि व्यक्ति मानस स्वयं सदैव एक तनाव की स्थिति में रहता है और वह तनाव ही संघर्ष है, क्योंकि मानस बनाम परिस्थिति, इस विरोध का कोई अर्थ नहीं

रहा, क्योंकि मानव स्वयं ही एक परिस्थिति हो गया गया। इसी प्रकार बाहय घटना का इतना महत्व नहीं रहा, क्योंकि जिस प्रकार संघर्ष भीतर ही भीतर उभरता है, उसी प्रकार भीतर ही भीतर घटना भी घटित होती रहती है और होती रह सकती है।[1]

इन्दर-

यह अंधा कुआं का सहायक पुरूष पात्र है। यह सूका का प्रेमी है और उसे अपने साथ भगाकर ले जाता है। सूका का पति भगौती कचेहरी से छुड़ाकर सूका को लाता है। इन्दर इस प्रतिशोध के बदले भगौती की टांग तोड़ देता है और एक रात भगौती की हत्या करने के लिए उसके घर पहुंचता है किन्तु सूका के प्रतिवाद के कारण वह अपने कृत्य में सफल नहीं हुआ। डा० लाल ने चरित्रगत कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है।

1. **प्रेमीः-**

सूका भगौती के व्यवहार से निराश होकर इन्दर की ओर आकृष्ट होती है और अपने पति को छोड़कर इन्दर के प्रेमजाल में आनद्ध होकर घर छोड देती है। इन्दर सूका को लेकर जगह-जगह पुलिस से बचता फिरता है। इन्दर और सूका दोनो पति-पत्नी के रूप में रहने को तैयार हो जाते है और इसका निर्णय कचेहरी से भी होने वाला था। किन्तु मिनकू की चतुराई मैं भगौती की इज्जत बचा ली।

मिनकू :-

भगवान के सामने साक्षी हूं। सूका इन्दर के साथ चली जाती कोई नहीं रोक सकता था। हाकिम भी यही फैसला देने के लिए तैयार था। क्योंकि इन्दर सूका दोनों राजी थी।[2]

2. कायर :-

सूका ने बडे आत्म विश्वास के साथ अपने पति का साथ छोड़ा था, कि इन्दर उसे विवाहिता का दर्जा देकर समाज में उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करेगा। किन्तु जब

---

१. हिन्दी साहित्य एक आधु० परिदृश्य - पृ० ८३

२. अंधा कुआँ - पृ० ३१

पुलिस सूका को पकड़ने गयी तो इन्दर कायर की भांति बचकर निकल गया वह सूका को पुलिस के बन्धन में बंधता हुआ देखता रह गया सूका यह अपेखा करती थी कि शंकर के समय मेरे सम्मान की रक्षा करने हेतु इन्दर पुलिस के समख आ खड़ होगा और द्रढ़ता पूर्वक उसे अपनी पत्नी कहता। इस घटना से सूका के मन में इन्दर के पति वित्रणा का भाव जागृत हो गया क्योंकि इन्दर शंकर के समय कायर बन गया। एक रात इनदर सूका के बन्धन को खोलकर साथ चलने का पुनः आग्रह करता है किन्तु सूका उसे कायर कहकर तिरस्कृत करती है।

इन्दर– चलो भाग चलो।

सूका– इसबार भगाकर कहा ले जायेगा। ....अब मैं नहीं भागूंगी तू मुझे नहीं बचा सकता। जा चला जा मेरी आंखों के सामने से।

इन्दर– मुझे माफ कर दे सूका।......... ईश्वर जानता है..................

सूका– बातें मत बना पुलिस मुझे गिरफ्तार कर रही थी और तू दूर गली में खड़ा–खड़ा मेरा मुंह ताक रहा था। तब मुझे देखकर तेरी तबियत नहीं भरी थी। भरे इजलास में झूंठ बोलकर, कसम खाकर जब जलाल पुर के लोग मुझे ठ्क रहे थे तब भी तू खड़ा–खड़ा मेरा मुह ताक रहा था।[1]

3. प्रतिशोध :–

इन्दर को जब ज्ञात हुआ कि भगौती सूका को प्रताडित करता है। तथा भगौती बदला लेने के लिए उसके खेत खलिहान जलाकर राख कर देता है तब इन्दर का मन प्रतिहिंसा से व्याप्त हो जाता है और वह एक रात तलवार लेकर अपने प्रतिशोध को पूर्ण करने के लिए असहाय भगौती के पास पहुंच जाता है। वह भगौती को जान से मार डालना चाहता है और सूका को पुनः प्राप्त कर अपने अहं की तुष्टि करना चाहता है किन्तु सूका की दृढ़ता ने उसकी आया पर तुषारा पात कर दिया उसने इन्दर पर गड़ासे से वार ही नहीं किया अपितु इन्दर द्वारा भगौती पर किये गये वार

---

१. अंधा कुऑं– पृ० ४६

को सहकर अपना उत्सर्ग करती है। इस प्रकार 'नाटककार' ने इन्दर के जीवन के जिन पक्षों को घटनाओं के माध्यम से व्यक्त किया है उससे इन्दर न तो सफल प्रेमी है न ही वह अपने प्रेमिका की रक्षा कर सका। बात यह है कि व्यक्ति के इंगो के विकृत होने पर वह अपनी प्रतिहिंसा को पूर्ण करने के लिए अपने प्रिय का भी बलिदान करने में देर नहीं लगाता। इन्दर के चरित्र की यही मानसिक कुंठा थी कि वह पुलिस के समक्ष कायरता पूर्वक सूका को गिरफ्तार होते देखता रहा और पुनः सूका के विनय पर भी ध्यान न देकर भगौती की हत्या के लिए तत्पर हो उठा इस प्रकार नाटककार ने इन्दर का यथार्थवादी रूप प्रस्तुत किया है।

दद्दा :-

दद्दा मादा कैक्टस के गौण पात्र है। वे अरविन्द के पिता है। अरविन्द ने अपनी पत्नी सुजाता का परित्याग जबसे किया है, तबसे दद्दा उदास है। अरविन्द के प्रति उनका वात्सल्य और बढ़ गया है, यद्यपि अरविन्द स्वतंत्र चेता होने के कारण पिता की अवहेलना कुछ सीमा तक करता है, क्योंकि वह अपनी स्वतंत्रता में किसी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता, तथापि दद्दा की आकांक्षा है, कि वह कही भी विवाह कर स्थायित्व जीवन यापन करें। उसकी कुछ विशेषताएं द्रष्टव्य है।

1. भारतीयता :-

दद्दा अंग्रेजों के जमाने के सरकारी कर्मचारी/अधिकारी रहे हैं, फिर भी उन्हें भारतीयता से प्यार है,

दद्दा- हर समय, हर युक का अपना कल्चर होता है और वह कल्चर आदमी के पहनावे से झलक उठता है। मैं अंग्रेजों के संग उठने-बैठने वाला आदमी फिर भी अपनी भारतीय संस्कृति का सदा उपासक रहा हूं।[1] अरविन्द सफल चित्रकार है अतः उससे मिलने के लिए अनेक लोग आते रहते है, अतः कभी-कभी अरविन्द उनसे मिलने के लिए इनकार कर नौकर से कहला देता है, कि साहब बाहर है। दद्दा को

---

१. मादा कैक्टस - पृ० २७

यह बात खलती है। वे कह उठ्ते है कि तेरे साब के पास अगर वक्त नहीं है, किसी से मिलने का अगर जी नहीं है, तो यहां झूंठ का इतना बड़ा व्यापार क्यों चलता हैं ? हिम्मत से साफ बात क्यों नहीं कह देते।[1]

2. भावुक :-

पिता की ममता भी बड़ी विचित्र होती है। फिर उस पिता के ममत्व का क्या कहना जिसने अपने पुत्र को मां का दुला एवं पिता का अनुशासन मिला हो। दद्दा अत्यतव संवेदनशील एवं भावुक पिता है। अरविन्द और उसकी पेयसी आनन्दा को देख कर उनकी आंखें तृप्त हो उठी वे सोचते है।

दद्दाः- (जैसे आनन्द विभोर हो) आ.....हा..........हा.........क्या जोड़ी रची ईश्वर ने। पता नहीं मेरा जीना कब सुफल होगा। आ जाओ इधर बैठों बेटी। क्यों जी अब तबियत ठीक हो गई आपकी।[2]

वे आनन्द के बुखार, खांसी से परेशान हो उठ्ते है। कभी उसके लिए थर्मा मीटर मंगाते है। आनन्दा के स्वयं को बीमार कहने पर वे कहते है, कि बीमार लगें तेरे दुश्मन! बेटी तुम्हारी कीमत मैं जानता हूं। आज एक हफ्ता हुआ, जब से मैं यहां आया हूं रोज स्वप्न देखता हूं.......बेला, चमेली के फूल खिले है, शंख बज रहे हैं, कहीं मण्डप में गा-गाकर मंत्र पढ़ा जा रहा है....सोने से मढ़ी हुई शहनाइयां बज रही है।[3] थर्मामीटर में टेम्परेचर तथा अरविन्द की बात सुनकर वे अपनत्व भरे शब्दों में कहते है 'ओह, कैसी अशुभ बात करते है, आप! टेंपरेचर आप दोनों के दुश्मन को ही, बेटी मैं अभी काफी भिजवाता हूं तुम्हारे लिए।

3. रूढ़िवादी :-

आनन्दा अरविन्द से दद्दा की सरलता एवं औदार्य की प्रंशंसा करती है, तभी अरविन्द कहता है।

---

१. मादा कैक्टस - पृ० २८
२. वही पृ० ३७
३. वही पृ० ३८

अरविन्दः– लेकिन बड़े ही पिछड़े खयालात के हैं। फ्यूडल टेम्परामेंट के लोग है, अंग्रेजी हकूमत के दावेदार। इस नये जमाने में ये लोग फिर इन नहीं करते। हर चीज, हर नाता...रिश्ता उसी पुराने पैमाने से देखते हैं। नई चीजों के ये लोग समझ ही नहीं पाते।[1]

दद्दा चाहते है, कि अरविन्द और आनन्द की यह मित्रता स्थायी बन्धन/विवाह में बंध जाएं। उन्हें जब ज्ञात हुआ कि अरविन्द या गंगाराम ने खराब बाला थर्मामीटर उन्हें दिया था, तो उन्हें दुःख होता है। अरविन्द उन्हें समझता है किन्तु वे वापस लौट जाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। वे अरविन्द से कहते है, कि में आपसे बहस नहीं करना चाहता क्योंकि मुझे बोलना नहीं आता। आप कलाकर है आपकी कलाकृतियों पर कला-पारखी न्यौछावर है। आप इनते बड़े कालेज के प्रिंसपल है, मैं क्या बात करूंगा आपसे।(1) अरविन्द के कहने पर वे आनन्द के सामने जो अस्वायिक प्रदर्शन करते है, वह एक नाटक मात्र है। वह मुझे कतई पसन्द नहीं है।[2]

मूल्यों की पक्ष धरता :- मादा कैक्टस पति-पत्नी सम्बन्धों को लेकर लिख गया समस्या प्रधान नाटक है। अरविन्द के पिता आनन्दा के डैडी के आग्रह पर आये हैं कि दोनों मिलकर आनन्दा और अरविन्द का विवाह कर अस्थायी सम्बन्धों/मैत्री को सुदृढ कर दिया जाए किन्तु अरविन्द की धारणा है प्राचीन विवाह मूल्य सड़-गल गए है। यह बच्चों का एक पुराना घरौंदा है। इस रास्ते में गति नहीं, प्रेरणा नहीं, आपस की अण्डर स्टैडिंग नहीं है। इन बातों से खिनन दद्दा मूल्यों की दृष्टि से सोचते है।

दद्दाः- तो आपको सारे सोशल स्ट्रक्चर पर विश्वास नहीं सारे ट्रेडीशन को आपने तोड़ा। पुराने मॉडल वैल्यूज को आपने ठीकरा समझ लिया, फिर आपके पास क्या है जिसके सहारे आप जियेगें और अपनी कला कृतियां तैयार करेंगे।[3] दद्दा को अरविन्द की पूर्व पत्नी सुजाता की याद आती है। वे उसकी परिस्थिति को स्मरण कर

---

१. मादा कैक्टस - पृ० ४०

२. वही पृ० ४६

३. वही पृ० ४६

भाव विह्लल हो उठते हैं। वे हताश या राश हुए अरविन्द को जीने का सूत्र समझाते हुए कहते हैं कि जिन्दगी से बड़ी और कोई कला नहीं। स्नेह में जीना, दया ओर ममता में जीना दूसरों को अपने संग लेकर ज़ीना यह बहुत बड़ी चीज है सारी कलाओं से श्रेष्ठ।[1]

ग्लानिः- भारतीय समाज में कन्या का पिता होना एक बड़ा अपराध होने जैसा है। डा0 पापा (आनन्दा के पिता) दद्दा से आग्रह करते है, कि वे अरविन्द का आनन्द से विवाह के लिए राजी कर लें अथवा अरविन्द आनन्द को मुक्त कर दें ताकि वे उसका विवाह अन्यत्र कर दें। दद्दा समझाते है कि दोनों की अण्डर स्टैंडिंग इतनी है कि उससे मुक्ति पाना असम्भव है और इस प्रसंग से वे अपने को अपमानित महसूस करते है।

दद्दाः- मैं भी कुछ सोंच नहीं सका। मैं बहुत लज्जित हूं।

डा0 पापाः- और मैं अपमानित हो रहा हूं।

दद्दाः- आपसे कई गुना अपमानित मैं हुआ हूं और आपका अपमान मेरी ही अपमान है, वह मेरे ही सिरमाथे है।[2]

इस प्रकार अरविन्द के पिता दद्दा में जहां एक ओर वात्सल्य ममत्व है, वहीं प्राक्तन रूढियों को वे पोषक भी है। कहीं अपने पुत्र की कला पर गर्व करने वाले तो कभी उसके विवाह सम्बन्धें को लेकर अपमानित अनुभव करने वाले पिता है।

निरंजन :-

यह रातरानी नाटक का युग्म पात्र में से एक है। जयदेव कुन्तल सुन्दरम् निरंजन इस नाटक में दो युग्म हैं। निरंजन लखनऊ विश्व विद्यालय में दर्शनशास्त्र का प्रवक्ता है उसके पिता ने कुन्तल से निरंजन का विवाह तय किया था, किन्तु पांच हजार रूपये के कारण यह विवाह टूट गया था। जिससे निरंजन के मन में मानसिक दबाव य तनाव बना हुआ था। नाटककार ने उसके चरित्र के कुछ पक्षों के इस प्रकार

---

१. मादा कैक्टस - पृ० ५५
२. वही पृ० ६६

उद्‌घाटित किया है।

1. प्रेमी रूप :-

निरंजन कुन्तल से प्रेम करता था यह प्रेम कुछ पत्रों के आदान प्रदान के माध यम से व्यक्त हुआ है। कुन्तल की फुलवारी के पुष्प सौन्दर्य से अभिभूत निरंजन कहता है कि इसके पुष्प सृष्टि के अन्तः पुर से सौन्दर्य की डाली सजा कर ले आये है। ग ग रातरानी के पुष्प छोटे है, कोमल है, तभी वे शाश्वत है, क्योंकि सभी इनका वरण कर लेना चाहते है। अपने हृदयस्य प्रेम की अभिव्यक्ति निरंजन अंग्रेजी में करता है।-

निरंजनः- साइनों डी बोर्न राक में साइनों टांक्सेन से कहता है-दैर क्लासम इन मई हार्ट, आई बिल फिंलग टू यू आर्मफुल आफ लृज ब्लूम। लव आई लव विमांड ब्रेश, वियांड रीजन, वियांड लब्स आंन पावर ऑफ लविंग। योर नेम इज लाइक गोल्डन बेल हंग माई हार्ट, एंड व्हेन आई पिंक ऑफ यू, आइट्रिम्बल एंड 4 बेल स्विास् एंड रिंगग्स-राक्सेन। राक्सेन।

एलांग माई बेल्स, टाक्सेन।" अर्थात ओ मेरे हृदय के वसंत, मैं तुम पर फूलों की वर्षा कर दूंगा। प्रिय, मैं तुमसे प्यार करता हूं जीवन से बढ़कर, विवेक से बढ़कर, स्वयं प्रेम की प्यार करने की क्षमता से बढ़कर, मैं तुम्हें प्यार करता हूं। तुम्हारा नाम एक स्वर्णघंटिका की भांति मेरे हृदय में टंगा है। जब में तुम्हें याद करता हूं तो मुझे रोमांच हो जाता है, और यह घंटिका बज उठती है, तुम्हारे नाम के स्वर में राक्सेन। रांक्सेन!......मेरी रगों में तुम्हारा नाम गूंज उठता है, राक्सेन!"[1] उसे बड़ा पश्चाताप है कि उसने कुन्तल जैसी सुन्दरी सुरूचि सम्पन्ना भावुक स्त्री से विवाह नहीं कर सकावह अपने प्रेम के सन्दर्भ में कुन्तल से कहता है कि पिता जी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है वह उनसे अलग रहने लगा है, कि तुच्छ धन के पीछे उनसे एक बहुत बडी कीमती वस्तु खो दी है। इसका प्रायश्चित वह कुन्तल द्वारा निर्दिष्ट सुन्दरम से

---

१. रातरानी - पृ० ६७

विवाह करके पूर्ण करता है। कुन्तल के समक्ष वह स्वीकार करता है कि विवाह का रंचमात्र भी अधिकारी वह नहीं है कुन्तल के द्वारा लिये गये प्रेम पत्रों को वापस मांगने पर निरंजन कुन्तल से पूंछता है कि वो पत्र लेकर क्या करेगी।

कुन्तल :- सिर्फ पति के पढ़ने लायक वे खत है।

निरंजनः- सिर्फ पति के पढ़ने लायक। तो वे खत क्या आपने मुझे नहीं लिखे थे। मुझे यानि निरंजन नाम व्यक्ति को। .... बोलिये बताइयें न। .... बताइये न वे खत आपने मुझे नहीं नही लिखे थे।

कन्तुलः- नहीं।

निरंजनः- फिर किसे लिखे थे आपने।

कुन्तलः- बता दूं वे खत पत्नी होने वाली एक कुंवारी लड़की की ओर से पति होने वाले एक पुरूष को लिखे गये थे।

निरंजनः- क्योंकि तुम अब तटस्थ हो एक परीक्षा में मैं बेहतर हार गया। तुम्हारा मैने अपमान किया पर अब मैं मुक्त हूं। तुम्हें मैं अपनी एक परीक्षा और देना चाहता हूं वरना मैं अपने आपको कभी क्षमा नहीं कर पाऊंगा। .... यह विवाह महज एक कर्म काण्ड, एक स्कूल और परम्परा का पालन नहीं है, यह आत्मवुभूति है।[1]

कहना नहीं होगा कि आपके इस उपभोक्तावादी युग में विवाह जैसी संस्था की जहां कोई मान्यता नहीं रह गयी है रीति-रिवाज जहां ढोंग और प्रदर्शन मात्र रह गये है। डा0 लक्ष्मीनारायण लाल ने निरंजन के माध्यम से हृदय मिलन ही वास्तविक विवाह है, परस्पर आस्था, विश्वास, अनन्यता सप्तपदी के वचन है ऐसी वैवाहिक संस्था के कट्टर पक्षधर निरंजन को बनाया है। निरंजन विचारक भावुक प्रेमी और नारी विषयक कोमल तथा उच्च धारणा रखने वाला आधुनिक युगीत पात्र है। नाटककार ने उसके व्यक्तिगत के इन्हीं पत्रों का उद्घाटन विभिन्न घटनाओं के माध यम से किया है।

---

१. रातरानी - पृ० ५५-५६

जोगी एवं प्रकाशः-

ये दोनों रातरानी नाटक के साधारण पुरूष पात्र है ऐसे पात्रों की अवतारणा नाटककार इसलिए करता है कि इनके माध्यम से मुख्य पात्र की किसी न किसी विशेशता का उद्घाट्न हो सके। जोगी और प्रकाश ऐसे ही पात्र है। रंगमंच पर क्षणिक देर के लिए ये पात्र आकर अपने जीवन की कुछ विशेषताओं का चितांकन करते है। डा0 लाल ने दोनो की वेषभूषा का चित्रण इस प्रकार किया है-दोनों की अवस्था प्रायः पैतीस वर्ष है। योगी काली पैन्ट और पुल ओवर पहने है, प्रकाश पैन्ट और कमीज।[1] इनकी एक दो प्रवृत्तियों का चित्रांकन हुआ है।

1. **घूत प्रेमी** :- दोनो ताश के खिलाड़ी है, ये दोनो मुख्य पात्र जायदेव के साथ जुआ खेलते है और उससे लगभग सत्तर हजार रूपये जीत लेते है। नाटककार ने इसी विशेषता का चित्रांकन इस प्रकार किया है-

योगीः- लो जयदेव बाबू शो करो

जयदेवः- बस इसके आगे नही। मै तो समझता था अभी और चलोगें।

प्रकाशः- आरे भाई ट्रेल और रन से नीचे बात ही नहीं करते जयदेव साहब।

योगीः- भाई यह लो मेरी चाल

प्रकाशः- मेरी भी

जयदेवः- मेरी एक चाल और

प्रकाशः- मेरी एक चाल और

जयदेवः- तो शो करयो।[2] इस प्रकार जुवा होटल इत्यादि विलास के साधनों द्वारा ये दोनों जयदेव को मूर्ख बनाकर उससे धन एठ्ते रहते है। यद्यपि दोनों सुन्दरम के आत्म अभिनय से भयभीत हो जाते है फिर भी वे सुन्दरम के प्रति आकृष्ट है। प्रकाश जयदेव से सुन्दरम की सुन्दरता का वर्णन कुछ अश्लील ढंग से करता है। वह तो सुन्दरम के प्रति अपने प्रेम का इजहार भी करता है कुल मिलाकर लक्ष्मी नारायण

---

१. रातरानी - पृ० २६
२. वही पृ० ४०-४१

लाल ने इन दोनों के चरित्र के द्वारा जयदेव के शोषण की विशेषता का चित्रांकन किया है, क्योंकि संकट पड़ने पर प्रकाश और योगी दोंं उसका साथ नहीं दे पाते। एक परिस्थिति औसी भाई की जयदेव उन दोनों से रूष्ट भी हो जाता है। और वनवत लड़ने तक की आ गई थी ये लोग पत्रे चोरीकर किसी न किसी प्रकार से जयदेव को चूना लगाते रहे है। सुन्दरम के सन्दर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

योगीः- बालो

प्रकाशः- बहुत बडी तमन्ना है वह.............तुम उसे पूरी कर सकते हो।

जयदेवः- बताओं तो

योगीः- तो कह दूं बस सुन्दरम से एक बार हमारी मुलाकत करवा दो।

जयदेवः- तुम लोगों का मतलब क्या है।

प्रकाशः- हम उस पर जी जान से फिदा है।

जयदेवः- यह क्या बदतमीजी है। तुम लोगों की यह हरकत मुझे कतई पसन्द नहीं।

योगीः- य क्यू बने हो बेकार में।

जयदेवः- तुम लोगों ने मुझे इतना नीचा समझा है। ब्लेक मेल करने आये हो बदतमीज कहीं के। निकल जाओ यहां से।

योगीः- जनाब सभाल कर बात करो वरना.......................[1]

तात्पर्य यह की योगी और प्रकाश पक्के स्वार्थी जुवा के रसिया और किसी भी सुन्दरी युवती को देख उसे प्राप्त करने की संभावनाओं को तलाश करने लगते है यह उनका पैसा पात्र है जिससे मुख्य नायक जयदेव के कालेपक्ष को उजागर करता है। डा0 लक्ष्मी नारायण लाल ने अपने नाटकों में ऐसे ही छोटे-2 पात्रों की अवतारणा कर मुख्य पात्र के असुन्दर य अवरिणित विशेषताओं को प्रकाशित करते है। आधुनिक पात्र मनोविज्ञान में ऐसे छोटे-2 पात्रों की अत्यन्त महत्ता बताई गई है। क्योंकि बहिरंग प्रणाली द्वारा चरित्र-चित्रण करने की शैली द्वारा मुख्य पात्र की विशेषताओं का उद्घाटन इनसे हो पाता है।

---

१. रातरानी - पृ० ६७

माली :-

यह रातरानी का गौड़ एवं सहायक पात्र है। जो कुन्तल के बगीचे में उसे स्वसुर जमाने से कार्य करता चला आ रहा था। अपने कार्य में दक्ष यह माली कर्मठ घर का सुभचिन्तक भावुक और निर्भीक गुणों से सम्पन्न है। नाटककार ने उसी वेशभूषा का चित्रांकन इस प्रकार किया है– अवस्था 50 वर्ष के लगभग। धोती और ऊनी बनियान। सिर पर अगोछा बंधा है। सांवला रंग। मझोला कद। सदा कुछ झुककर खडा होता है।[1] उसके चरित्र विशेषताओं का उल्लेख नाटककार ने कुछ घटनाओं के माध यम से किया है। जो इस प्रकार है।

1. कर्म पूजा पर विश्वास :–

माली निरन्तर अपने काम में लगा रहता है। फूलों को सींचना कैची से काटकर उन्हें सवारना दुलारना नये–नये पेड पौधे लगाना इसके काम है। वह इन्हीं काम को पूजा मानकर करता है। अपने विषय में वह कहता है:–

माली:– क्या करू मां मुझसे भोजन नहीं बनाया गया। आज से तीन साल पहले जब मालिक मुझे यहां ले आये थे तो इस घर के आंगन में मुझे बैठाकर इन्होंने कहा था, साधू तुम मेरे बगीचे के माली ही नही इस पूरे घर के मालिक हो। कहा वे ब्राम्हण कहा मैं रैदास। मालिक ने मुझे इनता खिलाया है मां कि अभी अगले दो जन्म तक इसी तरह बगीचे की सेवा करूंगा।

कुन्तल:– तुम सच साधु सन्त हो बाबा, पर बगीचे का काम बहुत ही कठिन है

माली–मेरा काम कठिन है, नहीं मां मेरा काम सबसे सरल है। फुलवारी का काम मेरे लिए पूजा है। .... हां मां और वहीं कार्य भगवान की पूजा है। यही तो मेरे गुरू महराज का शब्द है।[2]

2. कर्म निष्ठ सेवक:–

कबीर परम्परा में दीक्षित रैदास साधु कुन्तल के श्वसुर इन्जीनियर साहब के

---

१. रातरानी - पृ० २२

२. वही पृ० ४२

यहां माली का काम जाकर करने लगा अपनी इस भेंट के सन्दर्भ में वह स्वयं कहता है।

मालीः– मां आठ वर्ष का जब मैं था तभी गुरू मुख हो गया था फिर माता पिता का स्वर्गवास हुआ हौर मेरे मनुआ ने वनवास ले लिया। एक बार ऐसा हुआ मां कि कार्तिक के महीने में मैं गोडा से लखनऊ वाली सड़क थामे सरजू नदी नहाने जा रहा था सुबह का समय था। उसी सड़क से इन्जीनियर साहब घोड़े पर चढ़े चले जा रहे थे। घोड़ा चलते–2 बिगड़ गया सो मालिक को मैने क्या, भगवान ने बचा लिया तब से मालिक ने मुझे नहीं छोड़ा मुझे लखनऊ ले आये खूब खिलाया पिलाया और इसी फुलवारी में मुझे छोड़ दिया मालिक ने पूंछा अब भी साधू बनकर घूमोगें मैने कहा नहीं मालिक मैं तो अपने कैलाश लोक में आ गया।[1]

इस प्रकार माली ने फूल पौधों के साथ फुलवारी को सजाया ही नहीं अपितु अमरूद, नीबू, संतरा, आंवला, केला, पपीता इत्यादि फलों से बगीचे को समल्द्ध किया। वह नये प्रकार से खाद पानी का प्रयोग कर बगीचे को आमदनी का माध्यम बना दिया। उसकी कर्म निष्ठा से प्रभावित होकर कुन्तल ने माली का भोजन अपने चौके में ही करने की व्यवस्था कर दी।

3. दृढ्ताः– कर्म निष्ठ और कर्म पूजा पर अटूट विश्वास और आचरण करने वाला माली यथार्थ से घबडाता नहीं है प्रेस में इस्टाइक की बात सुनकर वह कहता है।

मालीः– मां यह सब माजरा मेरी समझ में नहीं आता। प्रेस से इतनी–इतनी आमदनी होती थी। इनता सारा धन मेरे मालिक छोड गये।

जयदेवः– माली तुम अन्दर चले जाओ।

मालीः– यही एक तरीका रह गया है। आपके पास..........यथारथ से भागने का यही चरित्र है अपना।[2] वह बड़ी दृढ्ता से निर्भयता पूर्वक जयदेव से कर्मचारियों से सामना करने को कहता है। जयदेव के डाटने पर।

---

१. रातरानी - पृ० ४२-४३
२. वही पृ० ५२

मालीः– (बात चुभती है) आप किस तरह से बाते करते हो भइया आपको क्या हो जाता है? मैं आपका नौकर चाकर नहीं जो आप मुझसे इस तरह की बातें करें।

जयदेवः– माली

मालीः– आप समझते है मैं आपसे डर जाऊगा। इसी दिन के लिये मैने आपको प्रेम असीस अदिया है। गोद खिलाया है? पाला पोसा है? कैसे से कैसा विचार कर्म होता जा रहा है आपका–क्या प्रेस क्या घर गृहस्थी.............क्या.............ऐसा मन ऐसी बानी।[1]

इस प्रकार माली शुभ चिन्तक निर्भय सेवक सिद्ध होता है। कुन्तल के आदेश पर वह उसके आंचल में केशर का फूल डालता है जिसे कुन्तल अपना अस्त्र य रक्षा फौज समझकर हड़तालिया कर्मचारियों के बीच चली जाती है। माली के माध्यम से नाटककार ने एक आदर्श कर्तव्य निष्ठा सेवक परिकल्पना प्रस्तुत की है।

गयादत्तः-

यह मिस्टर अभिमन्यु का सशक्त गौण पात्र हैं यह सत्ता पक्ष का राजनीतिज्ञ नेता है, जो बाई इलेक्शन में जीता जाता है। इस जीत का श्रेय वह कलेक्टर राजन को देता है जिसके फलस्वरूप राज की पदोन्नति हो जाती है इससे राजन आहत हो जाता है। गया दत्त राजन से मिलने उसके बंगले जाता है। राज के पिता से मित्रता स्थापित कर उनसे आग्रह करता है, कि वे राजन के त्यागपत्र देने से रोकें अभी उसे और आगे जाना है। राजन गयादत्त को सरमाया दार या फूहड़ व्यक्ति मान कर उसकी उपेक्षा करता है। वह राजन को समझाता है।

गयादत्तः– सुना है आप बहुत परेशान हैं। उस दिन मंत्री जी ने आसे कुछ ऐसा–वैसा तो नहीं कह दिया। मेरा मतलब ये लोग यूं ही बहुत कुछ बक जाते हैं, क्यों करें, इनकी आदत जो हो गयी है। ....आप तो इत्ते समझदार आदमी हैं दरअसल पालिटीशियन की बातों को इस तरह सीरियस सी नहीं लेना चाहिए।........मेरा मतलब

---

१. रातरानी – पृ० ७८

उनसे उलझना नहींचाहिए।[1]

गयादत्त अपने मित्र पूंजीपति, मिल मालिक केजरी वाल की सिफारिश भी करता है। वह राजन को समझाता हुआ कहता है कि मैं आपकी बड़ी इज्जत करता हूं। मैं आपका एहसान मंद हूं। आपको नेक सलाह देता हूं। आप याहं का सारा चक्कर छोड़कर ठाठ से अपने नये पर पर जाइये।[2] केजरी बाल के सम्बन्ध में राजन बनाता है, कि उन्होंने तेरह वर्षो से टैक्ट नहीं दिये। फायर आर्म्स रखते है। मैने उनकी मिल को सील करने का आदेश कर दिया है। तब गयादत्त कुछ कुपित होकर कहता है, कि वह ऊपर जाना नहीं चाहता है। आपकी बेहतरी के लिए सलाह देता हूं कि यह आड्र वापस ललिए।[3] राजन के प्रत्युत्तर में गयादत्त धूर्तता पूव्रक समझाता है, कि उसे आज्ञा और इच्छा में फर्क समझना चाहिए। वह राजन से कहता है कि आपने सब कुछ हमारे हार्थो में सौंप दिया है। हम कहीं भी एक फाइल दबा कर आपकी सारी योजना ठप्प कर सकते है।[4]

व्यवहारिक दृष्टि से गयादत्त अत्यन्त विनम्र है। राजन के अपमानित करने पर भी वह उसके पिता को ऊंच-नीच की बातें बना कर त्यागपत्र रोकने की बात कहता है। केजरी बाल के केस में वह स्टे-आर्डर ले आता है। वह अपने को केन्द्र में पहुंचने की बात कहता है और वह अपने साथ राजन को भी ले जाना चाहता है, इस प्रकार के स्वप्न दिखाकर राजन की पत्नी और पिता को मोहित। अपने पक्ष में कर लेता है। गयादत्त आत्मन की हत्या कर देता है, और राजन को विवश कर देता है कि उसकी बात वह माने, अन्यथा वह सरकार पर जोर डाल कर उसके विरूद्ध र्कावाही करवा सकता है। वह त्यागपत्र देकर बाहर निकलने की बात अपने मस्तिष्क से निकाल दे। इस व्यवस्था से बाहर रहकर ये सुख-सुविधाएं छिन जाएंगी। बाई इलेक्शन में उसे बेईमान सिद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार गयादत्त आज की

१. मिस्टर अभिमन्यु - पृ० १४
२. वही पृ० १५
३. वही पृ० १६
४. वही पृ० १७

भ्रष्ट राजनीति का प्रतिनिध है, जो पूंजी पतियों का भी साथ है, साथ ही अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहता है। उनके पास नैतिकता या आदर्श, सामाजिक राजनीतिक मूल्यों की कोई कीमत नहीं है।

महावीर दासः-

यह रक्त कमल का गौण पात्र है। रक्त कमल के नायक कमल का यह बड़ा भाइ है। महावीर दास मिल मालिक पूंजीपति है। नाटक कार ने उसी वेष भूषा का उल्लेख इस प्रकार की है।

1. वेष-भूषाः- अवस्था करीब चालीस वर्ष। नीले रंग के सूट और टाई में प्रभावशाली व्यक्त्वि।[1]

2. क्रोधीः- महावीर की प्रकृति बर्हिमुखी व्यक्तित्व युक्त है। अपने घर में बिना लय-सुर लात के संगीत तथा दीपक जलता देख कुपित हो जाता है।

महावीरः- (ओवेश में) ओहो! कौन लोग है ये, जो मेरे सिर पर आकर इस तरह चीख रहे हैं।..... बंद करो अपना यह गाना बजाना। भाग जाओं यहां। .... अरे यह चिराग कौसा? यहां चिराग कौन जला गया। ढरबान, अंधे और बहरे हो क्या। तुझे सूझता नहीं क्या? यह कैसा चिराग?

वल चिराग बुझाने का आदेश करता है। तभी अमृता आकर यह बताती है कि आज के ही दिन इसी अपनी भूमि पर मेरे दादा जी की हत्या हुई थी। वह इस याद में चिराग जलाती है।[2]

3. उद्योगों से समाज जागरण पर विश्वासः- रक्त कमल का नायक कमल समाज के पिछड़े वर्ग को शिक्षित कर उनमें चेतना जागरित कर समाजोत्थान का स्वप्न साकार करना चाहता है। महावीर भी पूंजी लगाकर हजारों बेरोजगारों को नौकरी देकर समाज सेवा का कार्य सिद्ध करना चाहता है। कनू के प्रत्युत्तर में वह कहता है।

---

१. रक्त कमल - पृ० १८
२. वही पृ० १६

महावीरः- मैं तो वह कर ही रहा हूं। इलाहाबाद के जमुनापार नैनी के इस पिछड़े इलाके में इतनी बड़ी कास्मैटिक्स की इण्स्ट्री-जिसका नाम श्रीदास इण्डस्ट्री है, इसे खोल कर मैंने यहां सैकड़ों बेकार आदमियों को नौकरी दी। अपने महान समाज सेवी पिता श्री दीनबन्धुदास की पुण्य स्मृति में यहां मैने एक कालेज खोला। क्या यह समाज और देश-सेवा नहीं है।[1]

अनुज विरोधीः- महावीर अपने अनुज कमल के क्रिया कलापों का विरोधी है। कमल के प्रश्नोततर में वह कहता है, कि ऐसी दिशाएं जिनमें सिर्फ झूंठ और फरेब है, जिनमें सिर्फ गन्दगी है और बेईमानी है। वह कमल को डांटता है कि वह चुप रहे। उसे नहीं पता कि वह किससे बात कर रहा है। महावीर के पास कमल की बकवास सुनने का समय नहीं है।[2] कमल पूजा पाठ धार्मिक कर्मकाण्ड को व्यर्थ कहता है। महावीर उसे समझता है, कि तुम्हारा दिमाग खराब है। तभी तुम सारी बातें इस तरह उल्टी सोचते हो। हिन्दू धर्म और इसकी देव मूर्तियों की महिमा तुम्हारी बुद्धि मं नही आ सकती।[3] सोनपुर में कमल के भाषण से महावीर कुपित होकर मां से कहता है।

महावीरः- कल शाम यहां के सारे मजदूर किसानों के बीच कमल ने जो भाषण दिया है, जो उसने आग लगाई है, उसे मैं कतई बरदाश्त नहीं कर सकता। उसने खुले आम मुझको कहा है कि जितेन्द्र मोहन मेरे आदमी थीं मैने अपने इनकम टैक्स उन्हें आठ हजार रूपये घूस दिये थे। वह केस पकड़ा गया इसी कार जितेन्द्र मोहन एम0एल0ए0 पद से हटाये गये और अब मैं इन्द्रजीत को एम0एल0ए0 बनाकर फिर वही काम करने जा रहा हूं। उसने गुय राम को हत्यारा बताया कहा कि गुय ने मेरे लिए इस जमीन की खातिर कनू के पिता की हत्या करवा दी थीं उसने मुझे आततायी और शोषक कहा है। ग ग मैने फैंसला किया है कि अपने कमल को लेकर या तो

---

१. रक्त कमल - पृ० २७
२. वही पृ० ३०
३. वही पृ० ३६

गया चली जाओ या कलकत्ते की अपनी कोठी में जाकर रहो।[1]

धूर्तताः- महावीर सामंतवादी प्रवृत्ति का है। येन केन प्रकारेण अपना स्वार्थ सिद्ध करना उसका लक्ष्य है। वह किसी भी प्रकार से कमल को अपने क्षेत्र से हटाना चाहता है। वह को अपने ढंग से देश-समाजोंत्थान की बात समझता है।

महावीरः- यहां श्री दास इण्डस्ट्री चलेगी। यह इण्डस्ट्री यहां की खाली पिछड़ी जमीन पर फैल जाएगी, ताकि यहां के हजारों बेकार लोगों को नौकरी मिले, यहां के असंख्य भूमिहीन किसानों को राजी मिले, आखिर मां मैं भी तो यही चाहता हूं कि देश की उन्नति हो। इस देश में आद्योगिक किसान हो, और देश की गरीबी दूर हो।[2]

जबकि कमल इस षडयंत्र का भण्डाफोड करता हुआ वास्तविकता से अवगत कराता है, कि यह सब झूंठ, एवं फरेब है। पूंजीपति कभी नहीं चाहते कि गरीबी दूर हो। वे क्रमशः और अमीर होना चाहते है। महावीर कमल के साम्यवादी जैसी भाषा के भाषण को रोक कर उसे चुप रहने के लिए डांटता है।

असत्य भाषीः- धूर्त, चालाक महावीर अपने घर के सामने पड़ी अमृता की भूमि को हस्तगत करना चाहता है। अमृता के भाई के समक्ष वह पांच हजार रूपये का प्रस्ताव रखता है जिसे वह स्वीकार नहीं करता। तब वह अमृता को पट्टी पढ़ता है, कि उसके पिता मंगल बरेण की हत्या अमृता के ससुराल वालों ने किया है। जब ये सात वर्ष की श्रीमती उसके पिता ने अरइल घाट के धोबी के एक लड़के से उसकी शादी कर दी थी। उसके बड़े होने पर भाई कनू ने उसे ससुराल भेजने से इनकार कर दिया परिणाम स्वरूप उसके निराश पति हत्या कर दी।[3] वह अमृता को इस जमीन का मूल्य चालीस हजार तक देने को तैयार हो जाता है।

पुत्र प्रेमः- महावीर के एक छोटा सा पुत्र है। जिसे उसके माता पिता पप्पू कहते हैं, कि कमल उसे अगस्त्य कहता है। महावीर को यह अच्छा नहीं लगता कि उसका पुत्र

---

१. रक्त कमल - पृ० ५६

२. वही पृ० ५७

३. वही पृ० ६३

कमल की छच्छाया में रहे। दूर स्कूल में पढ़ने वाले छोटे बालक को कमल वास्तविक भारत वर्ष दिखाला चाहता है।

महावीरः- पप्पू तुम क्यों गये इनके साथ गांव घूमने? चलो इधर ...... (कमल से) क्यो ले गये इस बच्चे को गंदे गांव में घुमाने? चलो पप्पू अन्दर।[1]

इस प्रकार महावीर पूंजीपति है। उसकी निर्ममता के कारण ही दरबान बिल्लू सिंह डाकू बन गया। उसे मंगल वरेण की भूमि अधिकृत कर ली। वह राजनेताओं को प्रसत्त करने के लिए पार्टियां करता है। अधिकारियों को घूस देकर अपना धन सुरक्षित रखता है और इसे ही देश सेवा का नाम देकर अशिक्षित लोगों को बरगलाता है।

आत्मन :-

डा0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक मि0 अभिमन्यु का गौण पात्र आत्मन है। इसके सम्बन्ध में श्री कांत वर्मा ने भूमिका लिखा है कि कहने की जरूरत नहीं कि आत्मन राजन के व्यक्तितव का वह अंश है, जो उसी दिन उससे छूट गया, जबकि राजन ने अफसरी का निर्णय लिया।[2] वस्तुतः आत्मन का प्रयोग नाट्क कार ने राजन के दूसरे पक्ष के चिन्तन के रूप में प्रयुक्त किया है। राजन नौकरी करने लगा तो आत्मन ने राजनीति में सक्रियता दिखाई। वह पूंजी पतियों का शोषक वर्ग का घुर विरोधी हो गया और अंत में आत्मन की हत्या गयादत्त कराना है। किन्तु आरोप राजन पर लगता है, जिससे बचने के लिए राजन चक्रव्यूह में फंस कर अपनी उन्नति पर प्राप्त कमिश्पर के पद पर कार्य करने को विवश हो जाता है। आत्मन के व्यक्तित्व के कुछ रूप/पक्ष इस प्रकार निरूपित हुए हैं।

नौकरशाही के विरूद्धः- राजन ईमानदार कलेक्टर है, किन्तु सरकार के शीर्ष नेता यह समझते है, या उन्हें समझाया जाता है कि बाई इलेक्शन में राजन ने गयादत्त के जीत का मार्ग प्रशस्त किया है अतः पुरस्कार स्वरूप उसे कमिश्पर बनाया जाता

१. रक्त कमल - पृ० ८४-८५
२. मिस्टर अभिमन्यु - भूमिका

है, जबकि राजन इसे अपने विरूद्ध षंड्यंत्र समझता है अतः नेता गयादत्त एवं प्रतिपक्ष नेता आत्मन को एक साथ बुलाकर इन बातों की सफाई देना चाहता है कि आत्मन जैसे लोगों के लिए राजनीति उपयुक्त नहीं है।

राजनः- मिस्टर आत्मन आप जैसे पढे लिखे लोगों को इस जलील पालिटिक्स में नहीं आना चाहिए।

आत्मनः- यानी नौकरी करनी चाहिए।

राजनः- नौकरी को राजनीतिक ने गंदा किया है।

आत्मनः- राजनीति कोभी नौकर शाही ने बेहूदा बनाया है। यहां इस तरह नौकरी की परिकल्पंना अंग्रेजों ने की थी। गुलामों पर गुलामें से शासन कराना और जिन्दगी की सहज धार को हर मोड़ पर लाल फीते से बांध देना।[1]

2. राजनीतिज्ञः- आत्मन राजनीति के माध्यम से जनता को जागरित करने का प्रयास करता है। जब राजन कहता है, कि आप अंग्रेजों द्वारा स्थापित इस नौकर शाही को बदल क्यों नहीं देते। इसी का परिणाम हे, कि आत्मन लेकर लीडर होते हुए भी गयादत्त जैसे लोगों से पिट गया।

आलनः- अजी न जाने कित्ती बार पिटा हूं। तबसे आज तक कितने वर्ष हो गये दो-दो बार जनरल एलेक्शन में हारा, इस तीसरी बार बाई इलेक्शन में। छः सात बार जेल काट आया। टियर गैस, लाठी चार्ज, यह तो योजन जैसे हो गया और दर असल वह असली बुनियादी काम वहीं का वहीं रह गया। .... मगर उस विरोध ा की सीमा से कभी बाहर तो नहीं निकल सका। और जिसके हम विरोधी है, उसने अपने आप में ऐसी ताकत पैदा कर ली है, कि विरोध के हर रूप को वह हजम कर लेता है। वही हमारे विरोध का संचालन भी करता है।[2]

राजन आत्मन से कहता है कि वह उसे नहीं जानता इसके प्रत्युत्तर मं आत्मन कहता है, कि इधर नौकरी में आये मैं उधर राजनीति में घुस गया। तुम इधर जी

---

१. मिस्टर अभिमन्यु - पृ० १०

२. वही पृ० ११

जान से घर गृहस्थी सजाने लगे, दिन रात नौकरी करते रहे, में उधर विरोध में जा फंसा रास्ते में कई बार देखा था, तुम मुझसे आंख बचाये भागे चले जा रहे थे, मेने कई बार पुकारा.....[1] बात यह है कि आत्मन राजन का ही प्रतिरूप है। यह प्रतिरूप मनोवैज्ञानिक स्तर पर चेतन अचेतन से सम्बन्धित है। दोनों के अपने अपने मानदण्ड है, सीमाएं है, अन्तर्द्वन्द्व है। राजन ने आत्मन को भाषण देते हुए, बहस करते हुए, जुलूस में नेतृत्व करे हुए नामिनेशन पेपर्स पर दस्तखत करे हुए और जमानत जब्त होते हुए देखा है। आत्मन राजन से कोई रिश्ता नहीं रखना चाहता है। वह कहता है, कि राजन इस मानसिक/राजनीतिक चक्रव्यूह से बाहर सचमुच में निकलना चाहता है, तो पिस्तौल से उसे मार दे।[2] उसकी धारण है, कि गुडे शाही को नष्ट करने के लिए कोई ठोस स्वरूप होना चाहिए। उसे पता है कि नौकरशाही पर खड़ा हुआ प्रजातंत्र कितना खोखला और बेमानी होती है। यक एक नयी साम्प्रदायिकता है। इसने एक नए प्रकार के फासिज्म को पैदा किया है। इसको नष्ट कर ही कोई बुनियादी काम हो सकता है।[3] इस प्रकार आत्मन की हत्या हो जाती है।

पिता जी:-

दरपन नाटक में हरिपदम एवं सुजान के पिता है। वे नहर विभाग में ओवर सियर थे वे ईमानदार व्यक्ति थे। अपनी गाढ़ी कमाई से पुत्रों का लालन पालन किया है। इसी आमदनी से उन्होंने एक छोटा सा घर भी बना लिया है। वे समाज के संस्कारों से बंधे थे परिणाम स्वरूप बड़े पुत्र सुजान के जीवन में आई युवती से उसके विवाह की अनुमति नहीं देते तथा हरिपदम एवं पूर्वी के विवाह में भी समाज का भय उन्हें दिखाते है, क्योंकि उन्हें अपनी पुत्री ममता का भी व्याह करना है। उन्हें भय है, कि इस प्रेम एवं अन्तप्रान्तीय विवाह के कारण कहीं उनकी पुत्री का कहीं विवाह ही न हो पाये। उनकी बाध्य रूपरेखा एवं आन्तरिक चिन्तन के निम्नलिखित रूप

---

१. मिस्टर अभिमन्यु - पृ० ४४
२. वही पृ० ४५
३. वही पृ० ६५

इस नाट्क में चित्रित है।

1. **बाह्य रूप रेखाः**– नाट्क फार ने लिखा है कि कुरता धोती पहने अवस्था साठ वर्ष के लगभग। भरा–पूरा शरीर। सख्त चेहरा। भरी हुई मूंछे। आंखों पर चश्मा।[1]

2. रूढ़ि वादीः– हरि पदम ने युनिवर्सिटी में अपने दोस्तों के बीच पूर्वी के संग अपने इंगजमेंट की सूचना दी। यह सुनकर पिता के प्राक्तन संस्कार जाग उठते हैं और इसका विरोध भी करते है।

पिता जीः– बुरा क्या है? (खड़े हो जाते है) तुम्हें इसमें बुराई ही नजर नहीं आती? वाह!

हरिपदमः– पिता जी, मैने अपने इस ब्याह के बाबत बहुत सोच विचार किया है, और.

पिता जीः– और खुद फैसला कर लिया। शायद तुम्हारे लिए अब मैं वह पिता नहीं, जिससे आशा लिए बिना तुम इस घर से बाहर कभी पैर नहीं रखते थे।

हरिपदमः– मैने पूर्वी से अपने ब्याह के लिए, आज से दो महीने हुए, सबसे पहले आपसे ही कहा था।

पिता जीः– पर मैने उसे तभी नामंजूर किया था। ..... एक गलत चीज के लिए अपने बेटे को कभी अपनी अनुमति नहीं दे सकता। .....जिस लड़की के कुल शील का पता नहीं उससे तुम अपना ब्याह करना चाहते हो? पागल हो गये हो? ...... मैं अपने जिन्दा रहते तुम्हें यह शादी नहीं करने दूंगा।[2]

यह विरोध यह टकराहट पिता पुत्र के मध्य की नहीं अपितु यह तो पीढ़ियों के अन्तराल से उपजे वैचारिकता है। पुरानी पीढ़ी के लोग नयी पीढ़ी के कार्य व्यवहार, आचरण, स्वछन्दता का विरोध करते है। उन्हें ऐसा लगता है कि उन्होंने अपने बालक का लालन–पालन, शिक्षा इत्यादि इस प्रकार की दी है तथा युवक होते हुए पुत्र को वे अभी नादान छोटा बालक ही समझते है। पुत्र के आचरण वे क्षुब्ध होते रहे हैं।

---

१. दर्पन – पृ० १४

२. वही पृ० १५

पिता जीः– जब तुम बी0ए0 के पहले साल में पढ़ रहे थे। मैंने तुम्हें मां और बाप दोनों बन कर पाला है, इस तरह कि जैसे कोई अपना स्वप्न पालता है। .... हां–हां कह डालों न कि एक रिटायड़ ओवर सियर का दिलों दिमाग और हो ही क्या सकता है।[1] पूर्वी–पूर्वी इस कदर वह अनजान लड़की तुम्हारे दिलों दिमाग पर छा गई है कि मैं देखता हूं कि उसके अलावा तुम इस दुनिया में और कुछ सोच ही नहीं पाते।

हरियदमः– जी हां, पूर्वी जैसे लड़की मैने कहीं और..........................

पिता जीः– तुम्हारा दिमाग खराब है। .... यह क्या है? अखबार में पूर्वी के साथ तुम्हारे विवाह के इंगेजमेन्ट की खबर कैसी छपी है?

हरियदमः– मैने

पिता जीः– तुम होश में हो कि नहीं?..... तुम्हारे नहीं, नही, तुम होश में नहीं हो तुम्हें अपनी इज्जत आबरू का जरा भी ख्याल नहीं। जिन्दगी भर की मेरी सारी कमई तुम इस तरह मिट्टी में मिलाना चाहते हो। ..... तुम्हारे इस फैसले में मैं कहीं नहीं हूं। ..... एक अनजान लड़की रेल की यात्रा में मिल गई। जरा–सी प्रेम की बाते हो गई। बस उससे शादी तय। तुम मुझे बताते हो क्षत्री की लड़की दार्जिलिंग की रहने वाली और कहा हम कायस्थ यहां बनारस के रहने वाले। यह सब क्या तमाशा है।[2]

पिता जी को अन्तर्जातीय विवाह में विरोध तो है ही साथ ही उन्हें इस बात का आश्चर्य है, कि पूर्वी कैप्टन की लड़की होकर यहां सारनाथ में छोटी सी नौकरी क्यों कर रही है। इस परिचय में कहीं न कहीं छल या रहस्य है साथ उन्हें अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का भी ध्यान है।

पिता जीः– पर मेरी बात भी तो सुनो, मेरी और भी मजबूरियां है बेटे, पहले मुझे ममता बेटी की शादी करनी है।[3]

---

१. दर्पन – पृ० १८

२. वही पृ० २१–२२

३. वही पृ० २५

वत्सल पिताः– पिता चाहे जैसा हो, पुत्र के ममत्व की ओर उससे टूटती नहीं। हरयदम् ने उसे दुर्घटना का उल्लेख किया, जिसमें पूर्वी से उसकी भेंट हुई थी। हर पिता के मन में पुत्र के विवाह का सपना पलता रहता है।

पिता जीः– मैने तुम्हारे ब्याह का एक स्वप्न देखा था। तुम्हें पता है मैं जिन्दगी भर सरकार के नहर विभाग में ओवर सियर था। मैने कभी भी एक पैसे की बेईमानी नहीं की।[1] जब हरिपदम ने पिता के मर्म को छूने वाली बात कही कि वे इस घर में इस तरह की बहू लाना चाहते है जो दहेज में मेरी पढ़ाई में लगे रूपये और इस घर की कीमत लाये, तो पिता उसके विवाह के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान करते है उन्हें इस बात का आश्चर्य है कि पुत्र ने उन्हें इतना संकीर्ण समझा।

पिता जीः– तुम्हादे दिमाग में अपने पिता की यही कल्पना है। बोलो उस अजनबी लड़की के साथ तुम्हारी कल्पना इतनी छोटी हो गय? मैं तुम्हें अब और छोटा नहीं बनने देना चाहता। जाओं? बाखुशी पूर्वी से शादी कर लो। .....ब्याह तुम्हारा होना है और यह लड़की तुम्हें अगर इस तरह पसन्‍ है, तो मुझे क्या ऐतराज हो सकता है। तुम खुश रहो, मुझे और क्या चाहिए।[2]

हरिपदम को आश्चर्य है, उसे विश्वास ही नहीं हो पा रहा कि सचमुच पिता जी ने इस विवाह को हृदय से स्वीकार कर लिया है उसे आशंका है, कि पिता जी नाराजगी में यह स्वीकृति दे रहे है। इसके प्रत्युत्तर में पिता ने मनोवैज्ञानिक तथ्य का उल्लेख किया।

पिता जीः– नाराजगी..........और खुशी................जब तुम पिता होगें न तभी इस पिता को तुक समझ सकोगे। .... तुम समझते हो, कि पूर्वी तुम्हारे जीवन के लिए बिल्कुल ठीक है, तो यही मेरे लिए खुशी है। ..... मेरी तुम्हारी खुशी अलग-अलग नहीं है। ..... मैने तुम दोनों की शादी मंजूर कर ली है।[3]

---

१. दर्पन – पृ० २५
२. वही – पृ० २६
३. वही पृ० २७

संशयग्रस्तः- पिता जी पूर्वी के आचरण कर्तव्य निष्ठा को देख कर प्रभावित तो होते है, किन्तु उनके मन में इन आचरणों के प्रति संशय भी है क्योंकि एक सामान्य युवती इस अवस्था में इतनी धीर, गम्भीर ममतालु होकर कैसे गृहस्थ धर्म का पालन कर सकेगी। इसलिए वे यथावसर पूर्वी के जीवन, चिन्तन, पर प्रश्न कर उसका मंतत्य जानने का प्रयत्न करते रहते है।

पिताः- क्यों एक बात पूंछू, तुम अक्सर जिस दर्पन की बात किया करती हो, वह क्या तुम्हारी सगी बहन है। .... वह बौद्ध भिक्षुणी है? वह बौद्ध भुक्षणी क्यों हुई? . ..... फिर तो अपने मां-बाप की अकेली बेटी तुम्ही बची? वे लोग अपने ढंग से तुम्हारा ब्याह करने का स्वप्न देखते होगें। .... बेटी तुम जिस घर परिवार की हो, वह बौद्ध धर्म का अनुयायी है न?

पूर्वीः- जी

पिता जीः- उस धर्म सत्य और अहिंसा को ही सबसे बड़ा स्थान दिया गया है न?

पूर्वीः- पिता जी आप कहना क्या चाहते है?

पिता जीः- बेटी मैं तुमसे सिर्फ सत्य और अहिंसा की बात कर रहा हूं। ...... सत्य और अहिंसा तो बहुत बड़ी जीच है? बेटी। मैं तो बेटी गृहस्थ हूं, मैं भला.......... .... पर तुम एक विशेष मनुष्य हो, बेटी, तभी ईश्वर ने तुम्हारे भीतर इतीन करूणा, ममता और सहानुभूति दी है।

पूर्वीः- नहीं, मैं वह विशेष नहीं रहना चाहती।[1]

पूर्वी एवं हरिपदम मन में संशय ग्रस्त है, कि पता नहीं पिता जी ने बड़ी सरलता से इस विवाह की स्वीकृति दे दी है किन्तु कभी-कभी उनके प्रश्न उन्हें अनुतरित कर देते हैं। हरिपदम की धारणा है, कि पिता जी उस दर्द को नहीं जानते। पिता जी हंस कर बात टालते हुए यह कहते हे कि समझ लो उनके पास मन ही नहीं फिर दर्द कहां होगा।? पूर्वी इसका प्रतिवाद करनी है कि नहीं पिता जी बहुत

---

१. दर्पन - पृ० ५१-५२

अच्छे हैं। पिता ने पूव्री से कहा कि जब तक ब्याह नहीं हो जाता पूव्री का बाहर घूमना ठीक नहीं है। पिता जी के मन में अनेक प्रश्न है। बाहर पड़ा रोगी पूर्वी का नाम लेकर बुलाता है क्योंकि कल पूर्वी ने उसे अपने स्पर्श से स्वस्थ सा कर दिया था। पिता जी की धारणा है, कि ऐसी प्रकृति की लड़की के लिए ब्याह, घर, गृहस्थी का मेल नहीं खाता। उन्हें इस बात पर भी विश्वास कम हो रहा है, कि पूव्री की सेवा से ही उनका बड़ा पुत्र सुजान ठीक हो गया। पूर्वी में बहुत से गुण है, हो उसने कहां से पाये है?[1] वे पूर्वी से सच क्या है यह पूंछते हैं? नारायण दंडी से वे पूर्वी का सामना करना चाहते है, ताकि वास्तविक बात का पता चल सके। और अंत में पूर्वी का रहस्य पता चलने पर वे हरिपदम से कहते हैं, कि अब पहचान ले अपनी पूर्वी को।

सारांश यह है, कि दर्जन में पिता का पारम्परिक रूप ही अधिक व्यक्त हुआ है। इतना अवश्य है, कि वत्सल-भाव के कारण न चाहते हुए भी उन्हें बेमन हरिपदम-पूर्वी के विवाह की अनुमति देनी पड़ी। उनका चरित्र स्थिर न होकर गतिशील है। नाट्ककार तर्क तथा मनोविज्ञान के तथ्यों का आश्रय लेकर आधुनिक पिता के रूप में उन्हें प्रस्तुत किया है।

श्रीकृष्ण:-

श्री कृष्ण सूर्य मुख नाट्क के गौण पात्र है। यद्यपि प्रच्छन्न रूप से कथा के वे केन्द्र विन्दु है, फिर भी नाट्क में उनका उल्लेख कम ही स्थानों में आया है। वे द्वारका के शासक, महाभारत युद्ध में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करने वाले सोलह हजार रानियों के पति, गीतोंपदेशक इत्यादि रूपों में उन्हें स्मरण किया गया है। उनसे सम्बन्धित घट्नाएं प्रच्छन्न या नाट्कीय भाषा में सूच्य रूप में वर्णित है। उनके व्यक्तित्व का आकर्षण रूप यहां नहीं दिखायी देता। कुछ झलक का उल्लेख यहां किया जा रहा है:-

---

१. दर्पन - पृ० ७५

1. **क्षमाशीलः-** महाभारत युद्ध में कृष्ण अपनी यादवी सेना के विरूद्ध लड़े थे। उसके बाद यादव सेना साम्ब, बभ्र, तथा प्रदयुम्न के समर्थकों के रूप में तीन भागों में बंट गई। कृष्ण को यह दूसरी निराशा मिली। अतः वे जंगल में एक पेड के नीचे ध्यानावस्थ बैठे थे, तभी जरा नामक व्याध ने भ्रान्तिवश उनके पैर में वाण चला दिया, जिससे कृष्ण की मृत्यु हो गई। कृष्ण ने जरा को क्षमा कर अपनी मृत्यु की सूचना राज महल भेजने का दायित्व जरा को ही सौंपा था।

2. **निराशाः-** कृष्ण का हृदय वेनुरति एवं पुत्र प्रदद्युम्न के परस्पर प्रेम से निराशा से भर गया था। सम्भवतः गीतोपदेश के समय ही निराशा व्यक्त हुई है।

रूक्मिणीः- मेरे कृष्ण फिर अपनी इस द्वारका में नहीं आये इसका कारण वहीं वेनुरति है, जिसने कृष्ण के मन-प्राण को तोड़ा, जिसने उनके मर्म को घायल कर उन्हें इतना अकेला और विवश बनाया। महाभारत के युद्ध में मेरे प्रभु इस बेनुरति से टूट कर गए थे, तभी वहां उनकी गीता में फल के प्रति इतनी उदासी, वेराग्य और उनका निश्काम के प्रति इतना आग्रह है। ...... इसीलिए पूरे महाभारत में कृष्ण की भूमिका इतीन करूण और आत्म-विरोधी थी।[1]

3. **पुत्र-प्रेमः-** कृष्ण प्रद्युम्न की शक्ति और उसकी सीमा जानते थे इसीलिए वे उसे सर्वाधिक चाहते थे। जरा ब्याध बताता है कि मेरी दशा देख कृष्ण विलाप करने लगे। बोले प्रद्युम्न मेरी आंखों मे तैर रहा है। वहीं था मेरा आशा.............मेरा उत्तराधि ा कारी....कृष्ण ने तड़पते हुए बार-बार कहा, मेरी द्वारका का रक्षक केवल प्रद्युम्न था।[2]

4. **पुत्र से युद्धः-** यद्यपि यह प्रसंग कवि कल्पना प्रसूत है, क्योंकि इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है, कि कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न ने अपनी सौतेली मां/विमाता से प्रेम किया हो फिर भी परिस्थितियां ऐसी थी कि इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। प्रद्युम्न ने प्रथम बार वेनुरति को देखा तो देखता ही रह गया। वेनुरति भी उसके

---

१. सूर्यमुख - पृ० ६७
२. वही पृ० ३८

आकर्षण से बच नहीं सकी और यह प्रेम अंतःपुर में फिर किवंदतियों के रूप में प्रजा में फैलने लगा। इस अपराध के लिए कृष्ण ने प्रद्युम्न से युद्ध किया।

प्रद्युम्नः- कृष्ण ने बेनुरती के लिए मेरे साथ निर्लज्ज संघर्ष किया था। जो ब्रज में भावगत प्रेम के प्रतीक थे, उसी कृष्ण ने साधारण मनुष्य की तरह मुझसे बेनुरती के लिए युद्ध ठाना था।[1] उसे बहिष्कृत किया था।

5. प्रेमीः- कृष्ण रसिक शिरोमणि, प्रेमी थे, उनके प्रेम की असंख्य गांवाएं पुराणों में भरी पड़ी है। बाल्य काल में गोपियों से उनका प्रेम भागवत कहलाया। बाद में उन्होंने द्वारका पुरी का निर्माण किया। उनकी सोलह हजार रानियां तथा सा पटरानियां थीं बेनुरती उनका अन्तिम प्रेम था। वे गहरे अन्तसः से बेनुरती को प्रेम करते थे। मृत्यु पूर्व उन्होंने बेनुरती को ही याद किया था। उनकी पटरानियों मं रूक्मिणी अत्यतम थी।

गजाधरः-

यह संस्कार ध्वज का गौण पात्र है। यह उत्तमा का पिता हैं गरीब ब्राम्हण है। उत्तमा अपने पिता के संबंध में स्मरण करता हैः-

उत्तमाः- गांव में सबसे ज्यादा गरीब मेरे पिता थें वह ब्राम्हण थे, पर न कोई धर्म शास्त्र मानते थे, न किसी से कोई भिक्षा लेते थे। खेतों में गिरे हुए अन्न बीन कर, आम की गुठली, जंगज के फल फूल, कंदमूल से परिवार का गुजारा करते थे।[2]

1. आत्म संतुष्टः- उत्तमा के उक्त कथन से स्पष्ट होता है, कि उसके पिता की कोई कामना नहीं थी। वे अपने में मस्त, रहने वाले जीव थी। जब वीर सिंह गांव का जमींदार बन बैठा और गांव वालों से मंदिर बनवाने हेतु श्रम कराने लगा, तभी वहां से गजाधर निकले। वीर सिंह ने उससे पूंछा कि वह मंदि के काम में हाथ बटा रहा हे कि नहीं। गजाधर कहता है कि -

गजाधरः- मुझे किसी से कुछ लेना देना है। वेसा ब्राम्हण भी नहीं कि किसी से कोई

---

१. सूर्यमुख - पृ० ३६

२. संस्कार ध्वज - पृ० ७

दान दक्षिणा लूं। मंदिर में जाकर पूजा पाठ करूं। भगवान से दया की कोई भीख मांगू। अपने आप में परम संतुष्ट हूं।[1]

मानव पर विश्वासः- गजाधर को मानव शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। वीर सिंह उससे पूंछता है वह उसे जानता है। प्रत्युततर में गजाधर कहता है, कि जो अपने को जानता है, वहीं दूसरे को पहचान सकता है। अक्रोधी गजाधर मानव को बडा मान कर कहता है, कि प्रकृति हमसे तरह-तरह के काम करा कर हमें सचेत करती है। भूख, प्यास और भय की ताड़ना से हमसे परिश्रम कराती है। पर याद रखना मनुष्य अपने वर्तमान से कहीं बड़ा है।[2]

3. अक्रोधी एवं अमानीः- गजाधर आत्म संतुष्ट अमानी है। उसकी अडिग बाते सुनकर वीर सिंह भयभीत-सा हो जाता है। वह पूंछता है

वीर सिंह- यह तो बड़ा विचित्र आदमी है।

माटीः- सबको प्यार करते है। मुला किसी से कभी कुछ लेते न ही। XX खेत का अन्न बीन कर, कंद मूल, घास पात गुठ्ली खाकर जीते है। झोपडी में रहते है।

वीर सिंह- यह ब्राम्हण क्रोधी तो नहीं ?

माटीः- ना,न,ना। बिलकुल गऊ है। आज तक किसी को कटु शब्द भी नहीं कहा है।[3]

4. सानी एवं आनन्द मग्नः- गजाधर मस्त मौला फक्कड़ व्यक्ति हैं मंदिर के पुजारी से होने वाली राम लीला के सम्बन्ध में वह तर्क प्रस्तुत करता है, उसका पुत्र उत्तमा राम लीला में राम बना है। पुजारी गजाधर से कहता है, कि आप दशरथ, वशिष्ठ, या विश्वामित्र के रूप में राम को आवाज दीजिए पुकारिए।

गजाधरः- अपने से मैं दूसरे का भ्रम कैसे कर सकता हूं। मैं जो हूं, अभी तो उसी को नहीं जान पाया।

पुजारीः- आप ज्ञान मार्ग है, तभी इतना भ्रम और अविश्वास है।

---

१. संस्कार ध्वज - पृ० २५

२. वही पृ० २६

३. वही पृ० २६

गजाधरः- पर लीला तक में ही भगवान का अवतार सीमित क्यों? वह शेष जीवन में क्यों नहीं? .... जो अकेला सर्व शक्ति मान हे वह आनन्द नहीं है आनन्र दाता नहीं होता। आनन्द का स्वर बांसुरी से फूटता है। तब मनुष्य को मनुष्य पुकारता है। सब उसके सहभागी होते हैं।[1]

सत्य एवं स्पष्ट वक्ता :- गजाधर संन्यासी का सा जीवन व्यतीत करता है। धरती ही उसका विछावन है। आकाश ही उसके ओढ़ने का काम करता है। ठाकुर राजा ने गजाधर एवं उसके पुत्र उत्तमा से राज कर लेना चाहता है अतः सिपाहियों से उन्हें पकड़ मंगवाता है। लोगों का मत था, कि इसके पास धरती/भूमि नहीं है अतः इससे राज कर नहीं लेना चाहिए। किन्तु राजा कहता है

ठाकुरः- खेती बारी नहीं है, तो क्या हुआ। यह इस गांव का अन्न पानी तो खाता पीता है।

गजाधरः- ठाकुर! ईश्वर तुझे सद्वुद्धि दे।

ठाकुरः- झुका दो इसे धूप में। इसकी पीठ पर तीन मन का पत्थर रखे।

वीर सिंहः- यह संन्यासी है धर्मावता। यह नदी का पानी पीता है। खेतों में गिरे अन्न बटोर कर उससे पेट पालता है।

गजाधरः- सावधान ठाकुर। अपना सामंजस्य मत तोड़ो। .... याद रखो प्रवृत्ति के प्रबल हो जाने से ही त्याग और भोग का सामंजस्य टूट जाता है। किसी एक स्थान पर जब हम अपने अहंकार और वासना को केन्द्रित करते हैं, तब हम समग्र को क्षति पहुंचाते है। .... ऐसा अंधविश्वास इस गांव में कभी नहीं था। हम गरीब थे, पर दरिद्र नहीं। इनके धर्म विश्वास इतने पंगु नहीं थी।.... सावधान हवेली खंडहर हो जाएगी।[2]

गजाधर ठाकुर से कहता है कि सच है-धम्र के नाम पर तुमने जगाया। पर हमारी कमाई लूटने के लिए जीवन दिया, पर खुद उस पर राज करने के लिए। अपने भोग के लिए यहां और कोई नहीं था तुम्हारे सामने। केवल तुम्हारा अहंकार था। ......

---

१. संस्कार ध्वज - पृ० ३७

२. वही पृ० ६८-७२

धर्म अहंकार नहीं है। धर्म दर्शन और अध्यात्म भी नहीं है। धर्म केवल जीवन है उस जीवन का तुम्हें पता नहीं है क्योंकि तुम अपने पर नहीं दूसरों पर राज्य करना चाहते हो। दूसरों की कमाई पर विलासी बनते हो। तू अंगरेज गुलाम अपने आपको राजा ठाकुर समझता है।[1] गजाधर निर्भीक होकर राजा ठाकुर को सावधान करता है कि हमीं ने तुम्हें यहां प्रतिष्ठित किया। हमारी गरीबी, निराशा अंध विश्वास, यही वह भूमि थी, जहां आकर तूने अपने राज महल का स्वप्न देखा।[2] हरिजनों के मंदिर प्रवेश को लेकर गजाधर राजा ठाकुर तर्क करके यह सिद्ध करता है, कि हवा, सूर्य, चन्द्र, धरती को नियमों को भी क्या राजा ठाकुर बदल सकता है? यह देखों चीटियों का झुण्ड जमीन पर। रेगती हुई आसंख्य चीटियां। पहचानों। देखों। इसमें कोई इन्द्र हैं, कोई विक्रमादित्य, कोई चक्रवर्ती, कोइ सूर्यवंशी कोई मुगलराजा, कोई हिन्दू सम्राट, कोई भिदवारी कोई संत ..... जाओ सूर्य को हवेली में बंद कर लो। यह सूर्य जो हमारा शश्वत संस्कार ध्वज है जो सबका आदि पिता है। आदि जननी है। जाओ में उस ध्वज को अपने माथे पर उठाये मंदिर में प्रवेश करने जा रहा हूं।[3] इस संघर्ष में गांधी और भारत माता की जय के बीच बन्दूक का फायर होता है, जिसमें गजाधर शहीद हो जाता है।

सारांश यह है, कि संस्कार ध्वज का गजाधर प्रत्यक्ष रूप से कम समय के लिए मंच पर आता है, किन्तु अपने आदर्श के कारण वह दूरगामी प्रभाव छोड़ता है।

वज्रदंतः-

यह नरसिंह कथा का गौण पात्र है। वह हिरण्यकशिपु का सेवक एवं गुप्तचर है। इसके चरित्र के कुछ पक्ष इस प्रकार है।

1. **सजग गुप्तचरः-** वज्रदन्त सजग गुप्चर है। वह बड़ी सतर्कता से घुस पैठियों की पहचान कर लेता है। जय-विजय के वह पकड़ता है।

---

१. संस्कार ध्वज - पृ० ८५

२. वही पृ० ८५

३. वही पृ० ८७

वज्रदंतः– धूर्त, पाजी, रूप बदल कर इस देश में घुसने वाले चोर उचक्के, मुझसे बच नहीं सकते। चारों तरफ देश की सीमाओं पर इतनी चौकसी, इतनी सेना, इतने गुप्तचरों के बावजूद ये घुस पैठियें न जाने कैसे धंसे चले आते है। आज इन्हें मार कर श्री श्री मार्तण्ड सर्व शक्ति अखण्ड ईश्वरानन्द भगवान महाराजाधिराज हिरण्यकशिपु से मुंह मांगा इनाम लूंगा।[1]

राजभक्तः– जय विजय की भविष्वाण्धी सेवा वज्रदंत प्रभावित हो, राजा के प्रति अपनी भावना को प्रगट कर उन्हें सजग रहने का परामर्श देता है।

वज्रदंतः– देश के आधे से ज्यादा लोग में दिए ओर गुप्तचर बन गये है। किसी अपरिचत के सामने आपस में बाते मर करने लगना। विशेष कर राजा के बारे में, उसे शासन के बारे में कुछ भी कहना अपराध है। ...... राजा के अतिरिक्त यहां और कोई शक्ति नहीं। ईश्वर वही राजा है। राजा के अलावा किसी अन्य की सत्ता पर विश्वास करना सरासर राजद्रोह है।[2]

अहंकारीः– सत्तामद सभी मदों से तीव्र कहा गया है। वज्रदंत सत्ता प्राप्त कर अहंकारी और अपने को ज्ञानी मानने लगा है महासुन्दरी उसे अपने रूप जाल में आबद्ध करने हेतु उसकी चाटुकारिता करती है।

महासुन्दरीः– राजकुमार...............

वज्रदंतः– आर्य वज्रदंत को बेवकूफ बनाना इतना आसान नहीं है अगर प्रहलाद को राजकुमार कहना चाहती तो कहो पर वज्रदंत को राजकुमार कहा यह मेरे लिए सम्मान नहीं। ..... मुझे प्रशंसा की जरूरत नहीं। मुझे किसी प्रकार की लालसा नहीं। मैं राजा बनाता हूं।[3]

सौंदर्य से विरक्तिः– वज्रदंत जिस प्रकार की राजकीय सेवा में नियुक्त है, उसकी राह फिसलन भरी है। नारी देह का सौन्दर्य उसे पल-पल आकृष्ट करने को तत्पर है किन्तु

---

१. नरसिंह कथा - पृ० १२

२. वही पृ० १६

३. वही पृ० ६६

वज्रदंत नारी से दूर रहने में ही अपना कल्याण समझता है।

वज्रदंतः- ना, ना, ना, स्त्री से दूर। सुन्दरी से और दूर। महा सुन्दरी से और दूर।

महासुन्दरीः- हाय! आप कितने सरस है।

वज्रदंतः- लोग कहते है कि मैं हृदयहीन हूं नीरस हूं, निर्मम हूं, क्रूर हूं।[1]

वह सुन्दरी को डांट कर आदेश करता है, कि वह राजकुमारी डूंडा के पास जाए। वज्रदंत ही हिरण्य कशिपु को सूचित करता है डूंडा महा रक्षक से प्रेम करती थी। प्रह्लाद को जला न सकने के कारण उसने आत्म हत्या कर ली है। वह हुताशन को भी लालच देता है।

नकुलः-

यक्ष प्रश्न और उत्तर युद्ध में इसी थोड़ी सी भूमिका है। यक्ष प्रश्न में सहदेव के न लौटने पर नकुल पता लगाने जाता है। सहदेव को मूर्च्छित देख तथा यक्ष की आवाज सुनकर वह निर्भीकता पूर्वक सहदेव की मूर्च्छा का कारण पूंछता है।

नकुलः- इसे किसने मारा?

यक्षः- स्वयं मारा?

नकुलः- तो मेरे निर्दोष भाई को तूने मारा।

इस संवाद क्रम में नकुल की निर्भीकता स्पष्ट गोचर होती। वह स्वयं बढ़कर पानी पीने का प्रयास करता है।

नकुलः- मैं पूंछता हूं यह मरा क्यों? उत्तर नहीं दिया तो तुझे मौत के घाट उतारूंगा। ..... उत्तर न देना इतना बड़ा अपराध है। ..... पता हे किससे जबान लड़ा रहे हो? ..... वाचाल तुम पानी के स्वामी बनते हो? पहले पानी पी लू फिर देखता हूं तुझे?[2]

उत्तर युद्ध में भी नकुल एक झलक ही मिलती है। सुन्दरी द्रौपदी को उसके मन में पति बनने की ललक जागरित होती है। नकुल को इस बात का दुख है कि उसे द्रौपदी का दास बन कर रहना होगा।[3] उसकी धारणा है कि जो अलग है, वह

---

१. नरसिंह कथा - पृ० ६८

२. यक्ष प्रश्न- पृ० ६१-६३, ३. वही पृ० २६

छोटा है। जो छोटा है वह असुन्दर है। वही दुख है।[1] वह सबसे सुन्दर है अतः उसके प्रश्नों में सौन्दर्य तत्व की जिज्ञासा अधिक है।[2] वह परस्पर एक जुट रहने की बात तो अवश्य करता है क्योंकि इसी एकता के चलते दुर्योधन के लाक्षागृह से वे सुरक्षित निकल आये थे पर उसे आशंका है, कि याससनी से नहीं बच सकते है।[3] द्रौपदी से मिलकर उसके आत्म विश्वास में अतीव अभिवृद्धि हुई है, क्योंकि द्रौपदी ने कहा है कि युद्ध हो पहला और एक मात्र अंतिम धर्म बद्ध कार्य है। तुम्हारा समर्पण ही मेरा प्रतिव्रत है। तुम्हारा रूप मेरे हृदय में रहेगा पर तुम्हारी वीरता ही मेरी मांग का सिन्दूर होगा।[4] इस प्रकार छोटी सी भूमिका में नकुल भ्रष्ट, प्रेमी, निर्भीक, सुन्दर रूपों में चित्रित हुआ है।

सहदेवः- यह पांच-पाण्डवों में सबसे छोटा है अतः जल की खोज में यही सबसे पहले जाता है। इसकी प्यास भी बहुत अधिक है। अथाह जलराशि देख यह पानी पीने को जैसे हाथ बढ़ाता है, यक्ष उसे रोकता है।

यक्षः- रूको, यहां इस तरह जल नहीं पी सकते।

सहदेवः- मैं प्यासा हूं। पहले मुझे पानी पीना है।[5]

यह उसे सावधान करता है कि उसके प्रश्न का उत्तर दिये बिना यदि जल का एक बूंद भी दिया तो मर जाओगें। सहदेव अपनी प्यास को प्राथमिकता देता है। यक्ष भी उत्तर पाने की प्यास से व्याकुल दिखाई देता। प्रश्न प्रतिप्रश्न से सहदेव को क्रोध ा आ जाता है।

यक्षः- तुम्हारा स्वभाव क्या है? क्रोध करना अपने आपको छिपाने के लिए झट आवेश में आ जाना। प्रतिक्रिया करना।[6]

सहदेवः- चुप रह। नहीं तेरा गला घोंट दूंगा। तू नहीं जानता मेरी शक्ति मैं पाण्डव

---

१. यक्ष प्रश्न - पृ० २६ २. वही पृ० २७
३. वही पृ० २६ ४. वही पृ० ४७
५. वही पृ० ५६ ६. वही पृ० ५६

पुत्र हूं।[1] जलपीते ही सहदेव अचेत हो जाता है।

उत्तर युद्ध में भी सहदेव के चरित्र का कुछ पक्ष का उजागर हुआ है। नकुल और सहदेव द्रौपदी के पास साथ भेजे जाते है। विदूषक व्यंग्य करता है कि तीनों पाण्डव अलग-अलग गए किन्तु छोटे भाइयों को एक साथ भेज दियां नकुल सुन्दर है अतः चालाकी से सहदेव को पहले भेजेगा। सहदेव अच्छा संगीतकार है। अच्छा गाता है। वह द्रौपदी के ममत्व से प्रभावित है।

सहदेवः- उसके हृदय में अथाह ममता है। ..... तुम्हारी शक्ति संगीत है। तुम गाओगे तभी युद्ध-भूमि में संगीत पैदा होगा। जो मरे है वे जी उठेगें। जो दीन है, वे अदीन होगें।[2]

पंचमः-

यह सगुन पंछी का गौण पुरुष पात्र है। इसकी पत्नी गंगा है। दोनों का प्रेम नाटक में परिस्थितियों/घटनाओं के घात प्रतिघात से चित्रित किया गया है। डां० लाल के नाटक गत पात्रों की यह विशेषता है, कि कथानक चाहे सामाजिक, पौराणिक अथवा लौकिक धरातल से उठाया गया है, पात्र उसके किसी न किसी समस्या के अच्छे-बुरे पक्षों को प्रगट करते है। पंचम दाम्पत्य जीवन के सुखद पक्ष को व्यक्त करता है। वह अपनी पत्नी को पीटता या प्रताड़ित भी करता है, तो भी इसमें उसका गहरा प्यार झलकता है। बात यह है, कि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों में यह मान्यता प्रचलित या बद्धमूल है, कि पति-पत्नी में परिस्थितिगत कारणों से उत्पन्न मतभेद यदि मुखरित या क्रिया कलापों से व्यक्त नहीं हुए तो वे गहने अचेतन में प्रविष्ट होकर कुंठा, अविश्वास का रूप धारण कर परस्पर कटुता, मनोलिनय रूप में प्रगट होंगे। आधुनिक सामाजिक जीवन में एक छदम व्यवहार शीलता आ गयी है। पति-पत्नी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है, कि वाह्यापार के कारण वे परस्पर अपने अंन्तस की गांठ नहीं खोलते है, इस कारण वे छद्म, संवाद हीनता का कवंच ओढकर जीवन विषाक्त हो उठता

---

१. यक्ष प्रश्न - पृ० ५१
२. उत्तर युद्ध - पृ० ४७

है। 'सुमन पंछी' नाटक के प्रारम्भ में तोता मेना की कथा का संकेत कर नारी-पुरूष के मध्य परस्पर विश्वासघात की व्यथा को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। अंगध वज एवं चन्द्रमुखी उसके गोपन या कुंठित रूप की व्याख्या करते है, तो पंचम एवं गंगा उसके सहज, स्वाभाविक, अकुंठित, निच्छल रूप की अभिव्यंजना करते है। पंचम के चरित्रगत कुछ विशेषताएं द्रष्टव्य है।

1. **आदर्श प्रेमीः-** पंचम का प्रेममय जीवन सुखमय है। छोटा कृषक है। छोटी-छोटी आकांक्षाएं है। गंगा उसकी प्रेमिका है। दोनों में अगाध प्रेम है।

गंगाः-तुम हो तो सब कुछ है।

पंचमः- तुम मेरे साफे की कलंगी हो।

गंगाः- मैं नदी तुम गंगा।

पंचमः- तू दीया मैं पतंगा।

गंगाः- मन चंगा तो कठौती में गंगा।[1]

कभी-कभी ऐसे सुखी जीवन में भी तनाव के क्षण आते है, जिसमें प्रेमी-प्रेमिका झगड़ा करते है, किन्तु इस कलह में भी एक आनन्द हैः-

पंचमः- अरी गंगा मैं तुझे कब से ढूंढ़ रहा हूं।

गंगाः- मैं खाली बैठी हूं क्या ?

पंचमः- मैं कब से खेत में हल चला रहा था।

गंगाः- मैं नदी में कपड़े धो रही थी।

पंचमः- मैं खेत में तेरा इंतजार कर रहा था।

गंगाः- मैं खाली बैठी हूं क्या ?

पंचमः- हे! तू सीधे मुंह क्यों नहीं बोलती ?

गंगाः- हां! तेरा मुंह बड़ा सीधा है ?[2]

---

१. सगुन पंछी - पृ० २६

२. वही पृ० ४५

बात यह है, कि पानी पीते समय बकरी नदी में एक फल बहते हुए देखा और उसने बकरे से उस फल को लाने का आग्रह किया किन्तु नदी में डूब जाने की आशंका प्रगट करता तभी बकरी मर्द पर अविश्वास की बात कहती है। यह देख-सुन कर गंगा भी बहक जाती है।

गंगाः- (सहसा) मत छुओ मुझे। पुरूष जात इतनी निर्दयी है। जानवर है। मक्कार है। थुड़ी है। धिक्कार है।

पंचमः- अरे रे रे तू मेरी सरकार है।

गंगाः- मैं अब तेरे पास नहीं रहूंगी। ...... मैने चुनरी लाने को कहा था कहां है मेरी चुनरी? मेने मुंदरी गढ़ाने को कहा था कहां है मेरी मुंछरी? ..... लाल गंज के मेले में ले जाने को कहा था। ...... अपना सिर फोडो।

पंचमः- ला पत्थर, मैं अपना सिर फोड़ लेता हूं। तुझे मेरी मजबूरी का पता नहीं, मेरी गरीबी का पता नहीं बाढ़ आई फसल बहा ले गई, सूखा पड़ा सत्यानाश होगा गया।[1] गंगा राजा अंगध्वज से पंचम के लिए नौकरी की माग करती है, जिसे राजा स्वीकार कर लेता है। गंगा कुछ देर के लिए पंचम से न जाने का आग्रह करती है, फिर सहर्ष स्वीकृति दे देती।

पंचमः- आरे भाग जगी, राजमहल में नौकरी लगी। गरीबी दूर हो जायेगी। पियरी रंगेगी। मुंदरी गढ़ेगी। तुझे भी वहीं बुला लूंगा। खूब कौज उड़ाएंगे, रस मलाई खांएगें।

गंगाः- सूखी-रूखी खाऊंगी। नहीं जाने दूंगी।

पंचमः- मैं जाऊंगा। क्यों राजा से कहा? नहीं जाऊंगा तो राजा बांधवा कर ले जाएगा।

गंगाः- यही तो नहीं पता। जब मांगा क्यों? अब मना क्यों कर रही हूं। किससे क्यों लड़ती हूं? क्यों किस बात पर रोती हूं? तुम जिद करते हो तो जाओ। मैं जिद करती हूं, तो मुझे मारते हो।[2]

---

१. सगुन पंछी पृ० ४८
२. वही पृ० ६१

पंचमः– अंगध्वज का दरबान बन कर महल में रहने लगता है, किन्तु उसे गंगा की याद आती रहती है। उसने कुशल, क्षेत्र की कोई सूचना गंगा के पास नहीं भेजी, क्योंकि प्रेम के तार अन्दर से जुड़े होते है। वह राजा के गंगा के पास जाने की अनुमति चाहता है।

पंचमः– हां, चाहे जो हो जाए गंगा के बिना एक छिन भी नहीं रह जाता।

राजाः– गंगा भूल गई।

पंचमः– भूल जाय। मैं तो नहीं भूला।

राजाः– गंगा ने कभी एक चिठ्ठी–पत्री भी नहीं भेजी।

पंचमः– असली तार तो भीतर से जुड़ा है।

राजाः– अगर मैं तुझे छुट्टी न दूं तो?

पंचमः– भाग जाऊंगा।

राजाः– कैद में डाल दूं तो?

पंचमः– पंछी बन कर उड़ जाऊंगा।[1]

राजा अंगध्वज पंचम को कैद खाने में डाल देता है, किन्तु रानी उसे मुक्त कर देती है। पंचम गंगा के लिए श्रंगार–प्रसाधन–सामग्री लेकर उसके पास जाता है किन्तु मसखरा उन्हें लड़वा देता है। पंचम गंगा को पीटता है।

---

१. सगुन पंछी – पृ० ८२

पंचम अध्याय

अध्याय-५

आलोच्य नाटक कार के स्त्री पात्र

प्रथम अध्याय में पात्र प्रतिमानों की अवधारणा का सैद्धान्तिक विवेचन करते समय स्त्री पात्रों विशेष रूप से नायिकाओं की महत्ता, वर्गीकरण अत्यादि पर प्रकाश डाला गया हैं वहां लिखा गया है कि नायिका नाट्य (किंवा साहित्य मात्र) की प्राण वाहिनी धारा है, जिसमें जीवन का मम्र स्पर्शी मधुर रस ओत-प्रोत रहता है। आचार्यो ने नारी को सुख का मूल, काम भाव का आलम्बन नारी के रूप-सौन्दर्य, उनके वर्गीकरण का विस्तार रूप से वर्णन किया है। सामान्यतया प्रकृति भेद, आचरण की शुद्धता-अशुद्धता, सामाजिक प्रतिष्ठा, कामदशा, शील इत्यादि आधारों पर उसका वर्गीकरण मिलता है। नायक की प्रिय या पत्नी नायिका कहलाती थी। अन्य स्त्रियों का वर्णन अत्यन्त गौण रूप में हुआ है। आधुनिक युग में दृष्टि बदल गयी। नारी नायिका मात्र ही नहीं रही। अतः कथा प्रवाह की दृष्टि से मुख्य स्त्री पात्र या नायिका मान कर उसके व्यक्तित्व निरूपण का प्रयास तथा सहायिका रूप में नारी व्यक्तित्व कृतित्व तथा अस्तित्व-बोध, नारी की विडम्बनाओं संघर्षो उसकी जिजीविषा तथा अस्मिता का उल्लेख इस अध्याय किया जाएगा।

सूका:-

सूका अंधा कुंआ नाटक की एक सशक्त पात्र है। उसकी जीवनी शक्ति पुरूष समाज के हाथों नष्ट हो चुकी है और वह अब केवल उत्सर्ग और बलिदान की दिशा में बढ़ी चली जा रही है। यह उसका सामाजिक संस्कार है, जो पुरूष द्वारा प्रताड़ित होने पर भी उसमें किसी प्रकार का विद्रोह नहीं खड़ा करता। उसने भगौती जैसे पशु से बचने के लिए दो मार्ग निर्धारित किये और दोनों में वह असफल रही। इन्दर के साथ भागना जैसे उसकी समाज को दी गयी बेवुनियाद चुनौती है। इस दिशा में भगौती का विकल्प इन्दर के रूप में खोजना ही उसकी सबसे बड़ी भूल है। वस्तुतः इन्दर भगौती का विकल्प नहीं बल्कि उसका ही प्रतिरूप है। उसके लिए भी सूका रूप-योग्य नारी से बढ़कर नहीं है। दूसरी ओर भगौती से मुक्ति पाने के लिए वह

अंधे कुंए में गिरती है। किन्तु वह नहीं जानती कि वह कुंआ भी तो उसी अंधे समाज का एक अंग है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सूका के सभी प्रयत्न जब निष्फल हो जाते हैं, तो जैसे उसे आत्म बोध हो उठता है। बचाव की तलाश में उसने अभी तक भटकन को ही पाया है, अतएव अपनी स्थिति को सहज स्वीकार कर वह विरोध ा के मध्य अपना माग्र तलाशती है। भगौती को स्वीकार करके ही वह अंधे कुंए में जीवन जल की धारा प्रवाहित करती है, जो वर्षो से स्नेह और प्रेम की वर्षा का प्यासा है। सूका का भगौती के प्रति सर्वस्व समर्पण-उत्सर्ग का जल है जो भगौती के अन्तरस् के सूखे पन और अंधे पन को हरा-भरा कर देता है। उसका चरित्र संवेदनशील, मानवीय पीड़ाओं का पुंज और जीवन्त है।

इस प्रकार नाटककार डा0 लक्ष्मी नारायण लाल ने सूका के चरित्र के माध्यम से जो जलहीन है। जिसकी अर्थवत्ता नष्ट हो गयी है फिर भी जिसकी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है ऐसे समाज में नारी अस्मिता उसके त्याग और बलिदान में नीहित माना है। पुरूष जो नारी को एक जड़ वस्तु से अधिक सम्मान नहीं देता। नारी की नियति यही है कि वो अपने स्वत्व की रक्षा पुरूष के चर्णो में य उसके आश्रय में ही प्राप्त करती है। नाटककार ने सूत्र के अन्तरिक सौन्दर्य और मूल्यों का जीवन्त चित्रांकन किया है उसके व्यक्तित्वगत वाह्वय रूप रेखा का चित्रांकन न कर आन्तरिक वैशिष्ट्य का उद्घाटन अनेक दृश्य बिम्बों के माध्यम से किया है। कुछ विशेषतायें निम्नलिखित है।

सीधी सहन शीलाः- डा0 लाल ने सूका को अत्यन्त सरल ग्रामीण गाय की तरह सीधी विवाहिता स्त्री बताया है जिसमें उसका पति भगौती कचेहरी से छुड़ाकर लाया है और अब उसे निद्रयता पूर्वक मारता हे। सूका करूण गोहार लगाने के अलावा कुछ कर नहीं सकती मिनकू कहता है कि भगौती याद रखो, खूंटे में बांधकर गऊ मार रहे हो।[1] नारी क्षमाशील कही जाती है। सूका इन्दर के साथ प्रेम के आवेश के कारण

---

१. अंधा कुआँ - पृ० २६

भाग गई थी। पकड़ जाने पर वह इसे अपनी नियति मानकर मारको सहन करती है। मार खाने के बाद हल्दी, चूना लगाकर शारीरिक दर्द को भुलाने का प्रयास करती है। जबकि उसे रोज-रोज बदन में लगाने के लिए हल्दी और प्याज भी नहीं मिलती यह उसकी क्षमा शीलता का ज्वलन्त उदाहरण है।

अलगूः- भौजी डरती क्यों हो रोज-रोज उस पर मार पड़ती है। और चोट पर दवा के लिए एक गांठ हल्दी का मुंह देखना पड़ता है।[1] मार खाते-खाते सूका कभी-कभी आवेग में भी आ जाती है।

सूकाः- इसीलिए कचहरी से मुझे छुड़वाकर इस घर में लाये थे। हां-हां ले मार। ले मार गंडासा से, मार न ...... नही-नहीं रोको नहीं मारने दो इसे चलओ गड़ासा! मारो!! मरने पर तुली है।[2]

2. प्रेमिकाः- सूका विवाहिता होकर भी इन्दर नामक युवक से प्रेम करने लगी और पति का परित्याग कर उसके साथ भाग जाती है। नाट्ककार ने इस अजीव एवं विषम परिस्थिति के मूल कारणों की चर्चा नहीं की है फिर भी नाटक को पढ़कर यह तो जाना ही जा सकता है कि सूका भाव प्रवण युवती थी और उसे भगौती से प्रेम की गहरी अनुभूति तथा उसकी गहरी अभिव्यक्ति नहीं मिली होगी।

मिनकूः- भगवान के सामने का साक्षी हूं। सूका इन्दर के साथ चली जाती, उसे कोई रोक नहीं सकता था इन्दर सूका दोनों राजी थे।[3] सूका स्वयं कहती है।

सूकाः- इस घर से तवाह होकर अच्छे के लिए मैं उनके संग भागी थी लेकिन जब भाग में अच्छा लेकर उतरी ही न थी तो क्या होता हैरान होकर पराये की बाह भी पकड़ी वह भी आदमी न निकला।[4]

भगौती जब इन्दर के कब्जे से सूका को छुडा लाता है इस पर अपना अधि

---

१. अंधा कुऑं - पृ० ३४
२. वही पृ० ३०
३. वही पृ० ३१
४. वही पृ० ६५

ाकार जमाने एवं अपनी कुण्डा को तृप्त करने के लिये जिस अमानवीय क्रूरता का परिचय दिया उससे यह अर्थ बिल्कुल नहीं निकलता कि सूका के हृदय मुरूस्थल में प्रेम का नखलिस्तान शुष्क य समाप्त प्राय हो गया है। सूका ने जब अपनी नियति भगौती के आश्रय में ही मान ली तो अचानक एक दिन उसके मान में भगौती के प्रति प्रेम का प्रवाह तरंगायित होने लगा वह सूका से पूंछता है। क्या सचमुच वह खराब है जिसका उत्तर सूका दे नहीं पाती सूका स्वयं कहती है।

सूकाः- जो है तूही है तेरे ही साथ जीना तेरे ही साथ मरना, जो करम में है वही अपना है। ...... अरे तू कैसे हंसती है रे।........देख खंमिया पकड़कर मत हंस। अरे कोई देख लेगा............जुलुम होई जायेग।[1]

उक्त उदाहरण का विश्लेषण करे तो यह आश्चर्य जनक लगता है कि जिस सूका को भगौती रस्से से बांधकर निर्दय होकर अत्याचार करता था। उसके सामने पशुओं की भांति खाना डाल देता, उसकी छाती पर मूंग दलने के लिए शांत ले आता है। ऐसी सूका अपने पर अत्याचार करने वाले भगौती के प्रति किस प्रकार प्रेमिल द्रवित हृदय वाली हो सकती है। यहीं यहां देखना है। वस्तुतः सूका का केन्द्रीय चरित्र प्रेम युक्त है भावुक है उससे प्रेम करने वाले पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाली है। प्रेम की चाह रखने वाली सूका भगौती के नीरस जीवन में उसका प्रमांकुर सुरक्षा ही रहा कि इन्दर के सामीत्य ने उसे हरा भरा बना दिया किन्तु दुर्भाग्य वसात उसी त्रासद परिस्थिति में आ फंसी प्रेम की पुकार, उसकी प्यास और जीजीविसा ज्यो-ज्यो अत्याचार बढ़ता जाता त्यो-त्यों उसके हृदय की पुकार और अधिक बलवती होती जाती। नारी मनोविज्ञान की इसी विशेषता का उल्लेख नाट्कार डा0 लक्ष्मी नारायण लाल ने किया है यह हरणी रूपी सूका अन्धे कुयें को ही अपनी नियति मान बैठ्ती है। यह कुंआ जलहीन है व्यक्ति के रूप में विवेकहीन है। जिसमें रहना देह का समर्पण उससे भागना नारी की नियति ही है यदि ऐसा न हो तो सूका का रसालावित

---

१. अंधा कुओं - पृ० ५२

हृदय कबका समाप्त हो गया होता इन्दर से मार खाने तथा टूटे पैर को लेकर भगौती विस्तर पकड़ लेता है। और वह पूर्ण रूपेण सूका पर ही आश्रित हो जाता है। सूका होगा क्या जो जैसी करनी करे सो तैसा पुल खाय। जो करनी मैने की थी वह मेरे आगे उतरा लोग कहते है। मेरी कोख अन्धी है इसलिए जब मैं मरने भी गयी तो मुझे मेरे करम में अन्धा कुंआ ही मिला। .... जब कराहते है, तब उठ के दौडो। न दिन देखों न रात। लाचार पड़ा, गुह–मूत्र न करू तो कल ही सड़ जाय। ..... भीतर से जी होता है कि सड़ने दूं जिस लाठी और बेट से मुझे मारा है आज इसी के मुंह में डाल दूं कि खा इसी को। ...... जिसने मुझे जान से मार डालने के लिए. कौन–कौन सा जतन नहीं किया, आज मैं उसी को जिलाने के लिये क्या–क्या नहीं कर रही हूं यह जौ इसी के लिए बीन रहीं हूं। कल मंगह है, इसे सतनारायण बाबा की कथा सुनवाऊंगी।[1]

स्पष्ट समझा जा सकता है कि सूका का हृदय कितना उदार एवं विशाल हे कि अपने अत्याचारी के खिलाफ समर्पित से सेवा करने में मन में कोई छल कपट मैल य दुराव नहीं यहां करूणा भी नहीं है। यहां तो शुद्ध नर्मल प्रेम की ऐसी उद्दाम धारा है जिसमें कहीं कालुष नहीं सूका को भगौती की हंसी यदि निश्चल नियाय शिशु के समान लगती है तो अत्याचार करने वाले पर भी वह उतनी ही उद्दाम रूप से प्रेम करती है। नारी के इसी वैशिष्ट का निदर्शन नाटककार ने कराया है।

3. उदारताः– नीतिशास्त में यह कहा जाता है कि मिट्टी की शौत भी बुरी होती है फिर तो यहां भगौती सूका की छाती पर दाल दलने हेतु अच्छी नायक स्त्री को ले आता है। लेकिन सूका इतनी उदार है कि वह लच्छी को अपनी छोटी बहेन मान लेती है। और उसे जब यह ज्ञात होता है कि लच्छी हीरा नामक युवक से प्रेम करती तो उसके सामने एक लक्ष्य स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि वह लच्छी और हीरा का मिलन कराकर रहेगी।

---

१. अंधा कुओं – पृ० ७०

सूकाः– मत रो न रो मेरी लच्छो, रोने के लिए मैं हूं ही। मेरे जीते अगर तुम्हें भी रोना पड़ा तो मेरे आंसू बेकार है। मुझे देख रो नहीं।[1] हीरा ने लच्छी को प्रेम पत्र भेजा है जिसमें सूका को प्रणाम लिखा है और उससे आग्रह किया है कि लच्छी को मेरे हाथ सौंप दें किसी पूर्णमासी की रात वह आयेगा सूका कहती है वह हीरा को बुलायेगी सौगन्ध दिलाकर सब बाते साफ करेगी जिसमें लच्छी को भविष्य में किसी प्रकार का कष्ट न हो। एक दिन ऐसी परिस्थिति आती है कि हीरा निश्चित समय पर आ जाता है। सूका उसका स्वागत करती है और छोटी बहेन की तरह विदा करती है।

सूकाः– माथे पर टिकुली नहीं लगायी ये सब टिकुली लगा डालना मा ने मुझे दिया था, मैं एक भी न लगा सकी (लच्छी अपने आंचल से सूका के पैर छूती है और उसे अपने माथे से लगाती है)

सूकाः– सौभाग्यवती हो दूधव नहाओं, पूतो फलो,

राजीः– इस गठरी में पूडियां बधी है रास्ते में किसी चीज की तकलीफ नहीं करना।

सूकाः– पहले तो सभी अच्छे होते है पर जब सच्चाई सामने आती है। ..... लच्छी से प्यार करते हो। प्यार माने ?

हीराः– जिम्मेदारी

सूकाः– और ?

हीराः– उसकी सदा रक्षा करना।

सूकाः– और......................

हीराः– उसी के साथ जीना और मरना

सूकाः– करना क्यों जियो जुग-जुग जियो। ...... मुझे न निहारो जाओं मेरी बेरी इस घर की तुझ पर कभी साया तक न पड़े, जाओ मेरी..........................[2]

---

१. अंधा कुआँ – पृ० ५६
२. वही पृ० ६७-६८

4. त्याग मयी नारीः– सूका सीधी सरल आवेगमयी प्रेमिका और स्पष्ट वक्ता होने के साथ ही साथ कुशल सोवेका और त्यागमयी नारी उसका त्याग असमर्थ व्यक्ति का त्याग नहीं न ही यह त्याग विवशता जन्य है अपितु यह त्याग उस समर्थ पत्नी का है जो पति की रक्षा हेतु यमराज से भी दो–दो हाथ कर अपने सुहाग को छीनकर लाने की क्षमता रखती है बात यह है कि भगौती ने प्रतिहिंसा वस इन्दर को पीटा ही नहीं अपितु उसके खेत खलिहान और घर में आग लगा दी अतः समय मिलने पर इन्दर भगौती को मजबूर असहाय और विषम समझ तलवार लेकर मारने पहुंचता है।

इससे वह अपनी प्रतिहिंसा का बदला तो लेगा ही साथ ही इसे विश्वास था कि भगौती के मर जाने पर सूका का प्रेम जागरित हो उठेगा और वह इन्दर के साथ उसके प्रेम बन्धन में बंधकर उसके साथ चली जायेगी। किन्तु इन्दर नारी मन की उस दृढ़ता को नहीं जान सका जिसका हृदय आकाश से भी जादा विस्तृत और ध ारित्री से भी अधिक क्षमाशील होता है। सूका भगौती को ही अपनी नियति मानकर उसकी निस्वार्थ भाव से सेवा करती है अपने सुहाग की रक्षा हेतु सत्य नारायण की कथा सुनने की मनौती मानती है अतः इन्दर के अपने पर अपने सुहाग की रक्षा हेतु वह साक्षात चंछी बन जाती है। अपने पुराने प्रेम को विस्मृत कर इन्दर के समक्ष जिस त्याग औदार्य और क्षमाशीलता का परिचय देती है। वह इन्दर के लिए अकल्पयी था। नारी प्रसन्न हो जाय तो पति के सारे गुनाह क्षमाकर अपने सौभाग्य था। नारी प्रसन्न हो जाय तो पति के सारे गुनाह क्षमाकर अपने सौभाग्य की रक्षा करने में सिंहिनी उसे देन नहीं लगती पहले वह इन्दर को समझाती है फिर उसे अपना रौद्र रूप दिखाती है।

सूकाः– औसा न कर मैं विधवा हो जाऊंगी मुझ पर दया कर।

इन्दरः– तू उसे पति मानती है?

सकूः– हां–हां। .... सबरदार जो कदम आगे बढ़ाया। (गडासा ताने चुपचाप खडी

है। सहसा इन्दर सूका के हाथ से गड़ासा छीनने के लिए झपटता है, सूका क्रोध से गड़ासा चला देती है।) मेरे जिन्दा रहते तू उसे नहीं मार सकता। (इन्दर के दोनो उठे हुए वार सूका पर सही उतर जाते है। और वह करूण कराह से भगौती के सीने पर विखर जाती है।)[1]

इस प्रकार नाटककार डा0 लक्ष्मी नारायण लाल ने प्रतीकात्मक ढंग से अंधा कुंआ को विवेक हीन समाज कहकर सूका जैसी नारियों को हरिणी कहा है जिनकी यही विडम्बना है कि वो उस पुरूष से आश्रय मांगती है जो उसे निर्जीव वस्तु मानता है जिसके निरादर में अपनी मर्दानगी समझता है। सूका ऐसी ही प्रताडित् शोषता नारी है जिसमें अपने स्वभिमान स्वत्व की रक्षा का बोध पल-पल जागरित रहता है। नारी सुलभगत कामनाये सरलता उदारता आदर्श मयता उसमें दिखाई देती है। वही परिस्थितियों से हताश होकर टूटन भी उसमें चित्रित है। किन्तु इस टूटन में भी नाटककार ने नारी के मनो जगत का चित्रण कर स्वत्व की रक्षा का भाव उल्लिखित किया है। जिसकी परिणति व्यवहारिकता में हाती है उसका त्याग करूणिक होते हुए भी भी पुरूष समाज को सोचने के लिए विवश करता है।

कुन्तलः- रातरानी की प्रमुख स्त्री पात्र है। वह जयदेव के शुष्क और मुरझाये जीवन में रात रानी की भांति महकती है और अपनी सुगंध से वातावरण को हरा-भरा रखने का प्रयास करती है। कुन्तल बडी ही भावुक और कला प्रिय युवती है। यही भावुकता उसमें मानवीय संवेदना का कारण है। इस जीवन पद्धति का प्रतिबिंब उसकी सामाजिक अवधारणा पर भी पड़ा है। श्रमिक और मालिक के समानाधिकार की उसकी स्थापना द्रष्टव्य है धन और अधिकार की यह समस्या एक बार मनुष्य जब धन संग्रह करना शुरू कर देता है, तब वह अपने संग्रह के उद्देश्य को भूल जाता है कि धन को कमाने वाला कौन है? उसका इसमें कितना हिस्सा है। अंत में इसी सामाजिक जागरूकता के साथ वह श्रमिक अधिकारों की रक्षा भी करती है। दाम्पत्य

---

१. अंधा कुआँ - पृ० ८०-८१

संबंधों के स्तर हम कुन्तल में एक प्रकार असन्तोष लक्ष्य कर सकते है। उसके जीवन मूल्य और धारणाएं जयदेव से कहीं भी मेल नहीं खाती है। इसी कारण उसमें अंत तक एक द्वन्द्व बना रहता है। इस असन्तोष ने उसकी सम्पूर्ण संवेदन शीलता को प्रकृति की ओर मोड़ दिया है। वह फुलवाड़ी में पुष्पों की सेवा कर अपने व्यक्तित्व को विकसित है। इससे उसके जीवन में वृहत्तर मानवीय प्रसंगों का समावेश हुआ है। चेतन मनुष्य में उसे जो स्नेह, आत्मीयता प्राप्त नहीं हुई उसे उसने प्रकृति की मनोरमता में रहकर पाया है। वह मां स्वरूपा सिद्ध हुई है। कुन्तल के अन्दर एक और द्वन्द्व है और वह है पत्नी और प्रेमिका का द्वन्द्व। जयदेव की वह पत्नी है, लेकिन उसका मन निरंजन की ओर विवाह पूर्व आकृष्ट था। अर्थाभाव के कारण निरंजन से उसका विवाह नहीं हो पाया। उसने अपने प्रेमिका स्वरूप को निरंजन और सुन्दरम के दाम्पत्य सूत्र द्वारा विस्तार देती है।

कुन्तलः-

यह रात रानी नाटक की नायिका है प्राक्तन नायिका भेद की दृष्टि से स्वकिया और उत्तमा कोटि की है। डा० लाल ने कुन्तल का वाहय और आन्तरिक रूप सौन्दर्य आधुनिक और प्राचीन माप दण्डों के कौषेय परसे निर्माण किया है। नाटककार इसे जय शंकर प्रसाद की दृष्टि से लिखा है जिसमें नायिका के अन्तर्गत एक ओर कोमल सुकुमार मधुर भावों का चित्रांकन है तो दूसरी ओर अपनी अस्मिता अस्तित्व की रक्षा हेतु तेज तृप्त रूप मिलता है। नाटक कार डा० लाल ने कुन्तल के नायिका गत अलंकारों में से शोभा कान्ति दीप्ति माधुर्य प्रगल्भता, औदार्य, धर्म, लीला, विलास, विच्छित्ति, कुट्टमित इत्यादि का चित्रांकन परिस्थितियों के परिवेश चित्रण से किया है। यहां कुछ विशेषतायें चित्रित की जा रही है।

1. **वाह्य सौन्दर्यः-** नाटककार ने कुन्तल के सौन्दर्य का चित्रांकन करते हुए लिखा है, अवस्था 28 वर्ष के आस-पास यौवन की महिला से परिपूर्ण। गुलाबी रंग की साड़ी पहने है। हाथ में ताजे सफेद ग्लेडिबोलस के पुष्प का गुच्छा लिये हुए दायी

ओर बढ़ती है और क्लावर पॉट में सजाती है। फिर गाती हुई घर में तेज कदमों से चली जाती है।[1] उसका पति जयदेव भी उसके ताजे गुलाब के समान सुन्दर सौन्दर्य पर मुग्ध है। उसे यह भय है कि गार्हस्थिक कार्यो से यह गुलाब क्लान न पड़ जाये। वह कहता है माई डियर, यह गुलाब जैसा मुख मेरी फुलवारी की इस परी का यह रूप, घर गृहस्थी की दुपहरी में कुम्भला जायेगा।[2] इसी प्रकार नाटककार ने कुन्तल के आहार्य का चित्रण करते हुए लिखा है-भीतर से कुन्तल निकलती है, पीली साड़ी में प्रशत्र मुख लगता है कोई गीत गुनगुना रही है। हाथ में एक्रोकीलीनम के फूल के गुच्छे लिए है।[3]

2. प्रकृति प्रेमः- कुन्तल भावुक युवती है ससुराल में घर के आगे विस्तृत लान है जहां नाना प्रकार के देशी-विदेशी फूल पत्तियों से युक्त फुलवारी है जिनकी देख रेख स्वयं करती है। नाटककार ने लिखा है हाथ में कैंची लिये हुए चौखट के पास रखे क्रोटस, पांम तथा ऊपर चढ़ी हुई चमेली की लता की पत्तियों को सवांरती है।[4] प्रकृति के प्रति उसका अनुराग और दुलार का चित्रण कवि ने माली के संवाद द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया है-

कुन्तलः- बाबा आज चार दिनों से में फलवारी में काम काज न कर सकी ....प्रस का मामला सुधर जायेगा। तब हम दोनों फुलवारी और आश्चेड़ के काम में हाथ बटायेगें।

मालीः- मां इस फुलवारी की किस्मत तो उसी दिन जाग उठी जिस दिन तुम बहू मां बनकर इस घर में आई मुझे याद है चार साल हुए फरवरी के दिन थे। जिनेनियम फूल फूली थी और फ्रीजिया की महक से चारों ओर......................

कुन्तलः- सुनो बाबा तुम्हारे फरवरी के चित्र से मुझे अक्टूबर की चिन्ता हो आई सुनो

---

१. रातरानी - पृ० १८
२. वही पृ० २१
३. वही पृ० ६२
४. वही पृ० १८

नरगिस और हेयासिंग के बल्ब इस साल कुछ कमजोर लगे थे क्या ?[1]

3. पति की प्रेमिकाः- आधुनिक युग में पति और पत्नी के सम्बन्ध तनाव के कारण अस्वाभाविक हो उठे है किन्तु नाटककार ने इसे आदर्श रूप में देखा है कि पत्नी जब प्रेमिका बन जाती है, तब वह दाम्पत्य की ऐसी आधार शिला रखती है जिसमें तनाव कुण्ठा अविश्वास धुये के बादल के समान उड़ जाते है। नाटककार ने कुन्तल और जयदेव के मध्य हुए संवादों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कुन्तल को जितना जायदेव का ध्यान है उतना वह उसके कर्म क्षेत्र की भी चिन्ता करती है जय देव के प्रेस में कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी है अतः वह हताश होकर घर बैठा है। कुन्तल पूंछती है।

कुन्तलः- कौन ? अरे तुम ? यहां छिपकर बैठे हो ? प्रेस नही गये क्या ? अरे बोलते क्यों नहीं ? क्यो क्या बात है ? तबियत तो ठीक है न ? ....वह हंसती-हंसती जयदेव की कुर्सी के पीछे से उसके मुह तक झुक जाती है। जयदेव के बालों में उगली फसाती हुई-यह ढाई मन का सिर क्या हिलाते हो ? बोलते क्यों नहीं ? मुंह से बोलो क्या बात है ? नहीं बताओगे तो लो न बोलो................बगल में हाथ डालकर जयदेव को बेतरह गुदगदाने लगती है।[2] इसी प्रकार कुन्तल अपने पूर्व प्रेम का रहस्योद्घाट्न अपने पति के समक्ष किया और पूर्व प्रेमी को लिखे गये सम्पूर्ण पत्र अपने पति जयदेव को सौंपकर कहती है।

कुन्तलः- फिर क्या सोचा था। मैने आज कल की लड़कियों जैसे प्यार भरे फिल्मी गीतों से लबालब खत लिखे होगें मैं उन लड़कियों में नहीं जो मजनुओं की लमला बनने की स्वप्न देखती है, में हिन्दू स्त्री हूं पति में श्रद्धा रखने वाली उस पर भरोसा और विश्वास रखने वाली।

जयदेवः- श्रद्धा भरोसा और विश्वास पर प्यार नहीं क्यों ? हिन्दू स्त्री में यह प्यार

---

१. रातरानी - पृ० २२
२. वही - पृ० १६

नान वेजिटेरिपन है क्या बताओ। भई मैं तो बहुत ही साधारण आदमी हूं मेरे पास न कला न साहित्य न धर्म न दर्शन पर विश्वास मानो मुन्तल मेरी जिन्दगी में कला, साहित्य धर्म की जो भी कमी थी, तुम्हें पाकर वह सब पूरी हो गई।

कुन्तलः- सुनो-सुनो हिन्दू स्त्री प्यार नहीं प्रेम करती है।

जयदेवः- अब सम्भलो प्यार प्रेम में भी अन्तर।

कुन्तलः- (हंसती है) प्रेम में मुक्ति है और प्यार में बन्धन। कहीं पढा था इस देह के प्याले में जब प्रकृति अपनी रंगीन शराब उंडेल देती है तो उसे हम प्यार कहने लगती है। लेकिन प्रेम........[1]

4. मातृत्वः- भारतीय दर्शन और नीति शास्त्र के अनुसार नारी का चरम विकास मात्रित्व में ही नीहित है। जयदेव के प्रेस के कर्मचारियों के बच्चे कुन्तल से जब अपनी समस्या का समाधान मांगने आते है तो तो कुन्तल का मत्रित्व रूप उद्वेलित हो उठ्ता है। जयदेव भी व्यंग्यात्मक रूप में उस पर टिप्पणी करता है। तभी कुन्तल कहती है।

कुन्तलः- उसदिन कर्मचारियों के बच्चे यहां सुबह ही सुबह आये मुझे माता जी, मां-मां कहकर पुकारने लगे किसी के तन पर न ठीक से कोई कपड़ा था, न किसी का पिछले चार दिनों से पेट भरा था नंगे और भूखे। क्या करती मैं

जयदेवः- हां-हां मां और क्या करती किसी बच्चे को कपड़ा किसी को रूपया किसी बगीचे का पेटभर फूल और किसी को..........................[2]

5. सुघर गृहणीः- नीति शास्त्र में घर को घन कहकर ग्रहोपयोगी कार्यो में दक्ष को गृहणी कहा गया है। इस दृष्टि से कुन्तल यदि एक ओर कोमलता की उत्तलिका है, मसृणिता की जीक्त मूर्ति है तो वह घर के कामों में अत्यन्त दक्ष है तभी तो कुन्तल के पिता से उनके स्वसुर बहू यप में उसे मांग कर लाये थे उनकी मान्यता थी ऐसी बहू नन्नदन बन की इन्द्राणी है जिसके स्नेह से सबकुछ हरा भरा ही नहीं

---

१. रातरानी - पृ० ६०-६१

२. वही पृ० २०

रहेगा अपितु ग्राहस्थिक कार्यो से एक नवीन सौन्दर्य झलकेगा। श्वसुर की मृत्यु के पश्चात जयदेव के अव्यवस्थित जीवन के कारण घर में अर्थाभाव झलकने लगा तब कुन्तल धर के वजट में दो कटौतियां कर दी टेलीफोन कटा दिया बाहर के काम काज के लिए नियुक्त नौकरी को हटा दिया और स्वयं घर के कार्य करने लगी कुन्तल अब अपनी सहेली से चर्चा करती है कि बाग से काफी आमदनी है फुलवारी का सरा खच्र निकल आता है। माली की तनख्वाह और कुछ बच भी जाता है।[1]

6. **भावुक व्यक्तिः-** प्रथम अध्याय में व्यक्तित्व के वर्गीकरण के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। वहां लिखा गया है कि अन्तर्मुखी व्यक्तित्व भावुक होते है। सुन्दरम और कुन्तल के जीवन की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत कर उसके परिप्रेक्ष्य में कुन्तल को आदशवादी भावुक और कल्पना जीवी व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है। सुन्दरम कुन्तल की सहेली है। वह उसके स्वांग रूप को देखकर कहती है।

कुन्तलः- सुन्दरम् यू आर ग्रेट सुन्दरम अगले जनम में तुम पुरूष होना मैं तुम्हारी पत्नी बनूगी। तुम मुझे जब पुकारोगी नही-नही पुकारोगें कि ओरी हो कुन्तल तुम कहा हो तब मैं चांदनी के झूले पर से बोलूगी मैं तुम्हारे लिए फूलों का हार बना रही हूं। भावोद्रेक में गा उठ्ती है।[2] जयदेव के समक्ष वह अपनी भावुकता वस किये गये आकर्षण को स्वीकार करती है।

कुन्तलः- स्त्री का जन्म पाकर, यह हृदय पाकर माता-पिता के द्वारा पत्नीत्व का आदर्श पाकर, इस शरीर पर यह चिकनी चमड़ी पाकर कास मेने भी तुम्हारी तरह दुनिया देखी होती।[3] अपने पूर्व प्रेमी निरंजन को सामने पाकर कुन्तल पुष्प सौन्दर्य तथा रात रानी की महत्त के साथ भावुक होकर कहती कुन्तल- पर यह पुष्प कितने कोमल और क्षणिक जीवी है। फुलवारी में एक ब्राइडल क्रीपर है साल भर की तैयारी

---

१. रातरानी - पृ० ३२
२. वही पृ० २६
३. वही पृ० ३६

में केवल पिछले महीने नवम्बर में सिर्फ पन्द्रह दिनों तक के लिए फूलकर समाप्त बहुत ही छोटे-छोटे पुष्प थे, सुगन्ध में डूबे हुए इसी तरह वह रात रानी है, कितने छोटे-छोटे पुष्पों से भरी हुई-निरंजन बाबू स्त्री की सबसे बड़ी करूणा यह हे कि वह रूपये में पांच आने भी अपने को प्रकट नहीं कर पाती जबकि आनन्द है अपने पूर्ण प्रकाश में।[1] इसी भावुकता के चलते उसे कालीदास का अभिज्ञान शकुन्तला में शकुन्तला के विरह के कारण लिखे पत्र को पढ़कर वह रो उठती है।

7. प्रेमिका रूपः- कुन्तल विवाह के पूर्व निरंजन से प्रेम करती थी किन्तु निरंजन के पिता द्वारा अधिक दहेज मांगे जाने पर वह विवाह नहीं हो सका किन्तु जयदेव से विवाहित होने पर वह इस रहस्य को गुप्त नहीं रखती और सच-मुच निरंजन से अपने प्रेम पत्रों को लाकर पति को सौंप देती है वह जयदेव से दृढ़ता पूर्वक कहती हैः-

कुन्तलः- जब तक खतो को निरंजन से पाकर तुम्हें दे न दूंगी तब तक चुप न रहूंगी। आपने लखनऊ में रहकर खूब दुनिया देखी है, पर आपने मुझ जैसी की दुनिया नहीं देखी होगी।

जयदेवः- निरंजन बाबू क्या तुम्हें वे सब खत वापिस दे देगें।

कुन्तलः- क्यों नहीं देगें? और यदि वे नही भी देगें तब भी मैं तुम्हें अपनी पूरी-पूरी परीक्षा दूंगी, याद रखना मेरा पूरा नाम शकुन्तला है (आवावेश में) यूयमेव प्रमाण जानीथ धर्मस्थिति च लोकस्य। लज्जाविनिर्जिता जानन्ति न किमवि महिला।2

8. सुरूचि सम्पन्न संगीत प्रियताः- डा0 लाल ने आधुनिक यर्थाथवादी तथा भौतिकवादी इस युग में कुन्तल ऐसी अभिजात्य वर्ग की नारी का सृजन किया है जिसके मन में कोमल कल्पनाए कूट-कूट कर भरी है सुखद गार्हस्थिक जीवन के इन्द्रध ानुषी स्वन रह रह कर आंखों में तिरवे दिखाई पड़ते है। मध्यम श्रेणी परिवार की युवती कुन्तल ने ऐसी अभिरूतियां बना जी है जो उसके व्यक्तित्व को सामान्य ध

---

१. रातरानी - पृ० ६६
२. वही पृ० ३६

ारातल से ऊपर उठाकर रखती है। बागवानी का शौक वेश भूषा में आभिजात्यपन, सुरूचि सम्पन्नता दिखाई पड़ती है जिसमें संगीत प्रियता ने चार चांद लगा दिये है। उसने अपनी इस भावना की अभिव्यक्ति निरंजन को लिखे एक प्रेम पत्र में करती है कि मैं अपने अन्तःकरण की बात कहूं तो दैहिक प्यास के अतिरिक्त एक अजब प्यास मुझमें और है। उस प्यास की तृप्ति मुझे विशेषकर संस्कृत साहित्य तथा संगीत से होती रही है। संगती तो जैसे मुझे हरदम बांधे ही रहता है। लगता है यह संगीत मेरे अन्तः स्तिल वासी की प्रकार है मैं उसे देख नही पाती इन कानों से सुन नही पाती पर मेरे भीतर एक के बाद दूसरा, राग.....[1]

९. दृढ़ता:– कुन्तल में एक ओर सौकुमार्य य घुई मुई सी एक अजीब तरह की विनम्रता है तो दूसरी ओर उसके व्यक्तित्व में विचित्र तरह की दृढ़ता भी हे अपने पूर्व प्रेमी निरंजन से जब वह मिलती है तो ऐसा लगता है कि अब उन दोनों के मध य प्रेम पत्रों को मांगती है इसी प्रकार हड़ताल रत कर्मचारी जयदेव का जब घेराव करते है तो वह बड़ी दृढ़ता के साथ उनका सामना करती है। और भीड़ में से उसे चोट लग जाती है भीड़ का सामना करने के लिए वह अपने साथ केशर का पुष्प लेकर जाती है।

कुन्तलः– केशर का यह पुष्प मेरा साथ देगा मैं अकेली इस जुलूस में नहीं जा रही हूं मेरे पास एक बहुत ताकत है और पुलिस की लाठियों के बीच एकाएक पत्थर खाकर गिर पड़ती है। किन्तु उसे इस बात का हर्ष है कि चोट तो माथे पर है केशर का फूल उसके आंचल में बंधा है।[2]

तत्पर्य यह कि डा0 लक्ष्मी नारायण ने अपनी बिम्बात्मक भाषा में रात रानी की नायिका कुन्तल की व्यक्तित्व का निरूपण बड़ी बारीकी से किया है, देहज प्रथा के कारण उनका विवाह निरंजन से न होकर जयदेव जैसे पूंजी पति के घर में होता है जहां नारी को लक्ष्मी अर्थात धन य वस्तु रूप में देखा जाता है कुन्तल के श्वसुर

---

१. रातरानी – पृ० ६०
२. वही पृ० १००

उसके आन्तरिक सतगुणों से प्रभावित होकर कुन्तल के पिता से मांगकर पुत्रबधू रूप में मांग कर लाये है कुन्तल का आन्तरिक वाह सौन्दर्य अत्यन्त हृदयावर्णक है वह अपने सद्गुणों से घर की आर्थिक दशा को ही नहीं ठीक करती अपितु अपने अचेतन मस्तिष्क में व्याप्त साहित्य अभिरूचियों की व्यास को भी एक नया आयाम देती है उसमें त्याग दया माधुर्य ममत्व उदारता वत्सलता दृढ़ता तथा संघर्ष मयी परिस्थितियों में सामना करने की नयी शक्ति जागृति होती हुई दिखाई पड़ती है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रातरानी की नायिका कुन्तल का बाह्य सौन्दर्य तो प्रभावित ही करता है किन्तु उसके आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये जिन खण्ड चित्रों का वर्णन नाट्क कार ने किया है उससे कुन्तल आदर्श भावुकता से परिपूर्ण नन्दन वन की इन्द्राणी तथा सफल सुग्रहणी सिद्ध होती है।

देवी माँ-

सुन्दर रस कि प्रधान या प्रमुख स्त्री पात्र है। वे सुशिक्षिता विवेक से मुक्त सुन्दरी थी किन्तु पंडिण्त राज के सुन्दर रस के विज्ञानपन के लोभ में फेस गई और कुछ विक्षिप्त सीर हो गई। अन्त में वे सुन्दर रस के विज्ञानपन का जब लाभ उठाना प्रारम्भ किया तो पंडित राज हतप्रभ हो जाते है। उसके चरित्र गत गुछ विशेषताएं निम्नलिखित है।

1. **सुन्दरी:-** देवी मां मूल रूप से सुन्दरी थीं उनके पिता महा विद्यालय के प्रध ाानाचार्य रहे है। वे हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुकी है। पण्डित राज उन्हें पहले कुरूपा बताते है किन्तु जब से सुन्दर रस का सेवन प्रारम्भ किया वे सुन्दरी हो गई। वे कहती है मैं सुन्दर हूं इस लिए? देखो मैं कितनी सुन्दर हूं मेरे जैसा संसार में कोई भी सुन्दर नहीं अब मैं और सुन्दर लग रही हूं। मैं कितनी सुन्दर हूं।[1]

विवेकाहीन:- पण्डित राज उसे विवेक हीन बताते है सुन्दर रस के सेवन से वे कुछ विवेक हीन दिखाई पड़ रही है।

१. सुन्दर रस - पृ० १९

पण्डित राजः– बताया न, विवेक एवं बुद्ध रहित सुन्दरता अपूर्ण है मेरी पत्नी अर्थात तुम्हारी देवी मां मुझे पूर्णतः विवेक हीन मिली थी।

दोनो शिष्य :– पूर्ण पागल गुरू जी।[1]

3. शिक्षितः– नाट्क कार के अनुसार देवि मां हाई स्कूल उत्तीर्ण है। इस द्रष्टि से उन्हें विक्षिप्त नहीं होना चाहिए किन्तु सुन्दर रस सेवन से वे कुछ अर्ध पागल सी दिखाई देती है। देवि मां बोतल वाला सब्जी वाला को बुलाकर असम्बद्ध प्रलाप करती है।

देवि मांः– धत् तेरे की (हंसती है) ध्यान पूर्वक सुनो, तुम लोग किचित् पागल ! और तुम्हारे आचार्य पूर्ण पागल।[2]

पण्डित राजः– पूर्ण पागल थी मेरी धर्मपत्नी ! मेने अपनी औषधियां एवं उपचारों से इन्हें स्वस्थ किया। वर्षो की तपस्या और संतोष से इन्हें ठीक कर पा रहा हूं। अब तो मस्तिष्क विकार किंचित हो रह गया है। कभी-कभी मस्तिष्क विकारण दौड़ा पड़ जाता है शेष शुभ हो चुका है।[3]

4. विज्ञानपन प्रियः– पण्डित राज के कारण सुन्दर रस का प्रचार होने लगा और उससे अच्छी आय होने लगी। वस्तुतः विज्ञान पन बांजी का यह सत्य है की मनुष्य उसके कथ्य का यथार्थ प्रत्यक्ष गोचर करना चाहता है। जब पण्डित राज स्वय् कहते है कि उनकी पत्नी विवाह के पूर्ण कुरूप थी। और वे सुन्दर दर के सेवन से विवेक वती और सुन्दरी वन गई इस प्रत्यक्ष सत्य को स्वीकार कर और लोग विज्ञानपन बाजी के झांसे में आ गये और सुन्दर रस की विक्री होने लगी। इस आमदनी को पाकर देवि मां घर ड्राइंग रूप, परदे मेज कुर्सी सोफा सेट आदि से ऐसा मकान सजाया कि पण्डित राज स्वयं स्तम्भ रहे गये। देवि मां सज धज कर बडे-बडे अधिकारियों से मिलने जाती बड़े गर्व से अपनी कुरुपता की चर्चा करती तथा इस

---

१. सुन्दर रस – पृ० ११

२. वही पृ० १३

३. वही पृ० २६

सुन्दरता के मूल में सुन्दर रक्षा की चर्चा करती अतः यह स्वभाविक लोगों क आकर्षण का कारण बनती। इससे पण्डित राज कुढ़ते रहते। वे स्वयम विज्ञानपन बाजी के रहस्य को जान कर अपनी पत्नी को समझते कि विज्ञापन बाजी में वे अपनी सुन्दरता का प्रदर्शन न करें। नाट्ककार ने इन स्थितियों का चित्रण अत्यन्त सरस रूप में किया है। सुन्दर रस के विक्रय से प्राप्त धन से मकान का परिवर्तित रूप इस प्रकार चित्रित किया गया है। कमरे का सारा रूप बदल गया है। दीवार पर देखे मां का चित्र लगा है। बैठने के लिए, बिलकुल नये ढंग की हलकी, खूब सूरत तीन कुरसियां, बीच में छोटा गोल टेबुल जिस पर कवर लगा है। लैम्प स्टैण्ड, फ्लावर बेस, जिसमें ताजे फूल लगे है। दूसरी ओर दीवान, जिस पर, कवर पड़ा है। बीच में खुली हुई छोटी सी अलमारी, बीच के खानों में किताबें सजी है। ऊपर बच्चों के कुछ खिलौनी रखे है। बीच में कपड़े की एक गुडिया सजी रखी है। दरवाजों पर मेल खाता हुआ एक सुन्दर परदा झूल रहा है।[1]

पण्डित राजः- जब बाहर से लौट्ते हैं तो अपने मकान के सुन्दरता देखकर उन्हें विज्ञापन बाजी की सफलता का रहस्य ज्ञात हो जाता है और वे अपनी पत्नी के साथ शान्त गृहस्थ जीवन व्यतीत करना चाहते है। किन्तु देवि मां की स्थिति से परेशान हो उठ्ते है।

पण्डित राज- मैं अपनी सुखी शान्त गृहस्थी के पक्ष में है। कितनी तपस्या से मैने तुम्हें पूर्ण स्वस्थ किया है देवि मुझे अस्वस्थ करना चाहती हो क्या?

पण्डित राजः- देवि! तुझे क्या हो गया है? हे ईश्वर। हे गुय महाराज!

देवि मांः- चलिये! अभी बहुत देर नहीं हुई है। लोग आपको देखेगें कि सुन्दर रसके निर्माता आयुर्वेदाचार्य जी कैसे है। कलक्टर साहब आपको देखकर कितने प्रसन्न होगें। कितनी बड़ी बात है। यह। सुन्दर रसकी लोग खूब चर्चा करेगें। इसे लोकप्रियता मिलेगी। आपकी अनुमान नहीं कि उस वर्ग के लोग सुन्दर होने के लिए कितने

---

१. सुन्दर रस - पृ० ३७

लालायित रहते है। कितना खर्च कर सकते है वे लाग।[1]

पण्डित राजः- कहते है कि वे इस सुन्दर रस का विज्ञानपन या व्यापार नहीं करना चाहते है वे अब इसके निर्माता एवं न्यामाक नहीं बनना चाहते है। इस विज्ञापन बांजी के मूल में जो बाधे है। उसे उन्हेंने देख लिया है। देवि मां के इस प्रदर्शन से वे क्षुब्ध ा है। ऐल लगता है कि देवि मां की तरह वे कहीं पागल न हो जाए। भाट्ट चार्य भी अपना अनुभव बताते है कि उन्होंने सुन्दर रस का सेवन किया था। किन्तु उन्हें कोई लाभ नहीं मिला देवि मां भट्टाचार्य से कहती हैं कि उनकी गृहस्थी अभी छोटी है। और खर्च अधिक है। अतः वे पण्डित राज समझ जाए की वे सुन्दर रस का विक्रय व्यापार का न करें।

देवि मांः- इन्हें समझाइए दादा कैसे इन्होंने मुंह से निकाल दिया कि यह सुन्दर रसका व्यापार नहीं करेंगें। मैं इसका निर्माता नहीं हूं। कोई सुन लेता तो क्या होता। नयी गृहस्थी है। अभी कितना खर्च है। नये सिरेसे सब चीजें खरीदनी है। कपड़े, फरनीचर, रेडियो, पंखे, घर-गृहस्थी के सारे सामान आना-जाना, उपहार, भेंद दावत, बगैरह,। सोचिए रूपयें की कितनी आवश्यकता है हमें।

देवि मांः- कितने रूपयों की जरूरत है। हमें। हम जितने ही सुन्दर ढंग से रहेगें सुन्दर रसकी उतनी ही विज्ञप्ति होगी। लोग उतना ही सुन्दर रस पर विश्वास करेगें, और इसकी लोकप्रियता बढ़ती जायेगी। (रूककर) सुन्दरता के लिए अच्दे ढंग से रहना कितना आश्यक है (रूककर) इसके अतिरिक्त जीवन-यापन के लिए हमारे पास साध ान ही क्या है। ईश्वर की कृपा से सुन्दर रसका नाम टोटा चल रहा है। इसके व्यापार का, में अच्छे ढंग से संगठन करना चाहती हूं। इसके लिए एक सुन्दर-सा दफ्तर, एक शो7रूम हर शटर में इसका विज्ञापन ओर एजेन्सी। फिर देखिए कितना उज्जवल भविष्य है इसका। सोचिए दादा। कौन सुन्दर नहीं होना चाहता। सुन्दर रस कितना महान अविष्कार है। इसका प्रथम प्रयोग मुझ पर हुआ है। मुझे देखिए। और मेरा यह चित्र।[2]

---

१. सुन्दर रस - पृ० ६४-६५ २. सुन्दर रस - पृ० ७१

आनन्दाः-

यह मादा कैक्टस के प्रधान स्त्री पात्र है। यह चित्रकत्री है और अरविन्द से प्रेम करती है जो स्वच्छन्द विचार धारा का है। नाटककार ने उसका परिचय इस प्रकार दिया।

1. **वाह्य रूप रेखाः–** आनन्दा अरविन्द की सहय धारमा अवस्था तीस वर्ष व्यक्तिय सुन्दर आभिजात संस्कार। आधुनिक पर स्वभाव से विशुद्ध भारतीय नारी। अकर्षण से अधिक प्रभाव शाली। शालीनीता की आभा से मंडित।[1]

2. **प्रकृति प्रियताः–** आनन्दा को प्रकृति स्वभाव से प्रिय है। फूल वनस्पतियां फूल पेड़–पौधे उसके चित्र के विषय हे। कैक्टस देख कर वह प्रसन्नता से उल्लिखित होकर कहती है। लगता है कि हम लोग के संग में कैक्टस भी हंस रहे है। कितनी प्यारी है यह मादा कैक्टस, रियाली ब्युटीफुल।[2]

3. **चित्रकर्वीः–** आनन्दा चित्रकर्त्री है। अरविन्द उसके चित्रों की एकल प्रदर्शनीय लगने के लिए कहता है।

अरविन्दः– तो अगले इतवार से हमारे आर्ट कालेज की एग्जी वीशन शुरू हो रही है। आपके चित्र माउण्ड होकर आ गये है।

आनन्दाः– इतनी बड़ी एग्जी बीशन में मेरे चित्र।

अरविन्दः– जी आप के चित्र बीचों बीच में होगें बिल्कुल आर्ट गेलरी में। क्या समझती है आप अपने चित्रों को। उन्हं तो मैं जानता हूं।[3]

4. **प्रेयसीः–** आनन्दा अरविन्द से बहुत प्रभावित है। वह एक सीमा में उससे प्रेम करती है। वह यूनिर्वासिटी में लेक्चर है उसे सांसारिक बंधनों को उतीन परवाह नहीं है। आनन्दा के पिता भी चाहते है कि वह अरविन्द से विवाह कर ले किनतु आनन्दा किसी भी प्रकार से राजी नहीं है।

---

१. मादा कैक्टस – पृ० १४
२. वही पृ० ३६
३. वही पृ० ३६

4. रूग्णाः– आनन्दा बाल अवस्था से ही बीमार बनी रहती है। डाक्टर पापा कहते है–अक्सर बुखार, तेज सिर दर्द, कमर और घुटनों में पीड़ा लेकिन सबसे छिपाती है यह। अपना दुख दर्द मां तक को नही बताती। अन्त में सुधीर एक एक्सरा की रील दिखाता है जिसमें आनन्दा के दोनो फेफड़े गल चुके है। अत्यय प यह कि आनन्दा भी विवाह को पुरानी प्रथा सरासर ढकोशला, मानती और अविवाहित होकर भी अरविन्द के साथ एक सच्चे दोस्त और सहयोगी की तरह जीवन यापन करने पर तैयार है। इस प्रकार नाट्क कार्य पत्नी, दाम्पत्य जीवन और परिवार के नैतिक नवीन मूल्य बोध की चरचा इस पात्र के माध्यम से की है।

कविता :-

कविता गौमत की पत्नी है। विवाह के पूर्व वह किसी युवक से प्रेम करती थी और वह प्रेम शायक प्रगाढ़ ओर अनुभव मय भी रहा है, लेकिन जब प्यार की चरम परिणति का बिन्दु आया, तो वह वहां से कायर की तरह भाग निकली। उसके व्यक्तित्व की यह कायरता ही उसे गौतम की पत्नी के रूप में बनाए हुए है। ऐसा लगता है कि कहीं शायद हर आधुनिक स्त्री जिन्दगी की कायरताओं से ही गुजर कर ही सुविधा के लिए और समाज में इज्जत, प्रतिष्ठा हेतु विवाह करती है तथा बंधे बंधाए सीमित क्षणों की दाम्पत्य जिन्दगी इस तरह जीती रहती है, कि कही सत्यता सामने न आ जाए इस प्रकार वह अपनी तथा दूसरों की जिन्दगी पर करफ्यू लगा देती है और उसके भीतर वह आराम की जिन्दगी बसर करती रहती है।[1]

कविता भी करफ्यू के मध्य फंसकर अभिनेता संजय के यहां पहुंचती है। यहां उसके चरित्र के अनके पक्ष प्रत्यक्ष गोचर होते हैं। अपने बाल्य एवं युवावस्था में नाट्क मं बढ़ चढ़ कर भाग लेती थी। वह संजय की अभिनय कला पर मुग्ध है। उसकी प्रशंसिका है। एकाकी रहने वाले संजय पर वह अविश्वास नहीं करती, क्योंकि संजय के अभिनय को देख वह उसे आदरास्पद समझती है। अपने सुरक्षित होने की सूचना

१. करफ्यू – लेखक की डायरी पृ० १२

वह पति को फोन द्वारा करती हैं उसकी दृष्टि में जीवन एक नाटक की तरह है जिसमें पहले से ही हर चीज निश्चित है। इस क्रमबद्धता एवं नियम बद्धता के कारण जीवन में एक नीरसता-सी आ जाती है, संजय और कविता कभी नाटक का रिहर्सल तो कभी वास्तविक रूप में आकर जिस करफ्यू को तोड़ने का प्रयास करते है, उसमें उसके एक ओर सुरक्षित कवच है, तो दूसरी ओर मर्यादा के अतिक्रमण का आनन्द। वह चूड़ी टूटने पर पति के अमंगल को दूर करने के लिए हाथ में धागा बांधती है, तो दूसरी ओर संजय के प्रति आत्म समर्पित भी बनती है। बाद में अपने पति गौतम के सामने आसानी से करफ्यू तोड़ने की बात कहती है। दोनो-पति-पत्नी एक नये परिवेश में अवतरित होते हुए दिखाई देते है। तात्पर्य यह है कि लाल ने पति पत्नी के मध्य चढ़े हुए मुखौटे को उतार कर उन्हें यथार्थ के धरातल पर लाकर दाम्पत्य जीवन की नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। यहां कविता के चरित्र के कुछ पक्षों का उल्लेख किया जा रहा है।

1. **नाट्य प्रेमीः-** कविता को नाटक बहुत अच्छे लगते है। संजय उससे पूंछता है, कि वह थियेटर की शौकीन है। प्रत्युत्तर में कविता कहते है।

कविताः- केवल देखने भर की। स्कूल से कालेज तक करने का भी शौक रहा अक्सर ड्रामों में लेकिन अब केवल देखना भर ही बच रहा है।[1] मंच में संजय के विविध रूप में उसकी अभिनय क्षमता देख वह उसे आदर भाव से देखती है। कविता को प्रतीत होता है कि जिन्दगी भी तो नाटक है। ऐसा क्यों नहीं नाटक होता ठीक जैसे हमारी जिन्दगी है। जहां कोई चीज पहले से निश्चित नहीं है। मतलब हमने तो निश्चित कर रखा है, मगर सहसा अचानक कुछ ऐसा हो जाता है, कि विश्वास नहीं किया जा सकता कविता अपनी नीरस एक समान ढर्रे में चलने वाली जिन्दगी के सम्बन्ध में संजय से कहती है, कि इस समम अक्सर एक न एक पार्टी होती है। अपने को रोज बढ़िया से बढ़िया कपड़ों में लपेट कर वहां ले जाना होता है। रोज

---

१. करफ्यू - पृ० ४७

वही बातें, वही लोग, वही शराब के दोरा। बीच में कभी-कभी थियेटर-आपका अभिनय-सिर्फ रूटीन तोड़ने के लिए। वहां भी देखना, सुनना ही बालना ना के बराकर। फिर क्या बात करूं ?[1]

2. अभिनेत्रीः- संजय और कविता की भेंट करफ्यू के कारण होती है। अचानक भगदड़ मच जाने के कारण कविता संजय की नेम प्लेट देख निःस्वंकोच उसके घर आ जाती है। यहां नाट्क करा ने नाट्क के अन्दर एक संक्षिप्त नाट्क दिखाकर कविता की अभिनय क्षमता पर प्रकाश डाला है। जो बात पृष्ठ-दर पृष्ठ लिख कर नहीं समझाई जा सकती, उसके नाट्ककार ने एक उपकथा पर बने एकांकी/नाट्क द्वारा एमझा देता है। संजय एक नाट्क का रिर्हसल करता है, तभी कविता वहां आ जाती है। बाद दोनों मिलकर उस नाट्क का रिहर्सल करते हैं, जिसमें कविता शब्दों के उतार-चढ़ाव युक्त बोलने तथा देखने के नए तरीकों को दिखाकर संजय को अभिभूत कर देती है। एक उदाहरण द्रष्ट्व्य है।

कविताः- वाह आगे कैसे ? बिना एक्शन के संवाद कैसे ? लड़के के बोलने के ढंग में फर्क आना चाहिए।

संजयः- आप तो सचमुच............

कविताः- चलिए मैं करती हूं..................यह लड़की नाम ठीक नहीं रहेगा, इसे युवती कहिए। आप देख क्या रहे है ?

संजयः- अब ?

कविताः- गुस्से से देख रहे है........इस तरह देखिए......[2]

कविता द्वारा अभिनीत प्रेम दृश्य के रिहर्सल को देखकर संजय कविता से मुख्य नाट्क में इस चरित्र को अभिनीत करने का आग्रह करता है। वह कहता है जो अभिनेत्री मेरे संग युवती की भूमिका कर रही है, आज करीब एक महीना हो गया रिहर्सल करते उसमें यह बात अब तक पैदा नहीं हुई जो आप में एकयक मुझे लगता है अपनी जिन्दगी में पहली बार.......[3]

---

१. करफ्यू - पृ० ५१, २. वही पृ० ५५ ३. वही पृ० ५६

3. **वासनाभिभूतः**– अभिनीत होने वाले नाटक की नायिका का रिहर्सल करते–करते कविता वासनाभिभूत हो उठती है। वह संजय पर गिलास का पानी डाल देती है। उसकी कमीज के बटन खोल कर उसकी छाती में अपना मुंह गड़ा देती है। आगे बढ़ कर टेबुल लैम्प बुझा देती है

संजयः– कविता

कविताः– क.............वि..........ता

संजयः– मैं तुम्हें।

कविताः– मुझे ? सच ?

संजयः– तुम चाहो तो।

कविताः– चाहती हूं (संजय उसके अंक में भर लेता है)

पति प्रेम का अन्तर्द्वन्द्वः– यह सच है, कि आज की युवती पुरूष समाज में अपनी पहचान बनाना चाहती है। इसके लिए वह किसी भी स्तर परउतर सकती है। कविता विवाहिता स्त्री है। भारतीय नारी का अर्न्द्वन्द्व यही कि एक ओर सतीत्व के संस्कार की रक्षा भी करना चाहती है, क्योंकि ये संस्कार उसके अचेतन मन में गहने रूप से धंसे हैं, तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन मूल्यों के अनुरूप अपनी अस्मिता/स्वत्व/पहचान बनाने के लिए प्राचीन करफ्यू को तोड़ना भी चाहती है। कविता का यही द्वन्द्व करफ्यू में दिखाया गया है। संजय उसे चूड़ी पहनाना चाहता है, तभी उसकी चूड़ी टूट जाती है। कविता के अचेतन संस्कार जागरित हो उठते हैं,

कविताः– अपने हाथ से पहना ही दो। ऐसे नहीं.........धीरे..........धीरे....चूडी टूट जाएगी।

संजयः– टूट जाने दो.....बहुत सारी है।

कविताः– चूड़ी टूटने का मतलब जानते हो ? बड़ा अशुभ माना जाता है। (चूड़ी टूट जाती है) क्या कर दिय.....लाल धागा होगा ?..........चूड़ी टूटने से लाल धागा झट बांध लेना

चाहिए।[1]

इसी प्रकार संजय के अंक में बेसुध पड़ी कविता का अचेतन पुनः जागरित हो जाता है। भारतीय आधुनिक की यही सबसे बड़ी बिडम्बना है। वह एक क्षण पूर्व आत्म समर्पण करने को लालयित थी किन्तु फिर वह अस्वीकार कर कायर बुजदिल बन जाती है।

कविताः- (सहसा) नहीं .... नहीं नहीं, मैं नहीं कर सकती।

संजयः- चाहती नहीं ?

कविताः- चाहती हूं पर.............

संजयः- झूंठी।

कविताः- नहीं।

संजयः- बुजदिल।

कविताः- नहीं।

संजयः- कायर[2]

इसके बाद कविता के अन्तर्द्वन्द्व का भी चित्रण नाटककार ने किया है क्योंकि नाटक जीवन का प्रतिबिम्ब नहीं तो फिर व्यर्थ है। कविता सोचती है कि मैने ऐसा क्यों किया ? क्यों बेकार ही उसे अपमानित किया ? कसूर मेरा था बन्धन मैं तोड़ना चाहती थी और जब उसने सहायता की, काम को सहज बनाने में मैं डर गयी, कांप गई। मेरी गलती की सजा उसे क्यों मिले ? मुझे अपने जीवन के बोध का दोष उठाना है, वह भागी क्यों बनें ?[3] वह पुनः संजय को जगाती है। बात चीत के मध्य संयज उससे पूंछता है।

संजयः- एक पल लगा, जैसे आप अपना सब कुछ देने को तत्पर हैं और दूसरे पल आप फिर अपने अन्दर सिकुड़ गई, यह अजीब नहीं।

---

१. करफ्यू - पृ० ७५
२. वही पृ० ८०
३. वही पृ० ६०

कविताः– वह नाटकीय मोड़ नहीं था। जीवन में ऐसे मोड़ नाटक से कहीं अधिक आते हैं। नाटक में आप उन्हें आसानी से मान लेते है तो जीवन में क्यों नहीं मान लेते ?[1]

कविता स्त्री कामना का उद्देश्य निरूपित करती हुई पुनः संजय को प्रेरित करती है। आधुनिक नारी प्राचीन मूल्यों को बदलना तो चाहती हैं, किन्तु उसे अपने चारों ओर एक आवरण एक खोल बना। चढ़ा लिया है, जब पुराने संस्कार जोर मारते हैं, तो अकारण खोल के अन्दर अपने को बंद कर लेती है, जबकि उसकी चाह है।

कविताः– हां, एक पुरूष। उसके सब अर्थो में। पुरूष जिसके बिना नारी का कोई अस्तित्व नहीं..........पुरूष जिसकी चाह हर स्त्री अपनी आत्मा में पालती है पुरूष जिसकी गोद ही स्त्री की मुक्ति है।

संजयः– आप एक बार फिर से वही शुरू कर रही है।

कविताः– हां, एक और नाटकीय मोड़। सोचा-समझा हुआ, निर्धारित किया हुआ, शायद निश्चित किया हुआ लेकिन जैसा नाटक में होता है, वैसा नहीं।

संजयः– इतनी निडर हैं आप।

कविताः– वही तो..........वही तो होना चाहती हूं।[2]

और कविता धीरे-धीरे निसंकोच होकर संजय की बन जाती है।

नये दाम्पत्य मूल्यों की पक्ष धरताः– करफ्यू समाप्त होते ही कविता अपने पति गौतम के घर लौटती है। वहां की असत व्यस्तता, हेयर पिन, शराब की गिलासें, जली हुई मोमबत्ती से स्थिति का आकलन कर तथा अपने आचरण का स्मरण वह अपने विचार बदलने पर मजबूर होती है वह सोचती है, कि चुनाव का अधिकार सबको है........ ..पर सही क्या हैं तुम्हारे और मेरे बीच जो था वह गलती मेरी थी, सोचती थी ऐसे ही चलता हैं.....तुम और तुम..मैं और मैं.........लेकिन अब नहीं तुम और मैं, मैं और तुम तुम और वह, वह...और मैं। परसब एक दूसरे से बंधे हें।[3]

---

१. करफ्यू - पृ० ६३
२. वही ६५
३. वही पृ० ६६

गौतम चाहता है, कि कमरे की अस्त-व्यस्तता तथा करफ्यू के दौरान घर में क्या कुछ हुआ, कविता इसकी जानकारी उससे करें जबकि कविता ऐसा कुछ न कर गौतम के द्वारा संकेतों, प्रतीकों द्वारा वर्णित घटनाओं को सुन कुछ उत्सुकता नहीं दिखाती। कविता न तो हेयर पिन के विषय नहीं पूंछती तो गौतम भी कविता के जूड़े में लगा पुष्प-स्तवक के सम्बन्ध में जानने को उत्सुक नहीं दिखता है। कविता संजय की प्रशंसा करती है, तो गौतम कविता को उस स्त्री के पैर की धूल से तुलना करते है।[1] पुनः दोनों अपने-अपने अनुभवों को स्वीकार करते हैं। तभी मनीषा आ जाती है। गौतम कविता दाम्पत्य जीवन के रहस्य को समझ लेते है, कि झूंठी कहानियों से दाम्पत्य जीवन में मधुरता परस्पर विश्वास नहीं आता है। जब मैं हम हो जाएंगे, तभी-टूटेगा यह करफ्यू नहीं तो बार-बार टूट कर और मजबूत घना होता चला जाएगा।[2] घर लौटकर उसे तेज बुखार चढ़ आया। बेहोशी में वह मेरा नाम पुकारता बाद में उसे सेनीटोरियम ले जाया गया। .....[3]

प्रेम के अनेक अनुभवः- मनीषा स्वच्छन्द युवती है। उसके जीवन मं अनेक युवक आए। देखने में सुन्दर, मुखर, स्पष्ट वादी, निःसंकोच बात कहने वाली है। वह शराब पाती हुई स्वीकार करती है। कालेज में एक टेनिस प्लेयर था। उसके साथ मुझे ऐसा लगता जैसे मेरी ममी जो मुझे जन्म देकर ही............वह मुझे मिल गई। सच उसी से मैने मां की कल्पना की थी। अधिकार.........विश्वास.....सुरक्षा। वह बहुत सावधानी से कर चलाता। उसी ने मुझे कार ड्राइविंग सिखाई। मैं कार चलाती। वह मेरे अंक में सिर रख कर..........उसी ने कहा था- शक्ति आत्मा की सुन्दरता भावों की। साहस चरित्र कर धैर्य सहने का।[4] नाटक कार ने बड़ी कुशलता से मनीषा की आन्तरिक दशा का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है, मनोविज्ञान में कुछ ऐसे व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है, जो अपने से बड़ो की छत्रच्छाया में सुखशान्ति सुरक्षा

---

१. करफ्यू - पृ० १०५-१०६
२. वही पृ० १२०
३. वही पृ० ३४
४. वही पृ० ३४

का अनुभवन करते है। प्रेमिका प्रेमी में संरक्षक की परिकल्पना कर सन्तोश, विश्वास का अनुभव करती है, जबकि उसका प्रेम अंकुरित होकर बढ़ रहा होता है। फ्रायड ने प्रति पादित किया है, कि पुत्री पिता की ओर इसीलिए आकृष्ट रहती है। कौसोर प्रेम को प्रौढ़ता एक नये युवक से मिली। वह गौतम से कहती है फिर........एक रिसर्च स्कालर आया। उसने बिलकुल नई दिशा दी मेरे विचारों को, एक सम्पूर्ण जीवन दृष्टि। मुझे लगने लगा जैसे आज तक जिस तरह का जीवन हमने जिया है वह अर्थहीन था। हम खोखले सिद्धान्तों और गले-सडे आदर्शो की बैसाखियों के सहारे चलते-चलते पंगु हो चुके है। हमारा समाज राजनीति, दर्शन सब कुछ आत्म सुरक्षा की दीमक द्वारा खाया जा रहा है। हम गुलाम हो चुके है और इस सबसे छुट्कारा पाने के लिए परिवर्तन आवश्यक है। .... कितने लोग एक के बाद एक-एक जीवन में आए, याद नहीं कोशिश भी नहीं की याद रखने की। एक अपरिचित। एक जाना पहचाना चेहरा, जब उकता देता है, तो अनजाना चेहरा पहचाना लगने लगता है। नाऊ आई लाइक ओनली स्ट्रेंजर्स। एण्ड यू आर ए स्ट्रेंजर एक।[1] मनीषा की जिन्दगी एक नीरसता, बासीपन, ऊबाऊपर छा गया है, जिसे वह येन केन प्रकारेण तोड़ना चाहती है। कभी गौतम से पूंछती है कि पहली बार उसने देखा तो कैसा अनुभव किया। क्या वह गौतम के साथ कुछ दिन रह सकती है। कभी उसके गाने का अनुरोध करती है। कभी शादी की साल गिरह मनाने हेतु लाई गयी मोम बत्तियों को जलाने का प्रयास करती है। कभी उसके साथ नृत्य करती है। निरूद्देश्य जीवन में जो अजनबी पन आ जाता है, ऐसे व्यक्तित्व के सामने अपने को व्यस्त रखने की बड़ी समस्या आ खड़ी होती है। मुसीबत यह होती है, ऐसी युवतियां अविश्वसनीय, संदेहास्पद चरित्र वाली मानी जाती है, जबकि उनके साथ अस्मिता/पहचान बनाये रखने की समस्या सबसे बड़ी होती है। अचानक गौतम उस पर झपट पड़ता है। वह मनीषा की आंखे मंद लेता है। मनीषा स्वीकार करती है, कि इस अंधेरे में देख रही हूं, वही कमल.

---

१. करफ्यू - पृ० ३५

........वही टेनिस का खिलाड़ी.........वही रिसर्च स्कालर और न जाने कितने चेहरे।[1]

सुरक्षा/अजनबी पन की भावनाः- मनीषा के मन में या यों कहें कि आज की आध ुनिक युवती में आत्म प्रदर्शन के फलस्वरूप नव युवकों की छेड़-छाड़ बढ़ जाने के कारण असुरक्षा की भावन बढ़ गई है। युवकों के साथ उन्मुक्त व्यवहार उन्हें हवस की पूर्ति के लिए सबसे सरल साधन हो गया है। पढी लिखी खुद ऊंच-नीच समझने वाली मनीषा के साथ गौतम जब बलात्कार करने का प्रयास करता है, तो वह भाग खड़ी होती है और करफ्यू के दौरान के साथ जो व्यवहार होता है, उससे उसकी अजनबी पन का भाव और बढ़ा ही है। वह पुनः लौटकर गौतम के समक्ष उस अमानवीय क्रूरता व्यवहार वर्णन करती है- यहां से निकल कर कुछ दूर ही पहुंची थी कि शराब में धुत कुछ लोग आते दिखाई पड़े। मैं एक दुकान के तख्ते के नीचे छुप गई।....... मैं पुलिस के हाथ पड़ गई। मुझे देख कर इन्स्पेक्टर ने भारी भरकम गाली दी और जीप में बिठा लिया। अस्पताल होकर पुलिस चौकी पहुंचते-पहुंचते उन्होंने मेरे सारे शरीर को बुरी तरह भय दिया था। सारे रास्ते कई हाथ एक साथ मेरे जिस्म पर खेलते रहे और मैं समाज की रक्षा वाले इन जानवरों की लीला देखती रही। पुलिस चौकी पहुंचने पर पूंछ-तांछ करने के लिए मुझे एक कमरे में ले जाया गया। मुझसे कहा गया मैं नक्सा लाइट हूं। मेरे मना करने पर डंडों की बौछार शुय हुई क्योंकि बिना पिटे कौन मानता है कि वह नक्सा लाइट है। उन्हें मेरे जिस्म पर यह कपड़े अच्छे नहीं लग रहे थे इसलिए उन्हें उतार दिया गया। इसके बाद जो हुआ वह कहना मुश्किल है। मैंने अपने सारे जीवन में जितने लोगों के साथ शरीर सम्बन्ध ा रखा उससे ज्यादा एक घण्टे.........[2]

यर्थाथ की स्वीकृतिः- करफ्यू के दौरान मनीषा के साथ जो अमानुविक व्यवहार हुआ, वह कल्पनीय लोभ हर्षक घटना था। उसे लगा कि गौतम के कमरे का विस्तृत रूप बाहर है अतः इस वास्तविक को स्वीकार कर वह पुनः गौतम के पास लौट आती

---

१. करफ्यू - पृ० ४०
२. वही पृ० ८५-८६

है, जेसे कोई मेरा पीछा कर रहा है। क्या है वह? कौन है? जहां से भाग निकली थी, कुछ समय पहले फिर वहीं स्वयं आ गई? जिस चीज ने यह कमरा छोड़ने पर मजबूर किया वही फिर यहां ले आई। सोचा था यहां से भाग कर निकल जाऊंगी लेकिन............बाहर भी जैसे इसी कमरे का विस्तार है। पूरा शहर जैसे यही कमरा है। झूंठ, कायरता वासना विस्तार में जाकर अपराध, हिंसा, बलात्कार बन गए है। सड़कों पर, गलियों में पागलों की तरह दौड़ रहे थे, लपलपाती जीभें, अंगार आंखें बुझा विवेक ग ग ....[1] अब वह गौतम के पास लौट आती है क्योंकि वह समझती है।

गौतमः- कहां रहती है? टाई गले में बांधता है।

मनीषः- टाई के नॉट ऐसे रखिए.....ढीली... कमीज का यह बटन खोल लीजिए न (कालर का बटन खोल देती है) आप भी लीजिए।

गौतमः- इस समय कुछ नहीं खाता।

मनीषः-' आज खा कर देखिए (मनीषा जबरन गौतम के मुंह में टोस्ट लगा देती है)

गौतमः- आप लुंगी क्यों पहनती है?

मनीषाः- साड़ी क्यों पहनी जाती है ..... मेरी टांग कैसी है? कहिए न, कहिए लाजबाव संग मरमर की प्रतिमा........खजुराहों की नर्तकी। .... क्या देख रहे हैं? क्या सोच रहे हैं? यह लौडिया कितनी चालू है, साली को .... आपको मुझे

मनीषाः- में सोलह साल की सीनियर कंव्रिज में उस लड़के का नाम कमल था। वह न खेलता न बात करता, बस एकटक मुझे निहारता रहता। एक दिन जब हम पिकनिक पर गए हुए थे, तो अकेला पाकर उसने मुझे 'किस' कर लिया। मुझे बुरा नहीं लगा फिर भी मैने उसे डॉट दिया। प्रिन्सिपल से रिपोर्ट करने की धमकी दी। वह डर गया, गिड़गिड़ाने लगा, लेकिन मैं थी, कि यह सब मुझे अच्छा लग रहा था।

---

१. करफ्यू - पृ० ८२

मनीषाः-

मनीषा करफ्यू नाटक की प्रमुख पात्र है जिसने वैयक्तिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवं लक्षण परक करफ्यू को तोड़ा है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है कि मनीषा का चरित्र इस नाटक की वह रक्त रेखा है जिसने मुझे बहुत ही आतंकित किया है। इसने इस नाटक के बारे में जितने मानवीय-अमानवीय अनुभव किये हैं और यह जिस जीवन अनुभव की प्रक्रिया से गुजरी है, वह मेरे लिए बड़ा ही सार्थक बिन्दु रहा है। जैसे मनीषा ने ही मुझे अनुभव दिया कि हमारा सारा शहर, हमारे करफ्यू लगे हुए घरों का जड़ विस्तार है।[1] उसके जीवन के अनेक पख, तथा उससे सम्बन्धित चिन्तन एवं आचरण का उद्घाटन लेखक बड़ी सफलता के साथ किया है।

1. **उन्मुक्त जीवनः-** मनीषा उन्मुक्त जीवन व्यतीत करने वाली युवती है। करफ्यू में फंस कर वह गौतम के यहां शरण लेने पर विवश होती है। इस संक्षिप्त काल की भेंट में वह गौतम के साथ हंसी, मजाक, उन्मुक्त व्यवहार करती है ऐसा लगता है, कि मनीषा अपने जीवन में लगे करफ्यू को तोड़ रही हो। वह गौतम के मुंह में टोस्ट का टुकड़ा डालती है उसके कुर्ते के बटन खोलती है, अपनी मोहक अदाओं से वह सामाजिक करफ्यू को तोड़ने का प्रयास करती है।

गौतमः- नशरीफ रखिए।

मनीषाः- क्या ?

गौतमः- बैठिए।

मनीषाः- बैंठ जाऊं या...(हंसती है) टाई उतार दीजिए न। बढ़कर मजे से टाई खींच लेती है)

आप अन्दर क्या कर रहे थे? आराम? अकेले या बीबी के साथ? कि मैं मांगूगी नहीं। मांगना आसान नहीं। भाग कर कोई जाएगा कहां सब जगह यही कुछ

---

१. करफ्यू - भूमिका पृ० १४

है।

समर्पण शीलाः– इतने घम घोंटू अनुभवों के बाद मनीषा ने अनुभव किया कि नारी शरी के भूगोल का वास्तविक उपयोग क्या है, तो फिर गौतम ही क्या बुरा है। वह सर्वतो भावेन समर्पण करने हेतु गौतम के पास आती है गौतम 'सारी' कहर कर अपने पूर्व व्यवहार के लिए क्षमा मांगता है। उसने मनीषा के विश्वास को ठेस पहुंचाई। मनीषा कहती है।

मनीषाः– मेरे विश्वास को ठेस नहीं पहुंचाई, वह और पक्का हुआ। मुझे लगता है, परिवर्तन अब अनिवार्य है, यदि हम जीना चाहते हैं जीवन को अर्थ पूर्ण बनाना चाहते हैं। तुमनें ऐसा पहले कभी नहीं किया था, आज किया था, यानि जिस तरह का जीवन तुम जी रहे थे हो, उससे तुम भागना चाहते हो। लेकिन जल्दी में गलत रास्ते पर भाग पड़े। ऐसे अकेले तुम ही नहीं हो। हम सब गलत रास्तों पर भागने वालों में हैं क्योंकि सही रास्ता हमें नहीं मालूम। हम समझते रहे कुछ भी नया, कुछ भी अनोखा, कुछ भी अजीब करके हम जीवन को बदल सकते है। समाज को दबल सकते हैं लेकिन यह बदलना तो केवल सतही है, कुछ देर के लिए है.........यहां आओं................मेरे पास और पास (उसकी गोद में सर रख देती है) तुम्हारा वह रूप एक रिएलटी समझ कर मुझे एक्सेप्ट कर लेना चाहिए था। रिएलटी से भागना मुश्किल है।[1]

मनीषा को प्रतीत होता है कि गौतम अपने उसी पुरानी किले में बन्द हो रहा है, जिससे बाहर निकलने के लिए वह शराब का सहारा लेता था। अतः उसे उस वास्तविकता से बाहर निकालने के लिए वह कहती है अच्छा यह टाई निकाल दो। लाओ मैं तुम्हारी यह कमीज निकाल दूं। इसी तरह तुम भी मेरा कुरता निकालो.. ......निकालो नहीं निकलता तो फाड़ दो......[2] और मोम बत्तियां जलाकर विवाह जैसी रस्म अदा कर आलिगंज बद्ध हो जाते है। कहना नहीं होगा कि मनीषा अत्याधुनिक

---

१. करफ्यू - पृ० ८४
२. वही पृ० ८८

नारी का प्रतीक है, जो पुराने नियमों को जीर्ण-शीर्ण, सड़ा गला समझ कर परिवर्तन के नाम पर कुछ भी नया करने को तत्पर है। किन्तु कटु यथार्थ का अनुभव होते ही वह उसे पुराने रूप की पक्षधर बनती है।

विमलः-

यह मिस्टर अभिमन्यु की मुख्य स्त्री पात्र है। यह कलेक्टर राजन की पत्नी है। उसके चरित्र की उपेक्षा इस नाट्क में हुई है। उसकी आवश्यकता इस बात में है, कि वह राजन को त्यागपत्र देने के संकल्प से विरत करें। इस हेतु दाम्पत्य प्रेम को एक मनोवैज्ञानिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया है। उसका जीवन सरल आकर्षक है। छोटा सा परिवार है। सुख-सुविधा युक्त गंगला, कर्मचारी, समाज में मान और प्रतिष्ठा उसकी एक मात्र आकांक्षाएं है। वह इन्ही सुख सुविधाओं को ही जीवन मान बैठ्ती है। पति की प्रोन्नति पर गर्वान्वित होकर अपनी सहेयिों के प्रीति भोज पद आमंत्रित करती है। त्याग पत्र की बात सुनकर वह अपने स्टेट्स एवं बच्चे के भविष्य के प्रति आतंकित होकर श्वसुर एवं राजनेता गयादत्त के षड़यन्त्र में शामिल हो जाती है। तात्पर्य यह कि श्रीमती विमल का उपयोग परिस्थिति की आवश्कयकता पर न होकर क्षणिक घट्ना की आवश्यकतावश हुआ है। उसके चरित्र के एक ही पक्ष को उजागर किया गया है।

1. **चतुर पत्नीः-** श्रीमती विमल कुशल पत्नी, गृहस्थी को सुचारू रूप से चलाने वाली महिला है। राजन की प्रोन्नति सुनकर उन्हंने कितनी तत्परता से भविष्य की योजनायें क्रियान्वित की यह द्रष्टव्य है।

राजनः- अब बोलो हमरे यहां से जाने की क्या तैयारी की?

विमलः- मै तैयारी की है। ग ग कान्वेष्ट होट्ल में दोनों बच्चों को सारी फीस भेज दी है। प्रापर्टी डीलर के हाथ कुछ पुरानी चीजें साढ़े चार हजार में बेंच दी है। वहां पहुंच कर इस पूरी रकम में थोड़ा सा ही और मिला कर नयी मॉडल...............

राजनः- वहां पहुंचकर? कहां?

विमलः- अपनी कमिश्नरी में .... इंश्योरेन्स एजेन्ट को बुलाकर कह दिया है हम एक पांलिसी और लेगें। बैंक के सारे एकाउण्ट्स के कागजात मंगा लिये है और बैंक को लिखभी दिया है।

राजनः- फ्रिज, काज, इंश्योरेन्स, स्टेटस आखिर किस लिये क्यों ?

विमलः- फिर इस नौकरी में क्यों आये ?[1]

2. तर्कशीलः- श्रीमती विमल अपनी बात तर्क पूर्ण ढंग से रखना जानती हैं। उन्हें ठकी से पता है, कि कब और कैसी बात किस समय कहना चाहिए। राजन के त्यागपत्र के संकल्प को सुन कर वे कहती है

विमलः- जो जहां है, वहां से निकलने का ढोंग इसलिए करता है, कि वह अपने को स्वयं से बड़ साबित करना चाहता है। .... जैसी सरकार होगी हमें उसी तरह रहना होगा। हमें भी अपना फर्ज पूरा करना चाहिए। ..... रिजाइन करने के लिए कोई ठोस बहाना चाहिए। आप एकएक क्यों इस तरह रिजाइन करना चाहते हैं, लोग क्या कहेगें। ग ग अपने बच्चों से कैसे कहोगें ?[2]

3. प्रेमिकाः- श्रीमती विमल ने राजन से प्रेम विवाह किया है। प्रेम विवाह की समस्यायें कुछ विचित्र होती है। एक ओर समाज से टकराव, दूसरी ओरपत्नी के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते हुए, व्यवहारों आये हुए बदलाव, तनाव को जन्म देते है साथ नए समाज में स्वतः को स्थापित करने का संकल्प ऐसे ही तनाव गुजर रही है श्रीमती विमल वह कहती है-

विमलः- हमने प्रेम विवाह किया है। तुम मुझे अभाव में नहीं रख सकते। तुम्हारे सारे दोस्त-रिश्तेदार ऐसे है जिनके बच्चे कॉन्वेन्ट में पढ़ते है, जिनकी बडी-बडी शादियां हुई[3]

विमल मनोवैज्ञानिक ढंग/शैली का उपयोग कर पति राजन को उन दिनों की याद कराती है, ज वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ ही हुआ, इन्द्र धनुषी कल्पनाओं का

---

१. मिस्टर अभिमन्यु - पृ० २०-२१

२. वही पृ० २२-२३

३. वही पृ० २३

अन्त नहीं था। बात यह है कि प्रथम प्रेम कभी भूलता नहीं। पतनी उन सुखद क्षणों की याद करा कर पति को भावुक बना देती है, और फिर पति ने मनचाहा कार्य करा लेती है और प्रति प्रेम विह्वल हो जाने के कारण वह अनचाहा कार्य भी प्रसन्नता से कर लेता है।

विमलः– तब इन हाथों को तुम इतनी आसानी से नहीं छोड़ते थे। इस छूते ही हम दोनों के हाथ जैसे कांपने लगते थे। तुम मुझे खींच कर अपने अंक में–[1]

4. धन–लोलुपः– श्रीमती विमल वैभव की आकांखा रखती है और उसका प्रदर्शन भी करना चाहती है। राजन अपनी नौकरी के प्रारम्भिक दिनों की याद करता है, जहां का इनवायर मेण्ट उसे अच्छा लगता किन्तु श्रीमती विमल को स्थान छोटे रेतीले और वैभव प्रदर्शन के लिए उपयुक्त नहीं थे।

विमलः– कितना बेकार का बंगला था। हमारी शादी में जितने सारे सामान मिले थे, उनके रखने तक की भी जगह न थी। सारे कीमती सामान उतने दिन तक पापा के घर पड़े थे।..... गांगा की सारी धूल कमरे में आती थी। यह डी0एम0 का बंगला है। हर काम के लिए अलग–अलग जगहें होती है उसके लिए वैसा माहौल होता है।[2]

विमलः– मेरी कार आपको पसन्द है?

मि0 राठौरः– पसन्द तो है, लेकिन फिर सोचा लेटेस्ट मॉडल ही क्यों न लें!

विमलः– मैंने भी फिर सोचा वहां पहुंच कर दो कारें क्यों न रखी जायें। मोर ओवर दैट इज अवर लकी कार............

आपके रेंज नहीं है? ...... हमारे पास इतने कीमती सामान इकट्ठे हो गए है, इन्हें पैक करना भी एक मुसीबत है।[3]

सारांश श्रीमती विमल अभिजात्य वर्गीय महिला है। प्रेम विवाह पति की प्रोन्नति के साथ ही अपनी अहम्यन्यता का प्रदर्शन वाली वहिर्मुखी व्यक्तित्व सम्पन्न है।

---

१. मि० अभिमन्यु – पृ० ४०
२. वही पृ० ३८
३. वही पृ० ५१

पूर्वीः-

यह दर्पण नाटक की नायिका है। उसके दो रूपों का उल्लेख नाटक में हुआ है। एक रूप वह है, जो ममता, दया स्नेह लुटाती एवं सभी की सहानुभूति प्राप्त करती है। वह हरिपदम और सुजान को आपी सेवा सुश्रूष से ठीक करती है। कुष्ठ रोगी की सेवा करते देख हरिपदम पिता की स्वीकृति के बिना उससे ब्याह करता है। वह आदर्श प्रेयसी पलायन वादी किन्तु भावुक युवती है। उसे वधू रूप रूप में सजने का बहुत शौक है, क्योंकि उसने अपने सच का कभी सामना नहीं किया दर्पण में अपने को देख कर उसे ओझल हो जाने का भय है। उसका एक रूप बौद्ध-भिक्षुणी का है। जन्म नक्षत्र तथा शरीर में अशुभ चिह्न्नों के कारण उसे तीन वर्ष की अवस्था में ही भिक्षुणी बना दिया जाता है और उसका नाम दर्पन रखा जाता है। उसके सचित्र लेख अखबारों में पढ़कर जिसे हरिपदम और उसके पिता देखते है और दण्डी संन्यासी उसे पूर्वी से दर्पण सिद्ध कर अपने साथ चलने पर विवश करता है। नाटककार ने व्यक्तिगत स्वतंत्य एवं धर्म के नाम पर अनेक कुसंस्कारों को निर्मम होकर उद्घाटित किया है। यदि पूर्वी के रूप में वह आदर्श भारतीय नारी बनने का प्रयास है, तो दूसरी ओर दर्पण रूप में स्वतंत्रचेत, बौद्ध भिक्षुणी, कुशल डाक्टर और त्याग का भोग करने वाली युवती है। मूल रूप में इसका नाम दर्पन है। पूर्वी इस छद्म रूप है। दर्पन का परिचय देती हुई यह कहती है कि जब वह तीन साल की थी, तभी हमारे परिवार के गुरू ने उसकी जन्म पत्री बनाई थी। उसकी जन्म पत्री अद्भुत थी, मूल नक्षत्र में जन्म, आठवें मंगल, तीसरे में राह, चौके में केतु और सातवें में शनि। शिर पर उसके तीन लटें थी.......त्रिशूल लट। दाई बांह पर चन्द्रमा और कमल का चिह्न। गुरू महराज ने बताया....लड़की घर परिवार में रखने योग्य नहीं है। इसे बौद्ध मठ में दे दिया जाना चाहिए, नहीं तो इससे पूरे परिवार का अमंगल होगा और इस तरह से वह दर्पन पांच वर्ष की आवस्था में ही बौद्ध मठ में दान कर दी गइ।[1] यह पूर्वी दर्पन के अस्तित्व को पूर्ण रूपेण सिद्ध करने के लिए उस समय का सजीव वण्रन करती

---

१. दर्पन - पृ० ४६-५०

है। वह पांच वर्ष की बालिका सिर मुड़ाये नीचे से ऊपर तक गेरूआ वस्त्र पहने लाया भिक्षु-भिक्षुणियों के साथ हमारे दरवाजे पर तब भिक्षा मांगने आई थी। एक वृद्ध भिक्षु अपने हाथ में सोने का चक्र घुमाता हुआ मेरी दर्पन बहिन के संग चल रहा था वहीं मंत्र पढ़ता हुआ 'ऊँ मानी पेमे ओम'। उस समय मेरे घर पर भीड़ लगी थी। मेरे पिता मैं दोनों भाई और बीच में रोती हुई मां। दर्पन ने मां के सामने दान पात्र बढ़ा कर उससे भीख मांगी। मां ने उसके दान पात्र में सात मुट्ठी चावल डाला और वहीं बेहोश हो गई।[1] बौद्ध मठ में रहकर उसने साधना की डाक्टर होने की परीक्षा उत्तीर्ण और अपनी निष्काम सेवा से उसने विशिष्ट कीर्ति अर्जिज कर ली। किसी बाद विवाद को समाप्त करने के लिए उसके बौद्ध को छोड़ कर देश-भ्रमण को निकल पड़ी। सारनाथ आते समय उसकी भेंट कालरा रोग से ग्रस्त हरि पदम से हुई और उसको लेकर उसके घर आ गई। उसने अपना नाम पूर्वी रख लिया। उसके व्यक्तित्व निरूपण के अनेक पक्ष इस नाटक में विन्यस्त हैं।

1. **रूपरेखाः-** नाटक करने उसकी रूपरेखा इस प्रकार दी है। अवस्था पचीस वर्ष। गौर वर्ण। मुख श्री पर शिशुवन भाव। मंत्र मुग्ध करने वाली सरल पर अगाध आंखे, पर जैसे अपने से विल्कुल बेखबर। सफेद साड़ी और ब्लाउज हपने है। देखने से लगता है, वच थकी हुई है। भीतर से आकर वह सूने बरामदे में घूमती है। एक आध ा बार सहसा रूककर अनायास खड़ी रह जाती है फिर जैसे बेहद थक कर वहीं कुर्सी पर बैठ जाती है। उस दिन का अखबार उठाती है। अखबार के पृष्ठ में सहसा कुछ बड़े ध्यान से पढ़ती है और उसे होठों पर एक निःशब्द है सी बिछ जाती है।[2]नाटक ने पूर्वी का परिचय प्रथम बार विस्तृत रूप में दिया है। उसके कायिक, मानसिक, सात्विक आहार्य रूप का परिचय दिया है, जैसा कि प्रथम अध्याय में व्यक्तित्व निरूपण शैली का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसकी सैद्धान्तिक व्यख्या की गई है।

---

१. दर्पन - पृ० ५०
२. वही पृ० १३

विकास प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्यक्ष कथन से पाठ्कों/दर्शकों के मन में पात्र के आगामी चरित्र सम्बन्धी क्रिया कलापों की व्यंजना हो जाती है। चेहरे पर मौग्ध्य का भा, अखबार में कुछ पढ़कर निःशब्द हंसी दर्शकों के मन में औत्सुक्य जाग्रत करता है। सौन्दर्य में सौकुमार्य और लावण्य किसे आकृष्ट नहीं करता।

2. असात कुल शीलाः- कथा नायक हरिपदम संघर्ष के समय उसे अपने पास खड़े पाया था अतः वह उससे प्रेम करता है और विश्व विद्यालय में अपने मित्रों, सहयोगियों के मध्य इंगेजमेण्ट की सूचना देता है। जब यह सूचना के रूढ़िवादी पिता सुनते है, तो वे अप्रसन्न हो जाते है।

पिता जीः- कोई स्वस्थ आदमी इस तरह शादी की बात सोचता है ? एक अनजान लड़की रेल यात्रा में मिल गई। जरा-सी प्रेम की बाते हो गई। बस उससे शादी तय। न लड़की के कुल शील कापता, न उसके खानदान के बारे में पता न उसके मां-बाप से भेंट, बस बीच में ही खिचड़ी पक गई।[1]

3. सेवा भावः- पूर्वी का हृदय दया से आप्लावित है। ऐसा लगता है, जैसे महात्मा बुद्ध की करूणा की साक्षात मूर्ति हो। कुष्ठ रोगी, हरिपदम सुजान उसकी सेवा तत्परता के उदाहरण है। सुजान की सेवा के लिए पूर्वी रात्रि भर जागरण करती हैः-

पिताः- सुनो भीतर पूर्वी से कहो कि अब आराम करें। रात भर वह सुजान के लिए नर्स की तरह उसकी दवा सेवा में लगी बैठी रही है।[2] सुजान की सेवा के लिए पूर्वी ने चार दिन का अवकाश भी ले रखा है। हरिपदम को ट्रेन यात्रा के समय कालरा हो गया था। वह पूव्री के सेवा भाव के सम्बन्ध में कहता है कि मुझ अजनबी को कालरा हो गया गया था। एक छोटे से स्टेशन पर उतार दिया गया एक अजनबी लड़की मृत्यु के उस संघर्ष में मेरे साथ खड़ी थी।[3]

सेवा भावः- इसी तरह सुजान पूर्वी को स्मरण कराता है।

---

१. दर्पन - पृ० २२

२. वही पृ० १६

३. वही पृ० २५

सुजानः- दुर्गा कुंड से आगे सड़क के किनारे तपेदिक के उस मरीज की घटना जिसे असाध्य समझ कर अस्पताल से निकाल दिया गया था। उसका वे तेज बुखार........ .....खून की उल्टी। किस तरह बढ़ कर अपने उसके सिर को थाम लिया था। आपकी वह दवा..[1]

दंडी संन्यासी भी पूर्वी की अप्रतिम सेवा का उल्लेख करता हुआ कहता है कि मैं दंडी नारायण हरद्वार क्षेत्र का एक संन्यासी था। एक दिन दंडियों ने देखा कि मेरे हाथ-पैर और मुंह पर कोढ़ की बीमारी उभर आई है। मेरे गुरू महाराज ने एक दिन मुझे कोढी कह कर अपने यहां से निकाल दिया फिर मैं नास्तिक होकर धर्म और ईश्वर को गालियां देता हुआ हरद्वार में हर की पैड़ी पर घूमने लगा। तभी एक दिन आधी रात के समय जब मैं हर की पैड़ी के उस पार अपने धावों में पड़ा कराह रहा, उसी समय न जाने कहां से उस मां ने आकर मेरे अभिशप्त माथे पर अपना हाथ रख दिया। मलय गिरि के चन्दन सा वह हाथ मां ने मुझे अपदार्थ कोढ़ी को अपने अंक से लगा लिया। क्वार से लेकर फागुन तक उन्हीं छह महीनों में मां के स्पर्श से, आशीष से मेरे सारे घाव पुर गये।[2]

4. सिद्धान्त प्रियताः- दरपन से पूर्वी बनी युवती हरिपदम से दरपन (स्वयं) की सिद्धान्त पिता का उल्लेख करती है।

पूर्वीः- सुनो बौद्ध मठ में लामा महाराज से उसकी एक बार सख्त लड़ाई हुई थी। वह कहती थी- कि....जब सत्य की परिवर्तन शील है, तो बौद्ध मठ में वही पुरानी रूढ़ियां क्यों? लामा महराज ने उत्तर दिया मानवता की सेवा के लिए। स पर दर्पन बोली मानवता की सेवा तो प्रेम है। बुद्ध को तो अन्ततः उस प्रेम से शान्ति मिी थी, नहीं तो सुजाता की खीर और क्या है? इसी द्वन्द्व में वह दर्पन कई बार अपने उस बौद्ध मठ को छोड़कर न जाने कहां-कहां घूमती रही? एक बार उसने मुझे लिखा था, पूर्वी, स्वर्ग यदि मान को स्वर्ग के सामान न लगे, मुक्ति यदि प्राणों को शान्ति

---

१. दर्पन - पृ० ७१
२. वही पृ० ८१

न दे सकें, हृदय यदि सारे सुखों के बावजूद मृग के समान दूर कानन में भटकता फिरे, तब उसकी क्या गति होगी ?

5. दुहरा व्यक्तित्वः– पूर्वी का पूर्व नाम दरपन है। वह बौद्ध मठ की भिक्षुणी है। सिद्धान्तों के पालन के कारण सम्भवतः म की हठ्वादिता के कारण उसने मठ छोड़ सारनाथ में आकर नौकरी कर ली। हरिपदम से भेंट होने पर उसके मन में प्रेम का अंकुरण हुआ और वह पूव्री के नाम से अपना परिचय देती है तथा हरिपदम एवं पिता के पूंछने पर एक आरोपित कथा दरपन के नाम से सुना देवी हे। हरिपदम के परिवार के समक्ष वर अपनी बड़ी बहिन दरपन के अस्तित्व पूर्ण रूपेण सिद्ध करती है किन्तु जब वह दर्पण के सामक्ष खड़ी होकर अपने रूप को देखती है, तो उसे दरपन की याद आती है। हरिपदम एवं पूर्वी के संवादों से दरपन का व्यक्तित्व इस प्रकार स्थापित होता दिखाई देता है।

हरिपदमः– मैं आज तुम्हारी दरपन बहन को चिट्‌ठी लिखूंगा कि तुम्हारी बहन पूर्वी धत् धत् कहती है।

पूर्वीः– दर्पन तुम्हारी चिट्‌ठी का जवाब ही नहीं देगी। ....दार्जीलिंग के उस बौद्ध मठ में वह बहुत व्यस्थ रहती है। बहुत जिम्मेदारी है उस पर। बड़ी अभागन है वह दर्पन। उसे क्या पता कि जीवन क्या है कितना सुन्दर। .....

हरिपदमः– उस दर्पन को तुम इतना याद करती है, वह भी तुम्हें कभी याद नहीं करती है।   कितना प्यारा नाम है, उसका दप्रन, सच तुमने उस दर्पन की इतनी बातें मुझसे की है कि मुझे ऐसा लगता है, कि जैसे वह भी हमारे ही बीच में हैं।

पूर्वीः– सच दिले, वह मेरे लिए दर्पन ही है। मुझे ऐसा लगता है मानों मेरे चारों ओर कोई दर्पन खिंचा हो और मै उसी में चुपचाप बैठी हूं।   कभी मैं उस दर्पन में अपनी छबि भी देखती हूं और कभी वह दर्पन मेरे लिए पारदर्शी भी हो जाता है। तब मैं उसके परे एक नीला आकाश देखने लगती हूं। जिसमें सितारों की एक नाव चल रही है। कभी वह नाव सहसा टूट आती है कभी फिर उसी तरह बन कर पंख फैलाने

लगती है।[1]

विवाह के पश्चात हरिपदम दरपन से मिलने की बात कहता है, जिसके पूर्वी अस्वीकार कर देती है। वह तो दर्पण में अपना बिम्ब भी नहीं देखना चाहती है।

पूर्वीः– नहीं, नहीं मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। सच मैं अपने को कभी नहीं देखना चाहती।

हरिपदमः– अच्छा, विवाह के बाद फौरन ही हम लोग दार्जिलिंग चलेगें फिर वहीं तुम्हारी बहन से जी भर के भेंट करेंगें।

पूर्वीः– नहीं नहीं, जो भिक्षुणी है, उससे क्या मिलना।[2]

इस प्रकार पूर्वी सभी के समक्ष दर्पन का अस्तित्व सिद्ध करती किन्तु वह स्वयं से कैसे बचेगी। उसका अन्तर्द्वन्द्व उसे चुनौती सा देता प्रतीत होता हैः–

अखबार में पूर्वी का सचित्र लेख प्रकाशित हुआ जिसे एक दण्डी दरपन के नाम से पहचान कर ढूंढता हुआ आता है। दंडी को बहला–फुसला कर बाहर कर दिया जाता है, तब पुरानी कापी लेकर बंद कमरे में अन्दर जाकर उसे जलाती है।

पूर्वीः– मेरा पीछा करने वाली, तू नहीं जानती, मैं क्या हूं। मैं सोचती थी तू खत्म हो गयी है, पर तू इस कदर मेरे पीछे लगी है, अपराधी निर्मम.....हत्यारी, तुझे जिन्दा नहीं रहने दूंगी। तेरे दर्पण का एक–एक टुकड़ा मैं पीस कर रख दूंगी। में हूं नियन्ता अपने इस जीवन की। तेरा यह जड़ अस्तित्व मैं अब नहीं रहने दूंगी। (आग लगा देती है)[3]

यथार्थ से पलायनः– पूर्वी का दुहरा व्यक्तित्व है। मूल रूप से वह दर्पन बौद्ध–भिक्षुणी है। पूर्वी नाम से वह संसारिक जीवन व्यतीत करना चाहती है। हरिपदम से प्रेम भी करती है। विवाह को उत्सुक भी है। उसकी ननद ममता उसे दुलहिन के रूप में सजाती है और सुजान से पूर्वी पूंछती है, कि वह कैसी लग रही है। अपनी सुन्दरता की प्रशंसा सुन कर वह आनन्द विभोर हो उठती है। तभी सुजान पूर्वी को

---

१. दर्पन - पृ० २६-३१

२. वही पृ० ३३

३. वही पृ० ५६

दर्पण में उसे अपना सौन्दर्य देखने की बात कहता है। पूर्वी इनकार करती है। क्योंकि यथार्थ को सामने देख उसे बौद्ध भिक्षुणी दर्पन की स्मृति आ जाएगी, जिसे श्रृंगार निषिद्ध है। इस यथार्थ को वह स्मरण नहीं करना चाहती है।

पूर्वीः- सच सुजान भइया? मैं पूरी दुलहिन हो गई हूं?

सुजानः- हां-हां बिलकुल ममता जाओ आईना लाओ.......

पूर्वीः- नहीं-नहीं...नहीं, आईना नहीं

सुजानः- अरे तुम दौड़कर लाओ तो सही। जाओ..............

पूर्वीः- नहीं सुजान भइया मैं तुम से हाथ जोड़ती हूं। मैं आईना बिलकुल नहीं देखती। मेरा सिर चक्कर खाने लगता है।[1]

आईना में अपन रूप देखते ही वह मूर्च्छित हो जाती है। संसायुक्त होने पर वह सुजान से कहती है।

पूर्वीः- पर सुजान भइया, सच बात यह है कि में अपने आपको देखना नहीं चाहती। मैं चाहती हूं कि मैं अपनी आंखों से ओझल हो जाऊं मैं सिर्फ वही रहूं जिसे तुम सबने इतना प्यार, इतना विश्वास दिया है।[2]

ममता मयी भिक्षुणीः- जिस समय पूर्वी के विवाह की तिथि निर्धारित हुई। निमंत्रण पत्र छपने लगे। इसी बीच तपेदिक का रोगी, कुष्ठ रोगी दण्डी ने पूर्वी को पहचान लिया साथ ही हरिपदम द्वारा बौद्ध मठ को लिखे पर को लेकरवहां से एक प्रतिनिधि ा आ गया, जिसने पूर्वी को दरपन के रूप में पहचान लिया क्योंकि दरपन उसी के सामने भिक्षुणी बनी थी। उसे बताया कि दरपन के चले आने पर मठ की प्रतिष्ठा तो गिर ही रही है, अव्यवस्था भीचारों तरफ फैल गयी है अतः पूर्वी को इस छद्म नाम, और नया जीवन छोड़कर मठ की पुकार सुन कर पुनः दरपन बन कर वहां चलना चाहिए।

आदमीः- आपका नाम हरिपदम है? अपने दार्जिलिंग के बौद्ध मठ को यह चिट्ठी

---

१. दर्पन - पृ० ६८

२. वही पृ० ७१

लिखी थी ?

हरिपदमः– हां दरपन के नाम।

आदमीः– पर दर्पन वहां नहीं है। चार साल से उसकी खोज चल रही है। दर्पन को आप जानते हैं क्या ?

हरिपदमः– दर्पन की छोटी बहन पूर्वी को..........

आदमीः– दर्पन की कोई बहिन नहीं है। ..... दर्पन के बिना बौद्ध मठ का सारा काम ठप्प पड़ा है। मठ का अस्पताल उजड़ रहा है आप नहीं जानते दर्पन के बिना वहां.

पूर्वीः– मुझे जाना है.......क्योंकि मैं पूर्वी नहीं हूं। ..... प्यार का आधार छल नहीं हो सता। और वह छल मैने किया है। मैने.........पूर्वी ने नहीं। .... वुद्ध ने पहली भिक्षा यशोधरा से मांगी थी आज मैं पहली भिक्ष तुमसे मागती हूं। दर्पन आज भिक्षुणी हुई है।[1]

गंगाः-

यह गंगा माटी नाटक की नायिका है, जिसमें जीवन कहलाने वाले विरोधें, भटकाओं और दुराग्रहों के अनेक आयामी रूप चित्रित हैं। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने छद्म–जीवन की प्रताड़ना पर बल देते हुए लिखा है कि गां प्रताड़ित, लांक्षित दण्डित और वंचित होने पर भी ऊपर से निरीह और मूक बनी हुई जीवन रस को बचाये रखती है। वह प्रेरणा भी है और आदर्श भी।[2]

गंगा मातृ–पितृ प्रेम, स्नेह, वात्सल्य से वंचित निरीह बालिका है, जो थोड़ा पढ़ कर जीवन की निष्ठुर पाठशाला में तप कर ज्ञानार्जन किया है, उसी के बलबूते वह बड़ी दृढ्ता के अछूत समस्या पर शास्त्रार्थ कर अपने वैदुष्य का परिचय देती है। वह कहती है 'क्या इस बांव की स्त्री लोहे की मशीन है, जो तुम्हारे यंत्र–नियम के अनुसार चलेगी मै जो सही समझती हूं, करूंगी।[3]

---

१. दर्पन - पृ० ६४

२. गंगा माटी - भूमिका -पृ० २४

३. वही - पृ० ५

गंगा अस्पृश्त-स्पृश्य पर अपना विचार ही नहीं प्रस्तुत करती, अपुति शूद्रों के घर उठ्ती-बैठ्ती है उनके हाथ का बना खाती है, पानी पीती है। धूर्त शिवानन्द इससे लाभ उठाकर उसके विरूद्ध गांव की पंचायत बैठा देता है। पंचायत के निर्णय अनुसार उसे देवल की पत्नी बनना पड़ता है किन्तु विवाहिता गंगा अपने पूर्व क्रम को बंद नहीं करती है। अपने पति देवल से वह दार्शनिक भाषा में कहती है सब अपने भीतर जल रहे हैं। हमारी साधना न जाने कब से उल्टी दिशा में चल रही है। जो है, उसे अस्वीकार करना, जो नहीं है, उसे पाने की कोशिश करना जितने प्रकार के मन उतने प्रकार के धर्म के प्रकार। हम सब भयभीत हैं क्योंकि एक दूसरे से टूट कर, कट कर अलग हैं।[1]

गंगा का पति देवल तांत्रिक साधन करते समय कुछ विक्षिप्त हो जाता है। गंगा उसकी प्रिया है, पत्नी है। वह उस पर असीम विश्वास और स्नेह करती है, वह कहती है-मेरा पति एक घायल शिशु है। पिता ने मारा है इसे प्यार देकर। अब यह खुद अपने को मार रहा है।[2] देवल एक छदम पुंजारी रूप में ंदिर में रहता था और पिता के षड्यंत्र में शामिल होकर निरीह गांव वालों की आस्था के आधार पर उनका शोषण करता था, किन्तु गंगा की विचार धारा, एवं कान्ता सम्मिति उपदेश से प्रभावित होकर उसे अपने कर्मो परग्लानि होती है, और गंगा के सामूहिक उत्सव 'जियाहो' का वह समर्थन करता है।

गंगा शिवानन्द के षड़यंत्र के कारण गांव से निष्कासित प्रसादी एवं कुसु को संरक्षण ही नहीं देती अपितु दोनों को परिणय-सूत्र में बांधती है। इस प्रकार गंगा अपने पिता के कार्य को आगे बढ़ कर जियाहो उत्सव की पुनः परम्परा प्रचलित करती है, क्योंकि इसी उत्सव के कारण शिवानन्द ने गंगा के पिता की हत्या करा दी थी, तबसे यह सामूहिक उत्सव मनाने की परम्परा बंद हो गयी थी। डॉ0 नारायण राय ने गंगा के चरित्र के सन्दर्भ में लिखा है कि गंगा के चरित्र के माध्यम से ग्रामीण

---

१. गंगामाटी - पृ० २०
२. वही - पृ० २१

जीवन में गहरे पैठे अंध-विश्वास धर्म भी रूता और आडम्बर पूर्ण जीवन की कृत्रिमता का मुखौटा उतारने की कोशिश की गई है।[1]

इस प्रकार गंगा माटी की प्राण रेखा गंगा है। उसका सृजन नाटक के दो बिन्दुओं, दो धाराओं को जोड़ने के लिए हुआ है। वह भारतीय नारी कीउस करूणा मूर्ति को समाने लाती है, जो हमेशा सामाजिक-दंश से पीडित होती रहती है और फिर भी सब कुछ सहती है। अनगढ़ चट्टानों के बीच बहती वह पावन गंगा है। न जाने कितने उछालों से वह चट्टानों से टकरा कर क्षत-विक्षत हुई ि्र भी दूसरे को पवित्र करती रही है। वह किसी भी थोथी, थोपी परम्परा के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। यहीं गंगा की विशेषता है, यही उसकी नियति है और यही उसके जीवन जीने की अपनी एक दृष्टि है, जो आत्म साक्षात्कार के मार्ग से विकसित हुई है।

सुवासिनीः-

यह गुरू नाटक की पात्र है। यह चाणक्य की प्रेमिका हे। इसके चरित्र के विकास की अनेक सम्भावनाएं थीं, किन्तु राजनीतिक उठा-पटक के कारण यह स्त्री पात्र आपेक्षित-सी है। वह गायिका प्रेमिका, प्रकृति निरीक्षण प्रिया तथा रहस्य प्रिया भी है।

1. **प्रकृति प्रेमः-** सुवासिनी सिंधुतरी नर्तकी के साथ रात्रि में जा रही है। आकाश की नीलिमा, सितारों का मौन नियंत्रण उसे रह-रहकर आकृष्ट कर रहा है।

सुवासिनीः- आज की यह रात नवजात अरूण शिशु की तरह है। उसके पालने के पास ये असंख्य तारे चुपचाप निश्चल खड़े हैं। शिशु की नींद कहीं खुल न जाय। दूर जैसे कोई रो-रो कर गा रहा है। वहीं पहुंच कर जीवन शेष होना चाहता है।[2]

उक्त उद्धरण की भाषा पर दृष्टिपात करें, तो ऐसा लगेगा कि कहीं डॉ0 लाल के अन्तर्गत में प्रसाद युगीन छायावादी भाषा कुलबुला रही थी जिसे अलंकार,

---

१. नाटककार लक्ष्मी नारायण लाल की नाट्य साधना - पृ० १५४
२. गुरू - पृ० ७७

लक्षणा, ओर भावुकता मिल जुल कर सुवासिनी के अन्तरल की वेदना को व्यक्ति किया जा रहा है। ऐसा वयक्तित्व अन्तर्मुखी प्रधान होता है। सुवासिनी का चरित्र भावना या रामांस प्रधान हे।

2. **प्रेमिकाः-** सुवासिनी चाणक्य से प्रेम करती है, किन्तु इस प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं कर पाती अतः विरह की अनुभूति को गाकर व्यक्त करती है। इस गीत में करूणा, व्यथा, अभिलाषा इत्यादि अनेक मनो दशाओं की अभिव्यंजना हुई है।

सुवासिनीः- आशा है नहीं तो भी रखती हूं।
प्राण हैं नहीं तो भी जीती हूं।
मुझे ऐसा मिला एक जोगी।
प्रेम को झूंठा कहे लोभी
दावानल में मीन जल पीती हूं।

इस गीत के मर्म को चाणक्य समझ जाता है। वह सुवासिनी से कहता है, कि इतना मर्म भेदी संबोधन उसने आज ही सुना है। उसके प्राण आखों में आकर अटक गए है। सुवासिनी कहती है।

सुवासिनीः- देश काल के जाने कितने संकुचित यात्रा पथों में तुम्हें पुकारती खोजती भटक रही थी। उस भटकन में आज मुमने पहली बार पुकारा और मैं पहुंच गयी अपने पासा मुझे अपने प्रेम तट पर खींच लो समूची।[1]

प्रेमिका का हृत्कमल प्रेमी का स्पर्श पाकर उत्फुल्ल हो उठा। सुवासिनी के शरीर/मन से कल्पना/अभिलाषा के अनन्त पुष्प खिल कर झरने लगे। वह पुकार उठी 'ओह! तुम्हारी आखों से ही अपने को देख सकती हूं मेरे प्राण-बलनभ। मेरी देद से पुष्प झर रहे हैं अनन्त। .... मैं तुम्हें कभी भूल नहीं पायी जो तुम कुछ करते रहे.

---

१. गुरू - पृ० ७८

.......इतनी हिंसा, अभिसंधि, छल, कपट, मुझे कभी विश्वास नहीं हुआ वह तुम हो।[1] चाणक्य भी उसके हार्दिक आह्ववान से विह्वल हो उठा। वह निष्कपट भाव से स्वीकार करता है, कि बरसों की आहुति में तुम्हारी अग्नि सोम बन कर बरस रही है, तुम्हारे सर्वांग में। सुवासिनी अपनी चेतना की ग्रंथि न खुलने की बात निष्कपट रूप से स्वीकार करती है। वह चाणक्य से विरह–वेदना के ज्वालादेश को पार करने का आग्रह करती है। चाणक्य की दृष्टि में वही उसे पूर्ण काम बना सकती है। सुवासिनी ही उसकी रहस्य प्रिय है। चाणक्य और सुवासिनी आलिंगनब होकर नृत्य करने लगते हैं।

---

१. गुरू – पृ० ७८

षष्टम् अध्याय

अध्याय - ६

आलोच्य नाटककार के असामान्य-पात्र

असामान्य पात्र मनोविज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित पात्र होते हैं। बाह्याकार रूप में ऐसे पात्र देखने में सामान्य दिखाई देते हैं, किन्तु आचरण में विकृति आ जाने के कारण इन्हें असामान्य पात्र कहा जाता है। इसके मूल में कुंठा या दमित वासनाएँ रहती हैं। अतः इस प्रकार के चरित्रों को समझने के लिए पूर्व पीठिका के रूप में मनोविज्ञान, उसके क्षेत्र, पात्रों के आन्तरिक क्रिया कलापों के कारक तत्त्वों का संक्षिप्त परिचय आवश्यक प्रतीत होता है। यद्यपि प्रथम अध्याय में चरित्र–व्यक्तित्त्व को परिभाषित करते समय इस सम्बन्ध में कुछ कहा जा चुका है।

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है, यह मानव मन की विभिन्न दशाओं का अध ययन प्रस्तुत करता है। मनोविज्ञान शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। अंग्रेजी का यह शब्द लैटिन भाषा के दो शब्दों एवं से बना है, जिसका अर्थ आत्मा का विज्ञान है। प्रारम्भ में मनोविज्ञान को आत्मा से सम्बद्ध कर एतद् विषयक विचार धारणाएँ प्रस्तुत की जाती रही हैं। बाद में चेतना का विज्ञान, जीवित प्राणियों के व्यवहार का विधायक विज्ञान माने जाने लगा।

बात यह है कि मनुष्य हो या कलाकार वह अपने आदिम आवेगों से संचालित और प्रभावित रहता है। यह आदिम अनुभूति कलाकार की सर्जन शीलता का स्रोत होती है। इस प्रकार की अनुभूति का विश्लेषण मनोविज्ञान शास्त्र के अन्तर्गत आता है। मूलतः मनोविश्लेषण एक प्रविधि है जिसके माध्यम से एक व्यक्ति के मानसिक जीवन के गत्यात्मक चेतन एवं अचेतन की खोज की जाती है। इस प्रकार असामान्य पात्र के व्यवहार क्रिया–कलापों का अध्ययन वर्णन इसी मनोविज्ञान शास्त्र के माध्यम से किया जाता है। मनोदौर्बल्य, मानसिक–कुंठा, हीन–भावना के कारण मनुष्य ऐसा व्यवहार करता है जो उसे असामान्य पात्र बना देते हैं।

फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व के गत्यात्मक पहलू का अर्थ वह साधन है, जिसके द्वारा मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न संघर्षों का समाधान होता है। इस दृष्टि से व्यक्ति की गतिशीलता एवं व्यवहार की समग्रता तीन शक्तियों पर निर्भर करती है। 1. इदम् फ्रायड के अनुसार इदम् मनोजैविकीय ऊर्जा (Psychobiological Energy) स्रोत है।[1] यह सहज प्रवृत्तियों का भण्डार तथा अचेतन होता है। मनुष्य जो कुछ आनुवांशिक रूप में प्राप्त करता है, या जो कुछ उसके संघटन में वर्तमान रहता है, वह सब इदम् में संचित रहता है। बाह्य वस्तुस्थिति की परिस्थिति की चिंता किए बगैर इदम के आवेग तात्कालिक संतुष्टि के लिए विफल रहते हैं। यह समय, तर्क, नैतिकता तथा नियमों की परवाह नहीं करता। इसका सम्बन्ध शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति से होता है। यह एक प्रकार से कामेच्छा को जन्म देने वाली शक्ति है जो समय-समय पर व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है। बिना इसके व्यक्ति शक्तिहीन हो जाता है तथा उसके व्यवहार में विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। शारीरिक स्तर से सम्बन्धित इच्छाओं को उत्पन्न कर संतुष्टि के लिए यह सुख के नियम से नियंत्रित होता है। इसका निवास स्थान अवचेतन होता है। 2. अहम् - फ्रायड ने अनुसार इसको स्व चेतन-बुद्धि के रूप में व्याख्यायित किया है। इसका सम्बन्ध बाह्य वातावरण से होता है। इसकी उत्पत्ति भी बाह्य वातावरण से ही होती है। यह पूर्णतः चेतन होता है। इदम् की इच्छाओं तथा वास्तविकता के बीच यह एक संतुलन कायम रखता है तथा समझौता करता है। यह बाह्य व्यवहार पर नियंत्रण रखता है साथ ही चेतन मन की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होता है। संक्षेप में यह कि अहम् व्यक्ति और उसके बाह्य परिवेश में समायोजन करने वाला व्यक्तित्व विकास का एक महत्वपूर्ण चेतन पक्ष है, जिसका प्रमुख कार्य है इदम् से उत्पन्न मूल प्रवृत्तियों और मूल आवेगों को वास्तविकता के अनुरूप नियंत्रित और संशोधित कर मानसिक तनावों को दूर करना, जिससे

---

१. असामान्य मनोविज्ञान - डॉ० रामकुमार ओझा - पृ० १७१ पर उधृत

सुख प्राप्ति हो सके।

३. परम अहम् -

फ्रायड ने परम अहम को आदर्श अहम कहा है। यह संस्कृति, परम्परा, आदर्श, नैतिक नियम तथा सामाजिक बन्धनों से मिलकर बनता है। यह सदैव व्यक्तित्व के नैतिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। इसी को अन्तरात्मा की आवाज भी कह सकते हैं। इसके कारण ही व्यक्ति में पाप, पश्चाताप आदि भावनाएँ जागरित होती हैं। इस प्रकार इदम् जैविकीय शासित, अहम भौतिक वातावरण से शासित तो परम अहम समाज एवं संस्कृति से शासित रहता है।[1]

असामान्य पात्रों का अर्थ शारीरिक स्तर पर विकलांग व्यक्तियों अध्ययन न होकर मानसिक संघर्ष के कारण अस्वाभाविक आचरण करने वाले पात्रों का अध्ययन यहाँ किया जा रहा है। इदम्, अहम्, परम अहम् का संघर्ष मन के चेतन, अचेतन स्तर पर होता है। अतः अति संक्षेप में इस संघर्ष की भूमिका के रूप में चेतन अचेतन पर सामान्य जानकारी प्रस्तुत करना युक्त संगत प्रतीत होता है।

चेतन :-

चेतन व्यक्ति के मन का ऊपरी भाग है, जो बाह्य वातावरण या तात्कालिक ज्ञान से सम्बन्धित होता है। युंग के अनुसार चेतन मन अहम्, विचार, अभिवृत्तियों, भावनाओं के मेल से बनता है। इस प्रकार व्यक्ति अपनी अनैतिक इच्छाओं का दमन कर लेता है, जिसके चलते उसमें मनोग्रन्थियाँ जन्म लेती है। वह कुंठित हो जाता है तथा उसमें दुहरा व्यक्तित्व पनपने लगता है।

अचेतन :-

अचेतन मन, मन का सबसे बड़ा भाग है जो चेतन तथा अग्रचेतन के नीचे स्थित होता है। चेतन मन अतृप्त इच्छाओं को अचेतन में धकेल देता है। यहाँ से इच्छाएँ मरती नहीं है, बल्कि समय की प्रतीक्षा करती रहती हैं, और समय आने पर चेतन के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है। इस प्रक्रिया वे इच्छाएँ अपने वास्तविक

---

१. असामान्य मनोविज्ञान - डॉ० रामकुमार ओझा - पृ० १७४

रूप में प्रकट न होकर छद्म् वेष में प्रकट होती है। यही भावनाएँ ग्रन्थियों के रूप में अचेतन मन में एकत्रित रहती है। जिन इच्छाओं का दमन जिस सीमा तक होता है, भावना ग्रंथि उस सीमा तक प्रबल होती रहती है। जब ये ग्रंथियाँ चेतन मन में आने का प्रयास करती है, तभी व्यक्ति तनाव में आ जाता है और इस प्रकार अत्यधिक तनावों से वह मानसिक विकारों से ग्रस्त हो जाता है। व्यक्ति का आचरण अस्वाभाविक हो उठता है। प्रस्तुत अध्याय में इसी अस्वाभाविक पात्रों के चरित्र, उनके क्रिया कलाप, उसके कारक तत्वों की चर्चा की जाएगी।

भगौती :-

यह अंधा कुआ का मुख्य पात्र है जो परिस्थिति के कारण अस्वभाविक पात्र है। जिसके जीवन की विषंगति यह है कि उसकी पत्नी सूका अपने प्रेमी इन्दर के साथ उसे छोड़कर भाग जाती है। सारा गाँव भगौती को नपुंसक कहता है जिसकी प्रतिक्रियावश वह तिलमिलाकर रह जाता है। उसके भीतर अहं की एक गाँठ बन जाती है यह गाँठ अपमान, ईर्ष्या, कुंठा और टूटन की होती है वह वारंट निकलवाकर पुलिस के साथ कलकत्ते में सूका को पकड़वाता है। और अपने अहम् की तुष्टि हेतु आठ हजार रूपये खर्च कर कचहरी से मुकदमा जीतकर पत्नी सूका को घर ले आता है। सूका की मानसिक प्रताड़ना हेतु उसे तोड़ने के लिए उसकी छाती पर मूंग दलने के लिए सौत ले आता है। वह सूका को खम्भे से बाँधकर रोज निर्दयतापूर्वक मारता पीटता है। उसे पहनने को कपड़ा नहीं देता। उसे भूखा रखता है। दुर्भाग्यवशात सूक एक रात कुआँ में कूद जाती है किन्तु कुआँ भी अन्ध ा निकलता है। भगौती गाँव वालों की सहायता से उसे निकाल कर घर के छप्पर की धूनी में बाँधकर उसके साथ पशुवत व्यवहार करता है। भगौती की मार से सूका का जीवन नर्कमय बन जाता है और वह अफीम का आदी हो जाता है। तनाव ग्रस्त जर्जर शरीर से भगौती पूरी तरह से परास्त और टूट चुका होता है। परिस्थितियों के आघात से वह खोखला है जाता है क्योंकि उसे पता चलता है

कि जिस लड़की को वह सूका की छाती पर मूग दलने के लिए सौत के रूप में ले आया था। हीरा नामक युवक से प्रेम करती है और सूका के सहयोग से भगौती को छोड़कर चली जाती है इस प्रकार भगौती का मन अत्यधिक अत्यधिक आहत और कुंठित हो जाता है। जर्जर शरीर खोखला मन के कारण वह बीमार पड़ जाता है। ऐसे संकट के अवसर पर सूका उसकी तन मन से सेवा करती है कि एक रात उसका प्रेमी इन्दर सूका को अपने साथ चलने के लिए आग्रह करता है। वह भगौती को भी मारने का प्रयास करता है किन्तु सूका बड़ी दृढ़ता पूर्वक अपने प्रेमी इन्दर से डटकर मुकाबला करती तथा भगौती की रक्षा भी करती है। और सूका इस संघर्ष में घायल हो जाती है। तात्पर्य यह है कि भगौती का व्यक्तित्व, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दमित-कुंठित अस्वभाविक चरित्र है जिसके परिस्थितियों का बहुत योगदान है। फ्रायड ने मन का विश्लेषण करते हुए जिस इगो शक्ति का उल्लेख किया है भगौती उसी का प्रतीक है। कामनाओं की पूर्ति न होने की उसका मन विद्रोही आहत और कुंठित हो जाता है। परिस्थितियों के घात प्रतिघात से वह जितना आहत होता जाता है उतनी ही क्रूरता से वह अपना बदला सूका से लेता है।

डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल ने भगौती के माध्यम से अस्वाभाविक पात्र की मनोजगत की संरचना का मनोविश्लेषण पद्धति से किया है। भगौती के सात्विक अनुभवों के माध्यम से उसकी बाह्य रूप रेखा तथा उसके चिन्तन को व्यक्त करने में पूर्ण सफलता पाई है। डा० लाल ने लिखा है उसके साथ ही साथ किसी पुरूष की क्रोध-भरी आवेश पूर्ण फटकार सुनाई पड़ती है और एकाएक किसी औरत के रोने और चीखने की आवाज आती है। औरत की आवाज अपनी सारी करूणा के साथ सुनाई पड़ती है।[1]

१. बहिरंग चित्रण :-

डा० लक्ष्मी नारायण लाल ने भगौती को असामान्य पात्र रूप में चित्रित

---

१. अंधाकुआँ, पृ० २७

करना चाहता है अतः उसके रौद्र रूप का चित्रण इस प्रकार किया है – उसी बीच, नंगे बदन, केवल धोती पहने, सिर पर अंगौछा बाँधे, हाथ में दंडा लिए अंदर से हाँफता हुआ भगौती आता है। उसकी सांसे क्रोध और आवेश से अब तक फूल रही हैं और वह पसीने में तर है।[1] मिनकू उसे डाटकर कहता है कि उसे लाज नहीं आती एक बार दो बार हो गया। क्या उसकी जान ही लेने पर तुल गया। सूका ने हजार कसूर किया लेकिन उन कसूरों की जिम्मेदारी किस पर है? तुम अपने कार्य को क्यों नहीं देखते।

मिनकू :-

रोज-रोज बेरहम की तरह सूका को मारते हो। कहीं कुछ हो जाए, औरत अबला का मामला, कहीं उसे ठाँव-कुठाँव लग जाये तो लेने के देने पड़ जायेंगे। अगर तुम्हें सूका को रोज-रोज हलाल ही करना था तो उसे पाने के लिए तुम उतने दीवाना क्यों हुए। पाँच बार तुमने सूका के लिए वारंट कटाया, न जाने कितनी बार पुलिस को घूस दिए अन्त में दस्ती वारण्ट लिया, पुलिस के साथ खुद कलकत्ता गये फिर कहीं जाकर सूका गिरफ्तार हुई।

भगौती :-

इसलिए कि मैं अपनी बेइज्जती का बदला लूँ। मुझे जो-जो सूझेगा मैं वही करूँगा मुझे किसी का डर नहीं। मना कर दो सुकिया को नहीं तो मैं जानपर खेल जाऊँगा। मेरी नजर से उसे दूर हटा दो काका। इसे देखते ही मेरा खून खौल जाता है।[2]

2- क्रोधी रूप-जिस पुरूष की पत्नी उसे छोड़कर प्रेमी के साथ भाग जाये उसे समाज का तिरस्कार सहन पड़ता है। यही स्थिति भगौती की है विवशता के कारण उसका खून खौल उठता है। अतः वह बेरहम निर्दय होकर सूका पर अत्याचार करता है।

---

१. अंधाकुऑं, पृ० २७
२. वही पृ० ३०

सूका- सुन लिया न बुला लाओं गाँव भर को। इजलास छूटकर इस घर में आये हुए आज डेढ़ महीने बीत गये तब से इसने मुझे रोज मारा है।[1] भगौती एक क्षण के लिए सूका को घर से बाहर कहीं नहीं जाने देता। वह सूका पर दस सेर ध ाान चोरी से बेचने का आरोप लगाता है। जिसका परिणाम वह उससे पीटता है। उसने सूका का सामाजिक बहिष्कार कर उसको अपमानित करनने का कोई अवसर नही छोड़ता।

भगौती -

अरे राम कहो भइया। आज तक उसे चौके में पैर नही रखने दिया। जो वह गयी इसके हाथ का छूआ दाना पानी लूँगा? राम-राम मैने अपने बर्तन तक उससे नही छुलाये। एक पीतर की थाली, एक कासे का लोटा। थाली में ऊपर से खाना डाल दिया जाता हैं और लोटे में ऊपर से पानी।[2] इसी क्रोध की आग में खौलता बलता झुलसता भगौती का संयुक्त परिवार छूट रहा है। भाई और उसकी पत्नी दोनो उसके कृत्य से कष्ट है। परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवार बिखरने लगता है। साहू द्वारा शरण की ववसूली में एक बोरा धान ले लिया जाता है। परिणाम स्वरून छोटा भाई अलगू उसे ताने मारता है।

अलगू- लेकिन तुमसे क्या घर में बैठे-बैठे भौजी को हलाल रो और चापलूसों के साथ गाजा पियो यही तो तुम्हारा धंधा रह गया है।

भगौती- यह सब उसी वजह से हआ न वह बेशरम भागती ना मुकदमा चलता। फिर यह नौबत क्यों आती।

सूका-सब दोष मेरा ही तो है। (एकाएक भगौती क्रोध से सूका पर टूट है।) सूका दरवाजे पर गिर पड़ती है। अलगू भगौती में कुश्ती होने लगती है।[3] इस अत्याचार के असहिय होने पर सूका कुयं में कूद कर अपनी जीवन लीला समाप्त करने चली थी किन्तु यह कुआँ भी अंधा निकला, जल ही न निकला। गाँव के लोगो ने सूका

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ३०

२. वही, पृ० ३६

३. वही, पृ० ४४

को कुये से निकाला कुपित भगौती ने सूका के पैर बाँधकर घर की खूँटी में रस्सी से बाँध लेता है।

भगौती- इसका इस तरह कुयं में कूदना तूम्हारे लिए बात है, होगी बात तुम्हारे लिए ,इसी यह मजाल। खबदार रस्सी पर अगर किसी ने हाँथ लगाया। मैं अपने बाप के असलली खून का नही, अगर मैं सुकिया का मूँड़ काट्कर एक-एक को न फँसा दूँ खबरदार अगर किसी ने दाना पानी दिया। इसी तरह इसे सुखाकर मार न दिया तो भगौती मेरा नाम नही।[1]

३-दीवाना-

सूका के प्रेमी इन्दर ने सुना तो एक रात वह उसे रस्सी के बन्धन को खोलकर अपने साथ पुनः भाग चलने का आग्रह करता है किन्तु सूका को यह स्वीकार नही और वह इन्दर को भगा देती है। यह सुनकर भगौती का निर्दय ह्रदय कुछ द्रवित हुआ,और वह कुछ पिघलने लगा। वह सूका के रूप पर आसक्त होने लगता है। सूका भी उसे अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हो जाती है। क्योकि रोज - रोज की मार से प्रेममय जीवन व्यतीत करना अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है। जगदीश पाण्डेय के अनुसार भगौती खड्ग शील व्यक्तित्व है, तो क्रैश्मर के अनुसार भगौती एक्रोबेट्स राइप का पात्र है भगौती सूका से अपने मन केक भाव इस प्रकार व्यस्त करता है जिसमें कुछ उलाहना कुछ प्रेम कुछ अपने पूर्व कृत्यों के प्रति लज्जा और कुछ सूका का दैहिक आकर्षण है। डा0 लाल ने लिखा है-

भगौती- किसके लिए इतना सजधज के खड़ी हो?

सूका- अपने दिल में झाँककर देखो।

भगौती- मेरा दिल पत्थर है।

सूका- अरे पत्थर पर ही तो भाँग पिसता है।

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ४७

भगौती– देखदेख, तू ऐसी बात करती है तो मेरा`लेता जल ताता है।

सूका– शुक्र है कलेजा तो है।

भगौती– सुनरे मेरी तरफ देक्ष। (भगौती लजा जाता है)

भगौती–क्या मैं। इतना खराब हूँ। अरे ऐसी बातन पर गुस्सा किसे नही आयेगाा। अरे तू बोलती क्यो नही। इतना सजधज के मति रहा कर। कुझे बडा डर लगता है। बडी खतरनाक है। अरे ऐसे क्यो हँसती है। कोई देखलेगा तो क्या कहेगा।

सूका– क्या कहेगा ?

भगौती– बताना, कोई कहेगा ?

सूका– मैं क्या जानू।

भगौती– अरे तू सब जानती है। मुझसे बनती है।

भगौती– इसीलिए कि मै। अपनी बेइज्जती का बदला लू।

मिनकू– लेकिन बीती हुई बातो और अब रोज–रोज सूका को मारने से क्या मतलब।[1] यह प्रतिशोध सूका के साथ मारके रूप में प्रकट होता है। लेकिन इसका एक दूसरा रूप भी भगौती के अचेतन मस्तिष्क में स्थित हो वह है सूका के प्रेमी उसे भगाकर ले जाने वाला इन्दर।

भगौती – तो इन्दरवा आजकल घर पर ही रहता है। तेजई भाई, एकबार तो उससे दिल का अरमान पूरा ही करना है। हनुमान जी वह दिन न जाने कब पूरा करेंगे। बिना हाथ पैर तोड़े दम कहाँ।[2] और भगौती ऐसी व्यवस्था करता है कि वह इन्दर के घर में आग लगवा देता है। इस प्रतिशोध का तीसरा रूप भी दिखाई पड़ता है। अपनी खोई हुई सामाजिक प्रतिष्ठा पुनः पुरूष रूप में प्राप्त करने के लिए वह सूका की सौतन के रूप में लच्छी को ले आता है। जिससे सूका का मनोबल टूट जाये। किन्तु लच्छी के लक्षण ठीक नहीं दिखे मिनकू उसे समझाता है।

मिनकू – यह क्या तमाशा है कोई इधर झाँक रहा है, कोई उधर झाँक रहा है।

१.अंधा कुआँ, पृ० २६

२. वही, पृ० ३६

कितना मना किया दूसरी न लाओ। पर जहाँ अकल को ही पाथर पड़ा है।

भगौती – हाँ दूसरी लाया तुमसे मतलब।

मिनकू – तुमसे अलग हूँ, तो क्या खून तो एक है। बदनामी नहीं सही जाती।

भगौती – कैसी बदनामी। किस साले की हिम्मत है।[1] आगे कुछ ऐसा घटित होता है कि भगौती इन्दर से मार खा गया और उसका दाहिना पैर टूट गया। और भगौती ने खाट पकड़ ली। ऐसी विषम परिस्थिति में भगौती लाचार परावलंबित हो जाता है। सूका उसकी सेवा सुश्रूषा करती है। भगौती लच्छी के भाग जाने और इन्दर से मार खाने के कारण अन्दर से टूट गया। वह सूका से पूछता है।

भगौती – खूब बदला लिया तूने मुझसे। लच्छी का इस घर से निकल जाना, इससे बड़ा बदला और कुछ नहीं हो सकता। तेरे इस बदले से मैं बुढ्ढा हो गया, जैसे मेरी कमर टूट गयी हो, नहीं तो मुडेरा के बाजार में मुझे मारकर इन्दरवा नहीं निकल जाता, मैं उसका खून पी लेता। बहुत समझ–बूझकर तूने मुझसे बदला लिया सूका। अच्छा तू ही सच–सच बता, तूने मुझसे बदला नहीं लिया।[2]

भगौती – अचेतन मस्तिष्क में यह बात कील की तरह फँस गयी है कि लच्छी भी उसे छोड़कर भाग गयी। वह सूका को इस रहस्य में सम्मिलित समझता है कि उसकी सहमति से ही लच्छी गयी होगी वह स्वप्न में भी यही दृश्य देखता है।

भगौती – सपना देख रहा था कि मैं लछिया को पकड़कर लाया हूँ और इसी पावे में बाँध रहा हूँ।[3]

नाटककार को फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त का अच्छी तरह से परिचय है कि अचेतन मस्तिष्क में पड़ी आकर आकांक्षाएँ स्वप्न में पुनरुज्जीवित होकर दृश्य रूप में आती है। इसीलिए भगौती के मनमें लच्छी के प्रति सुप्त प्रतिशोध सुप्तावस्था में

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ५४
२. वही पृ० ७२
३. वही पृ० ७५

आकर अपनी आकांक्षा पूर्ण करता है। फ्रायड का यही स्वप्न सिद्धान्त है।

भगौती – राजी को ओझा या सोखे के पास भेजकर यह जानना चाहता है कि उसकी लच्छी कहा है। मिनकू ने आकर यह घटना बतायी कि उस रात एक नौजवान घर के किनारे नीम के पेड़ पर साँझ से ही बैठा था। भिनसार हो रहा था। लछिया बाहर निकली और वह पुरूष उसे दबाकर पश्चिम दिशा की ओर ले गया है सम्भवतः लच्छी को 500 रू0 में किसी ठेकेदार ने खरीद लिया है। उस ओझा ने एक पत्र भी दिया है। जिसे सूका उसके टूटे पैर पर बाँध देती है। असहाय भगौती का प्रतिशोध अन्त में प्रतिहिंसा में बदल जाता है। वह सूका से कहता है कि मिनकू देव गाँव जाकर ओझा से कहेगा कि वह इन्दर पर ऐसी मूठ मारे की वह अन्धा होकर छटपटाता हुआ उसके पास आ गिरेगा। अतः सूका एक कटार लेकर उसके बगल में रख दे ताकि अन्धा होकर गिरने वाले इन्दर के कलेजे पर कटार भौंककर वह अपना प्रतिशोध पूरा करे।

६. पश्चाताप य ग्लानि :-

मनोभावों को विश्लेषण करते हुए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब मनुष्य को अपने कुकृत्यों का बोध हो जाता है तब पश्चाताप स्वरूप उसके मन में ग्लानि जैसे सत्विक भाव उदय होते हैं। ग्लानि में व्यक्ति यह चिन्ता नहीं करता कि कुकृत्यों की स्वीकृति को सुनकर समाज के लोग उसकी निन्दा या भर्त्सना करेंगे।

सूका– बताओ न फिर किससे बनूँ ?

भगौती – मुझे पता था, इस रंग की साड़ी तुझे खूब फलेगी। अच्छा जा चिलम चढ़ा ला। सुन........... पास आ जा, अरे आ ना, खा जाऊँगा क्या ?...........आज अपने हाथ से थोड़ी वह भी पीस देना।

भगौती – बड़ी जालिम है। नशा दूना कर देती है। पता नहीं क्या है इसके हांथ में। मन करता है इसके हाँथ का खाना अब खा ही लूँ। यह भी क्या सोचेगी, भगौती कैसा मरद था। अरे मैं अन्दर आ जाऊँ रे........ अरे मैं ऐसा–वैसा मरद

नहीं जो बिन बुलाये आ जाऊँ। तू जब कहेगी तभी आऊँगा, हाँ अरे कुछ बोलती क्यों नहीं ?[1] ऐसे समय सूका अपनी वह गार भूल जाती है। भगौती भी सूका के साथ रहने में अपनी नियति मान लेता है।

भगौती – अरे क्या खड़ी-खड़ी सोच रही है रे। बरबाद हो गया तेरे पीछे रे।

सूका- जो है तू ही है। तेरे ही साथ जीना, तेरे ही साथ मरना। जो करम में है वही अपना है।

भगौती – कितनी बार कहा उधर मत खड़ी रह। सब नजर मारते हैं चल घर में चल, चल न, अरे आँखे नीचे कर।

सूका- अब आँख नीचू नहीं करूँगी। माथा उठाकर देखूँगी।

भगौती – किसे ? देखती क्या है। कुत्ता हूँ जो तेरे पीछे-पीछे चला जाऊँगा। जा अन्दर बन्दकर हँसना।

भगौती – कैसे हँसती है, अरे सुन तो।

सूका – क्या है ? मारोगे ? लो मारो कलेजा ठंडा कर लो।

भगौती – अरे तू समझती है मैं कसाई हूँ। हत्यारा हूँ, निर्दयी हूँ। बेरहम हूँ ? पर जो हूँ उसे तुम नहीं जानती।[2] उक्त संवादों से यह साफ स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भगौती मूल रूप से सरल प्रेम प्राप्ति का भूखा युवक रहा होगा किन्तु सूका पर चले जाने पर उसका अहंकार जाग्रत् हो उठा। उसके अचेतन मस्तिष्क में इड़ और इगो का संघर्ष हुआ होगा। और इगो इसके व्यक्तित्व को आच्छादित कर लेता है और वह विक्षिप्त सा हो जाता है अहम् या दम्भ पर जब चोट पड़ती है मन जब घायल होता है। अहंकार का सर्प फन उठाकर फुफकार करने लगता है ऐसा व्यक्तित्व कुंठित ही नहीं क्रोधी एवं विक्षिप्त हो जाता है। मनोवैज्ञानिक उसके असामान्य व्यक्तित्व की शमन करने के लिए कोमल भावुक मार्मिक संवदेनशील

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ५०-५१

२. वही पृ० ५२

परिस्थितियाँ उत्पन्न करते है। लक्ष्मी नारायण लाल ने भगौती के इसी केन्द्रीय चरित्र चिक्षिप्ता अवस्था का वर्णन कर सूका की कोमल अनभूतियों से सम्बन्धित घटनाओं का इस प्रकार चित्रण किया है जैसे उबलते दूधमें कुछ पानी के छीटे डाल देने से दूध अपनी पुरानी अवस्था में लौट आता है। भगौती के प्रेमी रूप के चित्रांकन के पीछे यही मनोवैज्ञानिक रहस्य है।

4 पिछले उदाहरणों में यह बात कही गयी है कि सूका भागने की प्रतिक्रिया स्वरू भगौती असामान्य अवस्था वाला पात्र बन गया था। नशाइस आसामान्य अवस्था को सहन करने का एक सशक्त माध्यम माना जाता है इसे उर्दू में गम-गलत करना कहा जाता है। उबलता खौलता विवश भगौती असहाय होकर नशे का अभ्यस्त हो जाता है और नशेडियों की संगत उसे सहज रूप में प्राप्त हो जाती है। नाटक के तेजई और मूरत दो ऐसे पात्र है। जो उसे उकसाकर अफीम पीने पर विवश कर देते है इसमें भगौती के मौसिया हरखू का विशेष हाथ है।

हरखू- अच्छा भगौती यह तो बताओ कुछ नशा पानी है, आज दो रोज हो गये चिलम पर हाथ नहीं रखने को मिला।

भगौती-- किससे कहूँ मौसिया। जवानी कसम आज तीन दिन हो गये थोडा सा गाँजा मेरे पास जरूर था, लेकिन न जाने किसने मार दिया।[1]

हरखू- हाँ सुनो बरहची अब की पक्के सेर भर गुट बालिया गाँजा लेके आया है। क्या कल्लीदार गाँजा है, भगौती, देखते ही तबियत नशीली हो जाती है।

भगौती- (सूंघता हुआ) चीज तो बहुत उम्दा है मौसिया[2]

५-प्रतिशोध-

सूका के पलायन ने भगौती को विवेक शून्य बना दिया और वह येन-केन प्रकारेण पुलिस तथा अदालत से छुडाकर सूका को ले आया ताकि वह अपनाा प्रतिशोध ले सके।

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ३२

२. वही, पृ० ४१

मिनकू- मुकदमे की पैरवी में गाँव से कचहरी का रास्ता नापते-नापते हम सबके पैर घिस गये। आखिर यह सब क्यो? किसलिए?

अचानक एक रात इन्दर कटार लेकर भगौती को लेकर मारना चाहता है, किन्तु सूका गंडासा लेकर उसके सामने दृढ़ता से खडी हो जाती है।

इन्दर - आज मै इसे जान से मारकर तुझे निकालने आया हूँ।

सूका- नहीं ऐसा न कर मै विधवा हो जाऊँगी मुझपर दया कर

ठन्दर -तू उसे पति मानती है?

सूका- खबर दार जो कदम आगे बढ़ाया। क्या था। नामर्द ही था। यह घायल है लेकिनन बेआसरा नही है। मेरे जिन्दा रहते तू उसे नही मार सकता। तेरा खून पी लूँगी भगौती (चीखकर) ले मुझे मार उसपर हाथ न चलाना, तेरा दुश्मन मै हूँ, सूका नहीं। (दम तोड़ती हुईसूका को अपने सीने से जकड़े हुए चिल्लाता रहता है) सूका..... मैने अपनी सूका को मार डाला सूका...सूका... सूका।

निष्कर्ष यह है कि नाटककार ने ऐसी घटनाओं और परिस्थितियों का सृजन किया है कि एक सरल सीधा कृषक मानसिक रूप से कुंठित विक्षुब्ध हो जाये। भगौती ऐसा ही पात्र है। जो सामान्य कोटि का नही है। नपुंसक या नामर्द होने का दंश इतना गहरे अचेतन मस्तिष्क में धस गया है कि ववह सदैवव कुपित दमित और क्षुब्ध रहता है। एवं अपनी पत्नी पर अमानवीय अत्याचार करने को विवश हो जाता है जितना ही वह सूका को दण्डित प्रताडित करता है उतना ही उसके अहं को तुष्टि मिलती है इसे आसामान्य मनोविज्ञान में पर पीडक आनन्द प्राप्त करने ववाले कोटि मे गिना जाता है। भगौती का नशा पीड़ा थके श्रान्त-क्रलान्त, पुरुष का नही अपितु उस प्रतिहिंसा को दमित करनने यर उे भुलाने के लिए अभ्यस्त ही चूका है किन्तु अद्भुत चरित्र ऋष्टा .... लाल ने उत्सर्ग होती हुई सूका के रक्त को देखकर उसका इगो सन्तुष्ट हो जाता है और उसे सूका अपनी प्रिया पत्नी लगती है। तथा पश्चाताप और ग्लानि के कारण वह अपने को हत्यारा

समझकर शान्त हो जाता है। यही इस चरित्र की निजी विशेषता है।

प्रद्युम्न :-

सूर्य मुख का नायक या प्रधान पात्र प्रद्युम्न है। इस नाटक में चरित्रों के पारम्परिक जटिल सेबंधें गहरे अन्तर्द्वन्द्वों को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, मानवीय ध रातल पर प्रस्तुत किया गया है। नाटक कारने पौराणिक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। नाटक कार ने पौराणिक संववेदनाा लेकर आजादी के बाद की नई पीढ़ी के बुनियादी सववाल को रंग दृष्टि दी है।[1] प्रद्यम्न को नायक चुनने के सम्बन्ध ा में डॉ0 श्याम शर्मा का अभिमत है, कि महाभारत के तुरन्त बाद की अनिश्चय और द्वन्द्व की स्थिति से कुछ म्य 1947में एक लम्बे स्वतंत्रता स्रांम के परिणाम स्वरूप बिट्रिश दासता से मुकक्त और स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा और दायित्प हीनता आदि विकृतियाँ निश्चय ही शाश्वत मान मूल्यों का ह्रास करने में सहायक होती है और राष्ट्रीय सामाजिक विघटन का मार्ग प्रशस्त कती है। इन मानववीय मूल्यों और राष्ट्रीय भावात्मकएकता को स्थापित करने के लिए नाटक कार ने कर्मयोगी कृष्ण के पुत्र प्रदृयुम्न को चुना हें[2] प्रद्युम्न एक ओर असीम शक्तिशाली वीर है तो दूसरी ओर वह प्रेमी भी है। सत्ता प्राप्ति संघर्ष ससे दुःखी है। उदासीन है, तो राष्ट्र की गरिमा को नष्ट करने वाने कुचक्रों को विफल करने के लिए कटिवद्ध है। अपनी माता के प्रेम में आकंठ मग्न है,तो दूसरी ओर द्वारका में शासन व्यवस्था के लिए अपने प्रेम को तोड़ने में न हिचकने वाला भी है। नायक प्रद्युम्न का मत है कि सत्ता प्राप्ति की लालसा व्यक्ति को आत्मि संबंधों से काट देती है और हिंसक क्रूर बना देती है।

इस संघर्ष से मानवीय मूल्य के चिघटन के कारण पशुता का अंधकार जाता

---

१. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच - डॉ० लाल, पृ० १२३

२. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक - पृ० १०५

है, उसमें केवल प्रेम स्त्री पुरूष का प्रेम ही आनोक बन सकता है।[1] प्रद्युम्न पौराण्कि एवे आधुनिक भाव बोध का प्रतीक बन उभरा है।

उनके चिन्तन एवं व्यवहार में मानवीय विकृतियाँ वासनाएँ विशेषताएँ भी है।

वह अपनी सौतेली माँ का प्रेमी है, क्योंकि उसी धारणा है कि हर प्रिया मूलतः माँ होती है। उसका प्रेम प्रथम दर्शन का है। इस प्रेम के कारण उसे अनेक संघर्ष भी झेलना पड़ा है। इस प्रेम के कारण उसे अनेक संघर्ष भी झेलना पड़ा है। इस प्रणय की नैतिक-अनैतिक के द्वन्द्व से उभरने के लिए प्रद्युम्न ने प्रणय की परिभाषा सर्वद्वन्द्व विवर्जित रूप में की है। उसका प्रेम दैहिक सुख प्रात्यर्थ न होकर शक्ति, शौर्य, पराक्रम के सौन्दर्य प्रेरणा और मानवता से सम्बद्ध है। वह अपने संशय, अन्तर्विरोध क्षोभ का सामना कर आने वाले प्रश्नों की चुनौती को न्यायोचित रूप में व्याख्या करता है। गहरी संवेदना के क्षणों में वह कहता है कि मेरे भुजपाश अंक में लिपटे हुए संशय इन अस्त्रों से ढँक जाएँगे पर मेरे गहन अन्तस् में जो बैठें हैं वे छाया चित्रों की तरह उभरकर मेरे ही सामने आएँगे, इन्हें कौन अस्त्र काटेगा। जहाँ शत्रु अदृश्य है, वे युद्ध इन अस्त्रों से किस तरह लड़े जाएँगे। जो अस्त्र मुझे हर क्षण बाँधते जा रहे हैं, लगता है, यही मेरी विजय में पराजय के साक्षी होंगे।[2] विजय के पश्चात् उसे निरर्थकता का बोध होता है। वह सोचता है मैं व्यर्थ हूँ। यह विजय यह राजमुकुट यह केतु व्यर्थ है। कोई मुझसे सारा अतीत छीन ले, मुझे उन स्मृतियों से काटकर अलग कर दे। अहा, मेरा अस्तित्व झूठा था। इन दिशाओं में कहीं खोई हुई बेनु सुनो, तुमने यह क्या किया। मैं विजयी होने पर भी पराजित हूँ। समुद्र का हाहाकार हूँ मैं।[3] सत्ता प्राप्ति के पश्चात् वह बेनु के अभाव में निरर्थकता का अनुभव करता है। उसे अपना अस्तित्व ही विखरा लगता है। प्रतिशोा हेतु वह बेनु की खोज करता है। उसे प्रत्यक्ष देखकर

---

१. सूर्यमुख, पृ० ६१
२. वही पृ० ८०
३. वही, पृ० ७६

अपना सारा आक्रोश व्यक्त करता है कि पहले मैं संशय में था आज मैं घृणा हूँ। तूने मेरे संग विश्वासघात किया। मुझे युद्ध में झोंककर स्वयं भाग निकली। अब मैं विजयी हो रंग महल में आया, उस सूने राजमहल में तूने मुझे पराजित किया। मैं तेरा शत्रु हूँ, तू मेरी पराजय है। मेरे व्यक्तित्व की प्रवंचना है तू।[1] अंत में प्रेमी का आह्वान प्रबल सिद्ध होता है। वेनुरती प्रेमी के अंक पाश में आबद्ध होकर पूर्ण रूपेण समर्पिता हो जाती है। उसके संशय निर्मूल थे, उनके भय अर्थहीन थे। इस प्रद्युम्न वीर, पराक्रमी, योद्धा, सुदर्शन युवक, प्रेमी, मानवीय मूल्यों का रक्षक बनकर नायक रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। इस सम्बन्ध में डॉ० दयाशंकर शुक्ल का अभिमत है कि प्रद्युम्न अर्जुन की अकर्मण्यता से आरम्भ होकर पार्थ सारथि कृष्ण के निष्काम कर्म योग की मनोभूमि तक पहुँचने वाला गीता बोध है। स्वयं और समाज अथवा कहिए स्व और परिवेश के आत्म साक्ष्‍ज्ञात्कार की दिशाएँ खोल कर नयी पीढ़ी की आधार शिला रखने वाला युग प्रवर्तक है। वह आज की विषम परिस्थितियों में वर्तमान का सुन्दर भविष्य है।[1]

उसके चरित्र के निम्नलिखित पक्ष उद्घाटित हुए हैं।

1. सूर्यमुख :- नाटककार ने प्रद्युम्न को सूर्यमुख कहा है।

दुर्गपाल कहता है कि प्रद्युम्न सूर्यमुख है जबकि साम्ब कृष्ण मुख है।

अपराध बोध से ग्रस्त :-

प्रद्युम्न अपनी निमाता से प्रेम करता है और भारतीय नीति शास्त्र में यह अगाम्यागमन श्रेणी का अपराध माना गया है। इसीलिए कृष्ण ने उसे निर्वासित कर दिया है। उसके मन में इस कृत्य के पति अपराध का भाव है। साम्ब, दुर्गपाल का संवाद देखिए।

साम्ब- तब प्रद्युम्न में अपराध-भाव क्यों हैं?

---

१. सूर्यमुख, पृ० १११

२. लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक और रंगमंच, पृ० ६०

दुर्गपाल – अपराध नहीं संशय है।

साम्ब – वह द्वारिका से आत्म–निर्वासित क्यों है?

वह अपने मुख पर मुखौटा क्यों बाँधे रहता है।[1] बात यह है कि महाभारत युद्ध के पूर्व कृष्ण ने बेन रति से विवाह किया। वेनरति का प्रथम साक्षाताकार प्रद्युम्न से हुआ। तो वह उस पर मोहित हो गयी। समाजिक सम्बन्धों की दृष्टि से बेनुरति प्रद्युम्न की सौतेली माँ है। अतः माँ को प्रेम का बनना समाज विरुद्ध कार्य था। इसीलिए कृष्ण ने उसे नागकुण्ड की पहाड़ियों में निर्वासन दे दिया था। यद्धपति उसमें अनेक ऐसे गुण थे। जिसका उल्लेख किया है।

२. प्रेमी :-

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रद्युम्न अपनी माता से प्रेम करता है। उसमें मन के भाव देखिए।

प्रद्युम्न :-

उसी कमल की एक पांखुरी हमारे बीच में खिंची है, मैं तुम्हें देख नहीं पाता। और उस चक्रवाक की तरह मैं तड़पकर रह जाता हूँ जो सूर्योदय के बाद भी अपनी प्रिया से नहीं मिल पाता।

बेनु (पकड़कर) :-

मुझे देखो।[2] कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् यह प्रेम समाप्त नहीं होता प्रद्युम्न कहता है।

प्रद्युम्न :-

आओ, मैं तुम्हारी वेणी में यह कमल गूँथ दूँ। मैं आज स्वयं गया था। सरोवर, तुम्हारे लिए यह कमल लाने, आह! सरोवर में कितना कीचड़ था। जहाँ यह पुष्प खिला था (वेणी में पुष्प लगाता है)। मुझे देखो कितना सुन्दर है। तुम्हार यह मुख इसी के लिए हमारा जन्म हुआ था। इसी के लिए इस जन्म में हमारा

---

१. सूर्यमुख, पृ० १४
२. वही पृ० ४२

सहज प्रसंग उल्टा कर दिया गया है। विश्वास करो वेनु, इस जीवन में यदि तुम्हें न देखा होता, तो मैं भी वही यदुवंशी था जो द्वारिका में आए हुए, ऋषियों का अपमान करता घूमता था। यदि मुझे तुम न मिली होती, तो मैं भी वही यदुवंशी था। जो द्वारिका मैं आये हुए ऋषियों का अपमान करता घूमता था। यदि तुम मुझे न मिली होती तो मैं महाभारत के युद्ध से लौटकर यहाँ न आता.......... .... और प्रभास क्षेत्र के युद्ध में मैं................।[1]

३. साहसी :-

प्रद्युम्न शूरवीर है, व्यासपुत्र उसके साहस को बढ़ाते हुए कहता है कि सत्ता के संघर्ष में उसे आगे आना चाहिए।

जिसे तुमने द्वारिका का शत्रु घोषित किया है, वहीं अकेला इस नगर की रक्षा में जूझ रहा है।[2]

अपने बाणों से वह समुद्र की गति रोक लेता है। द्वारिका की रक्षा मे उसे समर्थ देख साम्ब और बभ्रु उसे भी सत्ता का दावेदार मानते हैं। और साम्ब तथा बभ्रु द्वारिका को लूटकर प्रद्युम्न के पीठ पर छुरा भोंक देता है। इसी युद्ध में वेनुरति भी सम्मिलित हो जाती है। घायल वेनु प्रद्युम्न के अंक में और प्रद्युम्न वेनु की बाँहों में महामिलन और अभिसार का प्रारम्भ करते हैं। इसी प्रकार प्रद्युम्न नायक के सभी गुणों से युक्त है किन्तु नैतिक दृष्टि से उसने अमर्यादित प्रेम किया है जिसे किसी भी दृष्टि से क्षम्या नहीं कहा जा सकता। ऐसे पात्र साधारण पात्र न होकर समस्याग्रत या अस्वाभाविक पात्र कहलाते हैं। काम व्यक्तित्व के मूल में अवश्य है किन्तु देशकाल में उसकी एक सीमा कही गई है जिसका अतिक्रमण पात्र को अस्वाभाविक बना देता है। कृष्ण ने सोलह हजार रानियों से विवाह किया है। अतः यह संभव है कि उनकी नव विवाहिता रानी से उनके किसी पुत्र का प्रेम का असंभव नहीं है। फिर भी नाटककार ने इसी अस्वाभाविकता को जटिल प्रश्न

---

१. सूर्यमुख, पृ० ६०
२. वही पृ० ७४

बनाकर इस चरित्र का प्रस्तुत किया है। वह अपने भाइयों से युद्ध कर अपने उत्साह का परिचय देता है। नाट्ककार ने लिखा -

प्रद्युम्न - मुझे शक्ति दो वेनु। मुझे शक्ति दो.............. विश्वास दो.............. .। तुम्हे लेकर मैं अब नये धर्म को ढूँढ़ना चाहता हूँ, जो इस द्वारिका की रक्षा करेगा, और इस अन्धकार को बेधकर चमकेगा। उस एक नये के लिए मैंने सब कुछ त्यागा है।

वेनु :- मेरे प्राण! जिस क्षण तुमने अपने मुख का मुखौटा तोड़ा है, उस क्षण अन्तःपुर में मुझे ऐसा लगा, जैसे इस नगर में सहसा कोई सूर्य उग आया है।

प्रद्युम्न :- पर मुखौटा उतारते ही मेरे युद्ध की सीमा असीम हो गयी। मेरे लिए तुम्हारे इस सुन्दर मुख का अर्थ और गहन हो गया।[1]

४. नगर रक्षक -

प्रद्युम्न को वास पुत्र, वेनुरति, दुर्गपाल से ज्ञात हुआ कि महाभास युद्ध के पश्चात उसके सैनिक विलासिता में मग्न हो गये हैं। कृष्ण की मृत्यु हो चुकी है। समुद्र की उत्पाल तरंगें द्वारिका को डुबो रही हैं नगर का कोई रक्षक नहीं है। चारो तरफ विनाश का ताडंव हो रहा है। ऐसे संकट के समय प्रद्युम्न नगर की रक्षा करते हेतु आगे आता है।

दुर्गपाल :-

मैं तुम सबकी सूचना केवल प्रद्युम्न को दूँगा। जो समुद्र तट पर बढ़ते हुए काल से युद्धरत है। तुम सबका अपना निजी स्वार्थ है............

बेनुरतिः- सूर्य मुख नाट्क का विवादास्पद चरित्र बेनुरति है। वह कृष्ण -पत्नी एवं प्रद्युम्न की विमाता है। उसकी प्रामाणिकता पर प्रश्न चिन्ह लगता है। भारतीय आचरण पद्धति में विमाता से प्रेम अगय्यागन दोष माना जाता है। किन्तु दोनों के प्रबल आकर्षण ने इस नैतिकता या मर्यादा के बन्धन को स्वीकार नलहीं किया। बेनुरति प्रथम दर्शन से ही कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न पर मुग्ध हो जाती है। उसका प्रेम

---

१. सूर्यमुख, पृ० ४३

सहत, प्रेरणा दायक और जीवनधमार्थ था किन्तु उसकी पीड.ा कुंठा ग्रस्त थी। लेखक की मान्यता है, कि गीता उपदेश के समय कृष्ण की निराशा के पीछे ाम्भवतः उक्त प्रणयी युगल के किया कलाप चुनौती के रूप में सामने रहे हैं। कुंठित बेनुरति कहती है, समाज हमारे जन्म के पहले ही सहज को विपरीत सम्बन्धें के कारागारमें बन्दी कर देता है।[1] कृष्ण की मृत्यु- उपरान्त उत्तराधिकार प्राप्त करने हेतु कृष्ण निर्वासित जीवन व्यतीत करता है। बेनुरति उसे सत्ता प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। यहाँ प्रेयसी प्रेरक का काम करती है। उससे उत्साहित होकर वह अपनी शक्ति के बल पर अपने भाइयोंपर विजय प्राप्त करता है। वियोपरान्त प्रेमी जब महल पहुँचता है तो उसे सुनाई पडता है कि रि माँ प्रिया होती है और वह आत्म साक्षात्कार का अनुभव करता है।

बेनुरति एवं प्रद्युम्न का प्रेम प्रथम दर्शन का है। वह स्वीकार करती है अतःपुर में उसने पहले दिन जब मुम्हें देखा था , तुम्हे समर्पिता हो गयी थी। यद्यपि मैं लज्जिता थी, जिस दिन मैं तुम्हारे अंक में सोई थी ,उस दिन यद्यपि मैं घृणा से भरी थी फिर भी मैंने तुम्हें प्यार किया था। उस दिन भी मैं लज्जिता थी। यद्यपि तुम्हे अंक में कस लिया था पर आज लज्जित नहीं हूँ। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।[2]

वेनुरति अभिसारिका है। वह इड इगो के संघर्ष में झूलती रहती है। वह कहती है मेरे अन्तःपुर के द्वार उनके लिए सदा खुले रहते हैं, पर वे द्वार पर दस्तक देकर लौट जाते हैं। मैं नित्य उनके लिए द्वार पर दीपावलि सजाये बैठी रहती हूँ, पर अंतःपुर में उनके पैर रखते ही जैसे उसी कमल कोष से बादल और बिजली तड़प उठती है और मेरे अन्तःपुर के सारे दीप बुझ जाते हैं।[3]

वेनुरति प्रद्युम्न को झकझोर कर उसे कर्म करने को प्रेरित करती है। वह

---

१. सूर्यमुख, पृ० ५६
२. वही, पृ० १८
३. वही पृ० १०६

उत्तेजक भाषा का प्रयोग कर कहती है- 'तोड़ डालो उस मुखौटे को ताकि मैं तुम्हारा वह सूर्यमुख देख सकूँ। मेरे सूर्य को इस मुखौटे से बाहर आना ही होगा। सारी द्वारका हमारे विरूद्ध षडयंत्र कर रही है उठो! उन्हें चुनौती दो ताकि हमारे अस्तित्व को अर्थ मिल सके।[1] इस प्रकार वेनुरति सुन्दरी कृष्णपत्नी प्रेमिका के रूप में चित्रित हुई है। किन्तु उन्हें समाज स्वीकृति नहीं मिल सकी। परिणामतः प्रणयी युगल को महाभिसार और महामिलन के उस रास्ते पर जाना पड़ा जहाँ से प्रत्यावर्तन सम्भव नहीं है।

प्रेमिका :-

पहले लिखा जा चुका है कि बेनुरति कृष्ण पत्र प्रद्युम्न की प्रेमिका है। यह प्रेम प्रथम दर्शन का है। प्रद्युम्न से वह कहती है

बेनु-विश्वास करो, तुम्ही केवल-तुम्ही ...मेरे प्रथम और अन्तिम हो मेरी ओर देखो,इस महल मे पाँव रखते ही, घूँघट उठाते ही सबसे पहले मैंने तुम्ही को देखा था। उस क्षण कृष्ण के हाथ का वह कमल सहसा नीचे गिर गया था, तुमने तब किस शक्ति और विश्वास से उस कमल को उठा कर मेरी वेणी में गूँथ दिया था।[2] प्रमिका के रूप में प्रेमी से मिलने के लिए वह जीवन के अन्तिम क्षणों तक प्रतीक्षा ही नहीं करेगी बल्कि समाज से विद्रोह करती रहेगी। ऐसा संकल्प वह व्यक्त करती है। कृष्ण द्वारा निर्वासित प्रद्युम्न की प्रतीक्षा वह प्रत्येक रात्रि रहती है।

बेनु-

आज कितने दिन हो गये । मैं संध्या से इसी तरहश्रंगार किये बैठी हूँ पर ह नहीं आते और मारे लात के मैं इसी अंतःपुर में गड. जाती हूँ । मेरे अन्त'बुर के द्वार उनके लिए सदा खुले रहते हैं, पर वे द्वार पर दस्तक देकर लौट जाते हैं। मैं नित्य उनके लिए अपने द्वार पर दीपावली सजाये बैठी रहती हूँ, पर

---

१. सूर्यमुख, पृ० २४

२. वही पृ० ४२

अंतःपुर में उनके पैर रखतेही उसी कमल कोश से बादल और बिजली तड.प उठ्ती है और मेरे अंतः:पुर के सारे दीप बुझ जाते हैं।[1]

बेनुरति अपने प्रेम को जन्म -जन्मान्तर का सिद्ध करती है

बोनु-

मैं युग युगान्तर से उन्ही के लिए जन्म लेती हूँ। एक जन्म में वह कादेव और मैं रतिथी । दूसरे जन्म मे वह अनंग थे और उनके सूक्ष्म के लिए अनंग वी थी और इस जन्म कवनरीत बन कर व मेरे सामने हैं। कभी वह ऋतुराज वे कभी शिशिर और इस जन्म में वह हेमन्त और पावस एक साथ है।[2]

किन्तु यह शाश्वत,प्रेम इस बार सामाजिक नैतिक मूल्यों के विनरीत सम्बन्ध ों पर आधारित है। अतः माँ पुत्र के इस प्रेम में समाज से तिरस्कार मिलना स्वाभाविक है। बेनु कतिी है कि इस बार विनरीत है । मेरे सौन्दर्य की परीक्षा तभी इतनी निर्ममै। मारे भीती लज्जा का सर्प कुंडली मार विषदंश करता है। उनकके परिरम्भ से मैं काँप उठ्ती हँ। मेरे मिलन से वह लज्जित होते हैं और हम दोनों भयभीत रह जाते हैं। हमारा शिवास ही हमें सन्देह में डालता है,हमारी शक्ति ही हमें निर्बल बनाती है।[3] मनोविज्ञान अचेतन मस्तिष्क के विचारों को अध ययन का विषय बना कर पात्र के व्यक्तित्व का मूल्याकंन करता है। सामाजिक मान्यता के अनुसार यह प्रेम अगभ्यागमन की कोटि का है। सामाजिक वर्जनाएँउनके सुपर इगोको उत्तेजित करती है अतःबेनुरतीन तो उन्मुक्त होकर प्रिय का सामीप्य प्राप्त कर आप्यायित होती न ही उत्कट आकर्षण से मुम्त ही हो पाजी है। ऐसे आत्म संघर्ष व्यक्त्रित्व को असामान्य बना देता है। समाज से तिराकार, प्रताड़ना सन्देह भरी दृष्टि और काम, आकर्षण प्रेम का प्रबल प्रवाह उसके सामान्य व्यक्तित्व के तंतुओं की क्षीण कर देता है। ऐसी अवस्था बेनु रति की है। इस

१. सूर्यमुख पृ० ५४
२. वही, पृ० ५५
३. वही पृ० ५५

अवस्था से आशंकित होकर कृष्ण ने अर्जुनको आदेश किया थार, कि उनकी समस्त रानियों को द्वारका से मथुरा ले आया जाए ताकि ऐसे उदाहरणों की आवृत्ति न हो। रूक्मिणी बेनु के संवाद से भी इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है।

बेनु- प्रदुम्न मेरे लिए एक अनिवार्य मनुष्य थार, केवाल मनुष्य, जैसे मैं उसके लिए केवल एक स्त्री थी ।

रुक्मिणी-(घृणासे) औरे तेरे पति कृष्ण क्या थे?

बेनु- मेरा यह जन्म सिद्ध अधिकार है, कि मेरा पति वही होगा जो मेरा प्रियतम हो । मैंने तुम्हारे पुत्र से प्रेम किया है।

रूम्मिनी- सावधान,कोई इस जादूगरनी की बातोंमें मतआए। यही वह कारण है, महाभारत में कृष्ण है, महाभारत में कृष्ण का अपनी नारायणी सेना के ही विरोध में खड़े होने का[1]

सुजानः- यह दर्पन नाटक का साधारण पात्र है। यह हरिपदम का बड़ा भाई है। यह अन्तर्मुखी व्यक्तित्व प्रधान पात्र है। यह अस्वाभाविक इस अर्थ में हैख, कि यह मनोरोगी है और अपने विचारों तथा बाहय क्रिया कलापों में समन्वय न रख सकने के कारण यह बीमार हो जाता है। इसे समय समय पर दौरे(फिट्स) पड़ने लगते हैं, जिनका इलाज डाक्टर करता है, किन्तु वास्तकवक इलाज तो पूर्वी ही कर पाती है, क्योंकि उसने केस हिस्ट्री(पूर्ववृन्त) के मूल में जाकर रोग के कारण का पता पा लिया था। पूर्व (प्रथम) अध्याय में कहा जा चुका है, कि जो लोग अन्तर्मुख होते है जो समस्त बाहय संघर्ष को अपने भीती समेट कर जीमन भर अन्र ही अन्दर घुलते रहते है, उनकी अन्तर्व्यथा अनुभावों से ही जानी जा सकती है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने सुजान के चरित्र चित्रण के उद्‌घाटन में चित्राकंन किया है। बात यह है, कि किसी मनुष्य की काल व्यक्त क्रिया प्रतिक्रिया को तथा

---

१. सूर्यमुख, पृ० ६८

उसके समूचे व्यवहार को उसके चरित्र को पूर्ण रूपेण समझ लिया गया है क्योंकि मनुष्य का जो रूप दूसरों पर प्रकट होता है, वही सका वास्तविक रूप लहीं है। वस्तुतः मनुष्य के व्यक्त आचार ,विचार औष्र व्यवहार में उसके चरित्र का एक अंश ही प्रतिकबंवित हो पाता है। पाश्चात्य विद्वान रूच ने लिखा है-What all we know about a person's behavior is the external stiuulr situatin, our description of his behavior can not be complite.[1] दर्पन नाटक का सुजान इसी कार का पात्र है।

बाहय रूप रेखा:-

बाहय रूप रेखा, वेष -भूषा से सुजान की आन्तरिक मनेदशा को जाना जा सकता है- बैसाखी के सहारे सुजान का विंश। पच्चीस वर्ष का युवक। कुर्ता-पाजामा महले अस्त-व्यस्त केश, दाढ़ी बढ़ी हुई।[2]

बीमार :-

नाटककार डॉ0 लाल ने सुजान को बीमार पात्रों के संवादों द्वारा सूचित किया है। उसके कारणों का विवरण बाद में दिया है। यह नाटक कार की शैली है, कि पर्तमान स्थिति का का कववरण सदेकर पूर्पपृत्त (फ्लैश बैक स्टाइल) शैली के माध्यम से पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को सूचित किया है। बात यह है, कि सुजान जीवल के उस मोड़ पर र,ाड़ा है, जहाँ दो राहें उे दिखाई देती हैं और वह समझ लहीं पाता है, कि उे किधर जाना चाहिए। उसके मन में द्वन्द्वों का झंझावात उठने लगते है क्योंकि वह जीवन और जगन के मूल्यों को स्पष्ट समझ नहीं पाता परिणाम स्वरूप वह लफवा ग्रस्त ही लहीं होता अपितु उसे फिट्सभी आने लगते है।

पिताजी- तुम्हे पता है न, सुजान के दायें अंग पर जब से फालिज गिरा है, उसके पहले से भी उस पर फिट्स आते थे न।

---

१. साइकोलॉजी एण्ड लाइफ - पृ० १२२
२. दर्पन पृ० ४१

हरिपदम– जी लही, फाजित के पहले उस पर कभी फिट्नहीं आया था।

पिता जी– कैसे नहीं आया था । कालेज की छोकरियों के पीछे रोमांटिक बन कर, वह कविता करना आक्र क्या था? सुजान की जैसी दशा इन दिनों चल रही है बैसी उकी दशा कभी नहीं थी।

हरिपदम– इसका कारण क्या है?

पिताजी– इस घर की अशान्ति।

हरिपदम– इस अशान्ति का कारण क्या है?[1]

पिता जी की बद्ध मूल धारणाहै, कि जिस प्रकार सुजान कालेज की लड़कियों के पीछे–पीछे फिरतार, बीमार पड़गयाा है, उसी प्रकार इस वूर्वी के कारण हरिपदम भी बीमार हो सकता है।

पिताजी– लेकिन इधर जिस तरह के भयंकर फिट्स सुजान पर आ रहे हैं, इससे तो बस घबरा गया हूं। हां, हां, मेरे कहने का मतलब यही है, कि जब से इस घर में यह लड़की पूर्वी आकर............[2]

पूर्वी सुजान को दवा देती है। उसकी सेवा सुश्रुषा करती है। उसे विश्वास है कि सुजान भइया ठीक हो जाएंगे।

पिताजी– कैसी तबियत है अब सुजान की?

हरिपदम– नार्मल है, पूर्वी कह रही है, कि वह शीघ्र ही अब सुजान को इस रोग से सदा के लिए मुक्त कर देगी। मेरा विश्वास है कि जिस तरह उसने पिछले तीन महीनों में सुजान का दायां हाथ ठीक किया है उसी तरह यह........[3]

प्रेमी :-

सुजान उपमा नामक युवती से प्रेम करता है। उसके लिए कविता लिखता रहा। दुर्भाग्यवशात् निराश उपमा बीमार पड़ गयी। सुजान के मन में उसके प्रति

---

१. दर्पन, पृ० १७

२. वही पृ० १८

३. वही, पृ० २०

गहरी आसक्ति थी, अतः उसकी रचना भी मर गयी। पूर्वी के आग्रह एवं केस हिस्ट्री (पूर्ववृत्त) जानने की प्रवृत्ति के कारण सुजान बताता है-

सुजान – उपमा के साथ मेरी कविता भी विदा हो गई।

पूर्वी – कैसी उपमा

सुजान – (चुप रह जाता है) तुम्हें आज मैं सब बताऊँगा भाभी। हम दोनों बी०ए० में पढ़ते थे। विश्वनाथ जी के मंदिर में जाकर हमने कहा था– हमारा ब्याह होगा। और एक दिन यह पवित्र बात मैंने अपने पिताजी से बताई। पिताजी उल्टे उपमा के घर जाकर यह कह दिया कि हमारा यह विवाह कभी नहीं हो सकता (रुक जाता है, फिर जैसे साहस बटोरकर) उसी वर्ष मेरी उपमा बीमार पड़ी और मुझे सदा के लिए छोड़कर...........

पूर्वी – यह तो .... पर तुम्हार जीवन.........तुम्हारी रचना ....

सुजान – मेरे उस प्रेम से बड़ी है......... यही तुम कहना चाहती हो न। उससे बड़ा कुछ नहीं। बल्कि उससे अलग कुछ नहीं है। उसी के ही दोनों नाम हैं– जीवन और रचना।[1]

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि पूर्वी डाक्टर है और उसने बड़ी लगन, निष्ठा रात–रात भर जागकर सुजान की परिचर्या की है। जिसके कारण सुजान ठीक हो रहा है अतः डाक्टर होने के नाते मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से वह सुजान के अन्तर्मन को टटोलने में सफल होती है। उसे पता लग जाता है कि सुजान को प्रेम में असफलता मिली और अन्र्द्वन्द्व के गहरे संघर्ष में फँसकर यह निर्णय नहीं कर पाया कि किसको प्राथमिकता देनी चाहिए। उपमा की मृत्यु से उसे गहरा आघात लगा साथ पिता का क्रूर व्यवहार उसे मानसिक एवं शारीरिक रोगी बना बैठा। वह अपंग हो गया तथा अस्वाभाविक पात्र बन गया।

---

१. दर्पन, पृ० ४३

मनोरोगी :-

सुजान उपमा से प्रेम करता है। जब यह बात उसके पिता को ज्ञात हुई तो उन्होंने वाणी से उसे मर्माहत ही नहीं किया अपितु उस पर हाथ उठा बैठे। हरिपदम और पूर्वी के संवादों में यह घटना वर्णित है।

पूर्वी :- सुजान भइया के साथ तो बड़ी करुण घटना घटी है। सुजान का उपमा से प्रेम और पिताजी का वर्ताव.....

.हरिपदमः- मुझे अब तक याद है। उस लड़की के घर से लौटकर जब पिताजी घर आये और सुजान ने जब उनसे बातें करनी चाहीं तो पिताजी ने सुजान के मुँह पर थप्पड़ मारकर कहा था 'गधा कहीं का'। जरा आइने में अपनी सूरत देख उसके बाद से ही सुजान बुखार में पड़ा है। उसी में इसके दाएँ अंग पर फालिज गिरी (रूककर) उसी वर्ष उधर उपमा का स्वर्गवास.................तभी फिट का पहला दौरा..........[1]

सुजान के जीवन में घटित घटनाओं ने उसके मन को इतना असंतुलित अर्न्तद्वन्द्व युक्त कर दिया कि वह सामान्य व्यक्ति की तरह इस कष्ट को झेल नहीं सका। प्रारम्भ के कुछ दिन तो वह अन्दर ही अन्दर घुलता रहा किन्तु असंतुलन बिगड़ जाने पर पर मानसिक रोगी बन गया। पूर्वी के व्यवहार ने उसे किसी सीमा तक ठीक कर दिया। उसके मन में संतोष मिला कि वह प्रेम-विवाह करने में सफल नहीं हुआ, तो उसका छोटा भाई इस दिशा में सफल हो रहा है क्योंकि पिताजी ने अपनी स्वीकृति दे दी है। वह कहता है -

सुजान - जो जिसका अत्यन्त प्राप्त है, सहज है, नैसर्गिक है, उसी से जो हमें काट देता है। इतनी सोचने कहने की जो यह शक्ति मुझे मिली है, इसकी जड़ में कौन है? मैं अब नीरोग स्वस्थ हो जाऊँगा......... यह विश्वास किसने दिया? सब कुछ के बावजूद यह जीवन सुन्दर है, जीने योग्य है, कौन है वह? जो यह आस्था देता है।[2]

---

१. दर्पन, पृ० ४६-४७ २. वही, पृ० ४६

हुताशन :-

हुताशन यथा नाम तथा गुण। वह हिरण्यकश्यपु का घोर विरोधी है। उसने नगर छोड़ दिया है। अब वह जंगल में पशुक्त रहने लगा है। प्रहलाद् उसे सभ्य पुरुष बनाने हेतु उसे अपने पास रखता है। अंत में हुताशन प्रहलाद वध की भूमिका समझ पूर्ववत पशु बनकर हिरण्यकश्यपु की हत्या करता है। उसके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष इस नाटक (नरसिंह कथा) में उजागर हुए हैं।

१.प्रतिक्रियावादी :-

हुताशन प्रहलाद के बचपन का साथी है। किन्तु शासक द्वारा इस पर इतना जुल्म ढ़ाया गया है, कि यह नगर छोड़कर जंगल में पशुवत रहने लगा।

हुताशन :- मुझे पशु किसने बनाया ? वहाँ स्वतंत्र तो हूँ। कशिपु राजा के राज्य में रहने से बेहतर है मर जाना। मुझे जंगल से पकड़कर यहाँ क्यों लाये हो ?

प्रहलाद – तुम मेरे बचपन के साथी हो।

हुताशन – शूद्र और आचार्य होने का जो घोर अपमान बचपन से सहता रहा– यहां रहता तो अब तक न जाने कितनी हत्याएँ कर चुका होता। किसी के हाथ अब तक मैं भी मारा गया होता।

प्रहलाद – पर जंगल में जो तुम हो, उससे मुक्त कैसे होगे ? वृत्तियाँ दबी रहती हैं। वे निमित्त का योग पाकर उत्तेजित होती हैं और बढ़ती रहती हैं।

हुताशन – कारण वही दमन है। हमारा दमन युगों से हो रहा है। इसी में मैं पैदा हुआ, यह अंधकार। उसी में आया हिरण्यकश्यपु। कौन समझेगा क्या है मेरी उत्तेजना ? मेरी प्रतिक्रिया है ?[1]

नरपशु :- अपमान के दंश को झेलता हुआ हुताशन मानवीय गुणों को विस्मृत कर बैठा है। वह प्रहलाद के व्यवहार पर आश्चर्य व्यक्त करता है कि हिरण्यकशियपु ने इतने–इतने दण्ड दिये, तुम अब शान्ति से बैठकर पूजा पाठ, ईश्वर भजन तक नहीं कर सकते, तुम्हें इस अन्याय का बदला लेना चाहिए।[2] प्रहलाद का उत्तर

---

१. नरसिंह कथा, पृ० २२   २. वही, पृ० २३

और भी विचित्र है। वह कहता है कि जिसे आत्मिक समानता में विश्वास नहीं होता है, वही दूसरे से ईर्ष्या करता है। दूसरे का शत्रु मानता है। वह किससे अपना बदला ले।[1] प्रहलाद उसे मनुष्य मानता है, तभी हुताशन अपने को नरपशु कहता है।

प्रहलाद – सुनो तुम मनुष्य हो।

हुताशन – नहीं मैं पशु हूँ।

प्रहलाद – अच्छा तुम पशु हो।

हुताशन– नहीं मैं केवल नर हूँ। नर पशु।[2]

हिरण्याक्ष बध की घटना सुनकर वह अपने मनोभाव व्यक्त करता कि काश वह बाराह होता। अपने जबड़े में हिरण्याक्ष का क्षत-विक्षत शव दबोचे हुए इस नगर में घूमता। राजमार्ग को उसके रक्त से भिगो देता।[3]

विश्वासहीन :-

हुताशन प्रहलाद को छोड़कर जाना चाहता है, किन्तु प्रहलाद को आवाहन उसे बाँधता है। प्रहलाद की पुकार है कि उसे सौगन्ध है। वह छोड़कर नहीं जाओगे। अपनी मातृभूमि को नहीं छोड़ना है। अधर्म युद्ध के खिलाफ जो धर्म युद्ध छिड़ा है उसे देखने के लिए यहाँ उसे रहना है। इस सत्य का साक्षी होना विषमता, अकेलापन, असमानता के अंधकार में हिरण्यकशियपु यहाँ का निरंकुश राजा बना है। अपनी शक्ति से नहीं हमारी कमजोरियों से बना है। आर्य, अनार्य, जाति ध र्म, आपसी फूट, ऊँच नीच, सवर्ण, शूद्र के भेद में से आया है यह तानाशाह।[4] यह सुनकर हुताशन को अतीव आश्चर्य होता है कि प्रहलाद को इतना विश्वास है, इतनी आस्था है।

---

१. नरसिंह कथा, पृ० २३
२. वही पृ० २६
३. वही पृ० ३१
४. वही पृ० २७

हुताशन – तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आती हैं, पर मैं विश्वास नहीं कर पाता।

प्रहलाद – क्योंकि तुम्हारे पास अपना अर्जित किया हुआ विश्वास नहीं है।

हुताशन – तुम कहो, मैं हिरण्यकशियपु की हत्या कर सकता हूँ।

प्रहलाद – मैं कहूँ, कल कोई कहेगा प्रहलाद की हत्या कर दो, तुम कर डालोगे। कोई कहेगा तुम आत्म हत्या कर लो। तुम वह भी करोगे।

हुताशन – मेरे पास जो है, वही मेरी शक्ति है।

प्रहलाद– पर अपना कोई अर्जित विश्वास है।[1]

४. अस्तित्व की अनुभूति :-

हुताशन शूद्र जाति का था जिन्हे पग–पग पर अपमान का दंश सहना पड़ता था। या तो ऐसे व्यक्ति समाज में रहकर अपने अस्तित्व को, अस्मिता को, अपनी पहचान को खो देते हैं, और पशुवत जीवन यापन करने को विवश होते हैं, या विद्रोही बनकर समाज से असम्प्रक्त होकर टूट जाते हैं। हुताशन समाज छोड़कर जंगल बसने चला जाता है, जहाँ से प्रहलाद उसे वापस लाकर देश, समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करता है। यद्यपि हुताशन को प्रहलाद की अहिंसात्मक कार्य पद्धति पर विश्वास नहीं है तथापि वह उसके साथ रहकर सामाजिक बोध का अनुभव कर अपने अंश का करणीय कार्य करने के लिए तत्पर हो जाता है। तभी उसके मन अपनी अपिता के प्रति जिज्ञासा पैदा होती है।

हुताशन – पर मेरा अपना अस्तित्व है

प्रहलाद – किन्तु अस्तित्व की अनुमति नहीं है। जिसे अपने स्वतंत्र अस्तित्व की अनुभूति होती है वह देश, समाज, घर, बाहर, भीतर की समस्याओं प्रश्नों का सामना करते हुए भी अपने अन्तस में सबसे मुक्त रहता है। सबके बीच में रहता हुआ भी अपने आप में अकेला।[2]

---

१. नरसिंह कथा, पृ० २७

२. वही पृ० २८

तात्पर्य यह है कि वैयक्तिक या अस्तित्व बोध के लिए संघर्ष करते व्यक्ति को यदि अपने अहम् का दमन करना पड़ा तो वह मूलरूप से इगो प्रधान व्यक्तित्व बन जाता है। जिसके अचेतन मन में ऐसा भाव दमित होकर सुप्त रहता है और अवसर पाते ही वह अपने मूल भाव को प्रकट करता है। शूद्रत्व के कारण अपमानित हुताशन यह समाज छोड़कर पशु तुल्य होकर जंगल में रहकर स्वतंत्रता का अनुभव करता है। प्रहलाद हुताशन को बताता है, कि हिरण्यकशिपु ने अपने चतुर्दिक सुरक्षा का ऐसा कवच/जाल बना रखता है, कि उसे भेदन/नष्ट करना कठिन है, लेकिन असम्भव नहीं है। शम्बर के कहने पर हुताशन पशुत्व जैसी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

हुताशन – सुन लो प्रहलाद। तुम कहते हो मैं नगर में क्यों नहीं रहता। सच्चाई से भागकर जंगल में जा छिपा हूँ। मेरा सत्य है कि वही वाराह बनकर इन सबका रक्त पी जाऊँ। मैं घृणा करता हूँ तुम्हारे अंधे राज्य से। मैं थूकता हूँ, तुम्हारी निरंकुश शक्ति पर। तेरी शक्ति हिंसा है। याद रखना हम अनार्य, शूद्र, दलित भूखे नंगे एक दिन बाराह बनकर तुझ पर टूट पड़ेंगे।[1]

हुताशन हिरण्यकशिपु के घेरे को तोड़कर बाहर निकल जाता है। उसके रक्षक हुताशन को नहीं पकड़ पाते।

विचारक – हुताशन को विश्वास था, कि हिरण्यकशिपु किसी न किसी स्थिति में प्रहलाद का अनिष्ट करेगा इसलिए जंगल भागकर छिपकर गतिविधियाँ देखता रहा।

हुताशन – मैं फिर जंगल नहीं गया। यहीं छिपा सब कुछ देखता रहा। सोचता था, हिरण्यकशिपु की अपार शक्ति के सामने कहीं कुछ नहीं होगा फिर सोचने लगा हिंसा का जवाब हिंसा है, पर देखा हिंसा और दमन तो हिरण्यकशिपु के साधन है। यह उसी पक्ष में जायेगा फिर मैं तटस्थ हो गया। दूर खड़ा सब देखने लगा,

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ३५

जैसे दर्शक देखता है। तटस्थ और निस्संग। कहीं कोई मुझे देख न ले, मैं तरह-तरह के रूप बदलता रहा।[1] हुताशन के खोजते जय विजय वज्रदन्त के जाल में फँस जाते हैं। जैसे ही उन्हें प्राण दण्ड देने की तैयारी होती है, कि हुताशन आकर उनकी रक्षा करता है। वज्रदंत हुताशन को प्रलोभन देता है किन्तु वह प्रकट होकर उनकी रक्षा करता है। वह वज्रदंत कोधिकृत करता हुआ कहता है, कि मैं मनुष्य नहीं जंगल का पशु हूँ। जानते हो पशु क्या होता है, उसे कौन बनाता है? वह अपनी आजादी के लिए कहाँ रहता है? कैसे रहता है? तूने हमारे गणतंत्र प्रधान अभ्य लिच्छु की हत्याकर हिंसा और दमन का जो राज शुरू किया वहाँ मनुष्य बने रहना असम्भव था और आजादी की कल्पना करना भी अपराध था।[2] कोई मनुष्य भ्रष्ट है, मूल्यहीन है, इसलिए उसकी हत्या कर दी जाए।[3] जैसे मनुष्य में उसकी आत्मा होती है, वैसे ही तंत्र में उसका मूल्य होता है। जैसे आत्मा हर शरीर में साथ नहीं होती, उसे अर्जित करना होता है। अपने कर्मो से विश्वासों से उसी तरह तंत्र के मूल्य भी पैदा करने होते हैं, अपने जीवन से, अपने रक्त से। वह द्वन्द्व युद्ध में वज्रदंत की हत्या कर देता है।[4]

हुताशन प्रहलाद को सावधान करता है कि इस बार हिरण्यकशिपु स्वयं उसका वध करेगा। इस प्रकार हुताशन वनस्पति नहीं पशु नहीं अपितु सबका योग नरसिंह है और इसी भावना के ज्वार वह हिरण्यकशिपु का वध कर प्रहलाद की रक्षा करता है।

ढुंढा :-

यह नरसिंह कथा नाटक की स्त्री पात्र है। पौराणिक रूप में इसे होलिका कहा गया है। किंवदन्ती यह है कि होलिका आग में जलती है। अतः हिरण्यकशिपु हारकर अन्त में उसे आदेश देता है कि होलिका प्रहलाद को अपनी गोद में बैठाकर

---

१. नरसिंह कथा, पृ० १३२
२. वही पृ० १३४
३. वही पृ० १३५
४. वही पृ० १३५

जलती आग में प्रवेश करें किन्तु यहाँ परिणाम विपरीत दिखाई देता है। होलिका जल जाती है प्रहलाद बच जाता है। नाटककार ने इसका प्रतीकात्मक अर्थ प्रयुक्त किया है। इस रूप में यह अस्वाभाविक पात्र प्रतीत होती है। इसकी व्याख्या बाद में की जायेगी। यहाँ नरसिंह कथा नाटकगत उसके बाह्य क्रिया कलापों की चर्चा की जा रही है।

१. अग्नि में न जलने की विशिष्टता :-

हिरण्यकशिपु प्रहलाद को हर प्रकार से प्रताड़ित कर निराश हो गया, तब उसे अन्तिम उपाय डुंडा सूझा।

हिरण्यकशिपु- अब इसका और जिन्दा रहना खतरनाक है। सुन अब तू भस्म होने जा रहा है। बता तेरी अन्तिम इच्छा क्या है? हम अपनी आँखों से वह दृश्य देखेंगे। मेरी डुंडा बहन प्रहलाद को अपने अंक में लेकर जलती हुई चिता में बैठेगी। प्रहलाद जलकर भस्म होगा। डुंडा पर आग का कोई असर नहीं होगा।

जय - डुंडा बहन को ऐसा वर प्राप्त है।[1]

नाटककार हिरण्यकशिपु द्वारा इसकी नयी व्याख्या कराता है।

हिरण्यकशिपु - घर की बात मूर्ख जनता ने प्रचारित कर दी है अपने अंधविश्वास से। पर सच बात यह है कि डुंडा को एक औषधि ज्ञान है। शरीर भर में उसके लेपन और निश्चित मात्रा में उसके सेवन से अग्नि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।[2]

नाटककार में डुंडा के चरित्र में एक नई आग की परिकल्पना प्रस्तुत की है जो उसे अस्वाभाविक पात्र/चरित्र बना देती है। बाहर की आग से दूसरी आग होती है विषय वासना की। इसी दहकती आग में डुंडा बैठती है। बाहर से उसका जलना नहीं दिखाई देता। यह आग भीतर की है। जैसे ही कोई उसकी वासना को छू देता है वह जलने लगता है। यहाँ प्रश्न उठाया जा सकता है कि शारीरिक

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ११४

२. वही, पृ० ११५

या रक्त सम्बन्धों की दृष्टि से डुंडा प्रहलाद बुआ जी (पिता की बहन है। क्या पिता या बुआ विषय वासना का अस्त्र के रूप में प्रहलाद पर करेंगी ? सामाजिक वर्जना या इसे अगम्यागमन की श्रेणी में पाप माना जाता है। डुंडा प्रहलाद पर इसका प्रयोग कर अपनी आत्महत्या ही करती है क्योंकि विषयासक्त के आमंत्रण को बीतरागी जब अस्वीकार कर देता है तब नारी के पास दूसरा कोई उपाय शेष नहीं बचता। प्रहलाद निर्विकार युवक था अतः डुंडा को ही अपनी वासना की आग में जलकर मरना पड़ा। विदूषक इसी मनोविज्ञान की बात कहता है, कि डुंडा को घमंड है, हिरण्यकशिपु की बहन होने का। जिस दिन डुंडा किसी से विषयाधीन होगी और वासना का उसे विश्वासघात मिलेगा उसी दिन अपनी आग में वह खुद जलेगी।[1]

कामावेग एवं वासनातुर डुंडा भागती हुई महारक्षक से बचाने की याचना करती है। डुंडा अपमानित होकर कहती है।

डुंडा – मैं अपमान से जली जा रही हूँ। प्रहलाद को आग में जलाकर मैं भस्म नहीं कर सकी– इस अपमान से खुद जली जा रही हूँ। मैंने कभी जलना नहीं जाना केवल जलाया।[2]

वह महारक्षक से प्रणय/वासनापूर्ति का आग्रह करती है। वह कहती है कि मैंने तुम्हें अपने हाथों बन्दीगृह से मुक्त किया। मैं तुम्हें पूर्णरूप से सदा–सदा के लिए पाना चाहती हूँ। मैं तुम पर तन, मन, धन से न्यौछावर हूँ। मुझे अपना प्यार दो, विश्वास दो, नहीं तो मैं जलकर राख हो जाऊँगी।[3] महारक्षक स्पष्ट कहता है कि अपने रूप, पद, ताकत के अहंकार में रहने वाली यही तो मैं चाहता हूँ कि तू विषय–वासना की आग में जलकर राख हो जा। इसीलिए तो मैंने प्रेम का नाटक किया। चली थी प्रहलाद को आग में जलाकर मारने। अब खुद जल अपनी भयानक आग में। जिसमें इतनी हिंसा, इतना शाप और क्रोध, उस स्त्री से कोई

१. नरसिंह कथा, पृ० ११५
२. वही, पृ० ११६
३. वही पृ० ११७

प्रेम नहीं कर सकता। जल रही है अपनी ही आग में डुंडा। वासना की चिता में धू-धू कर जल रही है। विषय की अग्नि की लपेट में जलकर राख हो रही है। अहंकार की लपटें चारों तरफ फैली हैं, बीच में जल रही है होलिका डुंडा राख हो रही है।[1]

कहना नहीं होगा कि नाटककार ने पौराणिक इतिवृत्त की रक्षा तो की ही है। कामावेग के कारण नारी की क्रूर, असामाजिक कृत्यों की चर्चा कर एक नयी आग की परिकल्पना कर डुंडा के चरित्र को प्रस्तुत की है। यद्यपि प्रहलाद के लिए काम-अस्त्र का प्रयोग प्रतिनिषिद्ध कहा गया है इसीलिए डुंडा का चरित्र अस्वाभाविक कोटि में आता है।

श्रीमती सुधा सिन्हा :-

सुधा सिन्हा हँसने वाली लड़कियाँ नामक प्रहसन की प्रधान स्त्री पात्र है। वह अभिजात्य वर्ग से सम्बन्धित है। अपने के सामने स्थित पीपल के पेड़ से बहुत चिढ़ती है, क्योंकि उसमें पक्षियों का कलरव अहर्निश होता रहता है। वह अपने प्रतिवेशियों से सामंजस्य नहीं स्थापित कर पाती क्योंकि वे सब मध्यवर्ग की है। अपने पुत्र अरविन्द को प्रशासनिक अधिकारी बनाना चाहती है अतः वे उसे सदैव पढ़ने के लिए कहती रहती है, जबकि अरविन्द घर के बाहर पेड़ के नीचे बैठकर प्राकृतिक परिवेश में पढ़ना चाहता है, क्योंकि वहाँ पूनम और शोभ हँसती खेलती रहती हैं। सुधा सिन्हा के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताओं का अंकन नाटककार ने किया है -

अतिशय महात्वाकाँक्षिणी :-

सुधा सिन्हा के पति सरकारी अफसर हैं अतः वे अपने पुत्र को भी प्रशासनिक अधिकारी बनाना चाहती है। वह चाहती हैं कि अरविन्द सदैव घर अन्दर बन्द रहकर अपनी तैयारी करें।

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ११६

सुधा – तुम्हें आई0ए0एस0 कम्पटीशन में बैठना है।[1] किन्तु अरविन्द का मन घर मे नही लगता। नीलिमा उसे कैदखाना समझती है।[2] इस अतिशय महत्वाकांक्षा के कारण वह अपने पति पर भी रोब–दाब बनाये रखना चाहती है।

सुधा – मिस्टर सिन्हा...... कम हियर। नो नो नाट दिएर........कम हियर।[3]

अहंवादी – चरित्र चित्रण वाले अध्याय में लिखा जा चुका है कि कुंठित व्यक्ति अपनी हीन भावना को छिपाने के लिए ऐसा प्रयास करता है, कि दूसरों की दृष्टि में वह सर्वश्रेष्ठ है। श्रीमती सुधा सिन्हा अभिजात्य वर्गहीन की हीन भावना से ग्रस्त है। अतः वह अपने घर की कमियों को छिपाकर रखना चाहती है, इसे वे प्राइवेसी कहती है। पूनम, शोभा, नीलिमा के कहकहों, संगीत गायन को सुनकर वह कहती है।

सुध – इतना शोर यहाँ कि साँस लेना मुश्किल कर दिया। कोई प्राइवेसी नहीं। हर वक्त इस पीपल के पेड़ पर चिडियाँ, चाँय–चाँय करती रहती हैं।

पूना – शोभा– नीचे हम लड़कियाँ...........

सुधा – हुअँ। ऐसे ऐरे गैरे के मुँह नहीं लगना चाहती। (अरविन्द से) यहाँ क्यों खड़े हो ? जाओ अन्दर पढ़ाई करो। उधर क्या देख रहे हो ? अन्दर जाते हो या नहीं ?[4]

वह अरविन्द को अन्दर खींच कर ले जाती है। नीलिमा से कहती है ये 'फेमिली' हमारे लिए बहुत बड़ा डिस्टरबेंस है। यहाँ का सारा माहौल, ये पीपल का पेड़, मेरी प्रायवेसी को डिस्टर्व करता है यू नो'

नीलिमा – आप इतनी प्राइवेसी क्यों रखती है ?

सुधा – वो जरूरी है। किसी की शादी करा दूँ; किसी की नौकरी लगा दूँ, आई

---

१. हँसने वाली लड़कियाँ, पृ० २५
२. वही पृ० २७
३. वही पृ० ४६
४. वही पृ० २२

एम नाट मिडिल क्लास इडिएट'[1] नाटककार ने इस 'प्राइवेसी की व्याख्या नीलिमा के माध्यम से किया है।

नीलिमा – मिसेज सिन्हा, आप इस कदर घबड़ाई क्यों रहती है? मेरा मतलब नरवस........[2]

सिन्हा – बात क्या है?

नीलिमा –जैसे आपको कुछ पता ही नहीं। आपके घर के भीतर जो हो रहा है. ...

सिन्हा – क्या हो रहा है?

नीलिमा – आपको पता होना चाहिए।

सिन्हा – ऐसा क्या हो रहा है?

नीलिमा – मर.......मर.......मरडर[3]

दाम्पत्य सुख से वंचित :-

ऊपर कहा जा चुका है कि सुधा सिन्हा बर्हिमुखी अहंवादी व्यक्तित्व प्रधान महिला है। दंभ, बाह्य प्रदर्शन पर विश्वास रखने वाली सुधा सिन्हा का दाम्पत्य जीवन सुखद रूप में नहीं चित्रित हुआ है क्योंकि वे अपने पति पर शासन करने वाली दबंग पत्नी है। श्री शारदा प्रसाद सिन्हा म्यूनिशिपल कारपोरेशन में हेल्थ सेक्रेटरी हैं। अतः दवा की भरपूर सुविधा उन्हें मिलती हैं। चाकू के कारण नीलिमा, श्री खण्डे भयभीत हो जाते हैं। तभी सिन्हा आकर उनसे बात करता, जो सुधा को पसन्द नहीं है कि छोटे लोगों से बात करने में पद की गरिमा नष्ट हो जायेगी। वह अपने पति को डाँट्कर उनका नाम लेकर आज्ञा भाव से भर अंदर जाने को कहती है।

---

१. हँसने वाली लड़कियाँ, पृ० २६-२७

२. वही पृ० २५

३. वही पृ० ३३

सुधा – मिस्टर सिन्हा

सिन्हा – यस सर। जी हुजूर।

सुधा – एस0पी0...............शारदा प्रसाद सिन्हा

सिन्हा –मुझे पूरे नाम से किसने पुकारा........ शारदा प्रसाद सिन्हा, शारदा प्रसाद सिन्हा वल्द परमेश्वरी प्रसाद सिन्हा वल्द ठाकुर प्रसाद सिन्हा वल्द.......... ये कैसे सुधा सु.......धा।

सुधा – सुधा ....ये मेरा ही नाम है?

सिन्हा– हाँ हाँ हाँ शारदा प्रसाद मेरा नाम।

सुधा – शारदा, ...शारू। तुम अब तक कहाँ थे?

सिन्हा – व्याह, नौकरी, दफ्तर। यस सर।

सुधा – यहाँ आकर मैं प्रिंसिपल, तुम अफसर। तूने मुझे याद क्यों नहीं दिलाया। मुझे भूल कैसे गये। मैं तेरी जान लेकर रहूँगी।

तात्पर्य यह है कि श्रीमती सुधा सिन्हा न तो अच्छी पत्नी बन सकी न ही अच्छी समझदार गृहिणी। उनका मातृरूप भी प्राक्तन परम्परा के अनुरूप नहीं है। वे अपने बेटे अरविन्द पर अपनी महत्वाकांक्षा का आरोपण उसे आई0ए0एस0 बनाना चाहती हैं। अपने पुत्र पर अनेंक पाबन्दियाँ लगाकर उसके व्यक्तित्व का स्वच्छन्द विकास नहीं होने देना चाहती हैं वे आधुनिका बनकर अपने पद, प्रतिष्ठा की गरिमा के मद में चूर रहती हैं। वे आकस्मिक कुंठित नारी पात्र हैं।

सप्तम् अध्याय

अध्याय - ७

लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों के पात्रों का सामाजिक वर्गीय रूप

अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति की सूक्ति में प्रजापति सृष्टि निर्माता ब्रह्मा के समान कवि को कहा गया है। जिस प्रकार इस दृश्यमान जगत् का निर्माता, नियामक, नियन्ता ईश्वर है, उसी प्रकार कवि साहित्यकार भी अपनी रचना में एक नूतन संसार की सृष्टि करता है। ईश्वर की रचना जिस प्रकार विभिन्न रूप- रंग, आकार, प्रकार खान-पान, वेशभूषा, आचार, व्यवहार, रीति नीति में परस्पर विभिन्न होती है, उसी प्रकार कवि निर्मित साहित्य में प्रतिविंबित समाज भी अनेक रूप में होता है, किन्तु दृश्यमान् जगत् का ही किंचित्, परिवर्तित, परिवर्धित रूप ही होता है। इसीलिए साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है। ईश्वर रचित संसार में यह समाज और उसके नियामक तत्त्वों का उल्लेख लिखित रूप नीतिशास्त्रों/धर्म ग्रन्थों या लोक परम्परा में प्राप्त होता है, उसी प्रकार साहित्यकार रचित, काव्य/साहित्य में बिंबित समाज भी किसी न किसी नियमों से परिचालित होता है। साहित्यकार जिस समाज की रचना करता है, उसमें सामाजिक वर्गीय रूप हमारे दृश्यमान जगत् की तरह होते हैं।

डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में समाज दो रूपों मे विभक्त है – पुरूष एवं स्त्री। पुरूषों के सामाजिक वर्गीय रूपों में पिता, पुत्र, भाई, अन्य सम्बन्धी मित्र सहायक तथा स्त्री रूपों में पत्नी, माँ, पुत्री बहन, इत्यादि रूपों में चित्रित है। चरित्र चित्रण करते समय संक्षिप्त रूप में उनके इन वर्गीय रूपों पर भी दृष्टिपात डालना, प्रासंगिक होगा, क्योंकि इन स्वरूपों की नीति, धर्म, समाज शास्त्रों में एक निश्चित भूमिका है। इनके तद्विषयक कर्त्तव्य कर्म कहे गये हैं, जिनके माध्यम से इनका परिवेश बनता है, और चरित्र का वर्गीय रूप भी विश्लेषित किया जा सकता है।

पिता :-

भारत में पितृ सत्तात्मक समाज होने के कारण यहाँ पिता परिवार का प्रमुख या मुखिया माना जाता रहा है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में पिता के

परम्परित एवं आधुनिक पिता के पापा, दर्पन, कलंकी, नरसिंह, कथा, सूर्यमुख, इत्यादि नाटकों में पिता के अच्छे बुरे, रूपों का चित्रण किया गया है। मादा कैक्टस के दद्‌दा अपने पुत्र अरविन्द को सुखी देखना चाहते हैं। अरविन्द ने विवाहिता का परित्याग कर समान विचारधारा वाली आनन्दा के साथ बिना विवाह किए अपना जीवन व्यतीत करना चाहता है जब कि दद्‌दा चाहते हैं अरविन्द आनन्दा से विवाह कर स्थायी जीवन व्यतीत करे। आनन्दा को देखकर वे कहते हैं 'आनन्दा आनन्दा जी' आओ-आओ यहीं अजाओ बेटी इतमीनान रखो में चला जाऊँगा यहाँ से। आ हा. ... हा.... क्या जोडी रची है ईश्वर ने पता नहीं मेरा जीवन कब सुफल होगा। ओह ओ खाँसी तो आ रही है। इसे क्यों नहीं छिपाती।[1] पुत्र अरविन्द से वे आग्रह करते हैं कि (यदि विवाह कोई पुराना घरौंदा है) तो उस पुराने घरौंदे को मिटा कर कोई मजबूत चीज बना लो, नायाब और शानदार, पर बना लो जरूर उसे मिटने न दो।[2] अरविन्द के प्रत्युत्तर को सुन वे हतप्रभ हो जाते हैं। उनकी कामना है कि उनका पुत्र स्थायी गृहस्थी बनाकर रहे। वे विवश होकर कहते हैं कि आपको सारे सोशल स्ट्रक्चर पर विश्वास नहीं, सारे ट्रेडीशन को आपने तोड़ा। पुराने मॉरल वैल्यूज को आपने ठीकरा समझ लिया। फिर आपके पास क्या है, जिसके सहारे आप जियेंगे और अपनी कलाकृतियाँ तैयार करेंगे।[3] दद्‌दा ने अपने पुत्र अरविन्द का लालन-पालन बड़े चाव से किया था। वह इकलौता पुत्र है। अतः पिता का वात्सल्य और दूसरी ओर विवशता का दंश उनमें दिखाई देता है।

दद्‌दा - सुधीर बेटे आज मन बड़ा दुःखी है। हाँ गंगाराम मेरी एक सुजाता बेटी है, तेरे साहब की धर्म पत्नी। हाँ धर्मपत्नी आज वह मुझे बेहद याद आ रही है। लगता है वह मेरे सामने चल रही है। मानो अभी-अभी वह यहाँ आई थी[3] अरविन्द के व्यवहार के कारण वह विवश है -

---

१. मादा कैक्टस, पृ० ३७

२. वही पृ० ४७

३. वही पृ० ५६

दद्दा – नहीं डाक्टर साहब, इस समस्या से मैं अपने को बिल्कुल अलग पाता हूँ, यह तो आपके बुलाने से मैं यहाँ आया हूँ, वरना मैं यहाँ कभी नहीं आता आज करीब छह साल हुए जब इन्होंने अपनी पत्नी सुजाता को छोड़ा था तब इन्होंने मुझसे अपनी सफाई देते हुए कहा था दद्दा जी, जबसे सुजाता से मेरा विवाह हुआ था तब से मुझे लग रहा है कि मैं रिक्त होता जा रहा हूँ। मेरी सारी प्रतिभा, रचनात्मक शक्ति क्षीण होती जा रही है, डाक्टर साहब उसी दिन से मैं इस अरविन्द से जैसे टूट गया और फिर कभी नहीं मिला इससे। वैसे डाक्टर साहब मेरा यह लड़का हिन्दुस्तान में अकेला है, इसकी प्रतिभा और कला को लोग पूजते हैं। डाक्टर बाबू कैसे कहूँ आपसे, बहुत बड़ा अपराधी अनुभव कर रहा हूँ अपने आपको। विवाह तो शायद अरविन्द नहीं करेगा। आज रात की गाड़ी से मैं निश्चय ही घर वापस चला जाऊँगा।[1]

इसी नाटक में आनन्दा के पिता डाक्टर हैं। उन्होंने अपनी पुत्री पर किसी प्रतिबन्ध नहीं विकसित होने दिया है। किन्तु कन्या–सम्प्रदान से ग्रस्त कौन पिता निश्चिन्त होकर सो सकता है। उन्होंने आनन्दा और अरविन्द के प्रेम को भी देखा है। दामाद के रूप में उन्हें अरविन्द पसन्द भी है अतः उन्होंने अरविन्द के पिता दद्दा को बुला लिया है तथा विवाह के लिए प्रयास भी प्रारम्भ किया। उनकी लाड़ली बेटी बाहर लान में लेटी थी, पिता के कहने पर भी अन्दर नहीं आई। अतः बीमार पड़ गई। इस कारण कुछ रूष्टता भी दिखाते हैं। आनन्दा के देर तक बाहर रहने पर चिन्तित हो जाते हैं। वे आनन्दा की शिकायत दद्दा से करते हैं।

डॉ० पापा – बुखार सिरदर्द को तो वह कुछ समझती ही नहीं। कहती है, यह भी कोई बीमारी है। बुखार रात को सोकर काट लिया, सिरदर्द सुबह ठीक।[2] उन्हें अपनी बेटी पर गर्व भी है। वे कहते हैं फर्स्टक्लास फर्स्ट एम०ए०, यूनिवर्सिटी में लेक्चरार, चित्रकला संगीत कला की पुजारिन, लेकिन स्वभाव से बिल्कुल बच्ची है। कुछ मना

---

१. मादा कैक्टस, पृ० ६४–६६
२. वही पृ० ६२

करो, कुछ सलाह दो, कहीं कोई कडी बात कह दो, तो बेतरह रूठ जायेगी। रोयेगी, खाना-पीना छोड देगी।[1] उक्त कथन में पिता का वात्सल्य छलक रहा है।

डॉ0 पापा को विश्वास है कि अरविन्द और आनन्दा दम्पती बन जायेंगे। वे कहते हैं मेरी आनन्दा कोई अज्ञानी लड़की नहीं। अपने ही अनुकूल उसने अरविन्द को पाया। अब शुभ इसी में है कि जल्दी से जल्दी दोनों का विवाह हो जाए। अब तक मैं कभी भी पांडिचेरी चला गया होता, पर मन की एक मात्र यही लालसा शेष है कि आनन्दा के पाँव पूजूँ।[2]

डाक्टर पापा को दद्दा जी से ज्ञात होता है कि अरविन्द आनन्दा विवाह तो नहीं करेगा, तब उनकी वेवशी इस प्रकार व्यक्त होती है अपने व्यक्तित्व का प्रभाव अरविन्द ने आनन्दा पर भी बुरी तरह डाल रखा है। वह भी कहती है कि क्या हम दोनों विवाह से ऊपर उठकर सच्चे दोस्त और सहयोगी की तरह एक संग नहीं रह सकते। पर मैं इसे बिल्कुल नहीं मानता।[3] अंत में वे दद्दा से प्रार्थना करते हैं कि वे दद्दा से इतना चाहता है कि कि अरविन्द उनकी आनन्दा को छोड़ दे। वे उसके पैर पड़ते हैं कि उनकी बेटी को मुक्ति दे दें। उनके इन आचरणों से वे अपमानित कर रहे हैं।[4] दद्दा की स्थिति यदि ग्रामीण परिवेश की है, तो डाक्टर पापा की शहर की। दोनों पिता अपनी सन्तानों का लालन पालन उचित रूप से करते हैं। उनके व्यक्तित्व के विकास में सहायक बने किन्तु विवाह की दृष्टि से दोनों पिता परम्परित रूप में ही दिखायी देते है।

पितृ रूप वात्सल्य, संरक्षक का पर्यायवाची होता है, किन्तु कभी-कभी अंध विश्वास रूढ़िवादिता के कारण पितृ रूप क्रूरता अमानवीयता भी दिखाई देती है। दर्पन नाटक में पूर्वी के पिता अपनी कन्या को कुछ भयवश, कुछ रूढ़ि पालन में तत्पन

---

१. मादा कैक्टस, पृ० ६३
२. वही पृ० ६५
३. वही पृ० ६५
४. वही पृ० ६६

होने के कारण बौद्ध मठ में दान कर देते हैं।

पूर्वी :- ऐसा हुआ कि जब वह तीन साल की थी, तभी हमारे परिवार के गुरू ने उसकी जन्मपत्री बनाई। उसकी जन्म पत्री अद्भुत थी। मूल नक्षत्र में जन्म, आठवें में मंगल, तीसरे में राहु, चौथे में केतु, सातवें पर शनि, सिर पर उसके तीन लटें थी, त्रिशूल लट, ढाई, बाँह पर चन्द्रमा और कमल का चिन्ह। गुज महाराज ने बताया- लड़की घर परिवार में रखने योग्य नहीं है। इस बौद्ध मठ में दे दिया जाना चाहिए, नहीं तो इससे पूरा परिवार का अमंगल होगा, और इस तरह से वह दर्पन पांच वर्ष की अवस्था में ही बौद्ध मठ में दान कर दी गई।[1]

इसी दर्पन नाटक में हरिपद्म के पिता पुराने विचारों के हैं। हरि पद्म ट्रेन में पूर्वी नामक अपरिचित युवती से मिलता है और आगे चल कर उससे विवाह की भावना अपने परिवार में व्यक्त करता है। जैसा आम परिवारों में इसका विरोध होना अपेक्षित है, वैसा ही विरोध हरिपद्म के पिता ने किया। उनकी दृष्टि में यह युवती अज्ञात कुलशील वाली है।

पिता जी- क्या यह सच है, कि कल तुमने युनिवर्सिटी में दोस्तों के बीच पूर्वी के संग अपने इंगेजमेन्ट की बात की है।

हरिपद्म - इसमें बुरा क्या है, पिताजी। मैने पूर्वी से अपने ब्याह के लिए, आज दो महीने सबसे पहले आपसे ही कहा था।

पिताजी - पर मैं एक गलत चीज के लिए अपने बेटे को कभी अपनी अनुमति नहीं दे सकता। जिस लड़की के कुल-शील का पता नहीं। उससे तुम अपना ब्याह करना चाहते हो? मैं अपने जिन्दा रहते तम्हें यह शादी नहीं करने दूँगा। मैने तुम्हे माँ और बाप दोनों बन कर पाला है, इस तरह कि जैसे कोई अपना स्वप्न पालता हो।[2]

इंगेजमेन्ट की सूचना अखबार में सचित्र निकली इससे पिता का मन बुरी तरह से

---

१. मादा कैक्टस पृ० ४६-५०

२. दर्पन पृ० १५

आहट हुआ।

पिता जी :- तुम्हे अपनी इज्जत आबरू का जरा भी ख्याल नहीं। जिन्दगी भर की मेरी सारी कमाई तुम इस तरह मिट्टी में मिलाना चाहते हो। तुम्हारे इस फैसले में मैं कभी नहीं हूँ। एक अनजान लड़की रेल की यात्रा में मिल गई। जरा-सी प्रेम की बातें हो गई। बस उससे शादी तय। न लड़की के कुल, शील का पता, न उसके खानदान के बारे में पता, न उसके माँ-बाप से भेंट, बस बीच में खिचड़ी पक गई। जैसे कोई खेल है यह। कहाँ यह पूर्वी, जैसा कि तुम मुझे बताते हो, क्षत्री की लड़की, दार्जिलिंग की रहने वाली, और कहाँ कम कायस्थ बनारस के रहने वाले। यह सब क्या तमाशा है। जवानी में इस तरह भेंट- मुलाकात तो हुआ ही करती हैं, चाहे वह ट्रेन हो, चाहे बस हो और कभी-कभी तो पैदल ही मुलाकातें हो जाती हैं।[1] बाद में हरिपद्म के पिता जी पुत्र के आग्रह पर विवाह की स्वीकृति दे देते हैं। यद्यपि यह स्वीकृति विवशता जन्य है। तात्पर्य यह है कि डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के रचना संसार में प्राक्तन विचारों, रूढ़ियों पर विश्वास करने वाले पिता की संख्या अधिक है। उनमें वात्सल्य, संरक्षण, पुत्र की सुख सुविधा पर ध्यान रखने वाले पिता रूप में दिखाई देते हैं। हर पिता की यह आकांक्षा होती है कि उसका पुत्र अधिकारी बने। नाम यश, धन-वैभव से सम्पन्न हो। मिस्टर अभिमन्यु में राजन के पिता ऐसे ही रूप में दिखाई देते हैं। इतना अवश्य है कि राजन त्याग पत्र देने का विचार व्यक्त करता है तो पत्नी एवं उसको दुनियादारी की बाते सिखाते हैं। तथा राजन जिन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का निर्णय लेता है, उन्हीं व्यक्तियों से उसके पिता का परिचय है अतः स्वाभाविक रूप से पिताजी उस पर दबाव डालते हैं।

पिता - क्या बयान करूँ। वकालत खाने से घर पहुँचा ही था, केजरी वाल का मिल का मैनेजर गाड़ी लिए हुए दरवाजे पर हाजिर। उसने जो रिपोर्ट दी मैं घबरा गया। कहा मैं खुशियाँ मना रहा था, मेरा रज्जन कलेक्टर से कमिश्नर हो गया। मैंने वहाँ

---

१. दर्पन, पृ० २१-२२ एवं २५

के लोगों को दावतें दी........ और एकाएक कल यह खबर आयी कि यह नौकरी से इस्तीफा दे रहे हैं, मेरे पैर की नीचे से जैसे जमीन खिसक गयी।[1] राजन के पिता उसे दुनियादारी की ऊँच-नीच बाते समझाते हैं।

पिता – तुम्हें भी वैसे ही करना चाहिए था। मेरा मतलब जैसा जमाना हो, उसी के मुताबिक चलना चाहिए। आखिर और लोग भी तो आए थे। वह बात और है कि तुम अपनी ईमानदारी और बेदाग हकूमत के लिए पूरे सूबे में मशहूर हो, यह मेरे लिए फख्र की बात है। मगर अब यह तुम्हारी शान के खिलाफ है कि एक मामूली बात पर ऐसी नौकरी से रिजाइन कर दो लोग क्या कहेंगे ?[2]

परिवार का मुखिया या संरक्षक होने के नाते पिता के पास सामाजिक दृष्टि से अनेक अधिकार होते हैं। ये अधिकार सत्ता प्राप्त करने की लालसा की वृद्धि करते हैं जब पारिवारिक मुखिया प्रभुसत्ता सम्पन्न है। नरसिंह कथा में हिरण्यकश्यपु ऐसा ही पिता है जो अपने को अमर, सर्वज्ञ, सर्वतंत्र, स्वतंत्र घोषित कर स्वयं को ईश्वर मानने के लिए प्रजा पर अत्याचार करने लगता है। सत्ता और जनता में छत्तीस का आंकड़ा होता है, क्योंकि अधिनायकवादी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को यह भय होता है कि कहीं प्रजा उसके प्रति अनास्थावान् न हो जाए। संयोग ऐसा है, कि इस नाटक में हिरण्य कश्यपु पिता एवं प्रहलाद पुत्र है और पिता को पुत्र से ही भय है, कि वह अपने स्वतंत्र विचारों से जन सामान्य को राजा के विरुद्ध दुष्प्रचार करता है। पिता पुत्र को अनेक प्रकार से प्रताड़ित करता है। ढुंडा की गोद में बैठाकर उसे भस्म करना चाहता है। असफल होने पर उसकी हत्या करने के लिए पुत्र प्रहलाद को अपने समक्ष उपस्थित होने का आदेश करता है।

हिरण्यकश्यपु :-

मेरा शत्रु प्रहलाद केवल मेरे हाथों से मरेगा, केवल मैं ही उसका वध कर सकता हूँ। मैं अवध्य हूँ। उसकी मौत का रहस्य मेरे हांथ में है।[3]

---

१. मिस्टर अभिमन्यु, पृ० ३
२. वही पृ० ७-८
३. नरसिंह कथा, पृ० १४२

यहाँ हम देख सकते हैं कि अधिनायकवादी प्रवृत्ति ने पिता को सत्ता के प्रति असीम आसक्ति ही नहीं दी वरन् वत्सलता, कोमलता की भी समाप्त कर दी है। एक अव्यक्त भय पिता को सता रहा है कि उसके अपने पुत्र से चुनौती मिल रही। आधुनिक युग में पीढ़ियों का अन्तराल कैशोर अवस्था जन्य विद्रोह पारिवारिक सम्बन्धों में सहज नहीं रहने देते। सत्ता में रहने का व्यामोह आत्मिक सम्बन्धों को काट देती है। इसीलिए पिता रूप में हिरण्यकश्यपु असफल पिता है।

पुत्र :-

सामाजिक वर्गीय रूपों में पिता के बाद पुत्र का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि ऐसी मान्यता है कि पुत्र द्वारा किए गए तर्पण/पिण्डदान से ही पिता को प्रेत-योनि से मुक्ति मिलती है। कहा गया है कि पुं नरकात् त्रायते पुत्रः। सामाजिक दृष्टि से ही भी पितृ-सत्तात्मक परिवार व्यवस्था में पुत्र ही पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। अतः परिवार में पुत्रों की महत्ता स्वतः सिद्ध है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने अनेक नाटकों में पुत्रों के परम्परित रूपों के साथ ही आधुनिक युवा मानसिकता युक्त पुत्रों का भी चित्रण किया या है। आधुनिक युग की सामयिक विचारधारा में पीढ़ियों का अन्तराल तथा उससे उत्पन्न वैचारिक मतभेद, पिता के प्रति प्रतीकात्मक अवज्ञा या विद्रोह से युक्त पुत्रों का भी चित्रण मिलता है। परम्परित रूप में आज्ञाकारी पुत्रों के रूप भी डॉ0 लाल यत्र-तत्र चित्रित किए हैं। मादा कैक्टस का अरविन्द, सुधीर, रातरानी का जयदेव, दर्पन का सुजान एवं हरिपदम कलंकी का हे रूप मिस्टर अभिमन्यु का राजन, सूर्यमुख का प्रदुम्मन संस्कार ध्वज का उत्तमा, एवं नरसिंह कथा का प्रहलाद हंसनेवाली लड़कियों का अरविन्द पुत्र में चित्रित है, जिनमें प्राक्तन, यथार्थवादी विद्रोही, त्यागी, अस्तित्व प्रधानता से युक्त पुत्रों का चित्रण से सहज ही स्पष्ट होता है कि नाटककार ने प्राचीन मूल्यों के साथ मनोविज्ञान के कारण आधुनिक भौतिकवादी विचारधारा से युक्त पुत्रों का चित्रण यथार्थ रूप में किया है।

प्राक्तन रूप में चित्रित पुत्रों में सुजान (दर्पन), हेरूप (कलंकी), उत्तमा

(संस्कारध्वज), प्रहलाद नरसिंह कथा आते हैं जिन्होंने पित्राज्ञा के समक्ष अपने आन्तरिक भावनाओं को दमित कर पिता के अनुकूल आचरण किया है, चाहे उसका परिणाम दुःखद ही रहा हो। दर्पन का सुजान बी०ए० में पढ़ता था, उस समय उसका प्रेम एक युवती से हो गया। पिता को जब ज्ञात हुआ तो उन्होंने उसे डॉटा, परिणाम स्वरूप अर्न्तमुखी सुजान ने अपनी भावनाओं का दमन किया। वह बीमार रहने लगा। यहां तक कि उसे बेहोशी के दौरे पड़ने लगे। अतिशय दमन के कारण ही उसकी यह दशा हुई।

पूर्वी :- अच्छा छोड़ो इन बातों को। तुम आज अपनी रची हुई कोई कविता सुनाओ।

सुजान :- (चुप रह जाता है) तुम्हे आज मैं सब बताऊँगा भाभी। हम दोनों बी०ए० में पढ़ते थे। विश्वनाथ जी के मंदिर में जाकर हमने कहा था– हमारा ब्याह होगा। और एक दिन यह पवित्र बात मैंने अपने पिताजी से बताई। पिताजी ने उल्टे उपमा के घर जाकर यह कह दिया कि हमारा यह विवाह कभी नहीं हो सकता। उसी वर्ष मेरी उपमा बीमार पड़ी और मुझे सदा के लिए छोड़कर........[1] परिणाम स्वरूप सुजान लकवाग्रस्त ही नहीं हुआ अपितु उसे फिट्स पड़ने लगे।

पिता :- लेकिन इधर जिस तरह से भयंकर फिट्स सुजान पर आ रहे हैं, इससे तो बस घबरा गया हूँ।[2]

बात यह है कि सजान अन्तर्मुखी व्यक्तित्व प्रधान पुत्र था। उसे पिता की आज्ञा के कारण मन को कोमल अनुभूतियों का इतना दमन किया कि वे फिट्स एवं लकवा के रूप में बाहर निकली इसी प्रकार कलंकी का हे रूप है। वह अपने पिता का आज्ञाकारी था। यद्यपि कुछ बातों में उसका वैचारिक मतभेद पिता से था। पिता ने उसे कैद कर अन्यत्र भेज दिया जहाँ, उसकी शिक्षा दीक्षा पिता के अनुरूप होने लगी। हेरूप स्पष्ट करता है पितू मुझे अपने हाथों से दण्ड देते थे और हर तरह से मुझे

---

१. दर्पन, पृ० ४३
२. वही पृ० १८

डराया जाता। माँ मेरे पक्ष में थी और मेरे पक्ष में उसे मर जाना पड़ा। मैं सम्भवतः ग्यारह वर्ष का हुआ। मेरी आँखों पर काली पट्टी बाँध दी गयी। मैं एक बंद रथ में डाल दिया गया। रथ चलने लगा। सहसा पितृ का स्वर मेरे कानों में टकराया सुनो नगरवासियों मैने अपने पुत्र हेरुप को विक्रम विहार में भेजा है तंत्र-विद्या का रहस्य जानने।[1]

संस्कार ध्वज में उत्तमा गजाधर का पुत्र है। गजाधर ग्रामीण जनता को शिक्षित, अधिकारों के प्रति सजग करने का प्रयास करता है। अतः वह राजा ठाकुर का कोप भाजन बनता है परिणाम स्वरूप संघर्ष में उसकी हत्या हो जाती है। उत्तमा अपने पिता के अधूरे कार्य को आगे बढ़ाता है। गाँव में गाँधी जी के विचारों का प्रचार करता है। स्वराज्य की चेतना उनमें जगाकर अपने पिता के कार्य को पूर्ण करता है। सत्याग्रह, उपवास, असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व करता है।[2] परिणामस्वरूप कत्ल, डाके के झूठे आरोप को ठाकुर षड्यंत्र कर उसे आजीवन कारावास की सजा देते हैं।

मादा कैक्टस का अरविन्द आधुनिक जीवन की समस्याओं से ग्रस्त पुत्र है। वह पिता का आदर तो करता है, किन्तु उसे अपना अस्तित्व खोना स्वीकार नहीं है। बात यह है कि आधुनिक युग की वैज्ञानिक उपलब्धियों, बौद्धिकता, आधुनिकता के कारण भारतीय संस्कृति तथा पाश्चात्य प्रभाव ने मानव को वैचारिक द्वन्द्व की स्थिति में ला खड़ा किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कि भौतिक सुखों की लालसा ने सामाजिक सम्बन्धों का ह्रास किया हैं। अरविन्द सुविख्यात कलाकार फाइन आर्ट्स का प्रिन्सपल है। पिता ने बड़े हर्ष उल्लास से उसका विवाह सुजाता से किया था, किन्तु अहं के कारण उसने सुजाता का परित्याग कर दिया। वह आनन्दा से प्रेम करने लगा। पिता चाहते हैं कि अरविन्द आनन्दा से ही विवाह कर लें, किन्तु अरविन्द को इस प्रकार की संस्था से ही घृणा है। अतः इन्हीं के कारण पिता-पुत्र में तनाव पैदा हो जाता है। पिता पुत्र के व्यवहार से क्षुब्ध होकर नौकर से कहते हैं कि तेरे साहब

---

१. कलंकी, पृ० ७-८
२. संस्कार ध्वज, पृ० १०३-१०८

के पास अगर वक्त नहीं है, किसी से मिलने का अगर जी नहीं है तो यहाँ झूठ का इतना बड़ा व्यापार क्यों चलता है। हिम्मत से बात क्यों नहीं कह देते।[1] पिता पुत्र में जीवन के प्रति दृष्टिकोंण को लेकर वैचारिक मतभेद सामने उभरकर आता है।

अरविन्द :- आप लोगों को जिन्दगी केवल सुन-सुनाकर और सोकर ही तो कटी है और हमारी जिन्दगी।

दद्दा :- आपकी जिन्दगी। आप और जिन्दगी (रुककर)। जिन्दगी का यह रूप नहीं होता। वह तो बहुत पीछे छूट गई।[2]

आनन्दा से अरविन्द अपने पिता के विषय में बताता है कि वे बड़े ही पिछड़े खयालात के हैं। फ्यूडल टेम्परा मेण्ट के लोग है। अंग्रेजी हुकूमत के दावेदार। इस नये जमाने में ये लोग फिट इन नहीं करते। हर चीज हर नाता रिश्ता उसी पुराने पैमाने से देखते हैं - दुःख इस बात का है कि नई चीजों को ये लोग समझ ही नहीं पाते, मान्यता क्या देंगे।[3] पिता पुत्र से रूष्ट होकर अपने घर वापस जाना चाहते हैं क्योंकि वे पुत्र के यहाँ रहना पाप समझते हैं। अरविन्द कहता है -

अरविन्द - पर जिसे आप पुण्य समझते है, वह मेरे जीवन को चुका देने वाला है। मैंने देखा है उसे। मैं गुजर चुका हूँ उस रास्ते से।

दद्दा :- मैं आपसे बहस नहीं करता चाहता, क्योंकि मुझे बोलना नहीं आता है। आप कलाकार हैं, आपकी कला- कृतियों पर कला पारखी न्यौछावर हैं। आप इतने बड़े आर्ट कालेज के प्रिंसिपल है मैं क्या बात करूँगा आपसे।

अरविन्द :- मैं भी नहीं कर सकूँगा। आपजो आनन्दा जी सामने नाट्क करते हैं वह मुझे कतई पसन्द नहीं है।

दद्दा :- मैं नाट्क करता हूँ और दर्शक तुम हो, बोलो.......... या नाट्क तुम करते हो और दर्शक मैं हूँ? बोलो बस सारा जवाब मुझे इसी में मिल जाएगा और

---

१. माादा कैक्टस, पृ० २८

२. वही पृ० ३६

३. वही पृ० ४०

मैं घर चला जाऊँगा। आनन्दा बेटी का कुछ फैसला कर डालो।

अरविन्द :- फैसला, यानी विवाह? ....आपसे मैने कई बार कहा है कि किसी स्त्री या पुरुष के सम्बन्ध में ब्याह से बड़ी कोई चीज होती है। उसके सामने ब्याह तो महज एक बच्चों का घरौंदा है और घरौंदा भी ऐसा जो बहुत पुराना हो चला है।

दद्दा :- तो उस पुराने घरौंदे को मिटाकर कोई मजबूत चीज बना लो, नायाब और शानदार। घर बना लो जरूर, उसे मिटने न दो।

अरविन्द :- मैं तो उसे बिल्कुल ही मिटाना चाहता हूँ। मैं उसे रास्ते पर चल कर देख आया हूँ। उसमें गति नहीं है, प्रेरणा नहीं है। सबसे बड़ी चीज है आपस की अण्डरस्टैंडिंग, सिम्पैथी।[1]

प्राचीन संस्कारों में रचे मचे दद्दा को यह बात व्यर्थ लगती है। यह पीढ़ियों अन्तराल है। उन्हें यह बात अजीब सी लगती है कि यह कैसी नई पीढ़ी है जिसे सोशल स्ट्रक्चर पर विश्वास नहीं। वे सारे ट्रेडीशन को तोड़ने पर अमादा हैं। पुराने मारल वैल्यूज ठीकरे के समान हैं। अरविन्द एक नई बात कहता है कि उसके पास कान्शेन्स है। बाकी की उसे परवाह नहीं है। पिता जानना चाहता है कि जो स्त्री को मौत समझे, कहाँ का कान्शेन्स है उसके पास। पिता पुत्र अरविन्द के कैण्टस-रूचि पर व्यंग्य करते हैं कि कैक्टस में क्या सौन्दर्य छिपा है। डरावने बदशक्ल, ठूँठ, बौने प्यार से भी छुओ तो काँटो के जहरीले डंक मारने वाले। इस दृष्टि के विषय में अरविन्द कहता है कि उसके पिता के मन में घृणा है, द्वेष है, ईर्ष्या है।[2] वस्तुतः यह वैचारिक मतभेद परम्परा और आधुनिकता का संघर्ष है। पुरीनी पीढ़ी समष्टि को लेकर चलने, उससे सामंजस्य बनाये रखने पर विश्वास रखती है जबकि आधुनिक पीढ़ी व्यष्टि वादी है। दद्दा कहते हैं कि जिन्दगी से बड़ी और कोई कला नहीं है। स्नेह में जीना, दया और ममता में जीना, दूसरों को अपने संग लेकर जीना यह बहुत

---

१. मादा कैक्टस, पृ० ४६-४७

२. वही पृ० ४६

बड़ी चीज है। पुत्र अरविन्द इसे कोरा उपदेश कहता है क्योंकि अरविन्द की मां की मृत्यु के बाद उसे पिता ने क्रमशः दो-दो विवाह किए और अपनी पत्नी को किस प्रकार प्रताड़ित करते थे, पीटते थे, इसे अरविन्द ने भली भाँति देखा है।

नरसिंह कथा में प्रहलाद आदर्श पुत्र रूप में चित्रित हुआ है। यद्यपि पिता से उसका वैचारिक मतभेद है, तथा पिता उसे अपने अनुकूल बनाने हेतु अनेक क्रूरतापूर्ण अत्याचार करता, प्रताड़ित करता है, तथापि प्रहलाद के मन में पिता के प्रति विद्वेष की भावना नहीं पनपती है। प्रहलाद मूल्या का पक्षधर है। हुताशन पूछता है

हुताशन - हिरण्यकश्यप ने तुम्हे इतने-इतने दण्ड दिये, तुम अब कहीं शान्ति से बैठकर पूजा-पाठ ईश्वर-भजन तक नहीं कर सकते, तुम्हे इस अन्याय का बदला लेना चाहिए अपने पिता से?

प्रहलाद - दूसरे को शत्रु मानने वाला, जिसको वह शत्रु मानता है, उसका अनिष्ट वह कर पाता है या नहीं, किन्तु अपना अनिष्ट अवश्य कर लेता है। ईर्ष्या उसी में होती है जिसे आत्मिक समानता में विश्वास नहीं होता। ईर्ष्या नास्तिक को होती है। मेरे पिताश्री उदाहरण हैं।[1]

हिरण्यकश्यपु प्रहलाद का संवाद भी पिता-पुत्र के वैचारिक मतभेद को उजागर करता है।

हिरण्यकश्यपु- बोलो मैं कौन हूँ?

प्रहलाद - मेरे पिता श्री।

हिरण्यकश्यपु - और?

प्रहलाद - और इस देश के राजा।

हिरण्यकश्यपु- मैं ईश्वर हूँ। मैं ही सम्पूर्ण हूँ। .... चुप क्यों हो? मैं तेरा नाम मिटा सकता हूँ।

प्रहलाद - ईश्वर मिटाता नहीं, सृष्टि करता है। ईश्वर को प्रमाण नहीं चाहिए वह सबमें

---

१. नरसिंह कथा, पृ० २३

है और तुम अकेले हो अपनी शक्ति में, सुनो पिताश्री एकाग्र शक्ति की सीधी रेखा से सृष्टि नहीं होती। वह केवल भेद सकती है। तुम्हारी शक्ति रिक्त है। असमें आंधी है, तूफान है, उसमें शोर है, संगीत नहीं।[1]

कुलगुरु, राजपुरोहित शुक्राचार्य यह प्रयास करते हैं कि पिता-पुत्र में संधि हो जाय। प्रहलाद शर्त यह रखता है कि हजारों लोग राजा के बंदी गृह में बद हैं, उन्हें मुक्त किया जाय। प्रहलाद का मन्तब्य है कि जो राजा का विरोधी है वह देश का शत्रु नहीं है क्योंकि उसकी धारणा है कि देश माने वहां की प्रजा। देश कोई सूक्ष्म तत्व नहीं। खगोल भूगोल नहीं देश। राजा के प्रति हमारे मन में रोष है, फिर भी उनसे हमारा कोई बैर नहीं है।[2]

हिरण्यकश्यपु ने प्रहलाद को हाथी के पैरों के नीचे रखकर उसे कुचलने का प्रयास किया, जहर दिया, पहाड़ की ऊँची चोटी से गिराया किन्तु प्रहलाद अपने सिद्धान्तों से विचलित नहीं हुआ। पिता के यह कहने पर कि प्रहलाद उसका पुत्र नहीं है। प्रहलाद शान्त स्वरों में यह कहता है कि आपके न मानने से सत्य पर कोई असर नहीं पडता।[3] हिरण्यकश्यपु स्वयं को ही देश मानता है अतः उसका विरोध करने वाला देशद्रोही है। ऐसा पात्र दण्डित होना चाहिए फिर वह उसका पुत्र ही क्यों न हो?[4] प्रत्युत्तर में प्रहलाद आश्चर्य व्यक्त करता है कि हिंसा, दमन पर पिता की आसक्ति है। हिरण्यकश्यपु उसे राजकुमार घोषित करने का लालच देता है किन्तु प्रहलाद उसके आग्रह को अस्वीकार कर देता है। अतः हिरण्यकश्यपु सोचता है कि प्रहलाद का जीवित रहना खतरनाक है। प्रहलाद पिता की आज्ञा मानकर मृत्युदण्ड को सहर्ष स्वीकार करता है क्योंकि पुत्र होने के नाते उसे ज्ञात है कि उसके पिता में कितना अभाव है, कितना बड़ा शून्य है। ऐसा दुःख उसके राज्य में किसी को भी नहीं है। उसका पिता

---

१. नरसिंह कथा, पृ० ३७
२. वही पृ० ७६
३. वही पृ० १०८
४. वही पृ० १११

कितना एकाकी है। हे ईश्वर इसे क्षमा करो।[1]

मिस्टर अभिमन्यु का राजन ऐसा पुत्र है, जो पिता की आकाक्षाओं की पूर्ति हेतु अपने इगो से समझौता करता प्रतीत होता है मनोविज्ञान में यह धारणा व्यक्त की गई है,कि पिता को अपनी अपूर्ण महत्त्वाकांक्षाओं को प्रक्षेपण पुत्र में करता है। उसकी उत्फट अभिलाषा होती है कि उसका पुत्र बड़ा होकर पढ़ लिखकर उच्च सरकारी पदाधिकारी बने। राजन ऐसा ही पात्र है जिसने पिता के आज्ञानुसार प्रशासनिक अधि ाकारी बन जाता है।

1-पिता- उठो चलो न। दिनरात इतना काम करते करते..........

2-राजन-यही आपकी इच्छा थी न।

3-पिता- सिर्फ मेरी

4-राजन्- और किसकी

5-पिता- ऐसा नहीं सोचते

6-राजन्- कितना अच्छा होता। आप वकील हैं मै आपके लिए महज एक केस हूँ।

7-पिता- ऐसा तुम सोचते हो।[2]

पिता ने उसकी जीवनधारा तय की है किन्तु उसके न चाहते हुए भी उसकी प्रोन्नति कमिश्नर के पद पर इसलिए हुई कि चुनाव में उसने सरकार की सहायता की है। वहीं से राजन् के मन में द्वन्द्व उत्पन्न हुआ और उसने त्याग पत्र देने की बात सोंची। पिता को पता लगते ही उसने ऐसा चक्रव्यूह रचा की राजन् को मजबूर होकर नयी नियुक्ति पर कार्यभार ग्रहण करना पड़ा। नाटककार ने राजन् और उसके पिता के सम्बन्धों नया आधार नया दिया गया है। तात्पर्य यह है कि राजन् मिस्टर अभिमन्यु में अतीक वर्तमान भविष्य के आदर्श सिद्धान्तों से उदासीन होकर परिवेश से काटता गया। यह संघर्ष करने का नाटक तो करता है कि वास्तव में वह इस चक्रव्यूह से निकलना ही नहीं चाहता है।

---

१. नरसिंह कथा - पृ० १६३
२. मिस्टर अभिमन्यु, पृ० ६२

सूर्यमुख नाटक में प्रद्युम्न कृष्ण का पुत्र और प्रतिद्वन्दी भी है। वह कृष्ण प्रिया पत्नी बेनुरति से प्रेम करता है यह प्रेम प्रथम दृष्टि का है। यद्यपि ऐसा प्रेम(विमाता) अगम्या गमन के अर्न्तगत आता है। अतः कृष्ण ने प्रद्युम्न से संघर्ष किया और अपने पुत्र को राज्य से निर्वासित कर दिया।

1-रूक्मिणी-शान्त दुर्गपाल। इन्हे बताओं की प्रद्युम्न को उसके अपराध के लिए तबसे क्या - क्या दण्ड दिया गया।

2- भिखारी- उसे इस नगर से वहिष्कृत कर जो दिखाने का दण्ड तुमने दिया है।[1]

इस युग में युवक -युवती को अपना जीवन साथी स्वयं तलाशने की प्रेरणा देता है। इस प्रेम के कारण सामाजिक मूल्यों की नयी व्याख्या की आवश्यकता है। पुत्र ने पिता के दण्ड को स्वीकार अवश्य किया है,किन्तु वेनुरति के प्रेम को नया आयाम दिया है। सत्ता प्राप्ति का संघर्ष एवं तद्‌जन्य पशुता को स्त्री-पुरुष का प्रेम ही आलोक बन सकता है। वह पिता कृष्ण के भागवत प्रेम के विरुद्ध किसी की भी टिप्पणी सहन न कर पाता।

रक्त कमल का नायक कमल का पुत्र रूप की भी चर्चा है। वह अपनी माँ का आज्ञाकारी पुत्र है। इसी पुत्र भाव का उदात्ती करण माता भूमिःपुत्रोऽहं का नाश उसने व्यावहारिक रूप उतारा है।

कमल- माँ ऐसे न कहो, तुमने तो मुझे जन्म दिया है। तुम तो मेरे दर्द को समझो। विश्वास करो माँ यदि तुम मेरे साथ उन पाँच वर्षो तक विदेश में रही होती तो समझ ती कि वहाँ मुझे कितना अपमान और दुःखसहना पड़ा।[2]

हँसने वाली लड़कियों में अरविन्द का पुत्र रूप भी चित्रित हुआ। माँ सुधा पुत्र को अधिकारी बनाने के सपने देखती है अतः वह बार-बार पुत्र को मन लगा कर पढ़ने का आग्रह करती रहती है किन्तु पुत्र अरविन्द भावुक होने के कारण कभी -कभी मनमानी भी करने लगता है।

---

१. सूर्यमुख, पृ० ५

२. रक्तकमल, पृ० ३३

सुधा–(अरविन्द से) यहाँ क्यों खड़े हो? जाओ अन्दर पढ़ाई करो। उधर क्या देख रहे हो? अंदर ज़ाते हो या नहीं?

अरविन्द – मामी आपको क्या हो गया है? मैं कोई बच्चा नहीं हूँ।

सुधा – ये तुम्हारे पढ़ाई करने का समय है।

अरविन्द – मुझे यहाँ खड़ा रहना अच्छा लगता है।

सुधा – अच्छा लगता है (खींचती हुई) चलो अंदर।[1]

पढ़ाई को लेकर माँ जितनी अधिक सजग है, अरविन्द उतना ही लापरवाह है।

अरविन्द – मैं यही चाहता हूँ, मेरी किताबे यहीं ला दो। प्लीज ममी।

सुधा – सीधे से घर में चलते हो या कि नहीं।

अरविन्द – ममी यू नो, मैं सीधे कहाँ चलता हूँ।[2] सुधा अरविन्द के खेलने,बाहर बैठने पर प्रतिबन्ध लगाती है। अरविन्द प्रतिक्रिया वश माँ का विरोध कर अपने मन के अनुकूल कार्य करता है। नाट्क कार इस प्रहसनके माध्यम से माँ–पिता–पुत्र के अन्तरूल अन्य विद्रोह का व्यंग्यात्मक रूप प्रदर्शित किया है।

पतिः– भारतीय चिन्तन में समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए आश्रमों का सूत्रपात किया गया जिसमे गृहस्थी –श्रम का स्थान सर्वोपरि है,क्योंकि इससे अन्य आश्रम के व्यक्ति संरक्षण पाते हैं, साथ ही वैयवित्र दृष्टिकोण से यह एक ओर विषयभेग की अनुमति देता है, तो दूसरी ओर मुक्ति के मार्ग को भी प्रशस्त करता है। इस आश्रम की महत्ता सर्वत्र दिखाई देती है।

लोक कथाओं,साहित्य,संहिताओं से प्रभावित एवं निर्मित आचरण शास्त्रों में इसकी गारिमा, महिमा अक्षुण्ण रूप से मिलती हैं इस आश्रम की लघुत्तम इकाई पति–पत्नी हैं। पति–पत्नी के मध्य परस्पर विशवास ,आस्था,एक निष्ठता, उदारता बनी रहती है, वही सामाजिक समरसता पनपती है। दोनों के सम्बन्धों मधुरता है। परस्पर त्याग की भावना कार्य करती है,किन्तु जहाँ इस इकाई स्वत्व की भाववना प्रबल हुई प्रभुत्वव

---

१. हँसने वाली लड़कियाँ, पृ० २४
२. वही पृ० २७

के दुर्ग में सनारी बंदिनी बनी।

पत्नी देखती है, कि पति बाहर रहता फिर भी गृह स्वामी कहलाता है। उसे असाधारण अधिकार प्राप्त है। पत्नी उयकी सहधर्मिणी से वंदिनी, दासी, सेविका बन गई वह पति से कुछ पूछ नहीं सकती ऐसी परिस्थितियों में तनाव दसर आना अस्वभाविक नहीं। सतीत्व की परीक्षा उसे ही देना है पति को नहीं, तभी से नारी अस्मिता, नारी स्वातत्र्य की बात उठने लगी। इन्ही रूपों का चित्रण नाट्क कार ने किया है।

अंधा कुआँका मगौती सूका का पति है। अलगू और राजी भी दम्पती है। यदि भगौती में सूका के प्रति आक्रोश है, ववह उसे कायिक मानसिक स्तर पर प्रताडित करता है, तो दूसरी ओर अलगू-और राजी सामान्य ग्रामीण पति-पत्नी के प्रतीक है, जिसमें परस्वर विश्वास, प्रेम, सहयोग की भावना है।यही गृहस्थ धर्म की आधार शिला है। राजी देखती है, कि उसका पति भगौती की अपेक्षा अधिकपरिश्रम करता है, तो वह उसका विशेष ध्यान रखती है।

राजी-लो मुँह मीठा कर लो।

अलगू-क्यों क्या बात है?

राजी-भूल गये खेत में धान की मूठ जो लेकर आये हो। लो गुड-दही है।[1]

पति के रूप में भगौती असफल पति है। सूका उसकी विवाहिता है जो अवसर पाकर प्रेमी इन्दर के साथ भाग जाती है। इसे भगौती के पुरुषार्थ की चुनौती मानता है और पुलिस को पैसा देकर कलकत्ते में पकडवाता है। न्यायधीश के सामने सूका प्रेमी इन्दर के साथ रहने को राजी हो रही थी, कि भगौती के चाचा अपनी जमानत पर दोनों पति-पत्नी को समझा बुझाकर गाँवसूका को ले आते हैं। भगौती के मन में सूका के प्रति प्रतिहिंसा है। वह उसे रस्सी से बाँध कर डण्डे से क्रूरता पूर्वक पीट्ता है, फिर भी उसका क्रोध शान्त नहीं होता।

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ३३

मिनकू- लाज नहीं आती। एक बार हो गया, दो बार हो गया, डरा धमका धमका दिया, लेकिन बेहया की तरह यह क्या ढ्गा है? घर क्या है? कसाई का खूँटा बना रखा है। सूका ने हजार कसूर किया है,लेकिन उन कसूरों की जिम्मेदारी किस पर है। तुम अपने कर्म क्यों नहीं देखते? रोज-रोज बेरहम की तरह सूका को मारते हो। कहीं कुछ हो जाय, औरत अबला का मामला, कहीं ठॉव-कुठाँवलग जाय फिर सोचाो क्या होगा? मुकदमे की पैरवी में गाँव से कचेहरी का रास्ता नापते-नापते हम सब के पैर घिस गए आखिर यह सब क्यों?

भगौती-- इसीलिए कि मैं अपनी बेइज्जती का बदला लूँ।

मिनकू- सूका से बदला"""" लेकिन भगौती """ लेकिन भगौती याद रखो खूँटे में बाँध कर गऊ मार रहे हो।

भगौती – मुझे जो जो सूझेगा मैं वही करूँगा। मुझे किसी का डर नहीं। भगौती मन आहत है, कुंठित है अतः सूका के प्रति वह क्रूरतम अत्याचार करता है। उस पर चोरी का लोक्षन लगता है। शरीर की चोटों को सेंकने के लिए एक गाँठ हल्दी-प्याज के लिए तरसाता है। उसका छुआ/बनाया खाना नहीं खाता। सूका को दूर से खाना डाल दिया जाता है।

भगौती- अरे राम कहो भइया। आज तक उसको चौके में पैर नहीं रखने दिया। जो बह गयी उसके हाथ का छुआ दाना पानी लूँगा। राम""राम"" मैंने अपने बर्तन तक उससे नहीं छुलाये। एक पीतर की थाली ,एक कांसे का लोटा। थाली में ऊपर से खाना डाल दिया जाता है और लोटे में ऊपर से पानी-बस।[1]

भगौती उसे घर से बाहर नहीं निकलने देता है वह कहता है कि तुझे तिल भर लाज -शरम नहीं,देखा न , कोई भी दरवाजे पर बैठा हो, यह बेशरम इसी तरह दरवाजे पर आ टपकती है। जा अन्दर। चल भीतर।[2] घर में जितनी भी अव्यवस्था होती है। भगौती सारा दोष सूका पर मढ़ देता है-यह सब उसी वजह से हुआ न, वह बेशरम

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ३८-३९
२. वही पृ० ४०

न भागती ना मुकदमा चलता। फिर यह नौबत क्यों आती।[1] वह रस्सी से उसके पैर खम्भे से बाँध देता है। भगौती सबको रोकता है, कि कोई भी सूको को रस्सी के बंधन से मुक्त न करे।

भगौती– खबरदार रस्सी पर अगर किसी ने हाथ लगाया। सब कान खोल कर सुन लो। मैं अपने बाप के असत्नी खून का न हीं अगर मैं सुकिया का मूँड काट कर तुम एक–एक को न फँसा दूं। खबरदार अगर किसी ने इसे दाना–पानी दिया। इसी तरह इसे सुखा कर मार न दिया तो भगौती मेरा नाम नहीं।[2] भगौती सूका से क्रोध ा भी करता है, साथ ही उसके प्रेम से प्रभावित होकर उसे चाहता भी है। कभी–कभी उसके मन में आता है,कि उसके हाथ का खाना खाने लगे। उसके पपास जाए ! भवुक क्षणों में पति रूप में वह कहता है कि अरे तू समझती है मैं कसाई हूँ। हत्यारा हूँ, निर्दयी हूँ बेरहम हूँ ? पर जो हूँ उसे तुम नहीं जानती।[3] सूका उलाहना सा देती है, कि जो है वही है। उसी के साथ जीना मरना है। भगौती सूका की छाती में मूँग दलने हेतु सौतन लच्छी को ले आता है। भगौती फिर सूका को प्रताडित करने लगता है। लच्छी की उतरी फटी साड़ी पहनने को देता है। उसका खाना बंद करवा देता है। उसे दीदी कहने को मना करता है। लच्छी के घर से भग जाने पर भगौती फिर पुलिस कचेहरी, ओझा की शरण में जाता है। कहना नहीं होगा कि भगौती मानसि द्वन्द्वमें फँस कर क्रूर ,निर्दय , असफल पति , सिद्ध होता है।

सुन्दर रस का कविराज भी फल पति नहीं। वह अपने सुन्दर रस के प्रचार हेतु अपनी पत्नी को कुरूपा बुद्धि हीना कहता है। वह कहता है, कि मैं अपनी औषधि ायों एवं उपचारों से देवि को इतना स्वस्थ कर सका और मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह बुति ही शीध्र पूर्ण स्वस्थ हो जाएँगी। मैं इसके लिए औषधि –प्रयोग ,तपश्चर्या और अनुसंधान भी कर रहा हूँ।[4] वह भट्टाचार्य से देवि माँ(पत्नी) की कुरूपावस्था

१. अंधा कुऑं, पृ० ४४
२. वही पृ० ४७
३. वही पृ० ५२
४. सुन्दर रस, पृ० १२

का उल्लेख करता है-

पंडितराज – पहला प्रयोग मैंने इन्हीं पर किया था। रंग साँवला था मुँह पर चेचक के दाग दे ,बड़ा-सा मुख ,उसमें छोटी-सी नासिका और छोटी-छोटी-सी आँखे। मोटे होठ,बड़े-बड़े दाँत सदा मुख खुला हुआ।[1] औषधि-सेवन से वे सुन्दरी बन जाती है , जिसका विसापन पंडितराज करना चाहता है। जब देवि माँ स्वयं सुन्दर रस के विसापन की माडल बन कर ख्याति एवं धनार्जन करने लगी , तब पंडितराज को यथार्थ बोध हुआ। पत्नी को माध्यम बना कर सुन्दर रस का विसापन करने वाले पंडितजी घर की आर्थिक सम्पन्नता , पत्नी का सरकारी आधिकारियों पर सौन्दर्य का वर्चस ,देख विसापन बाजी की यथार्थता का बोध करते हैं और वे स्वयं अस्वस्थ हो गए।[2]

रातरानी में जयदेवव कुन्तल का पति है कुन्तल देखती है, कि जयदेव पिता की सम्पति को जुआ इत्यादि में दाँव लगा कर नष्ट कर रहा है। वह सोचती है कि जयदेव से इस आचरण की व्याख्या माँगी गयी तो पति – पत्नी के मध्य तनावव उत्पन्न होगा। कलह एववं तनाव से बचने के लिए वह फुलवारी की तरफ अपना मनन लगाती है। प्रकृति के सानिध्य में वह अपनी प्रसन्नता का सुरक्षित रखती है। पतिरूप में जयदेव की मान्यता है-

जयदेव- तू कुछ नहीं समझती कुन्तल।तुम्हारा सान अभी पुस्तकों तक ही सीमित है, तभी तुम कहती हो कि पढ़ी-लिखी स्री का क्षेत्र घर है।

कुन्तल- और क्या ?

जयदेव- पर स्त्री को लक्ष्मी कहा गया है।

कुन्तल- रपपर तुम्हारे अर्थ में नहीं। उस लक्ष्मी का अर्थ रुपया नहीं है। लक्ष्मी का अर्थ अधिकार ही है।

---

१. सुन्दर रस, पृ० २८

२. वही, पृ० ८०-८२

जयदेवव- समय के साथ सबका अर्थ बदलता चलता है। इसी का नाम प्रोग्रेस है। आज स्त्री को पत्नी और लक्ष्मी दोनों एक साथ होना है।[1]

जयदेव मिल/प्रेस मालिक है। स्त्री/पत्नी को वह दो रूपों में देखना चाहता है। एक घर में एक बाहर। आज के अर्थ- युग में उसे पत्नी का घर के अन्दर रह कर गृहस्थी सम्हाँलना ही कर्त्तव्य नही अपितु "मनी" कमाना भी उसका एक रूप हो।

जयदेव- जरूरत हो या नहीं। मैं नौकरी इनके लिए आवश्यक समझता हूँ। फर्स्ट क्लास बी0ए0 की डिग्री, मौरिस कालेज से संगीत विशारद,आखिर घर में इसकी उपयोगिता क्या है? (नौकरी न करने को) दो जबर दस्त तो हैं तुम्हारे पास। तुम्हारा पहला तर्क नौकरी-नौकरी न करने का मेरा संस्कार नहीं। दूसरा तर्क-जितना धन हमें मिलता है, वह काफी है हमारे लिए।[2]

जयदेव का मन्तव्य यह है, कि पति- पत्नी दोनों कमाएंगे,तो दोनों सुखी रहेंगे। वह कुन्तल के व्यवहार से अप्रसन्न है क्योंकि उनके प्रेस के कर्मचारी हड़ताल पर है और कुन्तल उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से उनके बच्चों को खाना इत्यादि देकर उनको प्रश्रय देती है। जयदेव कुन्तल को समझाता हैं कि रूप, चरित्र, विद्या और कला साहित्य इन सबसे बड़ा रूपया है, रूपया। मैं कुंतल को बेहद प्यार करता हूँ। वह कुंतल का और मेरा एक व्सक्तित्व है घर का। पर मैं कुंतल को समान रूप से उपयोगी देखना चाहता हूँ।[3] जयदेव कुंतल को आधुनिक नारी के रूप में देखना चाहता है ,वह कहता है 'अरे आधुनिक बनो आधुनिक बनो आधुनिक, बरना यह माया -ममता हमें आगे नहीं बढ़ने देगी।इसके प्रत्युत्तर मे कुंतल कहती है,कि क्या स्वार्थी होना ही आधुनिकता है? तभी मैं देखती हूँ आज का सारा आधुनिक समाज के बल शरीर के स्तर पर जी रहा है।[4]

---

१. रातरानी, पृ० २१
२. वही पृ० ३५
३. वही पृ० ३६
४. वही पृ० ४४

तात्पर्य यह है कि जयदेव यथार्थवादी पति है,जो एक तरफ घर में नारी का एक रूप देखता है, तो दूसरी तरफ बाहर उसे धन कमाने के लिए भी प्रेरित करता है। अतः वह विभाजित व्यक्तित्व प्रधान पति है।

मादा कैक्टस का अरविन्द सुजाता का पति है। वह सुजाता का परित्याग कर देता है, क्योंकि सुजाता प्रावन्तन संस्कारों की नारी है। वह अरविन्द की पत्नी तो बन सकती है, उसके चित्रकार रूप के लिए प्रेरणा श्रोत नहीं बन पाती।

अरविन्द– मैं तो उसे बिलकुल मिटाना चाहता हूँ। मैं उस रास्ते पर चल कर देख आया हूँ ,उसमें गति नहीं है , प्रेरणा नहीं है। सबसे बड़ी चीज है , आपस की अण्डर स्टेण्डिग, सिम्पेथी। आप उस बात को भी नहीं समझ सकें थे जब मैंने अपने ब्याह के चौथे वर्ष बाद भी मजबूर होकर सुजाता को छोड़ा था।[1] अरविन्द का व्यवहार अपनी पत्नी सुजाता से सामान्य नहीं है। वह चाहता है , कि पत्नी पति के संकेत मनोभावों को समझे उसे प्रेरणा दे– वह सुजाता से कहता है–

अरविन्द– तुम्हें खुद मालूम होना चाहिए कि मुझे क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिए, तुम्हें मेरे पूरेमन को जानना चाहिए । फिर मेरे चित्रों से ही मेरे अन्तस के भावों को क्यों नहीं जान लेती। मुझे पता है तुम मन–ही मन कुढ़ती हो, तभी मेरे मुँह पर नहीं बोलती । घर गृहस्थी में इसका एक भयानक परिणाम होता है और मैं उसका शिकार हो रहा हूँ।[2]

मादा कैक्टस मे अरविन्द के पिता दद्दा के पति रूप की हल्की झलक भी मिलती है, जिसमें ववे अपनी पत्ननी को प्रताड़ित करते हैं। अरविन्द कहता है, कि आपने तीन विवाह किये थे। माँ के स्वर्गवास के चार ही महीने बाद आपने दूसरी शादी की थी। उसे हण्टरों से मारते थे आप फिर उसी के सीने पर आपने तीसरी शादी भी की।[3]

---

१. रातरानी, पृ० ४७
२. वही पृ० ५१
३. वही पृ० ४८

करफ्यू का गौतम सम्पन्न युवा पति है, जो एक मिल का संचालक है। इसका जीवन इसी प्रकार के द्वारा और शायद अभिजात तत्वों, परंपराओं द्वारा बनाए हुए किन्हीं दृश्य-अदृश्य परोक्ष, अपरोक्ष, हदो, सीमाओं, नियमों, शर्तो, सभ्यताओं के भीतर बन्दी होकर जिया जा रहा है। वह मनीषा द्वारा उत्तेजित करने पर हिंस्र पशु की तरह प्रकट होता है। किन्तु जब उसकी पत्नी कविता घर लौटती है, तो पति का एक नया रूप सामने आता है। यह पति यथार्थवादी पति है। एक ओर वह अपने बहशीपन को छिपाने के लिए वही पुराने हथकण्डे अपनाता है, जिससे उसका सभ्य रूप कविता के सामने प्रकट/बना रहे।

गौतम- देखो ना, पति अपने संग यह ले आया था पूरी बोतल। मुझे भी साथ देना ही पड़ेगा। औरत निहायत बातूनी-जैसे बात नहीं खेल करती थी'''''' तुम कुछ पूछती क्यों नहीं ?

कविता- ठीक है।

गौतम - बड़ी मुश्किल से वे लोग गए। पुलिस के रिश्तेदार ये वे लोग। फोन किया। पुलिस वैन आई, चले गए। कुछ पूछती क्यों नहीं ?

कविता- पूछ तो रही हूँ , क्या पियोगं ?

गौतम- अपने बटन बंद करो।

कविता- नंगे बदन कितना'''''''

गौतम- मनुष्य एकाएक ऐसा क्यो हो जाता ? मेरा शरारती होना बनावटी तो नहीं लगता ? पर कभी एकाएक क्या कुछ हो सकता है यह कोई नही जानता।

कविता- आंज यह कमरा अच्छा लग रहा है।

गौतम- तुम भी आज कितनी अच्छी लग रही हो ?[1]

कविता का यह नया रूप देख कर गौतम हत प्रभ होने का अभनय करता है। कविता के इस परिवर्तन को पति रूप में वह स्वीकार नहीं कर पाता है, तब उसी खेल में

---

१. करफ्यू, पृ० १०३

पुनः समाने का प्रयास करती है, वह उसी झूठ का सहारा लेती है वह एक काल्पनिक अनुभव का वर्णन करती है लेकिन उसका अनुभव गौतम के सामने पहिले ही घटित हो चुका था इस प्रकार गौतम अपने गहरे मन से कविता को नये रूप में पाने का अनुभव करता है।

कविता– मेरे साथ बलात्कार हुआ है।

गौतम– हम सच क्यों नहीं बोल सकते? मैं जानता हूँ तुम्हें। तुम एक आदर्श पत्नी हो। हमारा दाम्पत्य जीवन सुखी है। हम दोनों चरित्रवान हैं। हम सुख -चैन की नींद सोतें है। हमें ईश्वर ने सब कुछ दिया है।

कविता– जीवन इसी तरह बिना किसी परिवर्तन के चलता रहता है। बड़ी से बड़ी घटनाएँ उसमें खो जाती हैं।

गौतम– यह क्या बेकवास कर रहा हूँ । कब तक इस झूठ के भँवर में पड़ा रहूँगा। ये झूठे शब्द कल तक मुझे घेरे रहेंगे। यह करफ्यू कब टूटेगा? हे ईश्वर इतना भी साहस नहीं कि स्वीकार कर सकूँ? क्या हो गया है हमें? जो इतना सच है प्रकट है, निर्भय होकर क्यों नहीं कह पाता?[1]

गौतम अपने आत्मबल के सहारे यह स्वीकार करता है कि करफ्यू के मध्य वह (औरत/युवती) यहाँ आई। उसे देख कर उसने अनुभव किया कि वह कितना डरा हुआ है। वह उसके साथ बलात्कार करने का प्रयास करता है क्योंकि इसके अतिरिक्त पुरूष एकाकी युवती को पाकर और कुछ कर ही नहीं सकता है।

वह डर कर चली गयी। वह फिर लौटी''''' मुझे जगाया। मैं थर-थर काँप रहा था। ।उसने बताया कि यहीं कमरा पूरा शहर है। जो अपने भीतर का करफ्यू नहीं तोडते, वही बाहर करफ्यू लगाते है। और उसे तोड़ने के लिए अपराध करते हैं। गौतम स्पष्ट रूप से पति के आधुनिक परिवेश जनित रूप को व्यक्त करता है। वह कहता है कि एक क्षण मुझे लगा मैं तुमसे अब ईमानदार हो जाऊँ । मैं सस्वीकार कर

---

१. करफ्यू, पृ० १११-११२

लूँ मैं क्या हूँ । पर दूसरे ही क्षण मैं झूठ बोलने लगा। झूठी कहानियां गढ़ कर तुम्हें बताने लगा। आज मुझे लगा मैं जो कुछ करता हूँ , उसका कर्त्ता मैं नहीं हूँ।[1]

'मिस्टर अभिमन्यु ' नाट्क में राजन विमल का पति है। वह सरकारी तंत्र में फँस कर इस उच्च नौकरी को त्यागने का विचार करता है। विमल को जान कर यह हैरानी होती है कि इतनी सुख- सुविधाओं से युक्त राजन व्यर्थ में नौकरी का परित्याग कर रहा है। राजन अपनी पत्नी को याद दिलाता है,कि उसने शादी से तीन दिन पहले विमल को सूचित किया था कि कलक्टर हो जाने के बाद इस नौकरी से बाहर आ जाऊँगा।[2] राजन स्वाभिमानी व्यक्ति है। उसे तब इतना नहीं पता था कि शासन तंत्र मे हर मूल्य की जड़ में वही गुलामी है। आज्ञाकारी होना किसी ऐसे चक्रव्सूह में पैर रखना है। बात यह है, कि वह ईमानदार कलेक्टर है। गयादत्त वहाँ चुनाव जीत जाते हैं, जिसका श्रेय राजन को दिया जाता है तथा उसकी प्रोन्नति कमिश्नर के रूप में की जाती है। राजन इसे अपने प्रति षड्यंत्र समझता है। वह इस चक्रव्यूह से बाहर आने की बात अपनी पत्नी विमल से कहता है, किन्तु विमल उसके कमिश्नर होने के उपलक्ष्य में पार्टी का आयोजन करती है। नए स्थान पर जाकर बच्चों को हॉस्टल में डालने की फीस, नयी माडल की कार खरीदने की सूचना राजन को देती है। राजन कहता है-

राजन- मैं इस तैयारी की बात नहीं कर रहा था । मैं इसी में से बाहर निकलने की '''' फ्रिज,कार ,इंन्श्योरेन्स,स्टेट्स, आखिर किस लिए क्यों ?,

विमल- फिर इस नौकरी में क्यों आए ?

राजन - आना पड़ा....[3]

इस प्रकार केजरी वाला, साँवलदास, गयादत्त आदि के द्वारा बनाये गये चक्रव्यूह में उलझकर रह जाता है। विमल-क्रीन कीमती साड़ियों, आभूषणों का सम्पूर्ण

---

१. करफ्यू, पृ० ११७

२. मिस्टर अभिमन्यु पृ० १६

३. वही पृ० २१

पैसा गयादत्त जमा करा देता है। यद्यपि आज की व्यस्ततम जिन्दगी में खुशी के क्षण बहुत कम आते हैं, तथापि पति-पत्नी के आरम्भिक जीवन में ऐसे आनन्द के अवसर मिल ही जाते हैं। राजन और विमल उन आनन्दानुभूति परक क्षणों की स्मृति कर अपने को तरो ताजा बना लेते हैं।

राजन - विमल याद करो हम इस नौकरी में आये-आये ही थे। वह छोटा सा बंगला याद है न, उस कमरे की खिड़की खोलते ही गंगा का वह दूधिया कछार लहराने लगता था। उस कमरे में रहना कितना अच्छा लगता था। खिड़कियाँ खोलकर सोना स्वर्ग जैसा लगता था। विमल के जंगली कहने पर राजन भावुक प्रेमी पति की तरहं कहता है, तभी मैं जंगली था और तुम भी जंगल की मोरनी। मैं कहीं भी तुम्हे पकड़ लेता था, फिर हम कहीं खो जाते थे।[1] राजन के अन्तस में छिपा प्रेमी रूप विमल को रिझाने का प्रयास करता है, किन्तु विमल यह समझती है कि राजन अपने मध ुरतम क्षणों की याद दिलाकर उसे मोहाविष्ट कर इस नौकरी से बाहर जाने की स्वीकृति/सहमति करा लेगा अतः वह इन क्षणों में भी कुछ न कुछ दोष निकालकर उसे वर्तमान में ही रहने पर विवश करती है। वह राजन के अनुरूप कपड़े पहनकर बाहर निकलती है। राजन को एक क्षण बच्चा समझकर सितार बजाती है। अंत में गयादत्त, केजरीवाला, मिसेज विमल और अपने पिता के संयुक्त प्रयासों से राजन पार्टी में सम्मिलित होकर आगे प्रोन्नति के पद को स्वीकार कर लेता है। राजन सीध ा साधा पति ही नहीं सरकारी अफसर भी है किन्तु राजनीति के कारण न तो वह ईमानदार रह पाता न ही आदर्शवादी। राजन की पत्नी विमल अधिकारियों को प्राप्त सुख-वैभव के वातावरण में रम गयी है अतः पति राजन को भी वह इसी रंग में ढाल ही लेती है। राजन सरल पति, भावुक प्रेमी के रूप में दिखाई देता है, किन्तु उसे अपने बनाये हुए रास्ते में नहीं चलने दिया जाता। आज की यह त्रासदी है।

यक्ष प्रश्न और उत्तरयुद्ध महाभारत से सम्बन्धित है। इन नाटक में पाँच पति

---

१. मिस्टर अभिमन्यु, पृ० ३६-३७

युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव है इनके बीच एक ही पत्नी है-द्रोपदी। नारी की नियति है कि वह कितने टुकड़े में विभक्त हो। पाँचो पति उसके सौन्दर्य, बौद्धिक चातुर्य से प्रभावित है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पति अपनी पत्नी को सम्पूर्ण रूप में चाहता है। उसके समर्पण में कोई विभाग हो, यह वह सहन नहीं कर सकता है। अर्जुन ने उसे जीता है अतः वह द्रोपदी का वास्तविक पति है। वह द्रोपदी को अपने भाइयों के बीच बाँट्ना चाहता है, किन्तु विडम्बना यह है कि बाटते ही मनुष्य छोटा हो जाता है और पत्नी/पति प्रेम को बांट्ना आसान नहीं है। युधिष्ठिर की चिंता है कि कुंती के आदेश से वे सब बँट जाँएगे। उनमें फूट पैदा होगी। अर्जुन भी मानता है कि मानवी द्रौपदी का पाँच भागों में बंट्ना संभव नहीं है। उसके भाई ईर्ष्या करने लगेंगे। नकुल और सहदेव की अलग चिंता है। उन्हें पत्नी का प्रेम मिलना तो दूर अपितु उनके भाग्य में द्रौपदी की गुलामी करना लिखा होगा। पति के रूप में भीम का यह विश्वास है कि माँ उन्हें लड़ाना चाहती है। इस प्रकार पाँचो पति अलग-अलग चिंताओं में व्यस्त होकर बँट जाँएगे और दुर्योधन उन्हें एक-एक कर पराजित कर देगा। युधिष्ठिर पति रूप में अपना विश्वास व्यक्त है, कि द्रौपदी इन्द्राणी है। वह बँट्कर एक रहेगी क्योंकि वह सम्पूर्ण सुन्दर है।[1] सौन्दर्य की महिमा प्रिय के सहवास में प्रकट होती है। पति के रूप में पाँचो भाई अलग-अलग प्रवृत्ति के है। अर्जुन कहता है -
अर्जुन- हम पांच भाई, हम सबकी प्रवृत्ति अलग-अलग। सबकी शक्ति एक दूसरे से असमान। आप धर्मराज, मै धनुर्धर, भीम गदाधारी नकुल परम सुन्दर सहदवे विनम्र संगीतवान।[2]

युधिष्ठिर पति रूप में द्रौपदी के प्रिया, पंडिता, परम दर्शनीया और पतिव्रता कहता है। यद्यपि बड़े भाई होने के कारण वे द्रौपदी के जेठ लगते हैं, अतः वे द्रौपदी के पास जाने में संकोच का अनुभव करते हैं। द्रौपदी पति युधिष्ठिर से कहती है कि दुर्योधन चाहे कितना ही अत्याचार करे उन्हें क्रोध नहीं आता है क्योंकि युधिष्ठिर क्षमाशील है।[3] अर्जुन तो द्रौपदी के दहकते मुख को अपलक देखता रहा और कानों

१. यक्षप्रश्न, पृ० २७ २. वही पृ० २८ ३. वही पृ० १८

में द्रौपदी के वज्रस्वर टूटते रहे। भीम अपनी प्रिया के श्रृंगार के लिए गंधमादन पर्वत जाता है। द्रौपदी उसकी स्वामिनी है।[1] इस प्रकार नकुल और सहदेव पति रूप में द्रौपदी से अत्यन्त प्रभावित हैं।

सगुन पंछी में राजा अंगध्वज पति रूप में भी दिखाई देते हैं, पर यह पति रूप सर्वथा अलग रूप है। रानी के कान का आभूषण कहीं खो जाता है राज्य के समस्त गुप्तचरों को भी हजारा मोती ढूँढ़ने पर नहीं मिला, परिणाम स्वरूप रानी राजा से स्वयं ढूँढ़नेका आग्रह करती है। राजा/पति कहता है की रानी की इतनी ही जिद है तो भेष बदलकर पूरे राज्य में वह घूमकर हजारा मोती का पता लगायेगा। इसी क्रम में एक वृद्ध उसे अनजान समझ एक रहस्य बताता है, कि आज रात राजा अंगध वज को एक प्रेत अपना शिकार बनायेगा। भयभीत राजा अंतःपुर में बंद होकर अपने रक्षकों को सचेष्ट करता है। रानी इस सुरक्षा का कारण पूछती है, किन्तु राजा नहीं बताता। रानी के जिद करने पर राजा कहता है कि रहस्योद्घाटन के बाद वह पत्थर का हो जाएगा।

राजा – उसका बचन है यदि मैं उस बात को किसी से कह दूँगा, तो उसी क्षण पत्थर का हो जाऊँगा। हठ मत करो उस बात को बताने में हमारा नाश है।[2]

किन्तु त्रिया हठ जगविदित है। पति ने स्वीकार कर लिया कि वह रहस्य बतायेगा। वह कहता है कि मेरे प्राणों से प्यारी मेरी रानी मेरी जान लेने के लिए खड़ी है मैं अपने जीवन के रहस्य को बताकर उसी क्षण पत्थर का हो जाऊँगा।[3] पति राजा रानी को बहुत समझाता है। रानी के मूर्च्छित होने पर राजा उस पर पानी छिड़क कर अपनी आधी आयु देता है। बाद में रानी को पता चलता है। वह राजा या पति के त्याग को अहंकार का दूसरा रूप बताती है। वह अपना ही जीवन जीने की बात कहती है।

---

१. यक्ष प्रश्न, पृ० ४५
२. सगुन पंछी, पृ० ४१
३. वही पृ० ४३

राजा – परिस्थिति सब कुछ नहीं बदल सकती। मैंने देखा प्रेम, त्याग, तपस्या है। अंधकार है। विश्वासघात भी है। संबंध केवल बाहर से नहीं टिका है। राजा पति रूप में पहले तो स्त्रैण दिखाई देता है। उसके दान में अहंकार था। वह समझता था कि उसी का प्रभुत्व है। बाद में उसका अहंकार नष्ट हो जाता है और वह रानी से क्षमा मांगकर यह कहता है कि रानी अपने जीवन से ही जी रही है। उसके भ्रम और अहंकार की सीमा नहीं थी। वह पति-पत्नी में विश्वास-सूत्र की दृढ़ता पर बल देता है। विश्वास को नष्ट कर मैं विश्वास की परीक्षा लेने चला था।[1] राजा गहरे सागर से उसके कान का मोती ढूँढ़ कर देता है।

डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में पत्नी के विविध पक्ष अंकित हुए हैं। कहीं वह विवाहिता होकर उसकी पति की सहचरी अनुगामिनी है, कहीं पति से भिन्न पर पुरुष से प्रेम करने वाली, कहीं पति का परित्याग कर प्रेमी के साथ भाग जाने वाली तो कहीं पति के लिए बिक जाने वाली आदर्श नारी भी है।

अंधाकुआँ की नायिका सूका का विवाह भगौती से हुआ है, किन्तु वह अपने प्रेमी इन्दर के साथ भाग जाती है। भगौती कोर्ट कचहरी कर उसे अपने पास लाता है और उसे अमानवीय, क्रूरतापूर्ण अत्याचार करता है और सूका मार खाती रहती है। मिनकू समझाता है

मिनकू – रोज-रोज बेरहम की तरह मारते हो। कहीं कुछ हो जाय। भगौती याद रखो खूँटे में गऊ बाँध कर मार रहे हो?[2]

भगौती उसे खम्भे से बाँधकर रखता है। सूका को दूर से जानवरों की तरह खाना डाल दिया जाता है। पहिनने को साड़ी नहीं मिलती किन्तु भगौती का जरा-सा प्यार-दुलार पाकर वह गदगद हो जाती है। प्रेमी इन्दर से छुड़ाने रात्रि में आता है, किन्तु सूका का विश्वास प्रेमी से भंग हो गया है। अतः वह इन्दर से कहती है कि

---

१. सगुन पंछी, पृ० ६१
२. अंधा कुआँ, पृ० २६

उसे गौ की सौगन्ध है। वह उसी तरह उसे बाँध दे।[1] सूका भगौती को ही अपनी नियति मान लेती है।

सूका - जब ये हँसते हैं तो लगता है, जैसे कोई बच्चा हँस रहा है। जब ये मारते हैं, छोटी-छोटी बात पर गाली देते हैं, अपमान करते हैं तो लगता है..... हे भगवान मेरी किस्मत। जो है, तू है। तेरे ही साथ जीना, तेरे ही साथ मरना, जो करम में है वही अपना है।[2]

भगौती लच्छी को सौत बनाकर लाता है, जिसे सूका अपनी छोटी बहन बना लेती है और अवसर पाने पर उसके प्रेमी हीरा के साथ चुपचाप बिदा भी कर देती है। इस कृत्य के कारण भगौती सूका पर अत्याचार बढ़ा देता है। इन्दर भगौती की लड़ाई में भगौती बुरी तरह से घायल हो जाता है। उसका दाहिना पैर टूट जाता है। वह खाट पकड़ लेता है। ऐसे समय में सूका पत्नी धर्म का पूर्ण निर्वाह करती है। वह तन मन से भगौती की सेवा करती है।

सूका- जब कराहते हैं, तब उठके दौड़ो। जब पुकारे तब दौड़ो, न दिन देखो न रात कराहते पुकारते अगर तुरंत न पहुँचो तो, ऐसी-ऐसी गाली, कलमुँहा चारपाई पड़े-पड़े मेरी सात पुश्त तारने लगता है। लाचार पड़ा है- गू-मूत न करूँ तो कल ही सड़ जाये।[3]

सूका ने जितना अत्याचार सहा है, वह उसके धैर्य के विस्तार को द्योतित करता है। उसने लाठी, बेंतों से मार ही नहीं खायी, लोहे की सलाखों को गर्म कर उससे सूका को दागा पीटा गया है, किन्तु अपनी नियति को स्वीकार कर आज वह उदार हृदया पत्नी बन गयी है। भगौती के प्रतिशोध से जितने अत्याचारों को सूका ने सहा है, आज वही सूका विवश भगौती को बचाने/जीवित रखने का यत्न कर रही है। यहाँ तक कि इन्दर सूका को छुड़ा कर ले जाने के लिए रात में आया भी था, किन्तु सूका

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ४६
२. वही पृ० ५२
३. वही पृ० ७०

ने जाने से मना कर दिया था। सूका की भगौती के प्रति अनन्यता की चरम सीमा उस समय दिखाई पड़ती है, जब रात प्रेमी इन्दर भगौती को मारने आता है। सूका दृढ़ता से फरसा लेकर इन्दर के सामने खड़ी हो ही नहीं जाती अपितु वह इन्दर को घायल कर देती है। सूका कहती है –

सूका– मेरे जिन्दा रहते तु उसे मार नहीं सकता। तेरा खून पी लूँगी। नहीं–नहीं यह नहीं हो सकता। मेरे जीते जी यह नहीं हो सकता।[1]

इन्दर गँडासे से भगौती पर वार करता है, तभी सूका उसे बचाने के लिए बीच में आ जाती है और गम्भीर रूप से घायल/मुमुर्ष हो जाती है। इस प्रकार सूका उदार, त्यागमयी पत्नी के रूप में चित्रित हुई।

सुन्दर रस की देवी माँ पण्डितराज/कविराज (वैद्य) की पत्नी है। कविराज के विज्ञापनबाजी के छदम्‌जाल में अपनी सरलता के कारण फँस जाती है। पंडितराज उसे कुरूपा बताते हैं तथा सुन्दर रस के सेवन से वह सुन्दरी स्त्री बनती है। सम्भवतः पंडितराज–अविष्कृत सुन्दर रस कुछ मानसिक विकार उत्पन्न करता है।

सुमिरन– आइए माँ जी, क्या लेना है? मुझे बताइये, हाँ........हाँ बताइये

देवीमाँ– धत्‌ तेरे की (हँसती है) शिष्यगण, ध्यानपूर्वक सुनो तुम लोग किंचित पागल और तुम्हारे आचार्य पूर्ण पागल।[2] किन्तु जैसे ही सुन्दर रस की कमाई, बढ़ने लगती है, तदनुरूप उसके घर का स्तर साज सज्जा बढ़ने लगती है और देवी माँ सुन्दर रस के विज्ञापन माडल का रूप ग्रहण कर लेती है वे पत्नी एवं माडल के रूप में अपने अस्तित्व बोध को गहराई से समझने का प्रयास करती है। उन्होंने अपने पति के विरोध ाभासी जीवन को बदलने का प्रयास किया क्योंकि उनकी सुन्दरता से आकृष्ट होकर हर अधिकारी सुन्दर रस का क्रेता बनना चाहता है। देवि माँ की चर्चा अधिकारी वर्ग में होने लगती है। धनागम के साथ प्रशंसा से व्यक्ति का आचरण कितना बदल जाता है, यह देवि माँ के उदाहरण में देखा जा सकता है। देवि कुशल गृहिणी, अर्थ के स्रोत

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ८०

२. सुन्दर रस, पृ० १३

पर पूर्ण दृष्टि रखने वाली पत्नी है। अपनी सुन्दरता से उन्होंने सर्वत्र पैठ बना ली है और यही बात पति पंडितराज को नागवार गुजरती है।

पंडितराज – कुछ भी हो, कोई कुछ भी कहे मैं कलक्टर साहब के यहाँ नहीं जाना चाहता। देवि तुम्हे जाना हो तो अकेली चली जाओ।

देवि माँ – जब आपकी ऐसी जिद थी, तब आपने कलक्टर साहब का निमंत्रण क्यों स्वीकार।

पंडितराज – निमंत्रण तुमने स्वीकार किया देवि! मैंने नहीं! मैं इसके पक्ष में ही नहीं था।

देवि माँ– इतने बड़े अफसर से मिलने का अवसर बार–बार नहीं आता। नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मिलने के लिए उन्होंने हमें यह निमंत्रण भेजा है।[1]

तात्पर्य यह है कि देवि माँ विज्ञापन के सहारे सुन्दर रस की बिक्री कर धनोपार्जन में रूचि रखने वाली है। उसकी मान्यता है कि धन से बड़ी कोई शक्ति नहीं! यद्यपि पति पंडितराज इस व्यापार को उचित नहीं मानते किन्तु देवि माँ धन लोलुपता के कारण मानवीय भावों से दूर हट जाती हैं। वे स्वतंत्रचेता नारी/पत्नी की प्रतीक बन जाती हैं। अपने रूप का श्रेय सुन्दर रस को देकर झूठ का आश्रय लेती है और किसी सीमा तक नैतिकता खोने लगती है।

अंधाकुआँ में राजी और अलगू का दाम्पत्य–जीवन चित्रित है। राजी उसकी पत्नी है। वह अपने ज्येष्ठ भगौती के क्रूर आचरण को उचित नहीं समझती। ग्रामीण परिवेश में वह आदर्श पत्नी दिखाई देती है। नए धान/बीज बोने जाने के पूर्व वह पति को गुड–दही खिलाकर परम्परा का पालन ही नहीं करती अपितु अपनेपन को भी व्यक्त करती है।

राजी– लो मुँह मीठा कर लो।

अलगू– क्यों क्या बात है ?

राजी – भूल गये, खेत में धान की मूठ जो लेकर आए हो। लो गुड–दही है।[2]

१. सुन्दर रस, पृ० ६४ २. अंधा कुआं, पृ० ३३

राजी को अपने पति पर गर्व है। वह जी जान से परिश्रम करता है और बड़ा भाई भगौती गृहस्थी के कार्यो से विरक्त या उदासीन है।

कुन्तल रातरानी की नायिका एवं जयदेव की पत्नी है। वह अत्यन्त भावुक, उदार, कुशल गृहिणी है। जयदेव अर्थ की महत्ता उसे समझाता है, किन्तु आदर्श नारी/पत्नी के रूप में उसका प्रतिवाद तो नहीं करती किन्तु अपनी भावुकता, कोमलान्ता एवं अभिरूचि एक नया आयाम देती है। इस सम्बन्ध में डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है कि रातरानी की कुन्तल स्त्री, अपने उस घर में अपने पति जयदेव में पुरूष में एक चीज ढूँढ़ कर पाती है कि यदि अहंकार की प्रतिष्ठा, व्यक्ति की स्वच्छन्दता उसी की सुख-सुविधा पर ही स्त्री-पुरूष का मिलन आधारित हो, तो वह मिलन और टूटन बिलकुल ही व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करेगा। इसी की परिणति यह होगी कि जिस घर में स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों के बीच व्यक्ति विशेष की सुख स्वच्छन्दता का ही आधार होगा, वहाँ पति पत्नी की विषम सम्मति भी बिल्कुल निजी होगी। सम्मति ही तब स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों का आधार होगी। इसमें आनन्द नहीं मिल सकता। इसमें उपजती है ईर्ष्या पैदा होता है कलह। पुरूष स्त्री पर सन्देह ही नहीं अविश्वास करता है।[1] रात रानी की कुंतल इस सन्देह का सामना करती है। बात यह है कि उसका विवाह निरंजन से तय हुआ था तथा कुंतल ने निरंजन के पत्र के उत्तर में कुछ पत्र लिखे थे किन्तु दहेज समस्या के कारण कुन्तल का निरंजन नहीं हो सका फलतः वह जयदेव की पत्नी बनी। पुरूष को पता लगा कि उसकी पति का कोई प्रेमी भी है तो उसके अहं को चोट लगती कि उसकी पत्नी पूर्णरूपेण उसकी नहीं है। अधिकार समस्या से तनाव पैदा होता है। जयदेव कुंतल से निरंजन को लिखे पत्रों के विषय में चर्चा करता है

जयदेव- जहाँ तुम्हारी पहली शादी पक्की हुई थी, तो वहाँ तुमने कुछ खत लिखे थे।

कुंतल- हाँ लिखे थे, निरंजन बाबू को, जिनसे मेरी शादी तय हुई थी........ क्यों क्या

---

१. सगुन पंछी, पृ० ६

बात है?

जयदेव - कुछ नहीं।

कुंतल- पर खत की यह बात तुमसे किसने कही? बताओ नहीं तो इस दीवार से मैं अपना सिर फोड़ लूँगी।

जयदेव- ओ हो मेरा पूछना ही कसूर हो गया।

कुंतल - आपका क्या कसूर। मूल अपराधिनी तो मैं हूँ स्त्री का जन्म पाकर, यह हृदय पाकर। माता-पिता के द्वारा पत्नीत्व आदर्श पाकर। इस शरीर पर यह चिकनी चमड़ी पाकर काश मैंने भी तुम्हारी तरह दुनिया देखी होती।[1]

वह निरंजन बाबू से पत्र लेकर जयदेव को सौंप देती है।

ध्वन्यार्थ यह है कि पति चाहे कितनी स्त्री देखे, किन्तु भारतीय पत्नी की विडम्बना यह है कि वह एक ही पुरूष देखती है। उस पर ही अखण्ड पूर्ण विश्वास करती है।

कुंतल- मैंने आजकल की लड़कियों जैसे प्यार भरे फिल्मी गीतों से लबालब खत लिखे होंगे? मैं उन लड़कियों में नहीं जो मजनुओं की लैला बनने के स्वप्न देखती हैं। मैं हिन्दू स्त्री हूँ, पति में श्रद्धा रखने वाली, उस पर भरोसा और विश्वास रखने वाली। सुनो सुनो हिन्दू स्त्री प्यार नहीं प्रेम करती है। प्रेम में मुक्ति है और प्यार में बंधन।[2]

तात्पर्य यह है कि कुंतल के दो रूप नहीं है। वह एक रूप वाली पत्नी है, जबकि जयदेव चाहती है कि स्त्री के दो रूप होने चाहिए, घरवाली, बाहरवाली। घरवाली कुंतल ने अपने को प्रकृति से जोड़ रखा है। वह अपनी फुलवारी में अपने को व्यस्त रखती है।

जयदेव- (कुंतल के दोनों कंधो पर शाल डाल देता है) ठंड लग जाएगी तुम्हे। कितना

---

१. रातरानी, पृ० ३८-३६

२. वही पृ० ६०-६१

मना किया कि इतना काम मत करो।

कुंतल- जो जिसका काम है, वह जरूर करेगा। यह मेरा काम है। तभी तो मैं करती हूँ क्योंकि मुझे इसमें आनन्द मिलता है।[1]

कुन्तल व्यक्ति स्तर की पत्नी है, जिसमें एक ओर प्राक्तन नायिकाओं के गुण मिलते हैं तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन की व्यस्तता, तथा धन की महत्ता से उत्पन्न तनाव भी है। पत्नी के रूप में पति की प्रेमिका भी है और संगिनी भी है। उसके दाम्पत्य के मधुर क्षणों की झाँकी दर्शनीय है।

कुन्तल – कौन ? अरे तुम ? यहाँ छिपकर बैठे हो ? प्रेस नहीं गये ? अरे! बोलते क्यों नहीं ? तबियत तो ठीक है ? (जयदेव के बालों में उँगली फँसाते हुए) यह ढ़ाई मन का सिर क्या हिलाते हो ? मुँह से बोलो, क्या बात है ? नहीं बताओगे ? तो लो न बोलो (जयदेव के बगल में हाथ डालकर बेतरह गुदगुदाने लगती है।)

जयदेव- मेरी रात रानी प्रेस में आज फिर स्ट्राइक है।[2] कुंतल हड़तालियों के आक्रोश का स्वयं सामना कर घायल हो जाती है और जयदेव की रक्षा कर नारीत्व का आदर्श प्रस्तुत करती है। एक सत्य हरिश्चन्द्र पौराणिक नाटक है। हरिश्चन्द्र की पत्नी परम्परित में चित्रित है। वह पति के लिए बिक जाती है। इसी प्रकार नरसिंह कथा में हिरण्यकश्यपु की पटरानी भगवती सामान्य नारी के प्राक्तन आदर्श रूप में चित्रित हुई है।

सगुनपंछी में राजा अंगध्वज की रानी दुराग्रही, स्वार्थी पत्नी के रूप में चित्रित है। अपने कान के मोती को ढूँढ़ने के लिए इतना हठ करती है कि राजा/पति को भारी प्रयास करना पड़ता है। इतना अवश्य है कि मंत्री के प्रलोभन में न आकर पति के प्रति एकनिष्ठ रहती है। उसमें आधुनिक अस्मिता प्रधान नारी का रूप मिलता है, जो किसी के दान पर जीवित नहीं रहना चाहती। वह राजा से इसी रहस्य को जानना भी चाहती है।

---

१. रातरानी, पृ० ६३

२. वही, पृ० १६

रानी – मुझसे कुछ छिपा रहे हो। मुझसे कपट रखते हो। मंत्री विजय सेन ने सच कहा था।

राजा– मत लो उस विश्वासघाती का नाम।[1]

रानी मंत्री विजयसेन को जेल में बंद देखती है। वह कहती है कि मैं ऐसी जगह नहीं रहना चाहती, जहाँ परस्पर विश्वास न हो। मैं उस पुरूष के साथ नहीं रह सकती, जो रहस्य,छ्ल कपट की अंधेरी गुफा में बंदी है आत्म विस्मृत है, जिसके संग रहकर कुछ करने को न हो, वहाँ मैं एक क्षण नहीं रह सकती।[2] एक पत्नी के रूप में रानी की धारणा है कि पुरूष समझता है, कि बस वही मनुष्य है। उसी की इच्छा, उसी का प्रभुत्व मनुष्य का लक्ष्य है। नारी को वह इच्छानुसार स्वीकार कर सकता है या त्याग कर सकता है।[3] वह अपने अधिकार अस्तित्व की रक्षा के लिए पति/राजा के दान को अस्वीकार कर देती है।

रानी– तुम्हारे दान में अहंकार है। तुम्हारे दिए हुए जीवन से मैं घुट रही हूँ। अपने ही जीवन से जीना है। अपनी ही मृत्यु से मुक्त होना है, लो अपना दान वापस लो।[4]

पति-पत्नि के सम्बन्धों के धरातल के सन्दर्भ में डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है कि प्रकृति और पुरूष तो सनातन है। वे दो शक्तियाँ हैं। एक जल है तो दूसरा ताप है। एक धरती है तो दूसरा सूरज है बिना एक के दूसरे का अस्तित्व नहीं। पर दोनों सर्वथा दो हैं। दोनों का दो बने रहना ही उनकी अपनी अस्मिता है।[5]

अंधाकुआँ में दो प्रेमी-प्रेमिका है। काव्य की नायिका सूका भगौती की पत्नी एवं इन्दर की प्रेमिका है। वह भगौती को छोड़कर इन्दर के साथ भाग जाती है। किन्तु भगौती के अथक प्रयासों से पकड़ी जाती है। उस समय इन्दर चुपचाप खड़ा देखता

---

१. सगुन पंछी, पृ० ७४
२. वही पृ० ७५
३. वही पृ० ६०
४. वही पृ० ६१
५. सगुन पंछी-भूमिका पृ० १४

रहता है और पुलिस सूका को पकड़ कर ले जाती है, तभी से सूका के मन में इस प्रेम के प्रति विरक्त हो जाती है। प्रेमी दृढ़ता से कहता कि हम दोनों वयस्क हैं, परस्पर प्रेम करते हैं। सूका को बिना उसकी सहमति के नहीं ले जाया जा सकता, तो शायद सूका का प्रेम परवान चढ़ता। सूका कहती है

सूका – बातें मत बना, ईश्वर–फीश्वर कुछ नहीं, मेरा मुँह क्या उतने दिनों तक कलकत्ते में नहीं देखा था। पुलिस मुझे गिरफ्तार कर रही थी और तू दूर गली में खड़ा–खड़ा मेरा मुँह तक रहा था, तब मुझे देखकर तेरी तबियत नहीं भरी थी? बोल मरे, इजलास में झूठ बोलकर राम रामायण की कसम खाकर, जब जलालपुर के लोग मुझे ठग रहे थे, तब तू भी खड़ा–खड़ा इसी तरह मेरा मुँह तक रहा था।[1]

सूका अपने पति भगौती को ही नियति मानकर घायलावस्था में उसकी जी जान से सेवा करती है। इन्दर से लड़ती हुई गँड़ासे से घाव खाकर मर जाती है। अंधाकुआँ का दूसरा प्रेमी युगल लच्छी–हीरा है। लच्छी विवाह से पूर्व हीरा से प्रेम करती थी किन्तु छल–बल–धन से भगौती सूका से प्रतिशोध लेने के लिए उसे विवाहिता बनाकर ले आता है। हीरा अपने व्यवहार से सूका को प्रभावित कर लेता है, तो लच्छी अपनी सेवा से सूका को बड़ी बहिन बनने को विवश कर देती है। सूका लच्छी को चुपचाप हीरा के साथ ससम्मान विदा कर प्रेमी–प्रेमिका को मिला देती है। वह अपने अनुभव पर हीरा को खरा पाती है?

सूका– अगर रास्ते में कोई तुम्हें पकड़ने लगे? लड़ाई करे?

हीरा – पूरी ताकत से सामना करूँगा?

राजी – दीदी की बातों का बुरा न मानना

सूका – लच्छी से प्यार करते हो? प्यार माने?

हीरा– जिम्मेदारी

सूका – और?

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ४६

हीरा – उसकी सदा रक्षा करना।

सूका – और

हीरा– उसी के साथ जीन और मरना।[1]

मादा कैक्टस प्रेम के एक दूसरे ही धरातल को प्रस्तुत करता है। जो आज के उपभोक्तावादी संस्कृति के अनुकूल है। अरविन्द आनन्द ऐसे प्रणयी है जो प्रेम को शारीरिक स्तर से ऊपर मानकर परस्पर प्रेरणा को प्रामुख्य देते हैं। अरविन्द विवाहित पुरुष है। सुजाता उसकी पत्नी है, किन्तु सुजाता उसके चित्रकार रूप को प्रेरणा नहीं दे पाती, अतः अरविन्द विवाह संस्था के प्रति संशयग्रस्त है जबकि आनन्दा से मिलकर वह इतना उल्लसित हो जाता है कि चित्र बनाने में एकाग्रता आ जाती है। अरविन्द कहता है कि मैं तो (विवाह को) उसे बिल्कुल ही मिटाना चाहता हूँ। मैं उस रास्ते पर चलकर देख आया हूँ, उसमें गति नहीं है, प्रेरणा नहीं है। सबसे बड़ी चीज है, आपस की अन्डर स्टैडिंग। सिम्पैथी।[2] यह सिम्पैथी प्रेरणा, प्रेम उसे आनन्दा में मिला है।

अरविन्द– हम और आनन्दा एक दूसरे को बड़े भाग्य से मिले हैं। हम जीवन पर्यन्त इसी भाँति आनन्द और प्रेरणा से एक–दूसरे के संग रहेंगे।[3]

अरविन्द की मान्यता है कि वे और आनन्दा स्वतंत्र है। वे दोनों कोई बच्चे नहीं है, कि माता–पिता उन्हें शिक्षा दें, कि जीवन किस तरह यापन करना चाहिए। उन्हें अपने भले बुरे का ज्ञान है। बात यह है कि भारतीय समाज समष्टिगत चिन्तन को प्रधान मानता है। अतः यहाँ संयुक्त परिवार का प्रचलन है, किन्तु पश्चिमी चिन्तन व्यक्तिवादी है। अतः एकल परिवार की अवधारणा विकसित हुई जिसमें विवाह मात्र औपचारिक रीति रिवाज है। वस्तुतः स्त्री पुरुष में प्रेम, विश्वास, समर्पण, प्रेरणा जब तक है, वे एक साथ रहने की कल्पना करते हैं, उसके अभाव में अलग हो जाना

---

१. अंधा कुआँ, पृ० ६८

२. मादा कैक्टस, पृ० ४७

३. वही पृ० ४८

अधिक श्रेयष्कर है। इसलिए विवाह की रस्म अनावश्यक है। पुनः तलाक के लिए भाग दौड़ करनी पड़ती है। अतः मादा कैक्टस के अरविन्द आनन्दा इसी प्रेम पर विश्वास कर बिना विवाह किए एक साथ रहने का संकल्प करते हैं।[1]

---

१. मादा कैक्टस, पृ० ६५

अष्टम अध्याय

अध्याय - ८

लक्ष्मी नारायण लाल के पात्रों में व्यंजित मूल बोध

भारतीय काव्य शास्त्र में निर्दिष्ट साहित्य के विभिन्न प्रयोजनों में से एक मानव हित सम्पादन भी है। मूल्य शब्द का सम्बन्ध इसी हित सम्पादन से है। इसीलिए यह कहा जाता है कि साहित्य और जीवन मूल्यों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मूल्य विषयक धारणाएँ बदलती रही हैं। अतः यहाँ मूल्य शब्द के शब्दार्थ से लेकर प्रयोगार्थ रूपों पर विहंगम दृष्टिपात कर लें।

मूल्य शब्द के अर्थ :-

मूल्य शब्द मूल+यत् से व्युत्पन्न[1] है जिसका धात्वर्थ है किसी वस्तु के समान धन या कीमत का विनिमय। मूलेन समो मूल्यः अर्थात् मूल के समान।[2] आज इस शब्द के मूल अर्थ में विस्तार हो गया है। इसका अंग्रेजी पर्याय वैल्यू ;टंसनमद्ध है जिसका प्रयोग सामाजिक विज्ञान से लेकर दर्शनशास्त्र, नृतत्व शास्त्र तक में होता है।

मूल विषयक विभिन्न मान्यताएँ :-

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में मूल्यों को धर्म या आचरण शास्त्र से सम्बद्ध किया गया है। मनुस्मृति में धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह इत्यादि को नैतिक मूल्य माना गया है। भर्तृहरि (नीतिशतक) में विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, इत्यादि गुणों का मानव मूल्यों के मानक रूप में स्वीकार किया गया है।

पाश्चात्य जीवन दर्शन में मूल्यों को अच्छे या बुरे रूप में देखा गया है। एच0एम0 जानसन ने लिखा है -

Value may be defened as conception or standard culture or merely personal by which thing are compared and approved or disapproved relative to one another held to be relatively desirable or undesirable more meritarious or

---

१. शब्द कल्पद्रुम - भाग - ३७८

२. वही

less more or less correct अर्बनन मूल्य की तीन परिभाषाएं प्रस्तुत की।

1. Value is that which satisfies humer desire

2- As anything that furtheres or conserves life.

3- That along is ultimately and intrinsi cally valuable that leads to devlopment of selvep or to self realization.

तात्पर्य यह है कि मानव इच्छा की तुष्टि जीवन को विकास की ओर अग्रसारित करने तथा मानव को आत्मानुभूति कराने वाले तत्व मूल्य हैं। बूड्स दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने वाले सामान्य सिद्धान्तों को मूल्य मानता है। पाश्चात्य विद्यानों की मूल्य सम्बन्धी अवधारणाओं को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करते हुए डॉ0 रमेश देशमुख ने लिखा है कि मूल्य उन्हीं व्यवहारों को कहा जाता है, जिनमें मानव जीवन का हित समाविष्ट हो, जिनकी रक्षा करना समाज अपना सर्वोच्च कर्त्तव्य मानता है। मूल्य एक प्रकार की शाश्वता का बोध कराते हैं। ये जीवन के आदर्श एवं सर्वसम्मत सिद्धान्त होते हैं। मूल्य उस सर्वसम्मत व्यवहार को कहते हैं जिसे अपनाकर कोई जाति, धर्म या समाज सार्वजनिक जीवन को सुन्दर बनाने का नियोजन करता है मूल्य सामाजिक मान्यताओं के साथ बदलते भी रहते हैं किन्तु उनमें अन्तर्निहित मंगल कामना और सार्वजनिक हित की भावना कभी तिरोहित नहीं होती। नये परिवेश में पुरानी मान्यताएँ जब कालातीत हो जाती हैं तो समाज नयी मान्यताओं को स्वीकार कर लेता है और वे ही मान्यताएँ मूल्य बन जाती हैं।[1]

हिन्दी के अनेक चिन्तकों ने भी मूल्य सम्बन्धी अपनी अवधारणाएँ व्यक्त की हैं। डॉ0 देवराज ने लिखा है मूल्य वे होते हैं, जिनकी मनुष्य कामना करता है। चरम मूल्य उन्हीं व्यवहारों को कहा जाता है, जिनमें मानव जीवन का हित समाविष्ट हो, जिनकी रक्षा करना समाज अपना सर्वोच्च कर्त्तव्य मानता है। मूल्य एक प्रकार की शाश्वतता का बोध कराते हैं। ये जीवन के आदर्श एवं सर्वसम्मत सिद्धान्त होते हैं।

---

१. हिन्दी कहानियों के मूल्य - पृ० २५

मूल्य उस सर्वसम्मत व्यवहार को कहते हैं, जिसे अपनाकर कोई जाति, धर्म या समाज सार्वजनिक जीवन को सुन्दर बनाने का नियोजन करता है, मूल्य सामाजिक मान्यताओं के साथ बदलते भी रहते हैं, किन्तु अनमें अन्तर्निहित मंगल कामना और सार्वजनिक हित की भावना कभी तिरोहित नहीं होती। नये परिवेश में पुरानी मान्यताएँ जब कालातीत हो जाती है, तो समाज नयी मान्यताओं को स्वीकार कर लेता है और वे ही मान्यताएँ मूल्य बन जाती हैं।[1]

हिन्दी के अनेक चिन्तकों ने भी मूल्य सम्बन्धी अपनी अवधारणा व्यक्त की है। डॉ0 देवराज ने लिखा है मूल्य वे होते हैं जिनकी मनुष्य कामना करता है। चरम मूल्य उन वस्तुओं, स्थितियों तथा व्यापारों अथवा उन विशिष्ट पहलुओं को कहते हैं, जो मनुष्य की सार्वभौमिक संवेदनाओं को आवेगात्मक अर्थवत्ता देते हुए दिखाई देते हैं।[2] डॉ0 राजबली पाण्डेय पुरूषार्थों को मूल्य कहते हैं, जीवन के मूल्य चार हैं, ध र्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें धर्म और अर्थ साधन मूल्य हैं और मोक्ष साध्य। अतः सामान्य और विशिष्ट कर्त्तव्यों का विधान इन्हीं की प्राप्ति के लिए किया गया है।[3] डॉ0 प्रभाकर माचवे ने मूल्यों नीति शास्त्रीय वैल्यू का पर्यायवाची मानते हुए लिखा है कि मानवीय क्रियाओं में आचार-व्यवहार में अच्छाई या शिवत्व का मूल्य क्या है यही नीतिशास्त्र का विषय है।

यहाँ पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या नीति शास्त्र की कसौटियाँ सर्वसम्मत, सर्वस्वीकृत और सार्वभौम हो सकती है। इस सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी अलग मान्यताएँ विचारधाराएँ और परम्पराएँ होती हैं, जिनसे मूल्यों का निर्माण होता है। अर्थशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग किसी वस्तु की मानवीय आवश्यकता और इच्छा पूर्ति की क्षमता के अनुरूप किया जाता है। 'अर्थशास्त्र' में वह (मूल्य) बजार दर के अर्थ नियम के एक आवश्यक

---

१. संस्कृति एवं दार्शनिक चिन्तन - पृ० २०

२. वही पृ० १७

३. हिन्दू संस्कार - पृ० २१५

प्रतिमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। साहित्य शास्त्र में मूल्य के सन्दर्भ में यह मान्यता प्रचलित है, कि मूल्य शब्द समाज-कल्याण या मानव हित वाले व्यापक अर्थ तक सीमित नहीं है, अन्यथा समस्त धर्मग्रंथ हो सर्वश्रेष्ठ साहित्य माने जाते। कई बार साहित्य में वर्णित आचरण घटना या व्यक्ति नीति सम्मत नहीं होते, फिर भी उसका अपना मूल्य होता है। यहीं शिव और सुन्दर का द्वन्द्व शुरू होता है। एक मत उनका है जो सत्य, शिव, सुन्दर तीनों मूल्यों को एक ही सत्ता के तीन पहलू मात्र मानते हैं। दूसरा मत उन सौन्दर्य वादियों का है जो सौन्दर्य को ही अंतिम मूल्य समझकर चलते है। नीति प्रचारक शिव को और वैज्ञानिक या वास्तववादी (यथार्थवादी) सत्य को।[2] इस प्रकार मूल्य शब्द पहले नीतिशास्त्र में प्रयुक्त हुआ, उसके बाद अर्थशास्त्र में फिर मानवीय संवेदनाओं से जुड़ने पर यह साहित्य, दर्शन, सौन्दर्यशास्त्र में विविध ा अर्थों में प्रयुक्त होने लगा।

मूल्यों की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित है-

डॉ0 नगेन्द्र मूल्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं मूल्य उस समवाय का नाम है, जो किसी पदार्थ की अपने लिए प्रमाता के लिए अथवा अपने परिवेश के लिए, सार्थकता का निर्धारण करता है। पदार्थ का गुण होने के कारण मूल्य की सत्ता वस्तु परक है किन्तु प्रमातृ-सापेक्ष होने के कारण वह व्यक्ति परक है।

वी0आई0पी0 लेनिन के अनुसार- 'प्राथमिक रूप से एक वस्तु मानव की आवश्यकता को संतुष्ट करती है, गौण रूप में एक वस्तु को दूसरी वस्तु के लिए बदला जा सकता है। एक वस्तु की उपयोगिता ही उपयोगी मूल्य का निर्माण करती है। पाल हान्लेफर्मे ने वस्तु की आवश्यकता पर बल दिया है। किसी वस्तु की मानवीय आकांक्षाओं को पूरी करने वाली विश्वस्त योग्यता किसी वस्तु का यह गुण जो व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह के लिए उसे रूचिकर बनाता है। डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ ने प्रतिपादित किया है कि मूल्य साधारणतया तथा तत्क्षण प्रदत्त गुण। (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) नहीं बुनियादी प्रपत्तियाँ है। मूल्य इन्द्रियगम्य संघटनाएँ न होकर

प्रपत्तिमूलक धारणाएँ हैं, जिनको हम घटनाओं की तुलना द्वारा या अनुभव द्वारा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार डॉ0 बलराज सिहमार ने इन अवधारणाओं को संक्षिप्त कर लिखते हैं कि इस तरह मूल्य के सम्बन्ध में कह सकते हैं कि जो वस्तु व्यक्ति के मन को शान्ति दे उसकी प्रेरणा बने और अपने आप में सार्थक महत्व रखती हो, वह मूल्यवान है, यानि किसी वस्तु की केन्द्रीय गुणवत्ता और मानव जीवन के लिए उसकी उपयोगिता ही मूल्य है।

मूल्यों का वर्गीकरण :-

सृष्टि के प्रारम्भ काल से मानव ने अपने सुख-सौविध्य हेतु कोई-कोई-कोइ नियम निर्धारित कर लिए थे। समाज ज्यों-ज्यों विकसित होता गया, पुराने नियम नए रूपों में परिवर्तित होते गये। मूल्यों के विकास में यही तत्व कारक रूप में निहित रहा। आज वैज्ञानिक, प्राद्योगिकी तथा उपभोक्तावादी युग है। अतः प्राक्तन मूल्यों के अनुरूप जीवन जटिल एवं कष्ट साध्य हो गया है, परिणाम स्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नए-नए मूल्यों की तलाश होने लगी। यद्यपि मूल्य निर्माण एवं निर्धारण में विवेक कार्य करता रहा है, तथापि समयानुसार मूल्य जीवन यापन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं, कभी-कभी विवेकहीन नियम भी प्रचलित हो गये थे। समाज के विभिन्न क्षेत्रों, देश, काल, परिस्थिति, आवश्यकतानुसार मूल्यों के अनेक भेद हो सकते हैं। जैसे- सामाजिक, आर्थिक़, नैतिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक इत्यादि। भारतीय परम्परा वैयक्तिक सामाजिक, आध्यात्मिक मूल्यों के साथ पुरूषार्थ चतुष्टय अर्थ, धर्म, काम, मोक्षानुसार नियमों या मूल्यों निर्धारण किया है। पाश्चात्य विद्वानों में मैंकेंजी, अर्बन इत्यादि विद्वानों ने मूल्यों का वर्गीकरण किया है। मैंकेंजी का वर्गीकरण साधन, मूल्य और स्वतः मूल्य, अस्ति और नास्ति मूल्यों के रूप में किया है।[1] अर्बन[2] आ0 भागों में मूल्यों का वर्गीकरण किया है।

(1) शरीर विषयक मूल्य

क. शरीरात्मक

ख. आर्थिक

ग. मनोरंजनात्मक

(2) सामाजिक मूल्य

क. सामाजिक

ख. चरित्र्यात्मक मूल्य

(3) आध्यात्मिक मूल्य

क. सौन्दर्य

ख. बौद्धिक मूल्य

ग. धार्मिक एवं ईश्वर विषयक

मिस लोरिंग ने नैतिक ;म्जीपबंसद्ध एवं अनैतिक ;छवद मजीपबंसद्ध रूपों में इन्हें वर्गीकृत किया है। डॉ0 रमेश चन्द्र लावनियाँ ने मूल्यों का निर्धारण वैयक्तिक मूल्य, समष्टिगत मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य, भौतिक मूल्य, नैतिक मूल्य एवं सौन्दर्य मूलक मूल्य- छह रूपों में किया है।[1] डॉ0 रमेश देशमुख ने मूल्यों का विस्तृत वर्गीकरण किया है। उन्होंने शाश्वत मूल्य एवं बदलते या परिवर्तनीय मूल्यों का उल्लेखकर शाश्वत मूल्यों के अन्तर्गत साध्यमूल्य 1. सौन्दर्यमूल्य - सत्यं, शिवं, सुन्दरं, 2. नैतिक मूल्य- त्याग समर्पण, अहिंसा, करुणा, उदारता, सेवा तथा बदलते मूल्य या साधन मूल्यों के अन्तर्गत (1) जैविक मूल्य- आर्थिक मूल्य, शोषण, मुक्ति मूल्य आर्थिक समता, रोजगार के समान अवसर तथा अति जैविकीय मूल्य ;पद्ध सामाजिक मूल्य- समता, स्वतंत्रता, पारिवारिकता, विवाह, ख. आधात्मिक मूल्य- जप, तप, विधि-निषेध, जातीय संस्कार आस्तिकता, आनन्द, मोक्ष, ;पपद्ध राजनीतिक मूल्य- राष्ट्रीयता, देशप्रेम, कर्त्तव्य परायण इत्यादि का उल्लेख किया है।[1] कहना नहीं होगा कि सौविध्य की दृष्टि मूल्यों को सामाजिक मूल्य सौन्दर्यमूलक मूल्य, दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रन्थों के रूप इनका कोटीकरण किया जा सकता है।

सामाजिक परिवेश एवं मूल्य :-

भारत देश सहस्राधिक वर्षों से पराधीन रहा है, अतः उसके जन-मानस में

१. हिन्दी कहानियों में नैतिक मूल्य - पृ० ३५

स्वत्व, अस्मिता की रक्षा का एक मात्र उपाय प्रतीत हो रहा था, कि धर्म रक्षार्थ अंध
ा–विश्वासों, प्राक्तन धर्म शास्त्रों का गतानुगतिक यांत्रिक गति के समान पालन किया
जाय। अतः धीरे–धीरे ये रीतियाँ कुरीतियों विश्वास आस्था अंधविश्वास में परिवर्तित
हो गये जिन्हें सुधारने, परिमार्जित कर नए समाज के निर्माण में सुधारकों का अप्रतिम
योगदान है। रूढ़िवादिता, जाति–भेद, धार्मिक मतभेद, बाल विवाह, देहज प्रथा,
जमींदारी प्रथा, अंधविश्वास जैसी कुरीतियों को दूर करने के लिए राजाराम मोहन
राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, तिलक सदृश अनेक विचारकों ने
विविध क्षेत्रों में प्रयास किये। औद्योगिक विकास वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति का विकास
के कारण समाज अधिकाधिक भौतिक परक हो गया। इस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि,
बौद्धिकता का विकास, शिक्षा तथा नये विचारों के प्रसार से नये पुराने विचारों का
संघर्ष, टकराहट सामने आने लगे। स्वातंत्र्योत्तर समाज विरोधी तत्वों का मिश्रण बन
गया। इसमें एक ओर विगत परम्पराओं मान्यताओं और रूढ़ियों का सम्मिलन
दिखाई देता है, तो दूसरी ओर समसामयिक सुधारों एवं पाश्चात्य संस्कृति आधुनिक
चिन्तन धारा, विश्वासवादी दृष्टि के प्रभाव से वह अत्यन्त प्रभावित दिखाई देता है।
अंधाकुआँ में भगौती एवं भाई अलगू संयुक्त परिवार के रूप में चित्रित है। मानसिक
रूप से कुंठित भगौती खेत के कार्यो से विरत हो जाता है। सारा कार्य अलगू करता
उसकी पत्नी राजी भी उसकी सहायता करती है। कभी–कभी भगौती से पारस्परिक
सामंजस्य के अभाव के कारण परिवार दृढ़ता प्रतीत होता है। अधिकांश नाटकों में
एकाकी परिवार ही चित्रित है, फिर भी उनमें असन्तोष हैं। मि0 अभिमन्यु की विमला
राजन के आदर्श से सहमत नहीं तो सुन्दर रस की देवियाँ रस के प्रचार से प्राप्त
धन के लोभ में पति को नाराज कर देती है। गंगा माटी के पिता–पुत्र, रक्त कमल
में भाई महावीर एवं कमल के वैचारिक मतभेद अलगाव की सीमा तक चित्रित हैं।
इसी प्रकार रातरानी में जयदेव एवं कुंतल (पत्नी) के बीच आर्थिक तनाव चित्रित है।

व्यक्ति–स्वातंत्र्य का प्रश्न आज पहले से कहीं अधिक उलझ गया है। दाम्पत्य

जीवन विश्वसनीयता को खोकर संक्रान्ति स्थल पर खड़ा किसी नई दिश तलाश कर रहा है। नारी अपनी अस्मिता, एवं स्वत्व के प्रति अधिक चैतन्य हो गई है। इस सन्दर्भ में डॉ० प्रेमलता ने लिखा है, कि यह सजगता उसके जीवन को संघर्षमय और गूढ़ बना देती है। पुरानी रूढ़ियों, परम्पराओं और संस्कारों में जकड़ी होने के कारण न तो वह पुरुष के शोषण से अपना पीछा छुड़ा पाती है और न ही अस्मिता को बचा पाती है। अपमान तिरस्कार के कडुए घूँट को पीने के बावजूद वह खुलकर विद्रोह नहीं कर पाती। उसे अपनी नियति जरूर मान लेती है। इससे आगे का नारी वर्ग, जो अधिक सशक्त है, अपनी परम्परा, संस्कार से कटकर अपना अस्तित्व स्थापित करने का प्रयास करना चाहता है लेकिन उसका प्रयास निष्फल हो जाता है। वह विखर जाता है। अगला वर्ग पाश्चात्य अंधानुकरण में जीवन को कुंठा और संत्रास से युक्त कर लिया। पुरूष के अधिकार दंभ और नारी आन्दोलन में दाम्पत्य जीवन अस्वाभाविक बन गया है, जिसे फिर से विश्वसनीय और स्वाभाविक बनाने के लिए नाटककार प्रयत्नशील है। इसका रचनात्मक संघर्ष भारतीय संस्कारों की पृष्ठभूमि में पाश्चात्य संस्कारों की संपृक्ति से अपने लक्ष्य तक पहुँच गया है।[1] कहना नहीं होगा कि लक्ष्मी नारायण लाल ने दाम्पत्य जीवन, काम, प्रेम, विवाह के संघर्षो का सूक्ष्म अपने मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। अंधाकुआँ से सगुन पंछी तक की इस यात्रा में उन्होंने प्राक्तन, परम्परित एवं अधुनातन अपनी अस्मिता की पहिचान बनाने की व्यथा कथा एवं विद्रोह का चित्रण किया है। क्या नारी को मुक्त करना आवश्यक है। नारी स्वातंत्र्य आन्दोलन के द्वारा क्या उसका भविष्य सुखद होगा? इस स्वातंत्र्य की दशा, दिशा, सीमा और सम्भावनाओं की तलाश उन्होंने अपने नाटकों में की है। त्यागमयी और पीड़ित नारी का क्रोध और क्षमा, विद्रोह और समझौता उनके अंध ाकुआँ में वर्णित है। उस नाटक की नायिका सूका एक प्रताड़ित स्त्री की व्यथा कथा है। जब वह सौत के रुप में लायी गयी लच्छी में अपने अभाव ग्रस्त वात्सल्य की

---

१. ध्रुव स्वामिनी की व्यापक पृष्ठ भूमि -पृ० ६

क्षतिपूर्ति पाती है तो उसका चरित्र अधिक संवेदनशील बन जाता है। समसामयिक सामाजिक नाटकों में चरित्र सृष्टि की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति यह है कि नाटककार यथार्थ जीवन के जीवन्त पात्रों की सृष्टि करता है और उन्हें जीवन सन्दर्भ के यथार्थ से जोड़ने की अपनी कोशिशों द्वारा परम्परागत सामाजिक नाटकों के ढ़ाँचे को तोड़कर एक नये नाट्य रूप के निर्माण की ओर अग्रसर होता है।[1] पारम्परिक दाम्पत्य जीवन पर अनास्था और नई दिशा की तलाश को लेकर डॉ0 लाल का मादा कैक्टस बहुत प्रसिद्ध नाटक है। नारी-पुरुष का सम्बन्ध परम्परित ढ़ाँचे से भिन्न मित्रवत् रूप में रहने की वकालत करता है। पर इससे सम्बन्धों की स्वाभाविकता के नष्ट होने की आशंका अधिक दिखाई देती है। आजादी के बाद प्राचीन मूल्यों का सर्वाधिक विघटन स्त्री, पुरूष सम्बन्धों के प्रचलित प्राचीन मूल्यों के क्षेत्र में हुआ है और संभवतः नई संभावनाओं और संवेदनाओं को उभारने की सर्वाधिक कोशिशें भी शायद इसी क्षेत्र में हुई। स्त्री-पुरूष के पुराने एवं आदर्श बिम्ब रातरानी में मिलते हैं। कुंतल एवं जयदेव के माध्यम से नाटककार ने जहाँ एक ओर कुन्तल के प्राचीन त्यागमयी, भावुक नारी के चित्र प्रस्तुत किया है, जिसका आधुनिक रूप कुन्तल की सहेली सुन्दरम में दिखाई देता है, वहीं जयदेव के माध्यम से आधुनिक अर्थप्रधान पुरूष सोच की अभिव्यक्ति हुई है। दर्पन में पूर्वी और दर्पन के द्वारा नाटककार ने भोग परक एवं निवृत्ति प्रधान प्रवृत्ति के बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं। करफ्यू नाटक में तो गौतम एवं कविता तथा गौतम एवं मनीष, संजय एवं कविता के प्रति कहीं मौन एवं कहीं मुखर प्रभाभिव्यक्ति नये रूप में व्यंजित है। सगुन पंछी तो एक ओर नारी-पुरुष की विश्वासघात एवं छलना, प्रेम प्रवंचना की झलक दिखलाता है तो दूसरी ओर राजा-रानी, पंचम, गंगा, सम्बन्धों को नए रूप में तलाश कर उसकी अभिव्यक्ति करता है। मिस्टर अभिमन्यु में नारी सामाजिक प्रतिष्ठा बच्चों के भविष्य-सुधारने के लिए नायक/पति को परिस्थिति के अनुरूप कार्य करने को प्रेरित करती है।

पारिवारिक विघटन :-

भारत संयुक्त परिवार प्रणाली का देश रहा है। इस संस्था के स्थायित्व का

मूल कारक तत्व कृषि-व्यवस्था थी। खेती बहु आयामीय कार्य है। अतः संयुक्त परिवार में ही रहकर कृषि कार्य ठीक से सम्पन्न किये जा सकते हैं। इससे पारिवारिक प्रेम, सौमनस्य परस्पर बना रहता था। त्याग, आदर्श, नैतिक मूल्यों का इनसे पोषण होता था, किन्तु औद्योगिक सभ्यता के विकास होते ही लोग शहर की ओर पलायन करने लगे और कृषि उपेक्षित हो गयी परिणाम स्वरूप सामाजिक विघटन होने लगे। डॉ0 सत्येन्द्र त्रिपाठी ने ठीक ही लिखा है कि पारिवारिक विघटन से तात्पर्य है, सदस्यों को एक में बाँधने वाली स्थितियाँ या क्रियाओं का कमजोर होना, टूट जाना या उसमें सुसामंजस्य की स्थिति उत्पन्न हो जाना। पारिवारिक विघटन में केवल पति-पत्नी के ही तनाव नहीं बल्कि पिता-पुत्र या अन्य सदस्यों के बीच होने वाले तनाव की भी गणना की जाती है।1 डॉ0 रमित गुरव ने इस विघटन के सम्बन्ध में लिखा है कि संयुक्त परिवारों के विघटन का एक प्रमुख कारण आर्थिक स्थिति है। बढ़ते परिवार की अपेक्षाएँ और जिम्मेदारियाँ बढ़ती मँहगाई में केवल कृषि पर निर्भर होकर पूर्ण करना कठिन था इसलिए नौकरी करने के लिए व्यक्ति परिवार से दूर जाकर काम करने लगा। बदलते परिवेश में आर्थिक कारण पीढ़ी संघर्ष स्वतंत्रता की प्रबल भावना, वैचारिक मतभेद मानवीय मूल्यों का ह्रास जैसे कारणों की वजह से संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवारों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। आज सवाल केवल पति-पत्नी का माता पिता से अलग होना ही नहीं बल्कि पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चे, भाई-भाई, भाई-बहन जैसे निकट नये सम्बन्धों में भी एक अजनबीपन आ गया है। उनमें एक खोखलापन आ गया है।

नारी की स्थिति :-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता का डिम-डिम उद्घोष करने वाले देश भारत में नारी को आदिकाल से पुरूष की छत्र-छाया में ही रहने की मान्यता श्रेयष्कर समझी जाती थी। गुलामी के काल में पितृ सत्तात्मक परिवार के कारण उसकी दशा भोग्या या शीतलमणि के समान हो गयी। आधुनिक युग में राजाराम मोहन राय,

महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रभृति सुधारकों ने नारी उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान किया। बाल विवाह, अनमोल विवाह, बहुविवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, विधवा जीवन आदि नारियों की प्रमुख समस्याएँ थीं। स्वातंत्र्योत्तर भारत में संविधान ने नारी को समानता का अधिकार देकर राष्ट्र निर्माण में उनके योगदान का मार्ग प्रशस्त कर दिया। परिणामस्वरूप नारी-समाज में नई चेतना नई पहचान की ललक जागरित हुई, जिसमें पददलित पिछड़ी, पुरुष की अनुगामिनी नारी जीवन के हर क्षेत्र में अधिकार प्राप्त करने की योग्यता आ गयी। शिक्षा प्राप्ति की सुविधा ने इस आकांक्षा को और अधिक प्रोत्साहित किया। इस प्रकार सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, क्षेत्रों में उसका कृतित्व उजागर होने लगा। उसने घर और बाहर दोनों क्षेत्रों की जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक निर्वहन किया।

विवाह :-

इस नाटक में दद्दा और डाक्टर पापा परम्परित जीवन दृष्टि के प्रतीक हैं और अरविन्द आनन्दा आधुनिक या यूँ कहे तो अत्याधुनिक जीवन दृष्टि के परम्परागत प्राचीन जीवन मूल्यों के समर्थक पात्र जीवन के लिए विवाह को आवश्यक समझते हैं, जबकि अत्याधुनिक जीवन दृष्टि सम्पन्न, नवीन जीवन मूल्यों के समर्थक पात्र जीवन के सुख-चैन के लिए इसे अनावश्यक, प्रगति में बाधक में बाधक मानते हैं। नवीन जीवन मूल्यों का समर्थक, अत्याधुनिक दृष्टि सम्पन्न फाईन आर्ट्स कालेज का प्रिंसिपल अरविन्द अपने इसी दृष्टिकोण के कारण अपनी परिणीता सुजाता का परित्याग कर देता है, उसे लगता है कि उसके आने से उसके अन्तस् के भाव मर गये हैं, उसकी कला-साधना कुंठित हो गयी है, प्रेरणा और उत्साह समाप्त हो गये हैं, परिणामतः जिस चित्र का सृजन पहले वह कुछ ही घंटो में कर लेता था अब नहीं कर पाता, बल्कि चित्र अधूरे रह जाते हैं, और इस तनाव से मुक्ति के लिए कला साधना के लिए वह सुजाता जैसी पत्नी का परित्याग कर देता है, क्योंकि कला उसका जीवन है। पर क्या सुजाता को त्याग कर वह स्त्री-विहीन जीवन व्यतीत कर पाता

है, नारी सम्पर्क से दूर रह पाता है? उसके जीवन में समान जीवन मूल्यों की समर्थिका आनन्दा आती है। दोनों को देख दद्दा उनके वैवाहिक जीवन की कल्पना करते हैं, किन्तु अरविन्द उनके सपनों पर तुषारापात करता है, वह विवाह जैसी संस्था पर विश्वास ही नहीं करता। वह कहता है मैं उस रास्ते पर चल कर देख आया हूँ, उसमें राति नहीं, प्रेरणा नहीं, सबसे बड़ी चीज है आपस की अण्डर स्टैण्डिंग सिम्पैथी।[1] विवाह सम्बन्धों को निरर्थक मानते हुए वह कहता है– आपसे मैंने कइ बार कहा है, कि किसी स्त्री–पुरुष के सम्बन्ध में व्याह से भी बड़ी कोई चीज होती है। उसके सामने ब्याह तो महज एक बच्चों का घरौंदा है और घरौंदा भी ऐसा जो बहुत पुराना हो चला है। मैं तो बिल्कुल ही मिटाना चाहता हूँ।[2] विवाह के स्थान पर अरविन्द स्त्री–पुरूष के स्वच्छन्द रूपेण साथ–साथ जीवन यापन का पक्षपाती है। वह अपने पिता से कहता है– 'हम और आनन्दा एक दूसरे को बड़े भाग्य से मिले हैं। हम जीवन पर्यन्त इसी भाँति आनन्द और प्रेरणा से एक–दूसरे के संग रहेंगे। इसमें आप दुःखी क्यों हैं? डाक्टर पापा क्यों इतने चिंतित हैं? हम और आनन्दा जी दोनों समझ नहीं पाते इस रहस्य को।[3] आनन्द भी इसी जीवन दृष्टि की पक्षपातिनी है। वह अविवाहित रहकर भी किसी व्यक्ति के साथ मित्र रूप में रहने में कोई अनौचित्य नहीं मानती। वह अपने पापा से कहती है कि क्या हम दोनों विवाह से ऊपर उठकर सच्चे दोस्त और सहयोगी की तरह एक संग नहीं रह सकते। इस प्रकार स्त्री–पुरुष के बीच प्रेम सम्बन्धों की परिवर्तित जीवन दृष्टि को उकेरने का प्रयास मादा कैक्टस में है।

दर्पन में दो प्रणयी युग्म है। सुजान–उपमा तथा हरिपदम पूर्वी। प्रथम का प्रेम प्रारम्भिक अवस्था में अंकुरित होते ही अवसान को प्राप्त हो जाता है। सुजान के साथ उपमा पढ़ती थी और परस्पर प्रेम करने लगे किन्तु पिता की अस्वीकृति की भेंट चढ़

---

१. मादा कैक्टस - पृ० ५२

२. वही पृ० ५२

३. वही पृ० ५३

गया इससे सुजान विक्षिप्त सा हो गया। पूर्वी के समक्ष वह अपनी कारुणिक प्रेम गाथा कहता है।

सुजान : हम दोनों बी0ए0 में पढ़ते थे। विश्वनाथ जी के मंदिर में जाकर हमने कहा था – हमारा ब्याह होगा और एक दिन यह पवित्र बात मैंने अपने पिताजी से बताई पिताजी उल्टे उपमा के घर जाकर यह कह दिया कि हमारा ब्याह कभी नहीं हो सकता। उसी वर्ष मेरी उपमा बीमार पड़ी और मुझे सदा के लिए छोड़कर..........।[1]

हरिपदम और पूर्वी का प्रेम ट्रेन में अकस्मात हुआ। ट्रेन में हरिपदम गंभीर रूप से बीमार हुआ। पूर्वी उसे ट्रेन से उतारकर दवा इत्यादि से ठीक करती है फिर उसी के साथ बनारस आ गई और हरिपदम के बड़े भाई सुजान की दवा-परिचर्या करने लगी। पिताजी ने इस प्रेम का भी विरोध किया। उनके विचार से कोई एक अनजान लड़की संयोग से कहीं मिल गई, थोड़ा प्रेम या मोह हो गया। इसका यह अर्थ नहीं होता कि लड़की से शादी कर लें। हरिपदम और पूर्वी समझते हैं कि प्रेम ही विवाह है।

पूर्वी – अच्छा सुनो तो, समझो तुम्हारे संग मेरा ब्याह हो चुका।

हरिपदम– बिल्कुल..... पर अभी ब्याह का कर्मकांड बाकी है।[2] हरिपदम अपने मित्रों के बीच प्रेम-विवाह की चर्चा करता है, तो पिताजी के क्रोध का सामना उसे करना पड़ता है। हरिपदम और पूर्वी के बीच प्रेम की आधार शिला परस्पर विश्वास एवं एक निष्ठा है।

पूर्वी– तुम्हारी दृष्टि में मैं सबसे अच्छी हूँ।

हरिपदम– हाँ

पूर्वी– और अगर मैं अच्छी न होऊँ तो?

हरिपदम– नहीं

पूर्वी– मुझ पर तुम्हारा इतना विश्वास है।

हरिपदम– हाँ।[3]

---

१. दरपन - पृ० ४७
२. वही पृ० ५१
३. वही पृ० ५०

दोनों के प्रेम में निश्च्छलता है। बनावटीपन नहीं। किन्तु परिस्थितिवशात् विवाह नहीं हो पाता क्योंकि पूर्वी अतीत की दर्पन बौद्ध भिक्षुणी और उसे निक्षुणी रूप ध ारण कर हरिपदम के घर से जाना पड़ता है।

प्रेम का मॉंसल, सामाजिक दृष्टि से निषिद्ध परकीया प्रेम का रूप सूर्यमुख नाटक में चित्रित है। कृष्ण पुत्र प्रदयुम्न अपनी सौतेली सद्यःविवाहिता माता के सौन्दर्य पर आकृष्ट है, और सौतेली माँ वेनुरती भी उससे प्रेम करती है। पति कृष्ण को जब यह पता चलता है तो वे पद्युम्न से युद्ध कर फिर प्रति रात्रि निर्वासित प्रेमी की प्रतीक्षा करती रहती है। इनका प्रेम प्रथम दृष्टि का है–

वेनु– विश्वास करो, तुम्ही केवल तुम्हीं मेरे प्रथम और अन्तिम हो– मेरी ओर देखो इस महल में पाँव रखते ही, घूँघट उठाते ही सबसे पहले मैंने तुम्ही को देखा था। उस क्षण कृष्ण के हाथ का वह कमल सहसा नीचे गिर गया था तुमने कब किस शक्ति और विश्वास से उस कमल को उठाकर मेरी वेणी में गूँथ दिया था।

प्रदुम्न– उसी कमल की एक पॉंखुरी हमारे बीच में खिंची है मैं तुम्हें देख नहीं पाता और उस चक्रवाक की तरह मैं तड़पकर रह जाता हूँ जो सूर्योदय के बाद भी अपनी प्रिया से नहीं मिल पाता।[1]

कृष्ण द्वारा निर्वासित प्रदुम्न मुखौटा लगाकर अपनी प्रिया से मिलने रात्रि में आता है। ऐसी जन साधारण में किंवदन्ती फैली है। एक भिखारी कहता है कि हमें पता है, वह किस तरह हम अमावस्या की रात मुखौटा लगाकर इस राजमहल में बेनुरती से मिलने आता है।[1] दुर्गापाल और कृष्ण पुत्र साम्व की बातचीत से यह भी ज्ञात होता है कि वेनुरती एवं प्रदुम्न का प्रेम एक नये मन्वन्तर का प्रारम्भ करेगा किन्तु उन्हें आश्चर्य है कि कृष्ण पुत्र प्रदयुम्न में अपराध बोध क्यों है, वह कृष्ण की मृत्यु के बाद भी आत्म निर्वासित क्यों है? वह मुखौटा क्यों लगाये है?[2]

ब्यास पुत्र नष्ट होती द्वारिका को बचाने में समर्थ प्रद्युम्न को समझाते हैं कि

---

१. सूर्यमुख – पृ० ३२

२. वही पृ० ४७

वेनुरती को छोड़ दे इसी में उसका कल्याण है। इस प्रेम के लिए उसने नगर, नाम पद और सम्मान खो दिया है। वेनुरती एकाकी रथ हाँकती प्रद्युम्न के पास आती है और उसे प्रेरित करती है, कि वह अपना मुखौटा उतार दे ताकि वह उसके सूर्यमुख को देख सके।

वेनुरती- मेरे सूर्य को इस मुखौटे के अंधकार से बाहर आना ही होगा। सारी द्वारिका हमारे विरूद्ध षडयंत्र रच रही है। उठो, उन्हें चुनौती दो, ताकि हमारे अस्तित्व को अर्थ मिल सके ताकि हमारे अस्तित्व को अर्थ मिल सके। तुम गरूड की तरह यहाँ से उडो, मैं गरूड़ी की तरह तुम्हारे पंख में समाकर इस अंधेरे आकाशा को उषा रंजित करूँगी।[1] वेनुरति श्रृंगार करते समय लज्जा विभूति हो उठती है क्योंकि उसका प्रियतम इस श्रृंगार को सफल करने नहीं आ पाता।

वेनु - आज कितने दिन हो गये, मैं संध्या से सारी रात इसी तरह श्रृंगार किये बैठी रहती हूँ, पर वह नहीं आते और मारे लाज के मैं इसी अन्तःपुर में गड़ जाती हूँ।

परिचारिका- आज वह यहाँ अवश्य आयेंगे। कृपा कर उन्होंने मुझसे कहा था कि आज सारी रात मेरे लिए रंगमहल के द्वार खोले रहना।

बेनु- मेरे अंतःपुर के द्वार उनके लिए सदा खुले रहते हैं पर वे द्वार पर दस्तक देकर लौट जाते हैं। मैं नित्य उनके लिए अपने द्वार पर दीपावली सजाये बैठी रहती हूँ पर अंतःपुर में उनके पैर रखते ही जैसे उसी कमल कोश से बादल और बिजली तड़प उठती ह आर मेरे अंतःपुर के सारे दीप बुझ जाते हैं।[2]

वेनुरती की धारणा है कि वह उन्हीं के लिए जन्म लेती है। एक जन्म में वह कामदेव और वह रति थी। दूसरे जन्म में वह अनंग थे और वह उनके सूक्ष्म के लिए अनंगवती थी इस जन्म में विपरीत बनकर वे सामने आये हैं। कभी वह मदनुराज था, कभी शिशिर और इस जन्म में वह हेमन्त और वेनु पावस एक साथ हैं।[3] इस

---

१. सूर्यमुख - पृ० ३२

२. वही पृ० ४७

३. वही पृ० ८५

प्रेम की सामाजिक मर्यादा का भी बेनु स्मरण करती है और प्रद्युम्न के अपराध-बोध
ा का भी उसे ज्ञान है।

वेनु- पर इस बार विपरीत है। मेरे सौन्दर्य की परीक्षा तभी इतनी निर्मम है। हमारे भीतर लज्जा का सर्प कुंडली मार विष दंश करता है। उनके परिरम्भ से मैं कॉंप उठती है। मेरे मिलन से वह लज्जित होते हैं और हम दोनों भयभीत रह जाते हैं। हमारा विश्वास ही हमें सन्देह में डालता है। हमारी शक्ति ही हमें निर्बल बनाती है।[1]

प्रदुम्न भी इस प्रेम के मर्यादा विहीन या उलटे प्रसंग से परिचित है। वह नित्य प्रति कमल लेकर प्राण प्रिय का श्रृंगार करने के लिए आता है, किन्तु उसे लगता है, कि ऐसे क्षणों में कोई आकर द्वार बन्द कर जाता है और प्रदुम्न कान लगाए खड़ा रहता है। वेनु इसे कृष्ण की कल्पित छाया कहती है। प्रदुम्न कहता है -

प्रदुम्न- दुखी मत हो वेनु, हम स्वयं अपने-अपने विरोध हैं। लगता है उसी अन्तर्विरोध
ी के पथ से ही चलकर हमारा मिलन संभव है।[2]

दुर्गपाल अर्जुन के समक्ष प्रद्युम्न की वीरता, समुद्र को वशीभूत करने की घटना प्रस्तुत है, तभी गौरवान्वित वेनु कहती है, कि बोलो दुर्गपाल नहीं तो यह निस्तब्धता मुझें निगल जाएगी। वह मुझे विवरण सुनाओ कैसे उन्होंने काल-समुद्र में बाण मारा. ...मुझे समुद्र तट पर उनके पास जाने दो, मैं विजयमाला बनकर उनके वक्ष पर झूल जाना चाहती हूँ।[3] युद्ध में विजयी प्रद्युम्न दुर्गपाल कहता है कि मैं वेनु को नहीं देखना चाहता क्योंकि अपने समक्ष प्रिया को मैं अपने को रोक नहीं पाता। यह संशय रूक्मिणी को भी है, अतः वह अन्तःपुर की सभी रानियों के लेने आये अर्जुन के साथ वेनुरती को भी ले जाना चाहती है।

रूक्मिनी- प्रदुम्न विजयी होकर द्वारका का राजा होगा इसलिए यह और भी आवश्यक होगा कि वेनुरती को यहॉं से दूर कर दिया जाय नहीं तो प्रदुम्न इसके प्रेमपाश में

---

१. सूर्यमुख - पृ० ८५

२. वही पृ०

३. वही पृ० १०३

पड़कर निरंकुश होगा।[1] वेनुरती के जाने की सूचना पाकर प्रदुम्न व्यथित, निराश हो जाता है। प्रेमी का पुरूषार्थ प्रिय के साथ भोगने में है न कि उसके दूर रहने पर। प्रदुम्न- (व्यासपुत्र से) तुम कुछ नहीं जानते। वेनु मेरे अभिसार में गयी है। विरह की यह लम्बी, निःशब्द रात अब बीतने को है। मेरी अभिसारिका से मेरा चिर मिलन होगा। इस महा-अभिसार का पहला चरण वह था, जब वेनु मुझसे मिलने नाग कुंड की उन पहाडियों में गयी थी। मैं उसके संग अपने निर्वासन से नगर के पथ पर लौट रहा था। उस रात चाँद तारे हम पर झुक आये थे और लगता था हमारा माथा उनसे छू जाएगा। मेरे संग संग तब वेनु चल रही थी, पर उसी रात का यह दूसरा चरण है। मैं वेनु को निस्तब्ध रात में खोजूँगा।[2] अर्जुन के साथ गई सभी महारानियों में वेनु भी थी किन्तु प्रिय की याद में उसने दो दिन से अन्न जल ग्रहण नहीं किया। उसे इस बात की ग्लानि है कि चलते समय वह दो क्षण भर के लिए ही सही प्रदुम्न से मिल लेती। रूक्मिनी के प्रबोधन पर वह कहती है कि मैं अंतिम सांस तक अपनी इस अंधेरी रात में उस सूरज को पुकारती रहूँगी, बस अब इतना ही शेष है।[1] वृद्ध द्वारा गाये गीत- 'परस्पर दो चकोर दोउ चंदा' को सुनकर वेनु संभल नहीं पाती है और रूक्मिनी से अंतःपुर लौटने की अनुमति माँगती है। उसे विश्वास है कि विजय के पश्चात् लौटकर प्रदुम्न रात्रि की तमिस्रा में उसे अवश्य खोजेगा। रूक्मिनी वृद्ध को रोकती है कि वह प्रदुम्न के पास न जावे। तभी साम्ब आकर सूचित करता है कि विजयी प्रदुम्न विक्षिप्त सा होकर, राजमुकुट को फेंककर वेनुरती को खोजने चला गया है। यह सुनकर वेनुरती साम्ब से याचना करती है उसे जंगल का पता चाहिए जिससे वह प्रदुम्न को खोज सके। रूक्मिणी वेनु से आग्रह करती है कि वह ही इन विषम परिस्थितियों से सबकी रक्षा करती है। परिणाम स्वरूप वेनु प्रदुम्न के आने पर कहती है कि वह उसके समीप मत आवे। पहिले वह लज्जित थी आज भयभीत है। प्रदुम्न उसे कायर कहता है। उसे युद्ध भूमि में झोंककर स्वयं भाग निकली वेनु

---

१. सूर्यमुख - पृ० १०७

उत्तर देती है-

वेनु – मैं इन्हीं सारे प्रश्नों के समुद्र को तैर कर अभिसार के लिए आयी थी कि इस निर्जन द्वीप पर तुम आओ मैं हर युग में पथ निहारती खड़ी रह जाती थी, तुम पथ पर चुपचाप बढ़ जाते थे। कभी ऋतुराज बनकर, कभी सूक्ष्म होकर, इस बार पथ पर मैं बढ़ आई ताकि मैं तुम्हें प्राप्त कर सकूँ। यह देखो मेरी बाँहों में तुम्हारे शरीर का पराग, देखो मेरे वक्ष पर ये तुम्हारे आघात (दौड़कर प्रदुम्न को बाँहों में भर लेती है)1

वभ्रु के आक्रमण से घायल वेनु स्वीकारती है कि वे दोनों जन्म-जन्मानतर से बँधे थे- स्थूल, सूक्ष्म और शाश्वत की सारी गतिविधियों में... काल, सूक्ष्म और पदार्थ की समस्त सापेक्षता में। वस्तुतः हर प्रिया मूलतः माँ होती है। वेनु सशक्त शब्दों में कहती है -

वेनु – अंतःपुर में उस पहले दिन जब तुम्हे देखा था, तुम्हें समर्पित हो गयी थी, यद्यपि मैं लज्जित थी जिस दिन मैं तुम्हारे अंक में सोयी थी, उस दिन यद्यपि मैं घृणा से भरी थी, फिर भी मैंने तुम्हें प्यार किया था। उस दिन मैं लज्जित थी, यद्यपि तुम्हें अंक में कस लिया।2

अंत में प्रदुम्न वेनु को आश्रय देकर कहता है कि उन दोनों के प्रेम में संशय था किन्तु अब वह भय अर्थहीन हो गया है। वेनु उसकी बाँहों में निर्गीव हो जाती है।

सगुन पंछी में पुरुष नारी के आदिम प्रेम विश्वास घात की व्यथा कथा विन्यस्त है। तोता मैना के संवाद में एक-दूसरे को अविश्वसनीय बताकर पुरुष की सत्ता और नारी की अस्मिता पर प्रकाश डाला गया है। इस नाटक में राजा अंगध्वज और रानी अपनी-अपनी अस्मिता की खोज करते हैं। दाम्पत्य प्रेम में अविश्वास

---

१. सूर्यमुख पृ० १०९

२. वही पृ० ३५

हैजो बाद प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। दूसरा युग्म गंगा और पंचम का है जो अविवाहित है, किन्तु उनमें परस्पर प्रीति है, दृढ़ता है, अनन्यता है, विश्वास है, जो एक प्रेमी-प्रेमिका के लिए आदर्श स्थिति है।

गंगा- तुम हो तो सब कुछ है।

पंचम- तुम मेरे साफे की कलंगी हो।

गंगा- मैं नदी तुम गंगा।

पंचम- तू दिया मैं पतंगा।

इस विषय में नोंक झोक भी आख्या को ही दृढ़ करता है -

पंचम- अरी गंगा, मैं तुझे कब से ढूँढ़ रहा हूँ।

गंगा- मैं खाली बैठी हूँ क्या?

पंचम - मैं कब से खेत में हल चला रहा था।

गंगा- मैं नदी में कपड़े धो रही थी।

पंचम - हे, तू सीधे मुँह क्यों नहीं बोलती?

गंगा- हाँ, तेरा मुँह बड़ा सीधा है?

पंचम- देख मुझे गुस्सा मत दिला। तू नहीं जानती मेरा गुस्सा[1]

गंगा- तू भी नहीं जानता मेरा गुस्सा। मारूँगी ऐसा धक्का, जा गिरेगा कलकत्ता।[2]

गंगा पंचम को बकरा-बकरी की कथा सुनाती है, कि बकरी नदी में बहते एक फल देखा तभी बकरा उसे ढूँढ़ता हुआ आया। बकरी ने बकरे से फल लाने को कहा। बकरा अपने डूबने की बात कहकर बकरी को पीटने लगा। इस परिप्रेक्ष्य में गंगा पुरूष को निर्मम, निष्ठुर ह्दयहीन कहती है।

गंगा- (सहसा) मत छुओ मुझे। पुरूष जात इतनी निर्दयी है। जानवर है। मक्कार है। थुड़ी है, धिक्कार है। मैं अब तेरे पास नहीं रहूँगी। मैं अब तुमसे शादी नहीं करूँगी। नहीं करूँगी। नहीं करूँगी।[3]

---

१. सगुन पंछी   २. वही पृ० ८५   ३. वही पृ० ८८

पंचम गंगा को मनाने का प्रयास करता है। फसल आने के बाद मुंदरी (अंगूठी) बनाने की बात कहता। मेले में ले चलने का आश्वासन देता है। उसकी फसल सूखे की चपेट में है। पंचम गंगा को आश्वासन देने के रूप में अपना सिर पत्थर से फोड़ने की भी चर्चा करता है। पंचम गंगा को राजा अंगध्वज की कथा सुनाता है कि यह रानी को अपना रहस्य बताकर पत्थर होने जा रहा है। गंगा भी पंचम से जिद करती है कि वह गंगा के लिए पत्थर हो जाये। इसी बीच गंगा के सामने राजा का मंत्री आकर कहता है कि उसे पंचम ने मारा अतः राजा ने उसे बुलाया है। गंगा मंत्री को प्रत्युत्तर देती है कि इस प्रकार की मार भी एक प्रकार का प्यार होता है। गंगा राजा से कहकर पंचम को नौकरी दिलाती है, कि वह परदेस से धन कमाकर उसके लिए पियरी और मुँदरी ले आएगा। दूसरी ओर गंगा पंचम को जाने भी नहीं देती। वह उसके बिना रह भी नहीं सकती है। ऐसा आश्चर्य कारक प्रेम है। परस्पर प्रेम में मार हार और मनुहार उसे अधिक दृढ़ करता है। पंचम राजा के दरबार में चौकीदार बन जाता है। गंगा उसके विरह में गीत गाती है। पक्षियों के माध्यम से पत्र प्रेषित करती है किन्तु दुर्भाग्यवश पत्र राजा लेकर फाड़ देता है। राहगीरों से पंचम की खोज खबर पूछ्ती है। राहगीरों से पंचम के गुलछर्रे उड़ाने की बात सुनकर गंगा रोती कलपती रहती है। पंचम के वापस लौटने पर गंगा उसे रूष्ट हो जाती है। पंचम उसे मनाता है। न मानने पर लाठी से पीटता है। तभी राजा आकर उसे बचाता है। गंगा इसे प्रेम कहती है

गंगा- तू राजा है पर मारने वाला कौन है? उसने मारा। मारने का उसे अधिकार है। वह प्रेम भी तो करता है। मारना ही हमारा प्रेम है। मैं इसके बिना नहीं रह सकती। वह मेरे बगैर नहीं रह सकता। हम लड़ते हैं। हम दो हैं। हम हैं।[1]

अंत में राजा और रानी दोनों आकर पीली साड़ी से दोनों को बाँधकर परिणय सम्पन्न कराते हैं।

---

१. सगुन पंछी पृ० ९५

इस प्रकार डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में प्रेम के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। गुरू नाटक में चाणक्य का सुवासिनी से अव्यक्त प्रेम अंत में प्रकट होता है। प्रेमी-युगल परस्पर प्रेम तो करते हैं, परस्पर आकृष्ट भी हैं किन्तु परिस्थितिवशात् यह प्रेम प्रारम्भ में नहीं व्यक्त हो सका। राजनीतिक षडयंत्रों कुचक्रों, परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के कारण सुवासिनी चाणक्य के प्रति अपने प्रेम को व्यंजित नहीं कर पाती। उसका अन्तस्तल प्राण नहीं तो भी जीती हूँ की स्थिति का है। गीत के मर्म को चाणक्य समझ जाता है।

चाणक्य - केवल देख रहा था तुम्हें जाने कब से पुकारा इतनी देर बाद। आज संगीत आँखो से पकड़ में आया। मर्म भेदी संबोधन आज सुना। कान थे, पर तब सुन नहीं पा रहा था, अब सुन रहा हूँ। बस देख रहा हूँ, अपनी प्रिया को अंतहीन। केवल आँखे रह गया हूँ। एकाग्र आँखे। प्राणों के तट पर खिंचा चला जा रहा हूँ। इसी में देख रहा हूँ अपना सौन्दर्य, जो तुम्हारा ही सर्वांग रूप है।

सुवासिनी - देशकाल के जाने कितने संकुचित यात्रा पथों में तुम्हें पुकारती खोजती भटक रही थी। उस भटकन में आज तुमने पहली बार पुकारा और मैं पहुँच गई। मुझे अपने प्रेम तट पर खींच लो समूची।[2]

राजनीतिक दाँव-पेच के कारण हृदय की पुकार को अनसुनी कर बैठा था, किन्तु वही प्रेम अब चाणक्य के रोम-रोम से व्यक्त हो रहा है। निर्दय, निष्ठुर चाणक्य अपने संकल्प में सफल हो जाने पर हृदय के निभृत कोनों में छिपे इस प्रेम को भी पूर्ण रूप से भोगकर मुक्त होना चाहता है। वह सुवासिनी से कहता है कि पा गया तुम्हारी तैरती बाहुओं का तट। मानों आषाढ़ की पहली बदली बरस रही है। सब कुछ एकाकार हो रहा है।3 चाणक्य और सुवासिनी प्रथम पूर्ण मिलन के मधुर क्षणों डूबकर भी उन कटु क्षणों को विस्मृत नहीं कर पाते, जब चाणक्य हिंसक, छल-कपट से राजनीतिक सफलता प्राप्त कर रहा था। सुवासिनी को विश्वास ही नहीं था, कि उसका प्रेमी

---

१. गुरू - पृ० ८८

चाणक्य इस प्रकार का क्रूर भी हो सकता है।

चाणक्य उन क्रूर कृत्यों के कर्त्तव्य को स्वीकार करता है, वह सुवासिनी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

चाणक्य - तुम्ही हो मुझे पूर्ण काम पुरुष बनाने वाली अब जहाँ तुम चाहोगी, चला जाएगा यह पुरुष कूद जाऊँगा इस अंधकार से पार। उस अंधकार में भी तुम्ही हो। पार के तट पर भी तुम्हीं हो नये सूर्योदय में।

सुवासिनी- अपूर्व है यह क्षण, जिसमें तुम उगा चाहते हो मेरे सूर्य पुरुष।

चाणक्य - मेरे कोमल हृदय आकाश में नक्षत्र की तरह उदित हो कहाँ छिप गयी।

प्रेम में हर्षातिरेक के कारण सुवासिनी मूर्च्छित हो जाती है। चाणक्य उसे गोद में लेकर कहता है, कि मूर्च्छा से जागो प्रिये, जिस मुख को देखने और मुग्ध होने का अधिकार तब वहाँ नहीं था, पर जिसे देखे बिना न रहा गया उसे आज देखा, देख रहा हूँ और देखता रहूँगा।

मूल्य शून्य में नहीं उत्पन्न होते। जीवन से प्राप्त विभिन्न अनुभवों के बल पर अपनी कल्पनाशीलता, कलात्मकता का जीवन दृष्टि को मिलाकर कलाकार अपनी कला का निर्माण करता है। इन रचनाओं के माध्यम से वह दृश्यमान संसार में प्राप्त व्याप्त, निर्मित, आचरित जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार मूल्यों के निर्माण में तद्युगीन परिवेश का अत्यन्त महत्व होता है। डॉ0 दिनेश चन्द्र वर्मा के अनुसार 'परिवेश हम ऐतिहासिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों तथा स्थितियों से निर्मित एक प्रकार के वातावरण को कह सकते हैं, जिसमें व्यक्ति अपने आपको देख पाता है और उसकी तीव्रतम अनुभूतियाँ उसे आलोदित किय बिना नहीं रहती हैं जो उसके निर्माण और विघटन का कारण बनती हैं।[1] लक्ष्मी नारायण लाल के पात्रों द्वारा व्यक्त जीवन मूल्य के आंकलन, विश्लेषण हेतु तद्युगीन परिवेश की चर्चा करना समीचीन प्रतीत होता है।

राजनीतिक परिवेश एवं व्यंजित मूल्य :-

सन् 1857 में प्रथम बार अंग्रेजी शासन के विरूद्ध जो संघर्ष का जयनाद

किया गया उसका अन्तिम ज्वाला 1947 में जाकर समाप्त हुई कांग्रेस का सत्याग्रह, मुस्लिम सम्प्रदाय द्वारा पाकिस्तान की माँग, साम्प्रदायिक दंगे, भीषण रक्तपात, स्वतंत्रता की प्राप्ति संविधान के अनुसार शासन तंत्र का सूत्रपात, लोक तंत्रात्मक पद्धति पर हुए निर्वाचन चीनी आक्रमण से भारतीय नेताओं की नीतियों के प्रति साहित्यकारों का मोह भंग, पाकिस्तान से युद्ध, बाँग्लादेश का निर्माण, आपातकाल की त्रासदी, गैर कांग्रेसी सरकारों का निर्माण, राजनीतिक भ्रष्टाचार के कारण देश में फैली अराजकता, बेरोजगारी, मूल्यवृद्धि, अनुशासनहीनता, आतंकवाद की वृद्धि, संयुक्त गठबन्धनों की सरकारें उनकी आपसी फूट, जनता का मत प्राप्त करने के लिए किये गये विभिन्न आरक्षण ऐसे आराजकतापूर्ण राजनीतिक परिदृश्य का चित्र उपस्थित करते हैं जिसे अनुभव कर साहित्यकार को अत्यन्त निराशा हाथ लगती है। नरसिंह कथा पौराणिक राजनीतिक क्षेत्र का नाटक है, किन्तु प्रतीकात्मक रूप में यह नाटक राजनीतिक मूल्यों, मनुष्य की सत्ता लोलुपता किस प्रकार तानाशाही प्रवृत्ति में परिवर्तित हो जाती है, यही इस नाटक का प्रतीयमान संकेत हैं।

हिरण्यकश्यपु और प्रहलाद की लड़ाई अब तक चल रही है। प्रहलाद ने विजय पाई है, पर हिरण्यकश्यपु अभी तक है। जहाँ तक शक्ति की भूख है वही उसका अदृश्य सिंहासन है। वह अपने आने से पहले सबकों बाँट देता है। सबको अकेला कर देता है। वह अपनी शक्ति से नहीं हमारी निर्बलताओं से आता है। छोटे-छोटे हिरण्यकश्यपु हमारे बीच होता है, समझते हो हिरण्यकशियपु- प्रहलाद महज एक पौराणिक कथा है? वे सतयुग में थे आज नहीं है। आज भी हैं हिरण्यकशिपु हमारे बीच।[1] इस कथा की प्रतीकात्मक व्याख्या एवं मूल्यों के क्षरण की दशाओं का उल्लेख करते हुए डॉ0 नर नारायण राय ने लिखा है- 'यह देवासुर संग्राम का ही रूपान्तर है। चिरकाल से सत्ता और जनता के बीच संघर्ष होता आया है क्योंकि मनुष्य प्रकृति से सुविधा भोगी है। जैसे ही वह सुविधाएँ करने लगता है- सुविधाओं के छिन जाने

---

१. डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक - पृ० १५७

का भय उसे शक्ति संचय करने के लिए भी मजबूर करता है और शक्ति के सिमट्ते ही निरंकुशता फैलती है, तब शोषण, दमन और अत्याचार पनपते हैं और अंत में एक भीषण विद्रोह के पश्चात् विस्फोट के बाद की-सी शांति फैल जाती है। नये सिरे से जीवन सामान्य बनता है। फिर छोटे-छोटे हिरण्यकश्यिपु पनपते हैं- फिर एक बड़ा हिरण्यकशिपु आता है, फिर कोई प्रहलाद जनमत संगठित करता है और फिर कोई नरसिंह निरंकुश सत्ता का अंत करता है। वह चाहे कोई भी तंत्र हो, तंत्र के बदलने से मानव प्रकृति नहीं बदल जाती। इसलिए न तो हमारी सुविधा भोगी वृत्ति बदली है और न स्वार्थ लिप्सा ही घटी है। सतयुग से लेकर कलिकाल के आविर्भाव से लेकर 1975-76, 77, 78 तक यही सब कुछ दुहराया जाता रहा है।

राजनीतिक मूल्यों में सर्वप्रथम देश प्रेम की चर्चा की जाती है। भारतवर्ष राजतंत्र एवं गणतंत्र (गणराज्य) प्रथा शासन व्यवस्था के मूल में थी, किन्तु किस प्रकार कमजोर शासन को अधीन किया जा सकता है, इसका प्रतीकात्मक रूप नरसिंह कथा एक सत्य हरिश्चन्द्र, गुरू नाटकों में देखा जा सकता है।

कमजोर देश के निवासियों की ललक का स्वरूप नरसिंह कथा में इस प्रकार दिखाई देता है।

वज्रदंत - मेरा यह देश, मेरी यह मातृभूमि जब तक दैत्यराज हिरण्यकशिपु की परतंत्रता में है, तब तक मैं इसे अपना देश नहीं समझता।

जय- जब अपना देश एकाधिपति की ऐसी बेड़ियों में बँधा हो, उसे किसी ऐसी शक्ति, ऐसे निरंकुश राजा ने अपनी मुठ्ठी में कस लिया हो, तभी देश प्रेम की परीक्षा है।[1]

वज्रदन्त हिरण्यकशिपु की प्रवृत्ति के साथ अतिशय महत्वाकांक्षी शीर्ष नेता/राजा की प्रवृत्ति का मूल्य परक विश्लेषण करता है, कि राजा के अतिरिक्त यहाँ और कोई शक्ति नहीं, ईश्वर वही राजा है। राजा के अलावा किसी अन्य की सत्ता पर विश्वास करना सरासर राजद्रोह है।[2] राजा तभी तानाशाह बनता है, जब वह राजनीतिक मूल्यों

---

१. नरसिंह कथा - पृ० ५२ २. वही पृ० ६१

के स्थान पर प्रजा को विभक्त कर कमजोर बनाने का प्रयास करता है। प्रहलाद कहता है कि विषमता अकेलापन, असमानता के अंधकार में हिरण्यकशिपु यहाँ का राजा बना है। वह अपनी शक्ति से नहीं हमारी कमजोरियों से बना है। आर्य-अनार्य जाति ध ार्म की आपसी फूट ऊँच-नीच, सवर्ण-शूद्र के भेद में से आया है, यह तानाशाह।3 प्रहलाद हिरण्यकशिपु की तानाशाही के प्रवृत्ति के विरोध में स्वराज्य प्राप्ति को श्रेयष्कर कहता है कि स्वराज्य किसी के देने से नहीं मिलता है। स्वराज्य दान नहीं है। यह आग है। यह सतत् जिम्मेदारी है। इसे लाना पड़ता है। और हर क्षण इसे जलाये रखना पड़ता है। यह आग जला डालती है, यह आग प्रकाश देती है। जिसे दिन से स्वराज्य को भोग माना उसी दिन से हिरण्यकशिपु का उदय शुरू हो गया। ऋण गणतंत्र ग्यारह देशों का, ग्यारह दलों का एक कमल पुष्प था। स्वराज्य के नशे में नैतिक-अनैतिक साधनों के बीच भेद करना जिस दिन से बंद कर दिया, उसी समय से हिरण्यकशिपु का अवतरण होने लगा। लोगों का मूल चरित्र निषेधात्मक और विध वंसात्मक बना, उसी में से जन्म हुआ इस अधिनायक बाद।[1] इस अधिनायकवाद को बनाये रखने के लिए हजारों लोग बंदीगृह में डाल दिए जाते हैं। यद्यपि शुक्राचार्य इन बंदियों को देशद्रोही बताते हैं, कि प्रहलाद इस तथ्य का प्रतिवाद करता है, कि राजा देश नहीं होता, राजा ईश्वर नहीं होता। देश माने लोग। देश माने वहाँ की प्रजा। देश कोई सूक्ष्म तत्व नहीं। खगोल, भूगोल नहीं है देश। जीवित मनुष्य है देश।[2] शुक्राचार्य प्रहलाद को बताते हैं कि शूद्रों, अनार्यो और अधर्मियों ने देश के अनेक हिस्सों में भयानक उत्पात मचा रखा है। एक जनपद दूसरे जनपद से लड़ रहा था और सारा देश पतन के रास्ते पर था। यही स्वराज्य या गणतंत्र है। प्रहलाद कहता है कि गणतंत्र बीमार हो गया था। पर वह बीमार गणतंत्र हमारा था। बीमार का उपचार होता है। उसकी हत्या नहीं करा दी जाती। मूल्य का अवमूल्यन होता है, पर उसे नष्ट नहीं होने दिया जाता। परस्पर विद्वेष, अशान्ति की आड़ लेकर

---

१. नरसिंह कथा -पृ० ५९
२. वही पृ० ६१

सत्तोन्मुखी प्रवृत्ति अधिनायक वादी बनती है। हर एकाधिपति देश के नाम पर निरंकुश राजा बनता है। प्रजा को मूर्ख समझ कर उसके हितों की चर्चा मात्र करता है। वस्तुतः सत्ता के सिंहासन पर बैठ्कर इस देश की मनीषा नहीं जानी जा सकती। जिस देश में असंख्य देवी देवताओं की उपासना होती हो, इतनी विविध जातियाँ और धर्म समान रूप से जीवित हों और अनीश्वरवाद से लेकर अनेकेश्वरवाद तक आस्थाओं की खोज में भटक रहा हो, उसकी मनीषा को एकलवादी कहना सरासर झूठ है। प्रहलाद स्वीकार करता है-

प्रहलाद- वर्तमान अधिनायक वाद के उदय के लिए यहाँ की मनीषा के दो प्रमुख तत्व हद दर्जे की सहनशीलता और सार्वजनिक जीवन के प्रति पलायन तक जाने वाली उपेक्षा वृत्ति मूलरूप से उत्तरदायी है।[1]

लोकतंत्र/गणतंत्र की महत्ता की उद्घोषणा करते हुए प्रहलाद कहता है कि जो प्रजा गणतंत्र की है, उसके संस्कार लोकतंत्र के हैं, वह निरंकुश शासन में नहीं रह सकती। लोकतंत्र में राजा-महाराजाओं महन्तों और शौकिया युद्धवीरों का कोई स्थान नहीं है। यहाँ जो लोकाकांक्षा को पूरा नहीं कर पायेगा उसे धूलि में मिलना होगा।2 हिरण्यकशिपु प्रहलाद को अपने कृतित्व से परिचय कराता है।

हिरण्यकशिपु- वह नमक हराम प्रजा कहाँ है? जिसे मैंने दुर्भिक्ष से बचाया जिसे मैंने सब तरह से रक्षा सुख शान्ति दी? हर गणराज्य में चार-चार आठ-आठ दल थे, सारे दल आपस में लड़ रहे थे। निरीह प्रजा पिस रही थी। एक राज्य दूसरे राज्य से युद्ध करने लगा था। हर प्रतिनिधि अपने आपको राजा, महाराजा घोषित कर सारे राज्य को लूट्ने की कोशिश में लगा था। गणतंत्र एवं जनपद के नाम पर यहाँ हिंसा, भ्रष्टाचार एक दूसरे के प्रति विश्वासघात, लूटपाट का राज था। प्रजा भिखारी होकर दर-दर की धूल छान रही थी। पड़ोसी देश इसे हथियाने जा रहा था। मैंने महापतन से बचाया इस देश को। मैंने देश के भीतरी शत्रुओं से बाहर के आक्रमणकारियों से अपने इस देश को मुक्त किया।

---

१. नरसिंह कथा - पृ० ७७

इस प्रकार देश सेवा के ब्याज से स्वयं देश बन गया। इसी प्रवृत्ति का विरोध प्रहलाद करता है। वह प्रजातंत्र के स्वस्थ मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। रक्त कमल में भारत वर्ष की प्राचीन राजनीतिक सुव्यवस्था उसके मूल्यों की चर्चा विस्तृत रूप में की गई है साथ ही वर्तमान दुरवस्था का चित्रण इस प्रकार हुआ है।

कमल- माँ तुम मुझे देखकर ही बेहोश हो गई। काश तुमने सच्चा भारतवर्ष देखा होता। ठीक तुम्हारी ही तरह शक्तिहीन, भावुक और दृष्टिहीन। यह भारत देश एकताहीन, इसका मन, जिस पर बाह्य आक्रमणों के असंख्य घाव, फिर गुलामी.. ....गुलामी।[1] देश के विकास के लिए और इस महादेश को बाहरी ताकतों से रक्षा इन दोनों कामों के लिए की आन्तरिक एकता अत्यन्त आवश्यक है। यह नेताओं के भाषणों का सार तत्व है, किन्तु उनके आचरण विपरीत होते हैं।

आर्थिक मूल्य :-

आज अर्थ प्रधान युग है। वही समाज उन्नत शील विकसित माना जाता है, जिसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है। अर्थ ही महत्ता इतनी प्रबल हो गयी है, कि सारे सम्बन्ध, रिश्ते-नाते इसी के चतुर्दिक घूमते हैं। भारतवर्ष में अर्थ की अपेक्षा सामाजिक सम्बन्धों को अधिक महत्व मिलता है, किन्तु आज के विश्व-व्यापार, या भूमंडलीकरण के कारण अर्थ जीवन की धुरी है। व्यक्ति के जीवन में ऐकान्तिकता, घुटन, कलह, अब इत्यादि के मूल में अर्थ ही है। भारतवर्ष हजार वर्षो से पराधीन रहा। अंग्रेजी शासन ने तो इसे लूटकर केन्द्र बिन्दु बना लिया। बेकारी, गरीबी, भुखमरी उन्हीं की देन है। रक्त कमल नाटक में नेता अपने उद्‌गारों तथा कमल भारतवर्ष की गरीबी का ऐसा यथार्थ चित्रण करता है, कि पाठक में विचारोत्तता उत्पन्न होने लगती है। पूँजीपति महावीर का चिन्तन आधुनिक मूल्यों की व्यंजन करता है।

महावीर- इलाहाबाद के जमुनापार नैनी के पिछड़े इलाके में इतनी बड़ी कास्मैटिक्स की इण्डस्ट्री - जिसका नाम श्री दास इण्डस्ट्री है इसे खोलकर मैंने यहाँ सैकड़ों

---

१. रक्त कमल - पृ० ३२

आदमियों को नौकरी दी है। एक कालेज खोला है।

कमल- जिस देश के सिर्फ पाइण्ट फोर प्रतिशत आदमी धनी हों, शेष सब गरीब हों जिस समाज के दो प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहने वाले हों, शेष नंगे और भूखे हों, जहाँ सिर्फ ग्यारह प्रतिशत आदमी पढ़े लिखे हों, शेष गँवार, अंधविश्वासी और अचेतन हो यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक हो।[1] कमल की अवधारणा है, कि इस देश में रहनेवाले लोग एक ही समाज की घटक हैं। हमीं देश हैं, राष्ट्र हैं और यह सच है कि हम सब गरीब हैं, मूल्यहीन हैं, अपाहिज हैं। आदमी अपने घोर सत्य का मुकाबला नहीं कर पाता। लीडर देश की जनता को मूर्ख बनाकर हमारा नेता बनता है। उद्योगपति समाज का शोषण कर राष्ट्रसेवी धर्मसेवी का चेहरा बाँधता है। साहित्यकार विचारक, अध्यापक, पत्रकार और वकील असत्य के प्रति कोई विरोध नहीं करते। उदास, निरपेक्ष भाव से देखते रहते हैं। यहाँ की तेतालिस करोड़ अस्सी लाख जनता उसकी भूख, गरीबी, गंदगी, उदासी और उसका घोर असंतोष कहीं कुछ बदलने का उत्साह ही नहीं दिखता है। यहाँ जिसका दाँव लगा वह सदा के लिए अमीर हो गया, और जो दाँव हार गया वह सदा के लिए गरीब।

रक्त कमल का नायक कमल देश के नव निर्माण के लिए नई दिशा देना चाहता है। वह कहता है यह हमारे रक्त में है कि इस यथार्थ से अपना मुँह फेर कर खड़े होते हैं, उसे दूर भागते हैं ताकि यथार्थ से हमारा सामना ही न हो। जिससे कि हम बड़ी मौज से ऊँची-ऊँची बातें कर सकें अपने कल्याण की नहीं विश्व कल्याण की अपने देश की सीमा की नहीं क्यूबा, कटंगा, लाओस और जर्मनी की सीमा की अपने समाज की अपावन गरीबी निर्लज्ज जिन्दगी और जड़ अन्धकार की नहीं।[1] कमल देश की वास्तविक समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उस पर चिन्ता प्रकट करता हुआ देश के प्रति अटूट श्रृद्धा नैतिक मानवीय गुणों की स्थापना पर बल देता

---

१. हिन्दी नाटकों में नायक - पृ० २७६

है। गरीबों के प्रति उसे अध्यधिक सहानुभूति है। उसका विचार है कि इस देश की मांग रोटी है वह देश के प्रत्येक नागरिक को सुलभ होनी चाहिए, भारतीय गरीबी दीनता के प्रति सहानुभूति उसकी भीतर अपार है। देश का अपमान सुनकर उसे दुःख होता है। वह अपने अपमान की गाथा सुनाता है। मैं देश में गरीबी पिछड़े देश हिन्दुस्तान का महज एक काला आदमी था। जगह जगह मेरा अपमान। कोई कहता था कि हिन्दुस्तान जादू मंत्र ज्योतिष और सांपों का देश है, कोई कहता हिन्दुस्तान ताश का पत्ता है जिसे एक ओर रूस फेंकता है और दूसरी ओर से अमेरिका।2

सुख दुःखों में विभक्त समाज के सन्दर्भ में उसका चिन्तन उसके व्यक्तित्व का द्योतक है। वह कहता है कि ईश्वर ने हम सबको केवल मनुष्य बनाया है किन्तु मनुष्य यहाँ अपने को कहीं दुःखी राम, कहीं सुखीराम कर लिया है। अनेक जाति, अनेक धर्म इस तरह मनुष्य अपने आप तो ही दूर हो गया। अपने आप में ही बंट गया जिसका दांव लगा वह सदा के लिए अमीर जो दांव हार गया वह सदा के लिए गरीब। नायक कमल के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में डॉ० श्याम शर्मा ने लिखा है कि नायक जनक्रान्ति का पक्षधर है एवं उसका यथार्थ स्थिति से सम्प्रक्त व्यवहारवादी है। नायक अपनी आदर्श प्रगतिशील भूमिका द्वारा देश में बढ़ रही विषमता गरीबी एवं भेदभाव को दूरकर मानवता का सन्देश देता हुआ जीवन में नई चेतना नई लहर, नई उमंग द्वारा देश की व्यवस्था को सुधारना चाहता है। वह नहीं चाहता है कि देश का अपमान अन्य देश के नागरिक करें और नहीं हमार देश किसी और देश के हाथों खेलने वाला खिलौना बने। वह चाहता है कि भारतीय जन जीवन में सौहार्द सहानुभूति तथा प्रेम का वातावरण पैदा हो, यहाँ लोग आत्म निर्भर होकर अपना और देश का विकास करें इस प्रकार नायक अपनी भूमिका द्वारा आदर्श मानवतावादी विचारधारा का परिचय देता है।

डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में नैतिक मूल्य :-

नीति शब्द से नैतिक बना है। वस्तुतः समाज, धर्म, राज्य निर्मित नियमों पर

आचरण करना नीति कहलाती है। ऐसे आचरण से सम्बन्धित मूल्य नैतिक मूल्य कहलाते हैं। मूल्यों का वर्गीकरण करते समय यह लिखा जा चुका है कि मूल्य शाश्वत और समाज सापेक्ष दो प्रकार के होते हैं। समाज सापेक्ष्य मूल्य रूढ़िवादी व्यवहार के सामने संकट रूप में आ खड़े होते हैं। समाज सापेक्ष्य मूल्य रूढ़िवादी व्यवहार के सामने संकट रूप में आ खड़े होते हैं। जो बात एक देश में नैतिक मानी जाती है, वही दूसरे देश में अनैतिक हो सकती है। उन्मुक्त यौन सम्बन्ध पाश्चात्य देशों उतने प्रतिनिषिद्ध या वर्जित नहीं माने जाते हैं, जितने भारतीय समाज में। नैतिक मूल्यों में यौन, काम या सेक्स सम्बन्धी व्यवहार सर्वोपरि आते हैं। भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों को आमतौर पर यौन से जोड़ा जाता रहा है और विवाहेतर यौन सम्बन्धों को अनैतिक माना जाता रहा है। यद्यपि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि यौन आकर्षण जीवन की मनोवैज्ञानिक सत्यता है जैसा कि पाश्चात्य विचारक डब्लू0एच0 लिखते हैं - Others which take no notice of promarital sex unless it leads to the birth of children and other again which do not mind even this and yellow the unmerried complete sexual liberly.

तात्पर्य यह है कि विवाह पूर्व काम सम्बन्ध भी एक नैतिक समस्या उत्पन्न करते हैं। समाज का लगभग सम्पूर्ण वर्ग यौन सम्बन्धों को विवाहित स्त्री पुरुष तक ही सीमित रखने का समर्थक है और पवित्र जीवन यापन को ही अविवाहित वर्ग का सदाचरण मानता है। आज के साहित्य में अनैतिक यौन सम्बन्धों का व्यापक चित्रण हुआ है। बात यह है कि अर्थ केन्द्रित व्यवस्था में नैतिकता के मानदण्ड भी बदल गये हैं। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने करफ्यू नाटक में ऐसी परिस्थितियों का चित्रण किया है, जिसमें करफ्यू या दंगा होने के पश्चात् कविता मनीषा विभिन्न परिस्थितियों में फँस जाती है जहाँ उन्हें जीवन के नए सत्यों से साक्षात्कार होता है। पति-पत्नी समान परिस्थिति में फँसकर वास्तविक अर्थो नए सम्बन्धों से साक्षात्कार करते हैं।

दया, ममता एवं सेवा :-

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर एक दूसरे के साथ मतभेद,

स्वार्थपरता के बावजूद कहीं न कहीं ताल मिलाकर चलता है। दया, ममत्व, सेवा, उदारता के कारण ही वह दूसरों का मन जीतकर अपनी हृदय की विशालता का परिचय देता है।

अंधाकुआँ की नायिका सूका पति से प्रताड़ित होती है। उसकी क्रूरता, बर्बरता की शिकार होती है, किन्तु पति भगौती के बीमार होने पर उसकी सेवा जी जान से करती है। वह सोचती है कि यदि उसने सेवा नहीं की तो कौन और करने वाला बैठा है।

सूका – जब कराहते हैं तब उठके दौड़ो। जब पुकारें तब दौड़ो न दिन देखो न रात। भीतर से जी होता है कि सइने दूँ जिस लाठी और बेंत से मुझे मारा है, आज उसी के मुँह में डाल दूँ कि खा इसी की जिन लोहों और सीखचों से मुझे दागा है जी कहता है कि उन्हें उसके कलेजे में डालन दूँ जिसने मुझे जानसे मार डालने के लिए कौन–कौन सा जतन नहीं किया, आज मैं उसी को जिलाने के लिए क्या–क्या नहीं कर रही हूँ। यह जौ उसी के लिए बीन रही हूँ, कल मंगल है इसे सतनारायन बाबा की कथा सुनवाऊँगी।

सूका में ममत्व का स्रोत अपनी सौत लच्छी को देखकर फूट पड़ा। वह उसकी प्रेम कहानी सुन उसे अपनी छोटी बहन मान लेती है, और प्रेमी हीरा के साथ चुपचाप विदा करती है। किन्तु पहले वह हीरा के प्रेम की परीक्षा लेती है। इसी प्रकार सूका की देवरानी राजी सूका के दुःख पर उनकी सहायता छिपकर करती है। दर्पन में पूर्वी एकरूप सेवा भाव रखने वाली डाक्टरानी का भी है। हरिपंदम के बीमार पड़ने पर अपरिचित होने पर भी उसकी सेवा करती है।

हरिपदम– मुझ अजनबी को कालरा हो गया। एक छोटे से स्टेशन पर उतार दिया गया एक अजनबी लड़की मृत्यु के उस संघर्ष में मेरे साथ खड़ी थी

घर आकर वह हरिपदम के बड़े भाई सुजान की दिन–रात सेवा करती है।

पिता– अपनी उस पूर्वी से कहो कि अब वह किसी कमरे में जाकर चुपचाप सो जाय,

नहीं तो कहीं वह बीमार पड़ी तो दूसरे दिन तुम बीमार पड़ोगे।

वह कुष्ठ रोगियों की सेवा उसी तन्मयता से करती है। इसी सेवाभाव के कारण दार्जिलिंग का मठ और उससे लगा अस्पताल विख्यात हुआ है। दण्डी स्वामी कहता है, कि 'मैं दंडी नारायण हरहार क्षेत्र का एक सन्यासी था। एक दिन दंडियों ने देखा कि मेरे हाथ, पैर और मुँह पर कोढ़ की बीमारी उभर आई है। गुरू महाराज ने मुझे कोढ़ी कहकर निकाल दिया। तभी एक दिन आधी रात के समय जब मैं हर की पैड़ी पर अपने घावों से पड़ा कराह रहा था कि माँ ने आकर मेरे अभिशप्त माथे पर अपना हाथ रख दिया। माँ के स्पर्श से मेरे घाव पुर गये। मैं नीरोग हो गया।

अन्तर्द्वन्द्व - इड, इगो, सुपरइगो :-

पात्रों का सैद्धान्तिक विवेचन करते हुए लिखा जा चुका है कि किसी मनुष्य की परिस्थिति जन्य, घात-प्रतिघात, क्रिया, प्रतिक्रिया से उसके सम्पूर्ण चरित्र या व्यक्तित्व का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। उसके चरित्र का वह रहस्यमय रूप अभिव्यक्ति पाने से बचा रहता है, जो उसके बाह्य क्रिया-कलापों को प्रेरित करता रहता है। इस हेतु साहित्य अन्तर्द्वन्द्व का सहारा लेता है। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित कर पात्र के बहुरूपी और परस्पर विरोधी आचरा में एकसूत्रता लाकर उसके चरित्र को युक्ति संगत बनाता है। पात्र के इस अन्तर्द्वन्द्व में चेतन-अचेतन का संघर्ष होता है। मनोवैज्ञानिक शब्दावली में इसे इड, इगो, सुपरइगो कहा जाता है।

अंधाकुआँ का भगौती ऐसा एक पात्र है, जिसकी पत्नी सूका अपने प्रेमी इन्दर के साथ भाग जाती है। भगौती का अहं आहत हो जाता है। उसके पौरूष को चुनौती मिलती है और वह भागदौड़ कर सूका को पुनः अपने पास रखता है तथा बर्बरता पूर्वक उसे पीटता है। इसी दण्ड प्रक्रिया की आवृत्ति कर वह अपने इगो को संतुष्ट करता है।

मिनकू- मुकदमें की पैरवी में गाँव से कचहरी का रास्ता नापते नापते हम सबके पैर घिस गये। आखिय यह सब क्यों?

भगौती – इसीलिए कि मैं अपनी बेइज्जती का बदला लूँ।

मिनकू – सूका से बदला........1

इड प्रधान भगौती सूका के प्रति इतना निर्मम, निर्दय हो उठता है कि उसे रस्सी से बाँधकर घरवालों से कहता है कि सब कान खोलकर सुन लो। मैं अपने बाप के असली खून का नहीं अगर मैं सूकिया का मूँड़ काटकर तुम एक-एक को न फँसा दूँ। खबरदार अगर किसी ने इसे दाना-पानी दिया। इसी तरह इसे सुखाकर मार न दिया तो भगौती मेरा नाम नहीं।

इस इड-इगो संघर्ष में भगौती के पुरूषार्थ को चुनौती मिली है वह कभी प्रतिहिंसक हो उठता है, तो कभी उसका सुपरइगो, उसे प्रबोधन देता है, फलस्वरूप वह सूका के हाथ का खाना खाने को तैयार हो जाता है तो कभी उसके रूप पर आसक्त होकर प्रेम भी प्रदर्शित करता है।

भगौती – अरे ऐसी बातन पर गुस्सा किसे नहीं आएगा। अरे तू बोलती क्यों नहीं। इतना सज-धज के मति रहा कर। मुझे बड़ा डर लगता है। बड़ी खतरनाक है। अरे ऐसे क्यों हँसती है? कोई देख लेगा तो क्या कहेगा।

सूका– क्या कहेगा?

भगौती – अरे तू जानती है। मुझसे बनती है। मुझे पता था, इस रंग की साड़ी तुझे खूब फबेगी, अच्छा जा चिलम चढ़ा ला।

इसी प्रकार सूका का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित किया गया है। एक तरफ बीमार, असहाय पति, दूसरी तरफ प्रेमी इन्दर। सूका का सुपर इगो पति की ओर प्रेरित करता है और सूका भगौती पर किये गये वार को खुद झेल लेजी है। भगौती की रक्षा होती है, किन्तु सूका निर्जीव होकर भगौती को स्वस्थ्य मनुष्य बना जाती है।

सुन्दर रस में कविराज अपने अविष्कृत सुन्दर रस के प्रचार का साधन अपनी पत्नी को बनाता है, किन्तु जब उसका व्यापारिक उपयोग करने लगी। उनका अनेक उच्चाधिकारियों से सम्पर्क होने लगा, तो कविराज के इगो को धक्का लगता है। वह

सहन नहीं कर पाता, कि उसकी पत्नी अपने रूप के माध्यम से अधिकारियों के मध्य सुन्दर रस का प्रचार करे।

पंडितराज– तुमने मुझे विवश किया देवि! साग्रह तुमने मुझे ये कपड़े पहनाये। ये कपड़े मुझसे नहीं पहने जाते। ये मेरे संस्कार के विरुद्ध है। मेरी शक्ति और परंपरा के विरुद्ध है। यह सुन्दर रस। इस सुन्दर रस का मैं व्यापार नहीं करना चाहता। मैं अब इसका निर्माता एवं नियामक नहीं बनना चाहता।

देवि माँ– हाय, यह क्या हो गया आपको? आप कैसी बातें कर रहे हैं।

दरपन नाटक में पूर्वी या दर्पन का अन्तर्द्वन्द्व एक नये रूप में चित्रित है। दर्पन सामाजिक अंधविश्वास के कारण बौद्ध मठ में दान कर दी गयी। वह पढ़-लिखकर डाक्टर बन गई कि अचानक उसकी भेंट हरिपदम से हुई और वह दूसरा पूर्वी नाम रखकर समाज में सम्मिलित होकर जीवन का आनन्द उठाना चाहती है। लेकिन उसके अवचेतन में दर्पन छायी रहती है और रह-रहकर पूर्वी को उसकी वास्तविकता का बोध कराती रहती है वह सुजान से अपना अन्तर्द्वन्द्व व्यक्त करती है।

पूर्वी – क्या बताऊँ सुजान भइया, तुमसे मैं सच-सच कह रही हूँ– मुझे इसी तरह बेमतलब के अस्पष्ट सवाल घेरे रहते हैं। मैं उन सवालों के अर्थ को कभी पकड़ ही नहीं पाती। जब मैं तुम्हारे पास बैठती हूँ तो न जाने क्यों मुझे एक अजीब सी शान्ति मिलती है। एक बहुत बड़ी शक्ति विश्वास मुझे छू-छू जाता है। तुम्हारे सामने अपने को तार-तार कर दूँ।

सारांश यह है कि हमारे जीवन की एक बड़ी विसंगति यह है कि जीवन को जाने बिना ही हम जीवन बिता जाते हैं। हमारे चारो ओर का जीवन इसका ज्वलन्त प्रमाण है, कि हमारा आज का व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन कितना असहज, अस्वाभाविक कृत्रिम और रिक्त बन उठा है। अपने जीवन में पूर्णता और सहजता लाने के बजाय वर्जना, सीमाओं, बंधनों से और अधिकाधिक अभावग्रस्त बनाते चले जाते हैं। लेकिन जीवन अपनी सीमा से पहले पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए प्रताड़ित जीवन

विकृतियों में अपने को असहज अस्वाभाविक कृत्रिम और छद्म पूर्ण बना लेता है। जीवन जीने के लिए जो सिद्धान्त बनाए गये, उन्हें इतने संकुचित अर्थों में सीमित कर दिया गया कि जीवन पाखण्ड, अंधविश्वास और धर्मभीरुता का पर्याय बनकर रह गया। जीवन में सहज और स्वाभाविक कुछ भी नहीं रहा। कहीं सामाजिक, कहीं धार्मिक, कहीं नैतिक, कहीं पारिवारिक वर्जनाओं ने हर व्यक्ति को कई हिस्सों में बाँट दिया और हमेशा उसे अपने ऊपर औपचारिकता, शिष्टाचार, सामाजिकता आदि के नाम पर मुखौटे लगाकर जीने के लिए विवश कर दिया। जब-जब सहज और स्वाभाविक ने अभिव्यक्ति पाना चाहा, जीवन को सहज बनाना चाहा- उसे अज्ञान, मूढ़ता और अंधकार नाम देकर वर्जित प्रदेश घोषित किया गया। इस सबका फल यह हुआ कि लोगों ने विवशभाव से वर्जनाओं में जीना स्वीकार कर लिया। जीवन की सहजता, स्वाभाविकता और परस्पर विश्वास, सौमनस्य नष्ट हो गयी। मानव जाति की सहज प्रवृत्ति जिज्ञासा करना प्रश्न करना, विभिन्न समस्याओं का सामना कर तदनुकूल नियम, पद्धति बनाकर जीवन-यापन की सहज-प्रवृत्ति समाप्त हो गयी। परिणाम स्वरूप जीवन-नीरस, एकतानता से युक्त और उबाऊ हो गया। जीवन के प्रति सहज/आकर्षण समाप्त हो गया। ग्रामीण जीवन से लेकर शहरी जीवन तक में यह जिजीविषा समाप्त हो जाने के कारण जीवन की पहचान, उसकी स्वाभाविकता मिटती गयी और उसके स्थान में कृत्रिम, आडम्बर प्रदर्शन पूर्ण जीवन सामने आया या फिर अनेकानेक/सीमाओं वर्जनाओं, सामाजिक अंधविश्वास के बंधनों को ही वास्तविक जीवन मान लिया गया। वास्तविक जीवन रस की धारा विलुप्त होती गयी। वह मात्र यांत्रिकता उपभोक्तावादी अभिव्यक्ति का साधन बन गया।

उपसंहार

मृदु ललित पदार्थं गूढ़ शब्दार्थहीनं, बुधजन सुख योग्यं बुद्धिमन्नृत्य योग्यम्।
बहुरस कृत मार्ग संधि संधानयुक्तं, भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।।

'काव्येषु नाटकम् रम्यं' की उद्घोषणा करने वाले आचार्य ने नाटक में रस पेशलता, सामूहिकता एवं हृदयावर्जकता का आधिक्य अनुभव किया होगा। बात यह है कि मानव की रागात्मक अभिव्यक्ति के सशक्त एवं प्रभावपूर्ण साहित्यांगों में नाटक मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है क्योंकि दृश्य काव्य में जो ओजस्विता, सजीवता, प्रत्यक्षानुभवता एवं मनोहारिता है, वह साहित्य के किसी भी अन्य अंग में यथेष्ट रूप से नहीं पाई जाती। यह मात्र मनोरंजन का साधन ही नहीं है अपितु तन्निविष्ट पात्रों के माध्यम से जीवन के प्राक्तन एवं अधुनातन जीवन सत्यों, गहराईयों, सुख-दुःखों, विफलता-सफलताओं, कुंठा एवं अन्तर्द्वन्द्वों का मनोज्ञतम रूप में व्यंजित करने का सटीक माध्यम है। पात्र ही कथावस्तु को विकसित करने वाले होते हैं। पात्रों का कथा घटना और परिस्थिति के साथ घनिष्ठ और सजीव सम्बन्ध होता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र एवं उपेन्द्रनाथ अश्क के बाद डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने रंगमंच को रंगभूमि से जोड़कर देखने का नया आयाम ही नहीं दिया अपितु पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक इत्यादि विविध क्षेत्रों से कथा का ग्रहण कर पात्रों को एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। अतः शोधकर्त्री ने अपने शोध-प्रबन्ध 'लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों के पात्र आधुनिक पात्र प्रतिमानों के सन्दर्भ में' को आठ अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय पात्र-प्रतिमानों की अवधारणा से सम्बन्धित है। यह अध्याय वस्तुतः भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य शास्त्रों में पात्र प्रतिमानों के सैद्धान्तिक विवेचन से सम्बन्धित हैं। पात्र का व्युत्पत्यर्थ, उसके समानार्थक शब्द-चरित्र, व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। पात्र के धात्वर्थ में योग्य व्यक्ति, वर्तन, आधान इत्यादि की व्यंजना होती है। साहित्य क्षेत्र में काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, इत्यादि में पात्र कथा

वस्तु के घटक तत्व होते हैं। पात्र का समीपस्थ समानार्थी शब्द चरित्र, व्यक्तित्व कहे गये, जिनमें तात्विक अंतर बहुत अधिक नहीं है। कहना नहीं होगा कि पात्र एक ओर व्यक्ति रूप में आलम्बन विभाव है और दूसरी ओर उसके समस्त गुणावगुणों का समुच्चय भी है। चरित्र के सत् असत् रूप सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप कहे गये हैं। इसी प्रकार व्यक्तित्व में कहीं आकर्षक रूप सौन्दर्य एवं शारीरिक शौष्ठव की व्यंजना तथा कहीं रम्य, सुसंस्कृत व्यवहार, आचरण की परिकल्पना की गई है। बाह्य आकृति के साथ कहीं आन्तरिक भाव भी इसी में अनुस्यूत हैं।

तात्पर्य यह है कि प्राणिमात्र में बाह्य संरचना – हाथ, पैर आदि समान होने पर अन्तःकरण की भिन्नता के कारण व्यक्ति का चरित्र उसका व्यक्तित्व अलग दिखाई देता है। भारतीय दर्शन में बहिरंतर संघटन एवं आन्तरिक संरचना के मूल में पंचतत्व, इन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का विस्तृत एवं दार्शनिक विवेचन किया गया है। पाश्चात्य जगत में भी कायिक स्तर के साथ आन्तरिक गुणों की चर्चा साहित्यकारों के साथ मनोवैज्ञानिक ने समान यप से की है। निष्कर्ष रूप में यहाँ लिखा जा सकता है कि चरित्र या व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि में शारीरिक गठन नाड़ी तंत्र, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव, यावज्जीवन कार्य करते रहते हैं। पात्रों के स्वरूप विवेचन के बाद उसका वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया गया है। भारतीय आचार्यो ने कथा के आधार पर प्रधान या मुख्य अथवा नायक तथा गौण या सहायक पात्रों का उल्लेख किया है। इस प्रकार नायक, नायिका, प्रतिनायक, प्रतिनायिका, उपनायक, सहनायक एवं सहनायिका इत्यादि भेद किये जा सकते हैं। नायकों के धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त, धीरोद्धत एवं इनके अलंकारों में शोभा विलास, माधुर्य, तेज, गाम्भीर्य, औदात्य इत्यादि गुणों की विस्तृत सूची का उल्लेख किया गया है। पाश्चात्य साहित्य समालोचकों ने पात्रों के शारीरिक संघटन तथा आन्तरिक गुणों का उल्लेख अरस्तू, ड्राउडन, प्लेटों आदि ने किया है। इस प्रकार बुद्धिजीवी, महत्त्वाकांक्षी एवं शारीरिक आवश्यकताओं से

अनुशासित प्रेरित व्यक्तित्व के तीन वर्ग होते हैं। भावनाओं के आधार पर आशावादी, निराशावादी या मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रफुल्ल (इलेटेड) विषण्ण अथवा उदास (डिप्रेस्ड), चिडचिड़ा (हर्रीटिबुल) अस्थिर रूप मिलते हैं। पाश्चात्य चिन्तन में बाह्य रूप की प्रबलता का विचार पहले किया गया है। जिसमें तर्कशील, भोजन प्रधान, पुष्टकाय, धावक, कृशकाय, अल्पविकसित, व्यायामशील, योद्धा/पहलवान, विषमनुपातिक या साइक्लाइड अथवा शिजायड का उल्लेख कर इनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ वर्णित हैं। व्यक्तित्व के लक्षणों में विश्वासमयता, संवेगात्मक प्रौढ़ता, अप्रौढ़ता, प्रबलता, नमनीयता, उदासीनता, प्रसन्नता, भावुकता–दृढ़ता, सभ्यता–असभ्यता, ऊर्जस्विता, स्नायु दौर्बल्य इत्यादि का विवरण प्रस्तुत हुआ है।

चरित्र एवं व्यक्तित्व निरूपण के पश्चात् साहित्य में पात्रावतरण के सिद्धान्तों की भी चर्चा संक्षिप्त रूप में हुई है। भारतीय आचार्यों ने नायक के रूप, गुण, नाम, वेष–भूषा, प्रकृति, शीलादि का निर्धारण अत्यन्त सूक्ष्मरूप से किया है जिसमें आकृति अंकन से प्रारम्भ कर गुणों को प्रकट करने वाली क्रियाओं का चित्रण हुआ है। पात्रों द्वारा प्रयुक्त सम्बोधनों से भी उसके व्यक्तित्व का झलक. का विवरण दिया है।

पात्रावरण के पश्चात्य सिद्धान्तो का विस्तृत विश्लेषण इसी अध्याय में हुआ है। अरस्तु होरेस के आयाम भय सिद्धान्तों की चर्चा कर मनावैज्ञानिक द्वारा उल्लिखित अभिज्ञान सिद्धान्त, उत्तेजना प्रतिक्रिया, सिद्धान्त शीतयुग सिद्धान्त इस इगो सुपर इगा, अन्तर्द्वन्द्व स्वान संघटन, अथवा इनके मूल में विकास प्रकारश, नाटकीय इत्यादि प्रणालियांक वर्णित हैं। कहना नही होगा कि मानव के चरित्र/व्यक्तित्व निरूपण का प्रारम्भ आदि काल से विभिन्न रूपों में होता रहा है। साहित्यकार समाज से ही सामान्य या विशिष्ट पात्रों का चयन करता हूं।

आज का युग चरित्र-चित्रण की दृष्टि से आज का युग मनोविज्ञान प्रधान युग है। पात्रों का चरित्रांकन मानव सुलभ द्वन्द्वों, उतार-चढ़ावों जीवन शक्तियां से अनुप्राणित होता है। इस निरूपण में सजगता, सतर्कता से काम लेना पड़ता है।

द्वितीय अध्याय में आधुनिक हिन्दी-नाटकों का स्वरूप-विकास की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है। प्रारम्भ में यह स्पष्ट किया गया है, कि संस्कृत साहित्य में नाटक रूपकों का एक भेद है, जिसका अर्थ विस्तार हिन्दी में हुआ है। जिसका निष्कर्ष यह है कि नाटक वह दृश्य काव्य है। जो प्रत्यक्ष कल्पना एवं अध्यवसाय का विषय बना सत्य एवं असत्य से संबधित विलक्षण रूप धारण करके सर्वसाधरण को आनन्दोपलब्धिकरता है। संस्कृत साहित्य में यह मान्यता प्रचलित हैं कि ब्रह्ममा ऋगवेद से पाठ्य सामग्री सामवेद से गीत, यजुर्वेद, से अभिनय तथा अर्विवेद से रस गृहीत कर पंचम वेद नाट्य वेद की रचना की हैं। वैदिक काल से प्रारम्भ होकर संस्कृत क`मूर्धन्य नटककरों -कालिदास, मास, भवभूति, इत्यादि इस नाट्य कला का चरम रूप मिलता है। विदेशियों के आक्रमण एवं शासन नीति के कारण रंगमंच की अपूरणीय क्षति हुई है। है। आगे चल यह लोक नाट्य-कला के रूप विकसित हुई।

हिन्दी में खड़ी बोली के पूर्व व्रजभाषा के नाटक एवं नौटंकी रास इत्यादि रूप नाटक के मिलते है। भारतेनदु पूर्व नाटकों की सूचीन प्रस्तुत कर यह लिख गया है, कि उ समय के नाटक धार्मिकक एवं पौराणिक पाठ्य रूप में है। जिनमें काव्यात्मकता, अधिक है। इनका पृष्ठभूमि के रूप में अक्षुण्ण महत्व है। हिन्दी नाटकों के विकास की व्यवस्थित रूप रेखा भारतेन्दु युग में मिलती है। अंग्रेजों द्वारा स्थापित रंगमंचो के साथ्ज्ञ परसी रंगमंचों का प्रभाव भारतेन्दु युगीन नाटक कारों पर पड़ा । भारतेन्दु ने ीारतीय नाट्य परम्परा में प्रचलित नाट्यकला के साथ रूच्चनुकूल विदेशी प्रभावों को ग्रहण किया ही नहीं अपितु समकालिक, नाटकारों को प्रेरित

किया। भारतेन्दु ने अनूदित या रूपान्तरित नाटकों के साथ मौलिक नाटकों की रचना की है। उन्होनें ऐतिहासिक, पौराणिक सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक विषयों पर नाट्य रचना कर उसके भावी मार्ग को प्रशस्त किया।

इस युग प्रवर्तक नाटककार ने जीवन की विकासोन्मुख नई प्रवृत्तियों को सजगता से चित्रित किया है। राष्ट्रीय भावना के साथ यर्थाथ वादी दृष्टि कोण का स्वस्थ सामंजस्य कर नाट्यकला को स्वस्थ रूप प्रदान किया है। भारतेन्दु से प्रभावित होकर नाटकारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक सामाजिक नाटकों के साथ प्रहसन भी लिखे गये हैं इसके साथ अनुदित नाटकों की विस्तृत एवं समृद्ध परम्परा भी इस युग में मिलती है। भारतेन्दु, रामकृपण, शीतला प्रसाद त्रिपाठी , ज्वाला प्रसाद मिश्र, शिवनन्दन सहाय, कार्तिक प्रसाद खत्री, हरिऔध, शिवनन्दन सहाय, राजधा कृष्णदास राधाचरण गोस्वामी काशीनाथ खत्री प्रताप नारायण मिश्र किशोरी लाल गोस्वामी अंबिका दत्त व्यास, बालकृष्ण भट्ट, गोपाल राम गहमरी श्री निवासदास, रायदेवी प्रसाद राजा लक्ष्मण किसंह लाल सीताराम इत्यादि नाटककार प्रमुख हैं। इस युग के नाटकों पात्र आदर्शवादी, मानवीय गुणोपते, शास्त्रीय मान्यताओं के साथ युगीन परिस्थिति के अनुकूल प्रवृत्तिवालें हैं । इनमें प्राचीन-नवीन संघर्ष, सांस्कृतिक पुनर्जागरण सामाजिक कुरीतियों रूढ़ियों अंधविश्वासों को नया रूप देने का स्वर मुखरित हुआ है। जयशंकर प्रसाद एवं उनके समासमायिक नाटककारों ने कलात्मक कथावस्तु मानवीय दृष्टिकोण प्रधान पात्र कलात्म रंगमंच तथा भाषा शिल्प का अभिनव प्रयोग कर हिन्दी नाट्य विधा को सर्वतोभावेन समृद्ध ग्रिया है। माखन लाल चतुर्वेदी, प्रेमचंद, वियोगी हरि, विश्वम्भर नाथ कौशिक मिश्रबन्धु मैथिलीशरण गुप्त, सुदर्शन जी.पी. श्रीवास्तव इत्यादि प्रमुख नाटककार है। प्रसादोत्तर नाटकों को प्रवृत्ति की दृष्टि से एंतिहासिक संस्कृतिक नाटक, ऐतिहासिक राष्ट्रीय नाटक, जीवनी पर ऐतिहासिक नाटक, पौराणिक नाटक, समस्या नाटक रीतिनाटक तथा अन्यापदेशिक

नाट्कों में बांट कर उनके विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। इन नाट्क कारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, वृन्दावन लाल वर्मा, सेठ गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण पेमी, गोविन्द वल्लभ पन्त, उपेन्द्रनाथ अश्क मोहन राकेश इत्यादि प्रमुख नाट्कारों की नाट्यशैली का विश्लेषण संक्षिप्त रूप में विश्लेषित किया है। स्वातंत्र्योपरांत काल में विकसित राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक, हताशा, नौराश्य, एवं असफलाओं के कारण नाटक भी प्रभावित हुए है। इन प्रवृत्तियों की व्यंजना/अभिव्यक्ति के लिए ऐसे ही जनसाधारण पात्रों को प्रयोग हुआ है जिसमें डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल प्रमुख हैं।

तृतीय अध्याय डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाट्क एंव पात्र वर्गीकरण से सम्बंधित है। प्रारम्भ में अंधाकुआं , मादा कैक्टच, रातरानी दर्पण, रक्तकमल, सूर्यमुखी, मिस्टर, अभिमन्यु कलंकी, करफ्यू, अब्दुला दीवाना, नरसिंह तथा कक्षप्रश्न, एक सत्य हरिश्चन्द्र गंगामाटी गुरू सगुन पंछी सवरंग मोह भंग हंसनेवाली लड़कियों की संक्षिप्त कथा देकर पात्रों की सूची प्रस्तुत की गई है। इस सन्दर्भ में यह लिखा गया है कि लक्ष्मीनारायण ने पौराणिक ऐतिहासिक, तथा सामाजिक क्षेत्रों से कभा का चयन किया अतः उनके पात्र भी इन्हीं क्षेत्रों से सम्बंधित है। पुरूष–स्त्री पात्रों का उल्लेख कर आर्थिक दृष्टि से उच्चवर्गीय या पूंजीपति/राजा कोटि के पात्रों में अरविन्द, आनन्दा (मादा कैक्टस) जयदेव (रातरानी), महावीर (रक्त कमल) प्रदुम्न, वेनुरंती, रूक्मिणी (सूर्यमुख) गौतम करफ्यू हिरण्यकशिपु, प्रहलाद (नरसिंह कथा), युधिष्ठिर भीम, अर्जुन , नकुल, सहदेव, हिरश्चन्द्र, अंगध्वज रानी (सगुन पंछी) सुधा (हंसने वाली लड़कियां) डॉ. देसाई, राजन, केजरीवाला (मिस्टर अभिमन्यु) हैं। निम्न वर्ग में भगौती अमृता, कनू, सारंग (रक्त कमल) कृषक (कलंकी) वज्रदंत दुताशन, कटेवल, गंगा (गगामाटी) पंचम, गंगा (संगुनपछी, शोभा, पूनम, हंसने वाली लड़कियां है।) मध्यवित्त वर्ग में सुजाता पिता, (मादा कैक्टस) निरंजन कविता मनीष (करफ्यू) प्रमुख पात्र हैं। सबंरग मोहभंग, एवं अब्दुल्ला

दीवाना में युवक, युवती वकील जज, फिल्म श्रेय प्रोड्यूसर जैसे अनाथ पात्र हैं। जिनका चरित्र चित्रण व्यवसाय सुलभ युगीन सन्दर्भों में, प्रतीकात्मक, रूपों में हुआ है। शोधकर्त्री ने प्रमुख गौण पुरूष-स्त्री पात्रों का चरित्र, उनके आन्तरिक चिन्तन, वाह्य क्रिया कलापों तथा विशिष्ट चारित्रिक गुणों/अवगुणों की चर्चा की हैं। जिसमें

चतुर्थ अध्याय में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाटंको के पुरुष पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया गया है। प्रारम्भ में यह निरूपित किया गया ळ कि कभा की काल सीमा की दृष्टि से प्रधान या मुख्य पात्र तथा गौण पुरूष पात्र होते हैं। जिनकी भूमिका लम्बी होती है, प्रत्यक्ष या अपरोक्ष रूप से अपनी उपस्थिति और अस्तित्व का ज्ञान कराते हैं। कथा के विकास में मुख्य पात्रों का योगदान महत्व पूर्ण होता है। डॉ. लक्ष्मीनारायण के नाटकों में भगौती, कविराज जयेदव, गौतक, राजन, अरविन्द कमी, हरिपदम प्रदयुम्न, जज, चाणक्य, हिरण्यकशिपु, प्रहलाद, देवधर हेरूप ा, लौका, युधिष्ठिर वीरसिंह उत्तमा, अरविन्द, राजअंगध्वज, अर्जुन, संजय, ठाकुर मुख्यपात्र है। नाटककार ने सामाजिक सांस्कृतिक पौराणिक, आर्थिक मनोवैज्ञानिक इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों से इन पात्रों का चयन किया गया है। इसी प्रकार उच्च, सामंत अधिकारी अफसर, मंत्री, राजा, प्रधान विचारक, निम्नवर्ग के पात्र हैं। पात्रों की बाह्य रूप का अंकन कर उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति या विशेषताओं का विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय आलोच्य नाट्यकार के स्त्री पात्रों से संबंधित ह। यहा लिख गया है कि स्त्रियां/नायिकाए नाट्य किंवा साहित्य मात्र की प्राणवाहिनी धारा है, जिसमें जीवन का मर्म स्पर्शो मधुर रस प्रोत प्रोत रहता है। आचार्यो ने नारी को सुख को मूल, काम-भाव का आलम्बन नारके क`रूप-सौन्दर्य वय, प्रवृत्ति काम, गुण इत्यादि अनेक आधारों पर उनका वर्गीकरण विस्तृत एवं सूक्ष्म रूप किया है। आधुनिक युग तक आते-आते नायिकाओं के रूढ़ वर्णन की प्रवृत्ति में आमूल चूल परिवर्तन

हुआ है। नारी क`वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा उसके कृतित्व, उसकी जिजीविषा पुरूषों की दंभ भरी दृष्टि को चुनौती देती हुइ अने विडम्बनाओं सह कर भी अपनी अस्मिता की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ दिखाई देती है। डॉ. लाल ने पूर्वी, गंगा, सुवासिनी, अमृता, द्रौपदी चन्द्रमुखी सुन्दरम्, लच्छी, सुजाता भगवती गंगा, इत्यादि स्त्री पात्रों का चरित्र-चित्रण कर नारी सम्बंधी युगीन दृष्टियों स` किया है।

षष्ठ अध्याय में आलोच्य नाटकों में प्रयुक्त असामान्य पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया गया है। प्रारम्भ में लिखा गया है कि आसामन्य पात्र मनाविज्ञान के क्षेत्र से सम्बंधित पात्र होते हैं। बाह्यकार रुप से ऐस पात्र सामान्य दिखाई देते हैं न्तिु इनके आचरण, क्रिया-कलापों में विकृति आ जाती है, जिसका कारण तत्संबंधी परिस्थितियों से सामंजस्य नही कर पाते हैं। बात यह है कि मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। मनोविज्ञान सम्बन्धी शास्त्रों मेंयह मान्यता स्थापित की गई है कि व्यक्ति अपने आदिम आवेगों से संचालित और प्रभावित रहता है। यह आदिम अनुभूति कलाकार/साहित्यकार समाज के व्यक्तियों के विचित्र , अस्वाभाविक आचरणों को देखकर साहित्य में भी ऐसे पात्रों का प्रयोग करता है तथा उसकी पृष्ठभूमि में तत्सबंधी विद्धान्तों या कारक तत्वों का भी प्रत्यक्ष-परोक्ष में उल्लिखित करता है। इन में इदम, अहम, परम अहम, लिबड़ा ग्रंथि, चेतन, अचेतन, का संघर्ष प्रमुख कारक तत्व या प्रवृत्तियां होती है। नाट्काकर ने भगौती, प्रदुम्न वेनुरति, सुजान, का सूक्ष्म चरित्र-चित्रण किया है। भगौती ऐसा पात्र है, जिसकी अमानवीय हो उत है। प्रद्युम्न और बेनुरति सामाजिक वर्जनाओं के प्रिया समझता ह। और बेनुरति भी इस प्रेम को स्वीकार करती है। सुजान प्रेमिका क`न मिलने तथा उसकी मृत्यु को सुन कर उन्माद ग्रस्त हो उठ्ता है। हुताशन राजनीतिक प्रतिशोध के ाकरण इगो प्रधान हिंस्रवृत्ति को हो जाता है। डुंडा वासना पुत्तलिका है, जो अपने भतीज प्रहलाद कसे कामाचार करना चाहती

है। श्रीमती सुधा सिन्हा श्रेष्ठता की ग्रंथि से पीड़ित है, जिन्हें साधारण परिवार के लोग या उसकी संगति नही प्रसन्द करती है।

सप्तम् अध्याय आलोच्य नाटककार के नाटकों के पात्रों का सामाजिक वर्गीय रूप की दृष्टि से सम्बंधित है। सामाजिक वर्गीय रूप का तात्पर्य निरूपित करते हुए कहा गया है, कि अपारे काव्य संसारे कविरेक, प्राजपति कहकर कवि को प्रजापति निर्माता कहा जाता है। जिस प्रकार सृष्टि निर्माता की रचना/ यह दृश्य मान जगत् वैविध्य पूर्ण होता है, उसकी प्रकार कवि निर्मित साहित्य मे वर्णित एक निश्चित समाज होता है और उसके पात्र सामाजिक दृष्टि से परस्पर सूत्रबद्ध होतें हैं। इस समाज की सबसे छोटी एवं महत्वपूर्ण इकाई परिवार होता है, जिसके सदस्यों के मध्य अनेक पारिवारिक सम्बन्ध होते हैं। इस समाज में पुरूष और स्त्री होते हैं। जिनके वर्गीय रूपों में पिता, पुत्र भाई, मित्र , सहायक, तथा पत्नी, मां प्रेमिका, बहन, दासी, सखी, इत्यादि रूप से चित्रित होते हैं। इन सामाजिक रूपों का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण होता है। कि इनके द्वारा हमारे तात्तकालिक धर्म, नीति सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों में आये परिवर्तनों की झलक मिलती है। साथ ही सन्निविष्ट पात्रों के आचरण से साहित्यकार के विचारों /चिन्तन की भूमिका का भी ज्ञान होता है।

इस दृष्टि से सर्वप्रथम पितारूप की झलक प्रस्तुत की गयी है। पितृ-सत्तात्मक परिवार होने के कारण पिता परिवार का मुखिया, अग्रणी, नीति निर्धारक प्रमुख पुरूष होता है। लक्ष्मीनारायण लाल ने सामाजिक पौराणिक नाटकों में पिता के परम्परित रूप का चित्रण ही नहीं किया अपितु व्यक्तिवादी विचार धारा तथा अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित पिता की भूमिका भी प्रस्तुत की है। पिता अपनी आकाक्षाओं अभावों की पूर्ति पत्र के जीवन में देखना चाहना हे। मादा कैक्टस, के दद्दा आनन्द के डाक्टर पापा दर्पन, कलंकी, नरसिंह कथा का हिरण्यकशिपु सूर्यमुख का

कृपण, रक्त कमल का महावीर, गंगामाटी का शिवानन्द हरिश्चन्द्र, इत्यादि पात्र पिता रूप में चित्रित है।

मादा कैक्टस के नायक अरविन्द के पिता एवं नायिका आनन्दा का डाक्टर पापा पुराने/परम्परित पिता रूप में चित्रित्र है जिनके जीवन की सबसे बड़ी कामना है, कि उनक पुत्र पुत्रियां असामाजिक व्यवहार छोड़कर विवाह कर लें। प्रेम विवाहर से उन्हें कोई विरोध नहीं जब कि दर्पन के नाटक के पिता अपने दोनों पुत्रों के प्रेम-विवाह में अपनी अस्वीकृत दिखाते हैं। उन्हें ऐसा प्रेम एक प्रकार का क्षणिक मोह लगता हे। रूढ़िवादी पिता के रूप में दर्जन नायिका को अंधविश्वास के कारा बौद्धमठ में दान करना कलंकी में, हेरूप के पिता का निष्ठुर आचरण पितृ-पद के स्खलन के उदाहरण है। मिस्टर अभिमन्यु में राजन के पिता महत्वाकांक्षी पिता है, जो पुत्र को उन्नति येन-केन प्रकारेण चाहते हैं, और ऐसा जाल बुनते हैं कि पुत्र विवश हो जाता है। परिवार का मुखिया या संरक्षक होने के नाते पिता के पास अनेक सामाजिक अधिकार होते हैं ये अधिकार राजनीतिक क्षेत्र में अधिनायक वादी, प्रवृत्ति में परिवर्तित हो जाते हैं और अनेक हिरण्यकशिपु पैदा होकर अहंकार के कारण अपने ही अंश/पुत्र की हत्या के लिए प्रयत्नशील हो उठते हैं। इनमें वात्सल्य का पूर्णतया अभाव होता है। हरिश्चन्द्र गंगामाटी सूर्यमुख के कृष्ण गजोधर सरल उदार, वात्सल्यपूर्ण पिता है। पुरुष के दूसरे वर्गीय रूप में भाई आता है। अघारे, सुधीर, युधिष्ठर, अर्जुन, भीम, नकुल सहदेव, कमल , महावीर, अगस्त्य, इस रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं।, जो भातृ-प्रेम से पूरित होते हुए भी स्वतंत्र अस्तित्व रखना चाहते हैं। पुत्र रूप में अरविन्द जयदेव, राजन, हेरूप, प्रहलाद, चाणक्य, रोहित, कमल हैं जो पीढ़ी अंतराल के कारण पिता से ताल, मेल नहीं रख पाते । इस दरार कारण या तो पिता का अहंकार है, या पुत्र का ऐसे ही पुत्र हैं जो अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु पिता का विरोध करते हैं। आदर्श पुत्र के रूप में कमल, चाणक्य, प्रहलाद, उत्तमा प्रमुख है। पति रूप में भगौती, अरविन्द, जयदेव कविराज, कृष्ण राजन,

गौतम, युधिष्ठर भीम, अर्जुन, नकुल सहदेव, हरिश्चन्द्र राजा पंचम मिस्टर सिन्हा है। कहीं अच्छे, कहीं और कहीं क्रूर कहीं स्वार्थी तो कहीं उदार, पति दिखाई देते हैं।

अष्टम अध्याय लक्ष्मीनारायण लाल के पात्रों में व्यंजित मूल्य बोध से सम्बंधित है। प्रारम्भ में कहा गया है कि साहित्य क विभिन्न प्रयोजनों में से एक मानव हित संपादन भी है। मूल्यों का सम्बन्ध इसी हित सम्पादन से ह। प्राचीन भारतीय वाङ्गमय में मूल्यों के धर्म, आचरण, नीतिशास्त्र स `सम्बद्ध किया गया था। वस्तुतः मूल्य उन्हीं व्यवहारों को कहा जाता है, जिनमें मानव जीवन का हित संभावित हो जिनकी रक्षा करना समाज अपना सर्वोच्च कर्तव्य मानता है। ये एक प्रकार की शाश्वनता का बोध करते है। ये जीवन के आदर्श एवं सर्वसम्मन सिद्धान्त होते है, जिन्हें अपना कर कोई जाति, धर्मया समाज सार्वजनिक जीवन को सुन्दर बनाने का नियोजन करता है। मूल्य सामाजिक परिस्थिति तथा मान्यताओं के साथ बदलते रहते हैं किन्तु उनमें अन्तर्निहित मंगल कामना और सार्वजनिक हित की भावना कभी तिरोहित नहीं होती। नए परिवेश में पुरानी मान्यताएं जब कालातीत हो जाती हैं, तो समाज नयी मान्यताओं को स्वीकार कर लेता है, और वे ही मान्यताएं मूल्य बन जाती हैं। आज वैज्ञानिक प्राद्यौगिकी तथा उपभोक्ता वादी युग है अतः प्राक्तन मूल्यों के अनुरूप जीवन जटिल एवं कष्ट साध्य हो गया है। परिणाम स्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नए-नए मूल्यों की तलाश होने लगी। समाज देश-काल-परिस्थिति की आवश्यकतानुसार सामजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनीतिक आध्यात्मिक इत्यादि मूल्यों के भेद हो सकते हैं।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों के या समस्या प्रधान नाटक हैं। अतः उनके नाटकों में तद् क्षेत्रीय जीवन मूल्यों के प्राक्तन एवं नवीन रूप मिलते है। पारिवारिक या सामाजिक मूल्यों का चित्रण किसी न किसी रूप में सभी

नाटकों में मिलता है। अंधाकुंआ में टूटते संयुक्त परिवार तथा रातरानी सुन्दर रस करफ्यू में एकाकी परिवारों के मुल्यों का चित्रण है। दाम्पत्य बंधन में एक निष्ठा यदि रातरानी में मिलती है, तो विवाह पूर्व तथाविवाह के बाद शरीरिक सम्बन्धों के कारण आए तनावों की समस्या भी इन्ही नाटकों में दिखाई देती है। विवाह, प्रेम, प्राक्तन परम्पराएं कितनी महत्वपूर्ण है, इनका चित्रण करफ्यू, दरपन, हंसने वाली लड़कियां, मादा कैक्टस में हुआ है जहां नारी पुरानी रूढ़ियों, परम्पराओं और संस्कारों में जकड़ी होने के कारण न तो वह पूरूष के शोषण से मुक्त हो पाती है, न ही अपनी अस्मिता को बचा पाती है। अपमान के विषैले घूंट पीने के बावजूद वह खुल कर विद्रोह नहीं कर पाती है। अंधा कुंआ से लेकर 'सगुन पंछी' तक नारी के पुराने विश्वास, उसकी नियति तथा अधुनातन उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारणों की तलाश भी डॉ. लाल के नाटकों में मिलती है। स्वतंत्र भारतीय नारी में प्राचीन मूल्यों का विघटन, मित्रवत पुरूषों के साथ जीवन यापन करने की प्रवत्ति एवं सहचर रूप में पति प्रेम की परिकल्पना रातरानी, सुन्दर रस, सगुन पंछी, रक्त कमल में व्यंजित है। प्राचीन मूल्यों के खोखले पन को भी उजागर किया गया है।

सौन्दर्य, काम, प्रेम, विवाह, वात्सल्य, सौहार्द के नए एवं अधुनातन रूप सूर्यमुख, गुरू, सगुन पंछी, उत्तर युद्ध, सामाजिक मूल्य किसी न किसी रूप में राजनीतिक परिस्थितियों से प्रेरित, प्रभावित दिखाई देते हैं। सवरंग मोह भंग, यक्ष-प्रश्न रक्त कमल नरसिंह कथा, गुरू संस्कार ध्वज नाटकों में राजा, समान, मुखिय स्वत्व सम्पन्नता का व्यामोह, उससे उपजी आधिकारिक भवना अधिनायकवादी प्रवृत्ति को जन्म देती है, जिसके ओग व्यक्ति के कोमल पक्ष मृत प्राय हो जाते हैं। अधिकार लिप्सा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि व्यक्ति अपनी पत्नी, पुत्र, भाई, के मूल्यों को विस्मृत कर जाता है। तानाशाही प्रवृत्ति में जनता के शोषण, की कोई इति नहीं होती। आर्थिक मूल्यों का चित्रण, अर्थतत्व की प्रधान सम्बन्धों आए तनाव देश की दुरवस्था के कारक तत्वों का चित्रण, रातरानी, सुन्दर रस,

रक्त कमल में विशेष रूप से हुआ है। गंगामाटी, एक सत्य हरिश्चन्द्र में यह मूल्य दूसरे रूप में व्यंजित है। रक्त कमल का नाटक कमल भारतवर्ष की आर्थिक दरवस्था, प्रजा की जड़ता, स्वत्वाधिकार के प्रति उदासीनता, शासक वर्ग के शोषण के उपायों कभी चित्रण डॉ. लाल ने किया है। इस अर्थ लोलुपता एवं सत्ता के आकर्षण ने न्याय क्षेत्र को भी प्रभावित किया कि 'कमिटेड जजों' की परिकल्पना साकार रूप अपनी पत्नी देवी मां को माध्यम बनाकर उपभोक्तावादी मूल्यों का वाहक बनता है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक मूल्यों के रेगिस्तान में दया, ममता, त्याग, सेवा, परोपकार, बन्धुत्व के नरवलिस्तान की चर्चा कर मानव को नए मानवरूप में प्रस्तुत करने की संभाव्यता पर निष्ठा व्यक्त की है। व्यक्ति की विवशता, वर्जनाओं के कारण कुंठा, दमन, शोषण, अत्याचार के कारण वैयक्तिक सौमनस्य का अभाव, स्वाभाविक जीवन की सहजता को लोप ग्रामीण एवं शहरी जीवन में चित्रित है, तो दूसरी तरफ 'नहि मानुषान हि किंचित, की स्वस्था धारणा मूलक मूल्यों की स्थापना उनके नाटकों को प्रधान लक्ष्य है।

सारांश यह है कि डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों के पात्रों का चरित्र-चित्रण प्राक्तन एवं आधुनिक प्रतिमानों के आधार पर विश्लेषण करते हुए देखा गया है ि उनके पात्र युगीन परिवेश से पूर्णतया प्रभावित ही नहीं वरन वे उनका प्रतिनिधित्व भी करते हैं साथ ही युगीन मूल्य-वोधों के संवाहक भी हैं। बात यह है कि स्वातंत्र्य-चेतना और उसकी प्राप्ति भारतीय इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। इस सत्य ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर अपना वर्चस तो स्थापित ही किया साथी ही भारतीय सामाजिक जीवन, परिवेश, संस्कृति और मूल्यों को भी प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात देश विकास हेतु बनी पंचवर्षीय योजनाएं, औद्योगिकीकरण ने राष्ट्र में नव जागरण व बहुमुखी पलायन करने वाल आर्थिक सामाजिक दृष्टि से अपेक्षा कत हीन व्यक्तियों के मन में अनेक विषमताएं उत्पन्न कर दी। मानव अपने यथार्थ के धरातल से कट कर एक

नई जमीन की तलाश करने लगा। धीरे-धीर एक ओर वैज्ञानिक उपलब्धियों, बौद्धिकता वहीं दूसरी ओर राजनेताओं के चरित्रों से सामान्य जनता का मोह भंग सामाजिक सम्बन्धों का ह्रास, भौतिक सुख-साधनों को प्राप्त करने की लालसा ने उसे समाज की धारा से ही कष्ट गया। उसका जीवन कठिन, संघर्षमय हा`जाने के कारण आम आदमी आत्मकेन्द्रित होने लगा। उसके सामाजिक, आर्थिक राजनीति जीवन और व्यवस्था के बीच संघर्ष एवं अन्तर्विरोध खड़ा होने लगा। इस कारण व्यक्ति की अस्मिता का सवाल महत्वपूर्ण हो गया। वह उसके भविष्य के सपने ही नही टूटे बल्कि वह स्वयं टूटने लगा। इस उलझे जाल में फंस कर उसका मुक्ति प्रयास प्रायः असफल रहा। ऐसे परिवेश में डॉ लक्ष्मीनारायण लाल के पात्र अपने व्यक्तित्व, चरित्र से युगीन सन्दर्भो की अभिव्यक्ति करते दिखाई देते हैं। पात्र चाहे सामाजिक, आर्थिक, पौराणिक सांस्कृतिक , राजनीतिक, राजनीतिक जीवन के हों उन्हें एक नये धरातल पर खड़े हुए हम देखते हैं।

डॉ. लक्ष्मीनारायण के पात्रों विहगावलोकन करने पर सह सहज ही ज्ञात होता है, कि उनकी पात्र दृष्टि का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। सामाजिकक, आर्थिक परिवर्तन एवं विगड़ते-बनते परिवेश के कारण मानवीय सम्बन्धों की निरर्थकता का अहसास इन पात्रों से होता है। जीवन की जटिलता के कारण नायक की परिकल्पना में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है। नायक धीरोदात्त, सर्वगुण सम्पन्नायिका न होकर सामान्य वर्ग के प्रतिनिधि पात्र मानत्र रह गये। तनावपूर्ण मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों से नायक सम्बन्धी धारणाएं खण्डित होन लगी है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल क`पात्र प्रमुख एवं गौणपात्र केन्द्रीय रूप में दिखाई देते हैं। इन पात्रो के व्यक्तित्व ये उनके चरित्र का मूल्यांकन बने-बनाये ढांचे या प्रतिमानों से नही किया जा सकता। भगौती सूका (अंधा कूंआ) जयदेव,निरंजन (रातरानी) कमल (रक्त कमल एवं गंगामाटी) प्रद्युम्न-बेनुरती (सूर्यमूख) कविराज एवं देवी मां (सुन्दररस) ऐसे अनेक पात्र हैं डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाट्कों के पात्रों

का प्रवृत्तिगत विश्लेषण करें, तो यह लिखा जा सकता है कि उने कुछ पात्र आदर्शवादी, मानवतावादी, यथार्थवादी तथा कुछ व्यक्तिवादी अस्तित्वादी एवं कुण्ठित व्यक्तित्व वाले पात्र हैं।

डॉ. लाल के पौराणिक एवं ऐतिहासिक एवं कुछ सामाजिक क्षेत्रों के पात्र आदर्शवादी पात्र हैं। इनका व्यक्तित्व समाज को प्रेरित करने वलाला हे। वैयक्तित्व जीवन में ऐसे पात्र मानवतावादी पात्र भी हैं। एक बात अवश्य है, कि ऐसे पात्रों पर आदर्श की छाप आरोपित जैसी नहीं लगती ह। निरंजन कुंतल (रातरानी) प्रहलाद (नरसिंह कथा) कमल (रक्त कमल गंगामाटी) चाणक्य, सिंहरण (नरसिंह कथा) के प्रति आकर्षण, आस्था का सम्बेल पुष्ट होता है। इन पात्रों में जिजीविषा, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, निराशा में आशा नैतिक जीवन के प्रति रुझान दिखाई देता है। इनसे मानवीय सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है।

देश में आर्थिक वैषम्य की भयावह परिणति के साथ ही सामाजिक यथार्थ काह स्वरूप बदल गया। जो पात्र नैतिक मूल्यों के वाहक, उन पर आस्था रखकर तद्नुरुप व्यवहार करने वाले थे, उनमें वैचारिक उदात्तता दिखाई पड़ती थी, अब वे पात्र जीवन की बिडम्बना, कुरूपता, सामाजिक सम्बन्धों में टूटन के मुक्त भोगी होकर तद्जन्य मूल्यों के वाहक बने । ऐसे सामाजिक रानीतिक छलछन्द, षड़यन्त्र के द्वारा यर्थार्थ को प्रस्तुत करते हैं। जयदेव (राजरानी) साहूकार (अंधाकूंआ) गयादत्त (मि. अभिमन्यु) महावीर, गुरूराम (रक्तकमल) देवधर (सत्य हरिश्चन्द्र) शारदा प्रसाद सिंन्हा (हंसती हुई लड़कियां) गौतम (करफ्यू) वीर सिंह (संस्कार ध्वज) इत्यादि ऐसे ही पात्र हैं। साामजिक विद्रपताओं विषमताओं एवं रूढ़ियों के प्रति विरोधी स्वर इन पात्रां से मुखरित हुए हैं। सुजान, हरिपदम, पिता जी (दर्पन) मनीषा, कविता (करफ्यू) कमल (रक्त कमल) द्वारा व्यक्ति और समाज के चित्रकों यथार्थवादी व्यक्त करने मे पूर्णतः सफल हुए। मादा कैक्टस का

मुख्य पात्र अरविन्द, दरपन का हरिपदम में जीवन एवं समाज की स्थितियों का यथातथ्य चित्रण मिलते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में कुछ आदर्श एवं कुछ यथार्थ का मिश्रण कर युगीन परिस्थितियों के अनुरूप मानवता वादी पात्रों का प्रयोग डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक में मिलत है। जिनके सामने समाज में समानता, स्वतंत्रता, वन्धुत्व की भावना प्रबल रूप में रही है। कुन्तल (रातरानी) सूका, भगौती (अंधा कुआं) पूर्वी (दर्पण) सुजाता, आनन्दा (मादा कैफ्टस) सुवासिनी (गुरू) राजन, आत्मन (मि. अभिमन्यु) प्रमुख पात्र हैं।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के अनेक ऐसे पात्र हैं जो व्यक्तिवादी इकाई के पक्षधर है। यथार्थवादी परिस्थितियों को देखकर जीवन की व्यर्थता, नैराश्य, आन्तरिक टूटन, सामाजिक विकृतियों की प्रवृत्ति इन पात्रों में प्रबल रूप से दिखाई देती है। भगौती (अंधाकुआं), देवीयां, कविराज (सुन्दर रस), वेनुरती प्रद्युम्न (सूर्यमुख) पिता (कलंकी), गौतम (करफ्यू) आत्म केन्द्रित जीवन व्यतीत करने वाला अरविन्द (मादा कैफ्टस) डूड़ा हिरण्यकशिपु (नरसिंह कथा) इत्यादि पात्र इसी कोटि के हैं। ये पात्र सामाजिक विचार धारा से परिचालित न होकर अपनी जीवन दृष्टि विकसित करते है। नैतिक पूल्यों के ये पक्षधर कम ही होते हैं। पुरानी रूढ़ियों परम्पराओं , अंधविश्वासों तथा उन प्रतिमानों का खण्डन कर अपनी अस्मिता को बनाये रखना चाहते हैं।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के अनेक पात्र ऐसे हैं, जो हीन ग्रंथियों से पीड़ित हैं। अपने चेतन एवं अचेतन जन्य क्रिया व्यापारों में सामंजस्य न बैठा सकने के कारण ये पात्र अस्वाभाविक या कुंठित जीवन व्यतीत करते है। भगौती (अंधा कुआं) का मुख्य पात्र है जिसके पुरुषार्थ को चुनौती उसकी पत्नी सूका देती है। पत्नी प्रेमी के साथ भाग जाती है अतः उसको इगो आहत हो जाता है, और वह क्रूरता वर्वरता का शिकार सूका को बताता है। इन्दर का घर आग से जला देता है। मादा कैफ्टस का

अरविन्द विवाह संस्था पर कुठराघात करता है। वह आनन्दा के साथ विना विवाह, कर्मकांड सम्पादित किये रहना चाहता है, क्योंकि विवाह का घरौंदा आज अप्रासंगिक हो गया है। सुधा (हंसती हुई लड़कियां) सुपीरियन काम्प्लेक्स ग्रंथि से पीड़ित है। वह अपने पुत्र एवं पति को पड़ोसियों से दूर रखना चाहती है। क्योंकि इन वर्ग के लाग क भावनाएं अत्यन्त दूषित करती हैं। डूडा (नरसिंह कथा) अतृप्त काम की प्रतीक है। मिस्टर अभिमन्यु में राजन का दूसरा रूप आत्मन है। राजन को आन्तरिक संघर्ष अपने तीव्र रूप में चित्रित है। माता-पिता के आग्रह से उसने सरकारी नौकरी तो कर ली किन्तु राजनेताओं या शीर्षस्थ अधिकारियों के अनावश्यक हस्तक्षेप तथा पत्नी विमल की उच्च महत्वाकांक्षाओं की पहुंचने देता है। वह त्यागपत्र देकर इस चक्रव्यूह से निकलने की सोचता तो है, कि ऐसा लगता है कि किसी न किसी रूप में उसका प्रयास कमजोर मन से लिया गया निर्णय है।

लक्ष्मीनारायण लाल के नाट्कों में ऐसे पात्रों की कमी नहीं है, जिनका नाम या उनके साथ कुछ घट्नाएं संलग्न/प्रयुक्त हैं। अंधा कुंआ, सुन्दर रस, सब रंग मोह भंग, नरसिंह कथा, अब्दुला दीवना ऐसे ही नाट्क हैं। इस प्रकार के पात्र व्यक्तित्व या चरित्र के रूप में नहीं उभर सके। युवक युवती, प्रोड्यूसर वकील, जज, सिपाही, ऐसे व्यवसाय/पेशे/या अवस्था के द्वारा इनकी झलक प्रस्तुत की गई है ।

-: ग्रन्थ सूची :-

(क) आलोच्य नाटक

1- अंधा कुँआ- अंबर प्रकाशन,नई दिल्ली,1981

2- मादा कैक्टस-राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1959

3- रात रानी-नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली सप्तम संस्करण1986

4- दर्पण- नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली,द्वितीय संस्क0 1966

5- रक्त कमल-राज कमल प्रकाशन लिमि0 दिल्ली 1962

6- सूर्य मूखी-नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली प्रथम 1968

7- मिस्टर अभिमन्यु-मयूर पेपर बैक्स,नोयडा,8वाँ सस्क0,2004

8- कलंकी-नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली प्रथम 1969

9- करफ्यू-लोक भारती, प्रकाशन इलाहाबाद 1993

10- अबदुल्ला दिवाना-लिपि प्रकाशन,दिल्ली प्रथम 1984

11- नरसिंह कथा-दि मैक मिलन कम्पनी,दिल्ली

12- गुरु- शिप्रा प्रकाशन आगरा

13- यक्ष प्रश्न-राज पाल एण्ड सन्स-दिल्ली प्रथम 1976

14- एक सत्य हरश्चन्द्रराजपाल एण्ड सन्स दिल्ली 1992

15- गंगा माटी-पीताम्बर पब्लिशिंग,दिल्ली 84

16- सगुन पंक्षी-लोक भारती इलाहाबाद, 1987

17- सब रगं मोह भंग-सरस्वती विहार नई दिल्ली

18- हँसने वाली लडकियॉ-लोक भारती प्रकाशन,इलाहाबाद 1988

19- संस्कार ध्वज-श्री राम प्रकाशन,आगरा

(ख) सहायक ग्रन्थ

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य शुक्ल ना0प्र0सभा काशी

2- हिन्दी नाटक-उदभव विकास,डा0दशरथ ओझा- द्वितीय संस्करण 1956

3- हिन्दी का गद्यसाहित्य-डा0रामचन्द्र तिवारी वि0 वि0 प्रकाशन वाराणशी

4- हन्दी नाटको की शिल्प विधि का विकास-डॉ0 शान्ती मलिक,नेशनल पब्लि0हाउस दिल्ली 71

5- हिन्दी साहित्य का प्रवृत्ति गत इति0 डॉ0 प्रेम नारायण टण्डन

6- आधुनिक हिन्दी नाटकों मे नायक, डॉ0 श्याम शर्मा-अभिनव प्रकाशन, दिल्ली प्रथम 1978

7- पात्रावतरण की अवधारणा - डॉ0 रामशंकर त्रिपाठी - ऊर्जा प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम 1990

8- कृतिकार ल0ना0लाल सम्पा0डा रघुबंश लिपि प्रकाशन दिल्ली प्रथम 79

9- लक्ष्मी नारा0लाल के नाटक और रंगमंच डॉ0 दयाशंकर शुक्ल - पीताम्बर प्रकाशन दिल्ली 1980

10- नाटककार ल0ना0लाल की नाट्य साधना डॉ0 नरनारायण - सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली 79

11- हिन्दी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण-डॉ0 सूरजकान्त शर्मा

12- अरस्तू का काब्य शास्त्र - सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र

13- हिन्दी उपन्यासों में चरित्र चित्रण का विकास डॉ0 रणवीर रांग्रा

14- असमान्य मनोविज्ञान - डॉ0 रामकुमार राय

15- हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन- डॉ0 गिरीश रस्तोगी

16- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इति0 - डॉ0 बच्चन सिंह-लोक भारती, इलाहाबाद

17- पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा – होरेस अनु0 डॉ0 सावित्री सिन्हा

18- त्रिवेणी – आ0 राम चन्द्र शुक्ल

19- पश्चिमी आलो0 शास्त्र – डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

20- साहित्यालोचन के सिद्धान्त– डॉ0 श्याम सुन्दर दास

21- रूपक रहस्य – डॉ0 श्याम सुन्दरदास

22- काव्य के रूप – डॉ0 गुलाब राय

23- हिन्दी नाट्य साहि0 का इति0 – डॉ0 सोमनाथ गुप्त

24- हिन्दी नाट्य – साहित्य का आलो0 अध्ययन – डॉ0 वेदपाल खन्ना

25- हिन्दी साहित्य – सम्पा0 धीरेन्द्र वर्मा

26- ध्रुव स्वामिनी की व्यापक पृष्ठ–भूमि – डॉ0 प्रेमलता मिश्र– अन्विति प्रकाशन, बाँदा

27- हिन्दी नाटक पुनर्मूल्यांकन – डॉ0 सत्येन्द्र तनेजा

28- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र – डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

29- हिन्दी नव लेखन – डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी

30- स्वातंयीत्तर हिन्दी समीक्षा में काव्य मूल्य – डॉ0 राम जी तिवारी, अतुल प्रकाशन, कानपुर

31- आठवें दशक की हिन्दी कहानी और जीवन मूल्य – डॉ0 रमेश देशमुख, विद्या प्रकाशन, कानपुर

32- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन – डॉ0 देवराज – उ0प्र0 प्रकाशन ब्यूरो, लखनऊ

33- भारतीय नीति का विकास – डॉ0 राजबली पाण्डेय – बिहार राष्ट्र भाषा परि0

34- भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका – डॉ0 नगेन्द्र

35- सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन – डॉ0 रमेश कुन्तल मेध

36- मानव मूल्य और स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास – डॉ0 बलराज सिंह परमार

37- स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उप0–मूल्य संक्रमण – डॉ0 हेमेन्द्र कुमार पानेरी – संधि प्रकाशन, जयपुर

38- हिन्दी नाटक और रंगमंच – डॉ0 सुरेश वशिष्ठ

39- समकालीन हिन्दी रंगमंच – डॉ0 रमित गुरव – विद्या प्रकाशन, कानपुर

40- स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी नाटक समस्याएँ एवं समाधान – डॉ0 दिनेश चन्द्र वर्मा

41- मानव मूल्य और साहित्य – डॉ0 धर्मवीर भारती, ज्ञानपीठ काशी

42- हिन्दी साहित्य आधु0 परिदृश्य – अज्ञेय – राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

43- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य – डॉ0 रमेश चन्द्र लावनिया – अमित प्रकाशन, गाजियाबाद

(2) अंग्रेजी ग्रन्थ

1- ए स्टीड ऑफ सोफोक्लीन ड्रामा – जी0एम0 किर्कवुड

2- एरिस्टॉटल थ्योरी ऑफ पोएट्री एण्ड फाइन आर्ट्स – बूचर

3- दि इन्सेसियल ऑफ इण्डियन फिलासफी – प्रो0 हिरियन्ना

4- प्लाट आर करेक्टर – लागोस एग्री

5- सेक्सपीरियन ट्रेजडी – ए0सी0 ब्रेडली

6- प्ले मेकिंग एण्ड क्राफ्ट मैन शिप - विलियम आर्चर

7- दि साइकोलॉजी आफ करेक्टर - रोबेक

8- ह्यूमन नेचर इन दि मेकिंग - मैक्स शान

9- परसनाल्टी - ए साइकोलाजिक इण्टर प्रिटेशन - जी0डब्लू0 एल्पोर्ट

10- साइकोलजी - नारमन

11- फिजिक एण्ड करेक्टर - क्रैशमर

12- कॉंस्टीच्यूशन फैक्टर इन परसनाल्टी

13- इन्ट्रोडक्शन टु दि थियेटर - हार्बर्ट ओ0 हारा

14- रायटिंग फार यंग पीपुल - एम0एल0 राबिन्सन

15- आर्ट आफ प्ले - हरमन हुड

16- करेक्टर मेक योर स्टोरी - एल0 वुड

17- आर्ट ऑव ड्रेमेटिक रायटिंग - लाजस एग्री

18- एन इण्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑव इंग्लिस लिट्0 - हडसन

19- साइकोलाजी - ए सिस्टमेटिक इण्ट्रोडक्शन - एच0एम0 जानसन

20- फण्डा मेंटल आफ एथिक्स - अर्बन

21- मार्क्सिज्म - मार्क्स एंगिल्स - बी0आई0 लेनिन

22- सेक्स एण्ड मारल्स - डब्लू0एच0

(ग) अन्य ग्रंथ

1- मानक हिन्दी कोश - रामचन्द्र वर्मा

2- नाट्य-शास्त्र - आ0 भरत, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3- दशरूपक - धनञ्जय, अनु0 भोला शंकर व्यास - चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

4- शब्द कल्पद्रुम - चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

5- श्रीमद् भगवद् गीता - गीता प्रेस गोरखपुर।

(घ) सांख्य कारिका

1- अष्टाध्यायी - महर्षि पाणिनि

2- मनु स्मृति - चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3- नीति शतक - मातृहरि - चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

(ङ) पत्रिकाएँ

1- छाया नट - अंक 45, 1988

2- साहित्य - संदेश, वर्ष 1951

3- आलोचना - वर्ष 6